श्री पूर्वधराचार्यदेवश्री शिवशर्मसूरीश्वर विरचित

कर्मप्रकृतिगतमुपशमनाकरणम्

श्री प्रेमगुणाटीका विभूषितम्

(प्रथमो भागः)

प्रेरकाः संशोधकाश्च

प. पू. सिद्धान्तमहोदधयः कर्मसाहित्यनिष्णाता आचार्यदेवश्रीविजय प्रेमसूरीश्वराः

प्रकाशिका - भारतीय - प्राच्यतत्व - प्रकाशन समितिः, पिंडवाडा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरण पृष्ठ १ के चित्र का परिचय

इस चित्र में अेक आदमी रजकणों को पानी छांट कर धोखे (डंडे) से कूटता हुआ जमाता है, जब रजकण जम जाते हैं। तब वे उडते नहीं। इसी प्रकार आत्मा रूपी आदमी विशुद्धिरूपी पानी छाँट कर धोके से दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीय कर्म रूपी रजकणों को जमाता है। तब वे कर्म उदय आदि के लिये अयोग्य बन जाते हैं। उसे कर्मों की उपशमना कहते है। मोहनीय कर्म की सर्वोपशमना होती है। शेष कर्मों की देशोपशमना होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।।

सकलागमरहस्यवेदि-परमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ।

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति-संचालितायां

आचार्यदेवश्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वर-कर्मसाहित्य-जैन ग्रन्थमालाया ग्रन्थः

श्रीपूर्वधराचार्यदेवश्रीशिवशर्मसूरीश्वरविरचितं

श्रीप्रेमगुणाटीकाविभूषितं

कर्मप्रकृतिगतमुपशमनाकरणम्

प्रथमो भागः

UPSHAMANA KARANAM

of

Karma Prakriti

(First-Part)

प्रेरकाः मार्गदर्शकाः संशोधकाश्च

सिद्धान्तमहोदधि-कर्मशास्त्रनिष्णाता-ऽऽचार्यदेवाः

श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराः

प्रकाशिका - भारतीय प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन समिति, पिण्डवाडा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमआवृत्तिः-
प्रति १०००

मूल्यम-१०० रुप्यकानि

वीर संवत् २५१८
विक्रम संवत २०४८

*** प्राप्तिस्थान ***

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/ रमणलाल लालचंद शाह
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/ शा. समरथमल रायचंदजी
पिंडवाड़ा (राज०)
स्टे. सिरोही रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/ दिलीपकुमार रमणलाल
भस्कती मार्केट,
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक—
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाडा
स्टे.-सिरोहीरोड (W. R.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

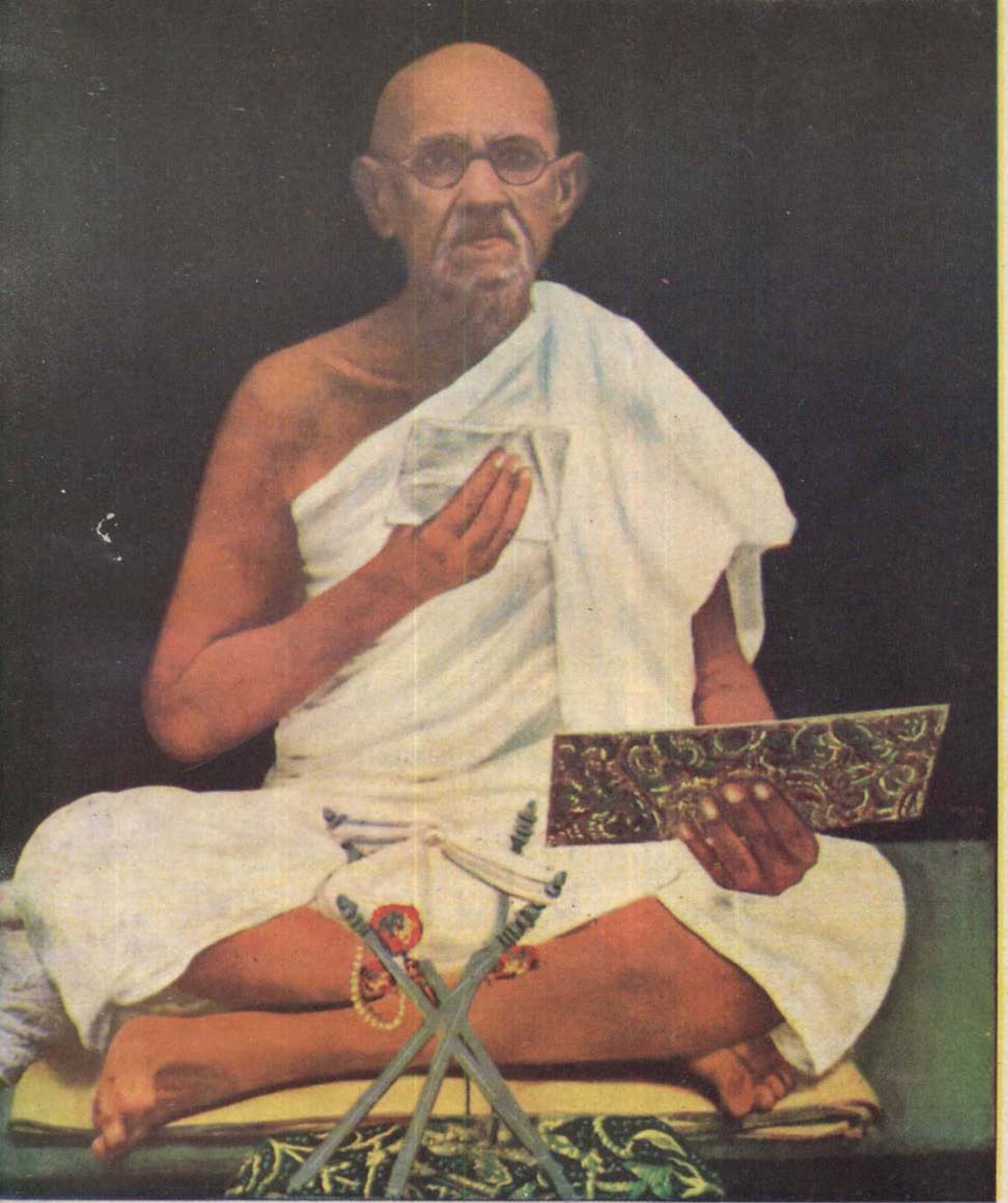

सकलागमरहस्यवेदी प्रौढप्रतापी गीतार्थमूर्धन्य परमगुरुदेव

स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

First Edition
copies 1000

PRICE RS. 100

A. D. 1992

AVAILABLE FROM

1. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti,
C/. Shah Ramanlal Lalchand,
135/137, Zaveri Bazzar,
BOMBAY - 400 002
(INDIA)

★

2. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti
C/. Shah Samarathmal Rayohandji,
PINDWARA 307022 (Rajasthan)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

★

3. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABAD-380002
(INDIA)

★

Printed by :-
Gyanodaya Printing Press
PINDWARA. 307022 (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—: पदार्थसंग्रहकारा :—

श्रीमत्तपोगच्छगगनाङ्गणदिनमणि-सुविहितविशाल–गच्छाधिपति-सिद्धान्तमहोदधि-
सच्चारित्रचूडामणि – कर्मसाहित्यनिष्णात - - प्रातःस्मरणीय - - स्वर्गस्थाचार्य--
शिरोमणि-श्रीमद् विजयप्रेमसूरिश्वरान्तेवासि-स्याद्वादनयप्रमाण विशा-
रदाचार्यदेव श्रीमद्विजय भुवनभानुसूरीश्वर-शिष्य-प्रशिष्याः–
सिद्धान्तदिवाकराचार्यदेवश्रीमद्विजय जयघोषसूरीश्वर--धर्म –
जित्सूरीश्वर-हेमचन्द्रसूरीश्वर–गुणरत्नसूरीश्वराः

★

—: टीकाकारः :—

पूज्यमेवाडदेशोद्धारकाचार्यदेवश्रीमद्विजय जितेन्द्रसूरीश्वरान्तिषदाचार्य-
देवश्री विजयगुणरत्नसूरीश्वराः

★

:— सम्पादकः :—

पूज्याचार्यदेवश्रीविजयगुणरत्नसूरीश्वरशिष्यः
मुनिराजश्रीसंयमरत्नविजयः

★

—: संशोधकाः :—

(१) सिद्धान्तमहोदधि–विजयप्रेमसूरीश्वराः
(२) आगमादिशास्त्रकुशला विजयोदयसूरीश्वराः
(२) पदार्थसंग्रहकाराश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

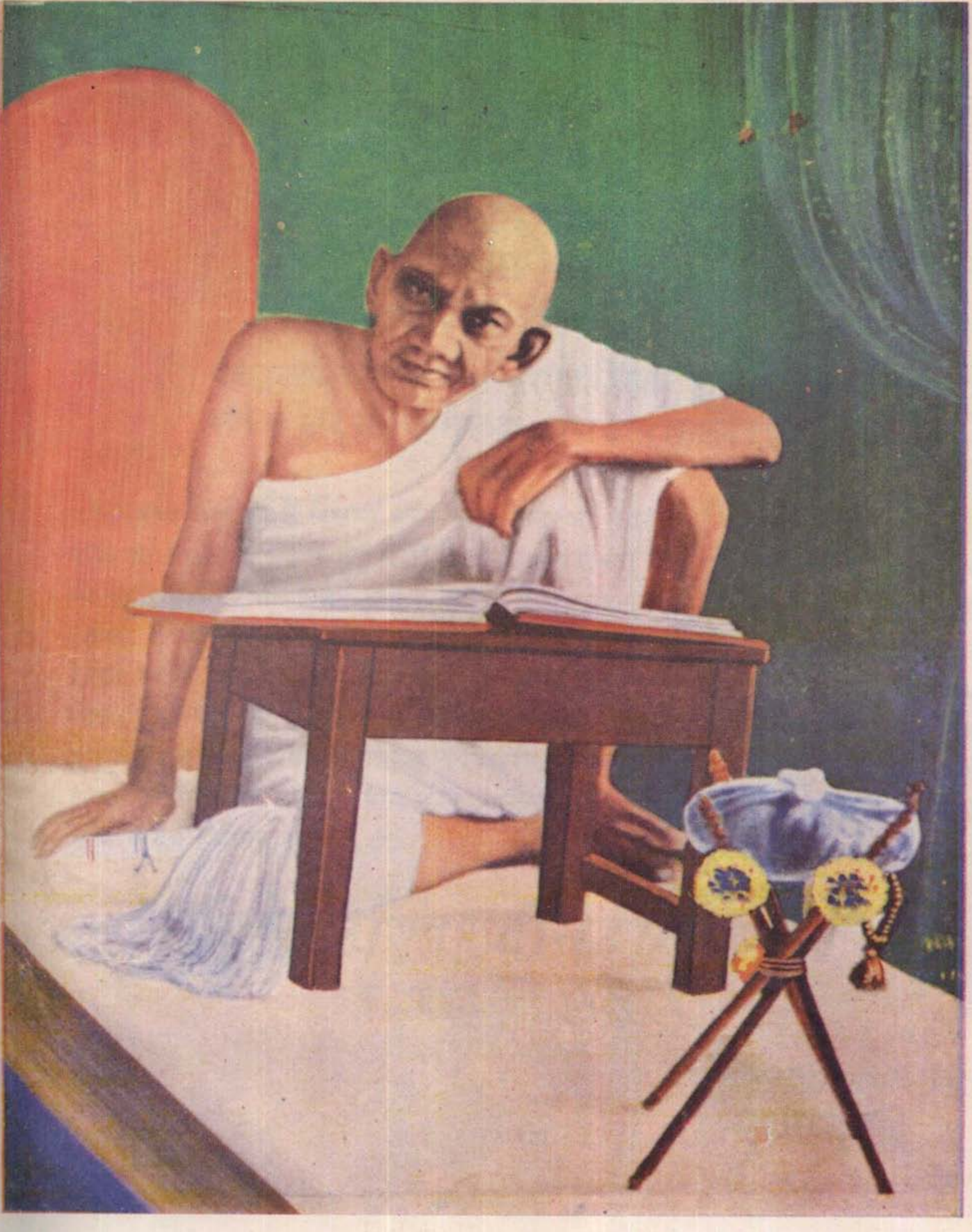

सिद्धांतमहोदधि सच्चारित्रचूडामणि कर्मसाहित्यनिपुणमति सुविशालगच्छाधिपति
परमगुरुदेव स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

यद्यङ्गल्याऽऽकाशो मेयः प्रसृताभिश्च पाथोधिः ।
स्यां च यदि सहस्रमुखस्तदा क्षमोभवदुपकृतीवक्तुम् ॥१॥

क्या अङ्गुली से विशाल अनंत गगन नापा जा सकता है। क्या अंजलियों से समुद्र नापा जा सकता है ? क्या मुख में १००० जीभ हो सकती हैं। यदि नहीं, तो जिनके उपकार को कहने के लिये भी समर्थ नहीं हूं क्योकि जिन महापुरुष ने अपार संसार सागर में से उठाकर संयाम नौका में आरोहण करवाया १४-१४वर्ष तक अपनी निश्रा में रखकर पंचाचार पालन करवा कर जो संयम नौका के सफल कप्तान बने, शिल्पी की तरह ग्रहण आसेवन शिक्षा देकर पत्थर में से आदरणीय प्रतिमा का सर्जन किया, जिनकी परमकृपा से स्वोपज्ञ क्षपकश्रेणि व प्रकृतिबन्ध की टीका व उपशामनाकरण की टीका सर्जन करने मे समर्थ बना। उन्हीं अनंत उपकारी परम पूज्य कर्मसाहित्य निष्णात सिद्धान्त महोदधि स्वर्गस्थ आचार्य देव श्रीमद्विजय व —

प्रेमसूरीश्वरजीमहाराज को

के पवित्र कर कमलों में

भवदीय कृपाकांक्षी शिश

गुणरत्नसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभ—आशीर्वाद

जिनकी शुभनिश्रामें द्विशताधिक मुनिवर सिद्धि के शिखर पर पहुंचने के लिए
हजारों भव्य जीवों को साधना आराधना करवा रहे है, स्याद्वाद व तर्क मेंजिनकी
प्रज्ञा अस्खलित चल रही हैं, जो निकलंक संयम व तप की साक्षात् मूर्ति हैं, जिनके
निःस्वार्थ वात्सल्य की वर्षा मेरे जैसे अनेक आत्माओं पर निरन्तर हो रही है,
पावरहाउस के पावर की तरह जिनके शुभआशीर्वाद से उपशमनाकरण
टीका ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, उन जैन शासन के
महाप्रभावक अद्वितीय वर्तमान सुविशालश्रीमद्-
विजयगच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद्विजय-

भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा को

कोटीश वन्दनावली

भवदीय आशीर्वाद से प्रप्लावित प्रशिष्य
गुणरत्नसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

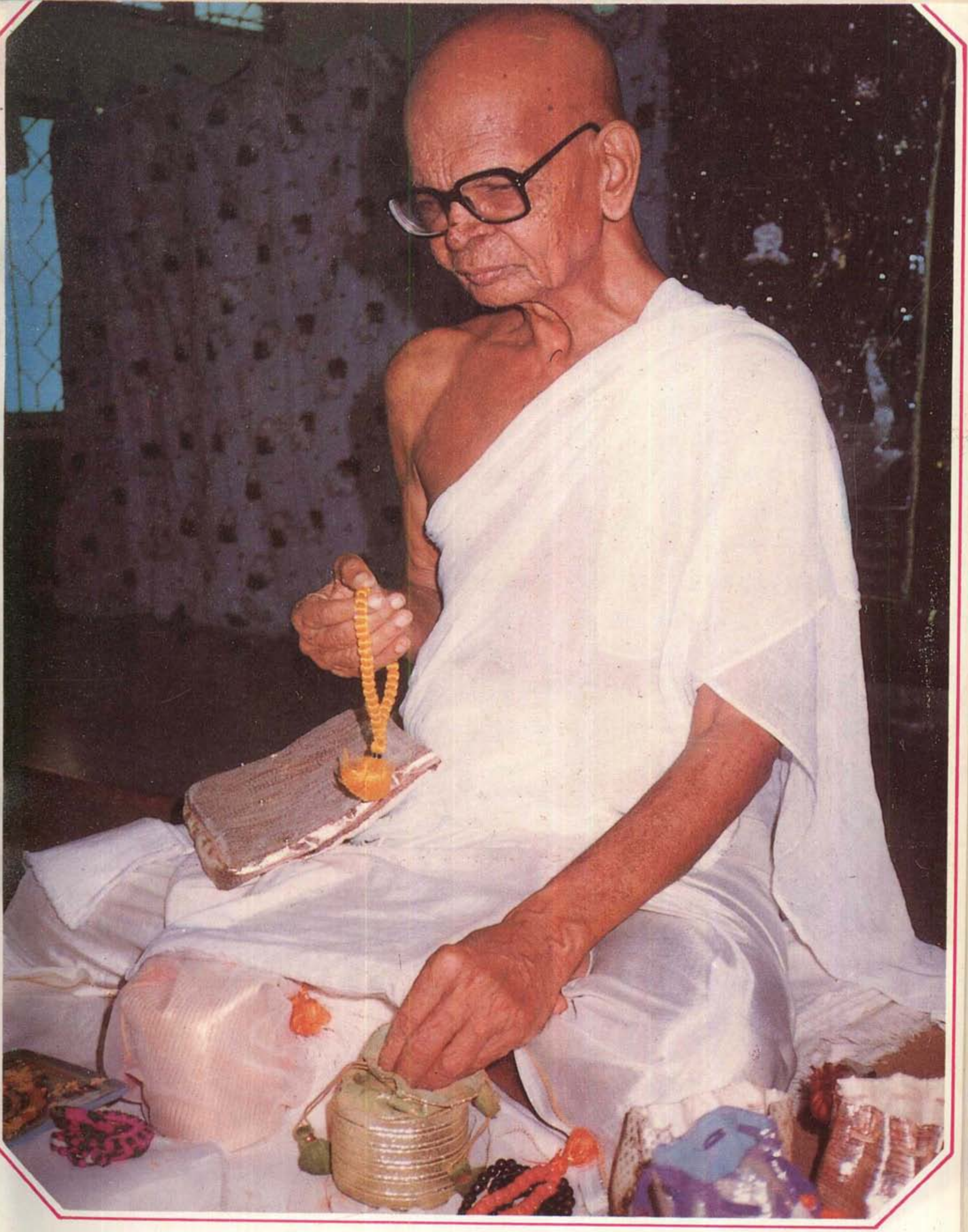

सुविशाल गच्छाधिपति आचार्यदेवश्री

विजय भुवन भानुसूरीश्वरजी महाराज साहेब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

आणविक युग Atomic age का आधुनिक मानव सुपर-सोनिक प्लेन (uper sonic plane) की तीव्र गति सुख के पीछे दोड लगा रहा है मगर वह सुखी नहीं बन रहा है। उल्टा वह ज्यादा से ज्यादा दुखी, दीन अशान्त अतृप्त बन रहा है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण हैं कि जिसके लिए वह उडान भर रहा हैं, जिसके पीछे खून पसीना एक कर रहा है। वह बाह्य पदार्थों (exterual object) में नहीं वह उसी के पास है, उसी की आत्मा में रहा है। हुआ है परन्तु फिलहाल कर्मो से आवृत है। पाप कर्मों का आवरण ज्यों ज्यों हटता जाएगा त्यों-त्यों वह ज्यादा से ज्यादा सहज स्वभाविक आध्यत्मिक सुख प्रकट करता जाएगा। क्रमशःएक दिन ऐसा आयेगा कि समस्त कर्मो का विनाश हो जायेगा आत्म के ऊपर से कर्मो का पूरा आवरण हट जायेगा आत्मा सहज स्वभाविक शाश्वत सुख (enternal hapiness) का भोक्ता बन जायेगा। एसी विश्व मंगल की परम शुभकामना को लेकर जिनशासन शृंगार कर्मसाहित्यनिष्णात सिद्धांतमहोदधि श्रीमद् प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा की असीम कृपा दृष्टि से हमारी संस्था भारतीय-प्राच्यतत्व-प्रकाशन समिति, पिंडवाडा ने जैन शासन को प्राचीन अर्वाचीन सुविशालकर्मसाहित्य की भेंट की है।

प्रस्तुत उपशमनाकरण ग्रन्थ जिसकी प्रकाशन की बात चल रही थी उसका छपाई कार्य Printing work) हमारी ज्ञानोदय प्रिन्टिंग प्रेस, में चालू हो गया था। उपशमनाकरण का टीका रचयिता शासन प्रभावक युवकजागृति प्रेरक पुज्यपादाचार्यदेव श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी महाराजा संवत २०४४ में पाली चातुर्मास में बिराजमान थे। पूज्यश्री ने ग्रन्थ की आर्थिक व्यवस्था हेतु श्री पूरण जैन संघ के अग्रणीयों को पत्र द्वारा प्रेरणा की और श्री पुरण जैन संघ ने ज्ञानद्रव्य की विशाल धनराशि भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति को अर्पण करने का निर्णय कीया।

साथ साथ श्री पोरवाल जैन संघ शिवगंज ने भी ज्ञान द्रव्य की विशाल धनराशि अर्पण करने का निर्णय कीया।

श्री पूरण जैन संघ एवं श्री पोरवाल जैन संघ शिवगंज का उदाहरण को देखकर श्रुत-भक्ति के अनेक प्राचीन उदाहरण हमारी दृष्टि के समक्ष दोहराने लगते है। —

महामंत्री पेथडशाह जिन्होने ३६००० सुवर्ण-मुद्रा अर्पितकर श्रीमद् भगवतिसूत्र श्रवण का अपूर्व श्रेयः उपार्जित कीया।

एक दिन का उपाश्रय मे झाडू लगाने वाला लल्लिग श्रावक ने उपाश्रय को रत्न जडित किया जिससे रात्रि में भी निर्दोष प्रकाश की प्राप्ति के बल पर कलिकालसर्वज्ञ, याकिनिमहत्तरासुनुपूज्यपाद हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराजा १४४४ ग्रन्थ सर्जन का विराट कार्य करने में सक्षम बने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्चर्य धनजी सूरा जिन्होनें महोपाध्याय यशोविजयजी महाराजा की अनन्य प्रतिभा को पहचान कर उनके न्यायशास्त्रादि अध्ययन की सारी आर्थिक जिम्मेदारी लेकर जैन शासन मे हरिभद्रलघुबान्धव कलिकाल श्रुतकेवलि का सर्जन कीया ।

ऐसे महान् श्रुतभक्तों शत शतवंदन करते हुए हम शासनदेव से प्रार्थना करते है इस कि महाभीषण कलिकाल में भी एसे दानवीर श्रुतभक्त जन्म लेवे ।

आज हमें हर्ष है कि हमारी संस्था का अन्तिम पुष्प रुप ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है । वह श्रुतपुष्प जैनशासन के उद्यान में यावद् चन्द्रदिवाकर महकता रहें यही शुभकामना ।

मङ्गलशुभाशीषदाता स्याद्वादनयप्रमाणविशारद, वर्धमान तपोनिधि, गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा एवं आपश्री के शिष्य प्रशिष्य पदार्थ संग्रहकार व टीकाकार आचार्य पुङ्गव प.पू. सिद्धान्त दिवाकर जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. स्वर्गीय प.पू. आचार्य श्री धर्मजित्सूरीश्वरजी म.सा. प. पू. आ. श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. प पू. आ. श्रीगुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा. को हम कृतज्ञता पूर्वक शत-शत वंदना करते है ।

संपादन कार्य की सम्पूर्ण जिम्मेदारी लेकर मुनिराज श्री मंयमरत्न विजयजी महाराज ने इस महाग्रन्थ को प्रकाश मे लाने के लिए अथाग प्रयास किया है अतः हम वंदना पूर्वक पूज्य श्री का आभार मानते हैं ।

द्रव्यसहायक श्री पूरण जैन संघ एवं श्री पोरवाल जैन संघ शिवगंजकी उदारता के लिए हम अत्यंत आभारी । साथ-साथ ज्ञानोदय प्रिंटींग प्रेस के मेनेजर शंकरदासजी की कर्तव्यनिष्ठता को भी हम भूल नहीं सकते है ।

भवदीय–
शा समरथमलजी रायचंदजी (मंत्री)
शा लालचंद छगनलालजी (मंत्री)

(१) पिंडवाडा
स्टे. सिरोही रोड (राज.)
(२) १३५/१३७ जौहरी बजार
बम्बई–२

समिति का ट्रस्ट मंडल

(१) शेठ रमणलाल दलसुख भाई (प्रमुख, खंभात)
(२) शेठ माणेकलाल चूनीलाल (बम्बई)
(३) शेठ जीवतलाल प्रतापशी (बम्बई)
(४) शा खूबचन्द अचलदासजी (पिंडवाडा)
(५) शा समरथमल रायचन्दजी (मंत्री) (पिंडवाडा)
(६) शा लालचन्द छगनलालजी मंत्री (पिंडवाडा)
(७) शेठ रमणलाल वजेचन्द (अहमदाबाद)
(८) शा हिमतमल रूगनाथजी (बेडा)
(९) शेठ जेठालाल चुनीलाल घीवाले (बम्बई)
(१०) संघवी शा जयचंदजी भबुतमलजी (पिंडवाडा)

मूलनायकजी
पूरण के संभवनाथजी भगवान

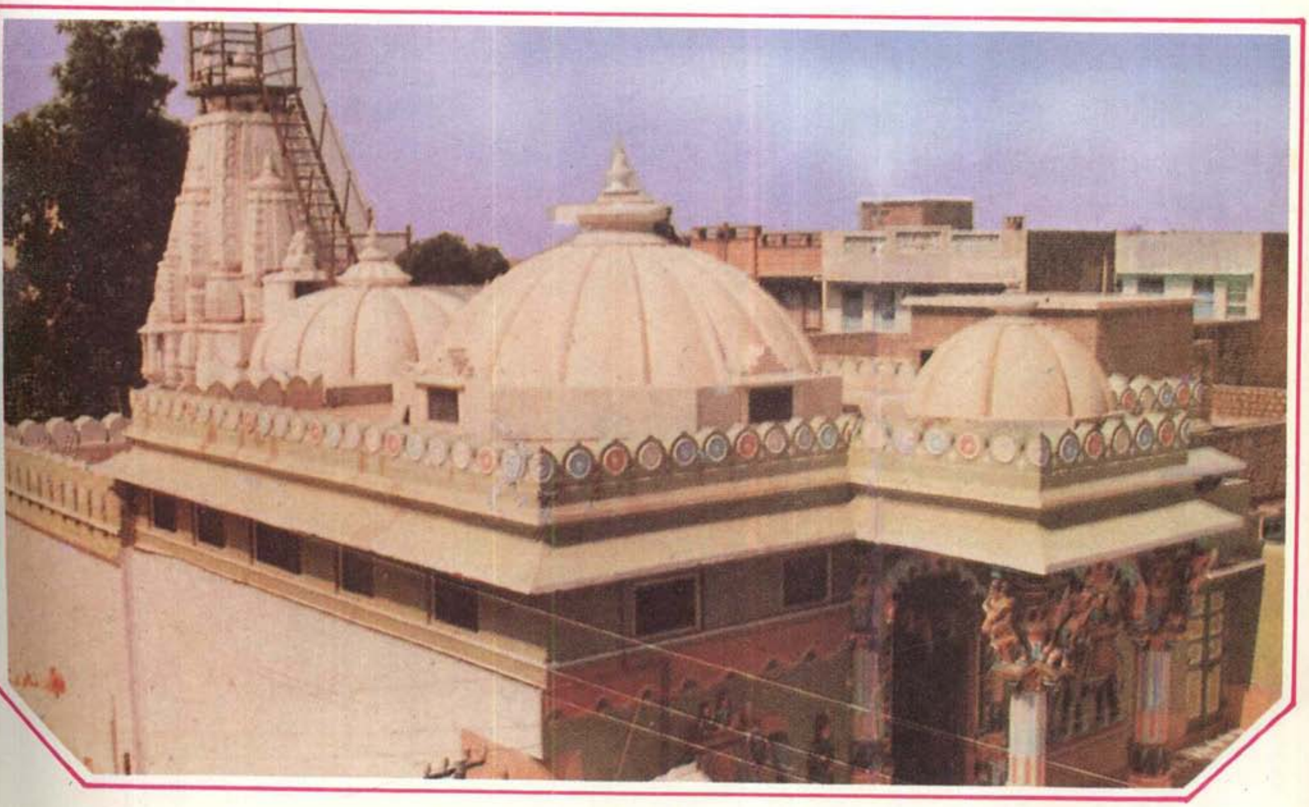

पूरण का जैन मंदिर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगतो यच्च वैचित्र्यं सुखदुःखादि भेदतः ।
कृषिसेवादिसाम्येऽपि विलक्षणफलोदयः ॥
अकस्मान्निधिलाभश्च विद्युत्पातश्च कस्यचित् ।
क्वचित् फलमयत्नेऽपि, यत्नेप्यफलता क्वचित् ॥
तदेतद्दुर्घटं दृष्टात्कारणेऽपि व्यभिचारिणः ।
तेनाऽदृष्टमुपेतव्यमस्य किञ्चनकारणम् ॥

न्यायमञ्जरी उत्तरार्ध पृ. ४२

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि..................महाभारत १२,२९२
कर्मणा बध्यते जन्तुः, विद्यया तु प्रमुच्यते ।

—उपनिषद्

यथैधांसि समिद्धोऽग्नि भस्मसात् कुरुतेक्षणात् ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्म्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ।

भगवत् गीता अध्याय ४ श्लोक ३६

पवन गुरु पानी पिता माता धरत महत ।
दिवस रात दोरा दाई दाया खेले सगल[1] जगत ॥
चंगयायियां[2] बुरायायियां[3] वाचे[4] धरम हुदूर[5] ।
करनी आपो आपनी क्या नेडे[6] क्या दूर[7] ॥
जिनही नाम ध्याया गए मुसक्कत[8] घाल[9] ।
नानक ते मुख उजले कीती छुट्टी नाल ॥

—गुरु नानक

१ सकल, २ अच्छाइयाँ, ३ बुराइयाँ ४ देख रहा है, ५ दूर से या अलग से, ६ नजदीक हो, ७ या दूर हो, ८ कष्ट, ९ नष्ट कर गए, १० उनके मुख उजले तो हुए ही साथ छुटकारा भी हो गया ।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितोब्रह्माण्ड भाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ।
रुद्रो येन कपालपाणि पुटके भिक्षाटनं सेवते,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ।

—भर्तृहरि, नीतिशतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एको हि श्रीमान् , एको दरिद्र इति च कर्मणः,

(पञ्चाध्यी अ. २ श्लोक ५०)

करम प्रधान विश्व करि राखा । जो करहि सो तस फल चाखा ॥

— तुलसीदासजी (रामचरित मानस से)

Although Karma is really a scientific law, it was appropriated by the Asiatic religions as well as the pegan faiths of primitive Europe.......... It lived in Christain faith for five handred years after Jeasus. Than a group of the council of costantinople, banished is from the christion teaching — ....because it offended their own petty personal prejudices. Thus a little bend of foolish man .. ....have robbed the wes ofretligious belief, which, in the turn of history wheel must now be restored to the modeln world for the scientific truth that it really is.

It is the duty of those who rule nations, guide thought influence education and lead religion to make this restoration. Truth demand in anycase but safety and survival of western civilization imperiously demand is still more. When men learn that they cannot escape the consequences of what they are and what they do they will be more carefull in conduct and more caution thinking. When they comprehand that hatred is sharp boomerang which not only hurts tha hated but also tne hater they will hesitate twice and thrice before yiedling to this worst of all human sins

A sound ethical life will follow naturally as a function of such understanding. The west has great and quick need for the acceptance of Karma and rebirft because they make men and nations ethically self responsible as no irrational or incoherent dogma can mabe them......... Hence the urgency of popularzing the Karma doctrines.

Paul Brunton

(in teaching beyond yoga)

जैन दर्शन में जिस अर्थ में कर्म शब्द प्रयुक्त होता हैं उसी अर्थ में उनसे मिलते जुलते भिन्न भिन्न दर्शन और साहित्य में अनेक शब्द प्रयुक्ते होते जैसे माया, अविद्या, प्रकृति अपूर्व, वासना, आशय, धर्माधर्म, अदृष्ट, संस्कार, दैव, भाग्य Luck merit, sin आदि शब्दों का प्रयोग होता है । वासना शब्द बौद्ध दर्शन में उपलब्ध हैं । माया अविद्या, प्रकृति वेदान्त दर्शन में मिलता है । योग तथा सांख्य दर्शन में प्रकृति और आशय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द माना है मीमांसक दर्शन में धर्माधर्म और अपूर्व शब्द प्रयुक्त किया है। धर्माधर्म अदृष्ट और संस्कार शब्द विशेषतया न्याय एवं वैशेषिक दर्शनो में प्रचलित हैं। Luck sin, merit, आदि शब्द पाश्चात्य दर्शन एवं साहित्य में प्रचलित है।

उक्त प्रमाणों के आधार पर यह एक नितान्त सत्य उभर आता है कि लगभग विश्व के सभी दर्शनों ने कर्मसिद्धान्त को मान्यता दी है। अन्य दर्शनकारों ने कर्म को सिर्फ वासना अदृष्ट आदि स्वरूप में मान्य किया है मगर जैन दर्शन ने जितना गहराइ में कर्म सिद्धान्त का विस्तृत स्वरूप बताया है उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। जैन दर्शन ने कर्म को पुद्गल (metter) रूप मान्य करके उसके सम्बन्ध में बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता, संक्रमण, अपवर्तना उद्वर्तना, आदि बताकर उसकी सूक्ष्म प्रक्रिया को भी बताता हैं। यह एक वास्तविक सत्य है। इसलिए Zimmer man ने The Doctrine of Karm in Jain philoshophy को प्रस्तवना (Forword) में कहा हैं कि—

No where has physical nature of Karma has been asserted as in Jainism

कर्म का स्वरूप

विश्व में अनन्त जीव है, ठीक उसी प्रकार अनन्त पुद्गल स्कंध भी है। वे पुद्गल स्कंध आहारक, औदारिक, तैजस, कार्मणवर्गणा आदि के नाम से पुकारे जाते हैं। कार्मणवर्गणा के पुद्गल अतिसूक्ष्म है वे अनंतानं भी इकट्ठे हो जाय तो भी सामान्य मनुष्य को दृष्टिगोचर नहीं हो सकते है जीव प्रतिसमय अपने शुभाशुभ भावों के आधार पर जब उन्हें आत्मसात् करता है तब वे पुद्गल क्षीरनीरवत् आत्मा से सम्बद्ध हो जाते है और उसे जैन परिभाषा में कर्म कहते है।

कर्म की विभिन्न अवस्थाएँ

जैनदर्शन कर्म की अनेक अवस्थाओं को मान्य करता है। उनको समझने के लिए हम संक्षेप में ११ भेदों में वर्गीकरण कर सकते है। वे निम्नलिखित है——

१. बंध, २ सत्ता, ३ उदय, ४ उदीरणा, ५ उद्वर्तना, ६ अपवर्तना ७ संक्रमण, ८ उपशमना, ९ निधत्ति, १० निकाचना, ११ अबाधा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. बन्ध—आत्मा और कर्मपरमाणुओं का एकीकरण होना, अर्थात् क्षीरनीरवत् मिलन होने की प्रक्रिया।

२ सत्ता—आत्मा के साथ बद्ध कर्मों का आत्मा से संयुक्त होकर रहना।

३. उदय—कर्म का स्वफल प्रदान करने की सक्रिय अवस्था। कर्म पुद्गल अपने स्वभाव के अनुसार फल देकर क्षीण हो जाते है।

४. उदीरणा—आत्मा के प्रयत्न विशेष से निश्चित समय मर्यादा से पूर्व कर्म का उदय में खिंचकर आ जाना।

५. उद्वर्तना—आत्मा से सम्बद्ध कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग को बढाना।

६. अपवर्तना-आत्मा से बद्ध कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग को घटाना।

७. संक्रमण—एक प्रकार के प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग वाले कर्मों को दूसरे प्रकार के कर्मों की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश में बदल जाना।

८. उपशमना—जिस अवस्था में कर्म का उदय, उदीरणा उद्वर्तना आदि नहीं होते है।

९. निधत्ति—उदीरणा और संक्रमण दोनों का अभाव तो होता ही हैं परन्तु इस अवस्था में उद्वर्तना और अपवर्तना हो सकती हैं।

१०. निकाचना—कर्म की वह अवस्था जिसमें उद्वर्तना अपवर्तना संक्रमण और उदीरणा ये चारों अवस्था असंभव हो जाती है. उसे निकाचना कहते है। निकाचित कर्म को उसी रूप भोगना अनिवार्य होता है।

११. अबाधा कर्म बंध के बाद वह समय विशेष जिसमें कर्म किसी भी प्रकार का फल नहीं देता है।

पूर्वधराचार्य शिवशर्मसूरीश्वरजी महाराजा का संक्षिप्त परिचय—

उपशमनाकरण प्रकरण पूर्वधराचार्य शिवशर्मसूरीश्वरजी महाराजा ने अग्रायणी नामक द्वितीय पूर्व के आधार पर संकलित कर्मप्रकृति ग्रन्थ का एक विभाग है। पूज्यपाद श्री की जन्म दीक्षा आदि के विषय में विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है, फिर भी नन्दिसूत्र के पाठ आदि के अनुसार आगमोद्धारकपूज्यपाद देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण के पूर्ववर्ति थे। पूज्यपाद पूर्वधराचार्य संभवतः दशपूर्वधर थे। प्राचीन बन्धशतक-संज्ञक पञ्चम कर्मग्रन्थ पूज्यपाद श्री की कृति मानी जाति है।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उपशमनाकरण पर प्रस्तुत प्रेमगुणा टीका का सर्जन

सिद्धांतमहोदधि कर्मसाहित्य निष्णात पूज्यपादाचार्यदेव श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा ने राजस्थान की पवित्र भूमि पिंडवाडा में जन्म लिया। पूज्यश्री को दिक्षा के लिए महासंग्राम खेलना पडा। उस जमाने में दीक्षा लेना कोई सामान्य व्यक्ति का काम नहीं था। दीक्षा के लिए पूज्यश्रीने व्यारा से सुरत तक ३४माईल तक पैदल चले और तीर्थाधिराज शत्रुंजय की महामहीम पावन धरा पर उग्रविहारी, सकलागम रहस्यवेदी **पूज्यपाद दानसूरीश्वरजी महाराजा** के पास दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षा लेकर ५ समिति और ३ गुप्ति इन आठ प्रवचनमाता को प्राण से भी प्यारा माना। परिणाम स्वरुप आप श्री का संयम, ब्रह्मचर्य इतना सुविशुद्ध बना कि आपश्री के वस्त्रों में भी सुगंध आती थी।

पूज्यश्री का स्वाध्यायरस इतना गंभीर था कि वृद्धावस्था में भी रात्रि में कम्मपयडि जैसे गहन शास्त्रों का पुनरावर्तन करते थे, कभी–कभी रात्रि में तीर्थ स्थानों का चिंतन करते उन्हें भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते थे।

पूज्यपादश्री निस्पृहता की गरिमा तो हिमालय की एवरेस्ट ऊंची चोटी को भी लाङ्घ देती थी। आचार्य पदवी के वक्त पूज्यश्री के आंख में से आंसू बहते थे। ३५० साधुओं के गच्छाधिपति होते हुए भी स्वयं के शिष्य सिर्फ १५ ही थे। मुमुक्षु पूज्य श्री के शिष्य बनने के लिए तडफते थे मगर अपने महवर्ति पूज्यपादाचार्य श्री रामचन्द्रसूरिजी महाराजा, पूज्यपाद आचार्य श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा आदि के शिष्य बना देते थे। ज्ञान के अगाध सागर होते हुए भी व्याख्यान नहीं देते थे।

पूज्यश्री अपने कट्टर शत्रु के प्रति भी कृपा दृष्टि रखते थे। जो साधु विशेष पूज्य श्री विरुद्ध पेम्पलेट, लेख आदि लिखते एसे साधु को समाधि देने के लिए पूज्य श्री अपने साधु भेजते थे।

रोग आने पर पूज्यश्री कहते थे मित्र आया है। सादा जीवन उच्च विचार (Simple life high thinking) की लोकोक्ति पूज्यश्री के जीवन में आबेहूब दृष्टि गोचर होती थी, एसी बहुमुख प्रतिभा के धनी मार्गणाद्वार, संक्रमकरण आदि बेजोड ग्रन्थों के लेखक सिद्धान्त महोदधि कर्मसाहित्यनिष्णात सुविशाल गच्छाधिपति स्वर्गीय पूज्यपादाचार्यदेव **श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी** महाराजा विशाल कर्मसाहित्य के निर्माण की योजना सोच रहे थे उस वक्त प्रारम्भिक नींव के रुप में प्रस्तुत टीका चुनी गई। यद्यपि उपशमनाकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर चूर्णि टीकाएं उपलब्ध थी , साथ साथ सप्ततिका, सप्ततिकाचूर्णि कषायप्राभृत, कषायप्राभृत-चूर्णि आदि में उपशमश्रेणि आदि विषयों पर विवेचन मिलता है तथापि वह संक्षिप्त और भिन्न भिन्न प्रकरणों में विकीर्ण हैं।

जिज्ञासु वर्ग उपशमनाकरण के पदार्थों का सरल व सुविस्तृत रूप तुलनात्मक अध्ययन से (Comparative study) कर सके। जैन शासन की श्रुतनिधि में एक अमूल्य कोहिनूर स्वरूप अपूर्व शास्त्रग्रन्थ का सर्जन हो एसे परम पावन उद्देश्य को लेकर प्रस्तुत टीका (Commentry) को चुना गया। इस भगीरथ योजना के साक्षात्कार हेतु जैनशासनकौशल्याधार सुविहित-शिरोमणि परमश्रद्धेय पूज्यपादाचार्यदेव श्रीमद्विजय **प्रेमसूरिश्वरजी महाराजा** ने स्वपट्ट-प्रद्योतक स्याद्वादनयप्रमाणविशारद वर्धमानतपोनिधि सुविशालगच्छाधिपति श्रीमद् विजय **भुवनभानुसूरिश्वरजी** महाराजा (तत्कालीन पूज्यपाद पन्यासप्रवर श्री भानुविजयजी महाराजा) के मेधावी युवा शिष्यप्रशिष्यों को अपनी कृपा रस भरी दृष्टि का निशाना बनाया। वे थे जिन शासन छिपे सितारे गुरुकृपापिपासु तत्कालीन परमपूज्य जयघोष-विजयजी म. सा. प. पू. धर्मानंदविजयजी म. सा. प. पू. हेमचन्द्रविजयजी म. सा. व मेरे पूज्यपाद गुरुदेव श्री गुणरत्न विजयजी म. सा. (फिलहाल पूज्यपाद जयघोषसूरीश्वरजी म. सा., पूज्यपाद स्वर्गीय आ. श्री धर्मजित्सूरीश्वरजी म. सा., पूज्यपाद आ. श्री हेमचन्द्र-सूरीश्वरजी म. सा., पूज्यपाद आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.)

पूज्यपाद जयघोषसूरीश्वरादि चारों आचार्य भगवंत कषायप्राभृत, कषायप्राभृत-चूर्णि कम्मपयडी, कम्मपयडी चूर्णि पञ्चसंग्रह, सप्ततिका आदि ग्रन्थों में से पदार्थसंग्रह करते थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव श्रीमद् गुणरत्नसूरी म. सा. ५ साल के अल्प दीक्षा पर्याय में ही गहन पदार्थों को व्याकरण, न्याय, चित्र यन्त्र स्थापना आदि से सुसज्ज सरल संस्कृत भाषा में प्रेमगुणाटीका का प्रारूप देते थे।

प्रस्तुत प्रेमगुणा टीका की विशेषता

इस टीका में कर्मप्रकृति, कषायप्राभृत, कषायप्राभृत चूर्णि, पञ्चसंग्रह, आगम विशेषा-वश्यक इत्यदि करीब ३५ ग्रन्थों का आधार लिया गया है। जगह-जगह पर अनेक शास्त्र-पाठों का आधार लेकर श्रुतज्ञान-पिपासु की बहुमुखी प्रतिभा विकसित करने का अथाग प्रयास कीया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थों का सामान्य विवेचन कर, इदमुक्तं भवति, इयमत्र भावना,-त्वय भ्रमः, इदमत्रावधेयम् , आदि पदों से गम्भीर पदार्थों का सरल संस्कृत भाषा में स्पष्टीकरण करने का अथाग प्रयत्न कीया गयाहै ।

क्लिष्टपदार्थों का असत् कल्पना से गणितप्रक्रिया द्वारा रहस्यार्थ प्रकटीकरण की प्रक्रिया अपनाई है । उदाहरणार्थ पृष्ठ संख्या ३३ से ३७ पर यथाप्रवृत्तकरण में प्रतिसमय अध्यवसायस्थान असंख्येयलोकाकाशप्रदेश प्रमाण होते हैं । अध्यवसायों की अनुवृत्ति यथाप्रवृत्तकरण के कण्डक प्रमाण समयों तक चलती हैं । प्रथमकण्डक के प्रथम सामायिक जघन्य विशुद्धि से द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुण होती है । इस प्रकार यावत् प्रथमकण्डक के चरम समय तक समझना । उससे प्रथमकण्डक के प्रथमसमय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुण होती है ।

गणितप्रक्रिया में प्रथमसमयवर्ति १००४ अध्यवसायो के चार खण्ड (Group) माने हैं

(१) १ से २४८	(३) ४९९ से ७५०
(२) २४६ से ४९८	(४) ७५१ से १००४

द्वितीय कण्डक के प्रथम समयवर्ति प्रथमखण्ड (First group) की जघन्य विशुद्धि १०००५ हैं ।

प्रथम सामायिक प्रथम खण्ड (Group) के प्रथम अध्यवसाय न० १ की जघन्य विशुद्धि से द्वितीयसमयवर्ति प्रथमखण्ड (First Group) न० २४९ अनंतगुण हैं उससे तृतीयसमय के प्रथम खण्ड (Group) की जघन्यविशुद्धि न० ४६९ अनंतगुण है उससे चतुर्थ समवर्ति प्रथम खण्ड (Group) की जघन्य विशुद्धि ७५१ अनंतगुण है उससे प्रथम समयवर्ति प्रथम खण्ड (Group) की उत्कृष्ट विशुद्धि न० १००४ अनंतगुण है ....इत्यादि

उससे भी द्वितीय समयवर्ति प्रथम खण्ड (Group) की जघन्य विशुद्धि न० १००५ अनंतगुण है ।

इसी प्रकार पृष्ठ संख्या ४० पर अपूर्वकरण में प्रवेश होने पर एक स्थितिघात में हजारों रसघात होते हैं । असत् कल्पना से उसके स्थान पर तीन रसघात एवं अनन्तराशि के स्थान पर दस संख्या कल्पित की गई है । अनुभागसत्ता प्रारम्भ में १०००करोड स्पर्धक मानी गई है । एक रसघात होने पर अनन्तगुण हीन १०० करोड स्पर्धक की सत्ता बताई गई है इसी प्रकार अपूर्वकरण के अंत १० स्पर्धक की सत्ता बताई गई है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठसंख्या १८७ पर सरसरी नजर से विरुद्ध दिखने वाले पदार्थों को संगत करने का प्रयास किया गया है। जैसे कि उपशमनाकरण में दो आवलिका शेष रहने पर आगालविच्छेद के समय पर ही पुरुषवेद में हास्यषट्क संक्रम नहीं होता है अर्थात् पुरुषवेद की पतद्ग्रहता नष्ट होती है, परन्तु संक्रमकरण में पुरुषवेद की प्रथमस्थिति समयोन दो आवलिका शेष रहने पर पतद्ग्रहता नष्ट होती है इस प्रकार उल्लेख है।

इन दों शास्त्रपाठों का समाधान करने के लिए पूज्यपाद टीकाकार श्री ने बताया कि दो आवलिका शेष रहने पर पुरुषवेद में हास्यषट्क का संक्रम नहीं होता है यह बात निश्चयनय से कहीं गई है कारण कि निश्चयनय क्रियाकाल और निष्ठाकाल का एकत्व मानता है, अन्यथा अतिप्रसङ्ग आ जाता है। अतः तदनुसार पुरुषवेद में व्यवच्छिद्यमान संक्रम व्यवच्छिन्न कहा जाता है।

संक्रमकरण में समयोन दो आवलिका कहा है वह व्यवहारनय से कहा गया है क्योंकि व्यवहारनय क्रियाकाल और निष्ठाकाल में भेद मानता है अन्यथा क्रिया (कारण) का वैयर्थ्य सिद्ध हो जाएगा। अतः तदनुसार व्यवच्छिद्यमान १ समय बाद (Next) व्यवच्छिन्न होता है।

इस प्रकार दोनों नय स्याद्वाद की दृष्टि कथञ्चिद् सत्य हैं। अंत में पूज्यपाद टिकाकार श्रीने "तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति।" एसा कहकर अपनी लघुता बताई है।

विशेष तो टीका का महत्त्व तो तद्विषयनिष्णात ही जान सकता है क्योंकि हिरे (Diamond) की किंमत जौहरी (Jwellar) ही कर सकता है।

प्रेमगुणा टीका का संशोधन शास्त्रविशारद, द्रव्यानुयोग विशेषज्ञ पूज्यपादाचार्यदेव **श्रीमद् उदयसूरिश्वरजी म.सा.** एवं सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्य निष्णात पूज्यपादाचार्यदेव **श्रीमद् प्रेमसूरिश्वरजी म. सा** ने कीया। साथ-साथ पूज्यपाद जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. धर्मजित्सूरीश्वरजी म.सा. एवं हेमचन्द्रसुरीश्वरजी म.सा. ने भी संशोधन कार्य में हाथ बटाया। संजोगवशात् सर्वप्रथम सर्जित प्रेमगुणाटीका का प्रकाशन नहीं हो सका। पूज्यपाद श्री गुरुदेव श्री द्वारा रचित खवगसेढी, पयडिबंधो पर टीका एवं अन्य विद्वद्वर्य मुनिपुङ्गवों द्वारा रचित ग्रन्थ प्रकाशित हो गये। अब प्रस्तुत टीका स्वरूप अन्तिम ग्रन्थ का पूर्वार्ध प्रकाशित हो रहा हैं उसका मुझे अत्यंत हर्ष है।

आशीषदाता पूज्यपाद गच्छाधिपति पदार्थसंग्रहकार एवं टीकाकार महर्षियों का संक्षिप्त परिचय-

आशीर्वाददाता पूज्यपाद सुविशालगच्छाधिपति **न्यायविशारद आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपादश्री का जन्म गुजरात की राजधानी अहमदाबाद के धर्मपरायण परिवार में हुआ। पूज्य श्री ने गृहस्थावस्था में G.D.A. की परीक्षा एवं दीबेंकर ऑफ इंग्लेन्ड (The Banker of England) द्वारा संचालित प्रथमपरिक्षा श्रेष्ठतम योग्यता पूर्वक उत्तीर्ण हुए।

पूज्य श्री ने युवावस्था में संयम अंगीकार कर परम गुरुश्री प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के पुनित चरणों में जीवन समर्पण किया। तप त्याग और अप्रमत्त संयम की कठोर साधना के साथ-साथ दर्शनशास्त्र (PhiloSophy) का गहरा अध्ययन किया।

पूज्यपादश्री की संवेग और विराग से परिपूर्ण देशना को सुनकर सैकडों भव्यात्माओं ने प्रव्रज्या को अंगीकार कीया हैं। धार्मिक शिविर, दिव्यदर्शन पत्र एवं अन्य विपुल साहित्य के माध्मय से राग, द्वेष, विषय, कषाय से संतप्त आबालवृद्ध हजारों आत्माओं के जीवन में क्षमा सहिष्णुता शान्ति और समाधि का अपूर्व दर्शन कराते हैं वो आत्माएँ की मोक्ष ओर नित्य प्रतिदिन अग्रसर होती हैं।

आज पूज्यपाद श्री साधिक द्विशत मुनिओं के गच्छाधिपति पद पर आरुढ है। एसे गौरवशाली गुरुवर को कोटी-कोटी वंदना।

सिद्धान्तदिवाकर पूज्यपाद आचार्य श्री जयघोषसूरीश्वरजी म. सा.

आपश्री ने बाल्यवय में ही दीक्षा अंगीकार कर पूज्यपाद गुरुदेवों के चरणों में जीवन समर्पित किया। पूज्य गुरुदेवों की कृपा बल से गहन अध्ययन किया। आपश्री आगम और कर्मसाहित्य के प्रकाण्ड विद्वान है। सैद्धान्तिक समस्या का शीघ्र सचोट समाधान करना आपश्री की महती विशेषता है मानो कि आपश्री किसी विशाल लाइब्रेरी के यान्त्रिक कम्प्यूटर न हो। वाचना आलोचना आदि के माध्यम से साधुओं को अध्ययन, अध्यापन एवं संयम में दृढ करने के हेतु आपश्री सर्वत्र विख्यात है। बंधविहाण विगेरे कर्मसाहित्य ग्रन्थों के सर्जन में आपश्री का महत्वपूर्ण योगदान है। विद्वान् होते हुए भी आपश्री पूज्यों के प्रति विनयशील व सरल प्रकृति के है।

सहजानंदि पूज्यपाद आचार्य श्री धर्मजित्सूरीश्वरजी म. सा.—

आपश्री कर्मसाहित्य के अगाध ज्ञानी है। सदैव आत्मस्वरूप में रमण करना, पौद्गलिक भावों से अलिप्त रहना आप श्री की विलक्षण योग्यता थी। जिनभक्ति में मस्त बन जाते थे। विहार को ९-१० कि.मी. बढाकर भी आसपास के जिनालयों के दर्शनार्थ पहोंच जाते थे। वाचनादि के माध्यम से साधुओं के ज्ञानसंयम रूपी उद्यान को सदैव सींच कर उसे विकसित रखते थे। बंधविहाण आदि कर्मसाहित्य के ग्रन्थों के सर्जन में आपश्री का हेतु तर्क आदि विषयक महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। पूज्यपाद श्री आज हमारे बीच में विद्यमान नहीं हैं फिर भी आप श्री की साधना अमर हैं। भव्यात्माओं को मोक्ष मार्ग में आगे बढने के लिए सदैव प्रेरणा देती है और देती रहेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासनप्रभावक पूज्यपाद आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आपश्री ने युवावस्था में संयम लेकर पूज्यों के चरणों में जीवननैयाका सुकान सोपा। गुरु कृपा के बल पर स्वाध्याय संयम की साधना में आगे बढने गये। प्रारंभिक जीवन में आप की प्रज्ञा इतनी अद्‌भूत थी कि एक तरफ सिर पर लोच की भीषण वेदना सहते-और दूसरी तरफ कम्मपयडि के पदार्थों का पुनरावर्तन पूर्ण कर लेते थे। आप श्री गुणानुरागी प्रकृति के है निंदा-विकथा से सदैव दूर रहते है। आपश्री विराग सेभरपूर वक्तृत्व कला के धनी हैं। शारिरीक शक्ति से कमजोर होते हुए भी आत्मशक्ति के बल पर आबाल वृद्ध अनेक जीवों को आराधना के पथ पर प्रयाण कराते हैं। विहरमान तीर्थंकर सीमंधरस्वामी के अट्ठम तप की आराधना इतनी सुन्दर कराते हैं कि इस भरत क्षेत्र में भी महाविदेह क्षेत्र जैसा माहोल खडा हो जाता है। आपश्री करीब १७ शिष्य प्रशिष्यों के गुरुपद पर सुशोभित है।

युवक जागृति प्रेरक पूज्यपाद आचार्य श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.

पूज्यपाद श्रीने २१ वर्ष की युवावस्था में संयम स्वीकार करके पूज्यों के श्री चरणों में जीवन अर्पण कीया। परमगुरु श्री प्रेमसूरीश्वरजी म० साहेब की सेवा को ही जीवन का मूलमंत्र बनाया। अल्प दीक्षा-पर्याय में ही व्याकरण न्याय कर्मसाहित्य का अगाध अध्ययन किया। ४ वर्ष लघुपर्याय में ही विद्वद्‌गम्य प्रस्तुत टीका का सर्जन किया। उसके बाद स्वोपज्ञ–वृत्ति युक्त साधिक १७ हजार श्लोक प्रमाण खवग सेढी ग्रन्थ एवं करीब २० हजार श्लोक प्रमाण बंधविहाण के पयडि बन्धो ग्रन्थ की टीका का आलेखन किया।

आप श्री के गुरुदेव मेवाड देशोद्धारक जितेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. है (संसारी ज्येष्ठ भ्राता)। आप श्री का वैराग्य इतना प्रबल था कि अपने १३ वर्ष के पुत्र को संसारी बंधुओ को सोप कर आपश्री एवं आपश्री की धर्मपत्नी ने संयम स्वीकार कीया।

१४ पूर्वधर महर्षि शय्यंभवसूरि महाराजा की "देह दुःखं महाफलम्" की उक्ति को समक्ष रखते हुए ४०० अट्ठम की घोर तपश्चर्या की। मेवाड भूमि पर जिनबिम्ब व जिनालय की दुःसह दशा को देखकर पूज्यश्री का हृदय कांप उठा अतः आपने आपत्ति के पर्वतों को लांघते हुए मेवाड की धरती पर विचरने लगे आपश्री के अथाग परिश्रम की फलश्रुति रुप शताधिक जिनालयों का जीर्णोद्धार, नवनिर्माणादि कार्य सम्पन्न हुआ हैं।

इसी प्रकार उपधान, उद्यापन, छरीपालित संघ, ज्ञान भंडारो के माध्यम से हजारों आत्माओं के हृदय में रत्नत्रय को अंकुरित कीया हैं। आपश्रीने उत्तरपयडि-रसबंधो ग्रन्थ पर टीका का सर्जन व अन्य कर्मसाहित्य सम्बन्धि ग्रन्थों का संपादनादि कार्य कीया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपाद युवक जागृति प्रेरक गुरुदेव के द्वारा लिखा हुआ खवगसेढी ग्रन्थ अपने आप में अनूठा है। अनादिसंसार में परिभ्रमण करती हुई आत्मा किस प्रकार से परमपद मोक्ष को प्राप्त करती है वह सारी प्रक्रिया इस ग्रन्थ में विस्तृत रुप से समझाई गई है। उसमें गणितानुयोग तो इतना गंभीर है कि अच्छे अच्छे विद्वान् भी दिङ्मुख हो जाते है। वह ग्रन्थ अमेरिका, जर्मनी आदि विदेशों में भी पहुंचा। जर्मनी युनिवर्सीटि के प्रोफेसर क्लाउज ब्रून ने निम्न प्रतिक्रिया व्यक्त कि—

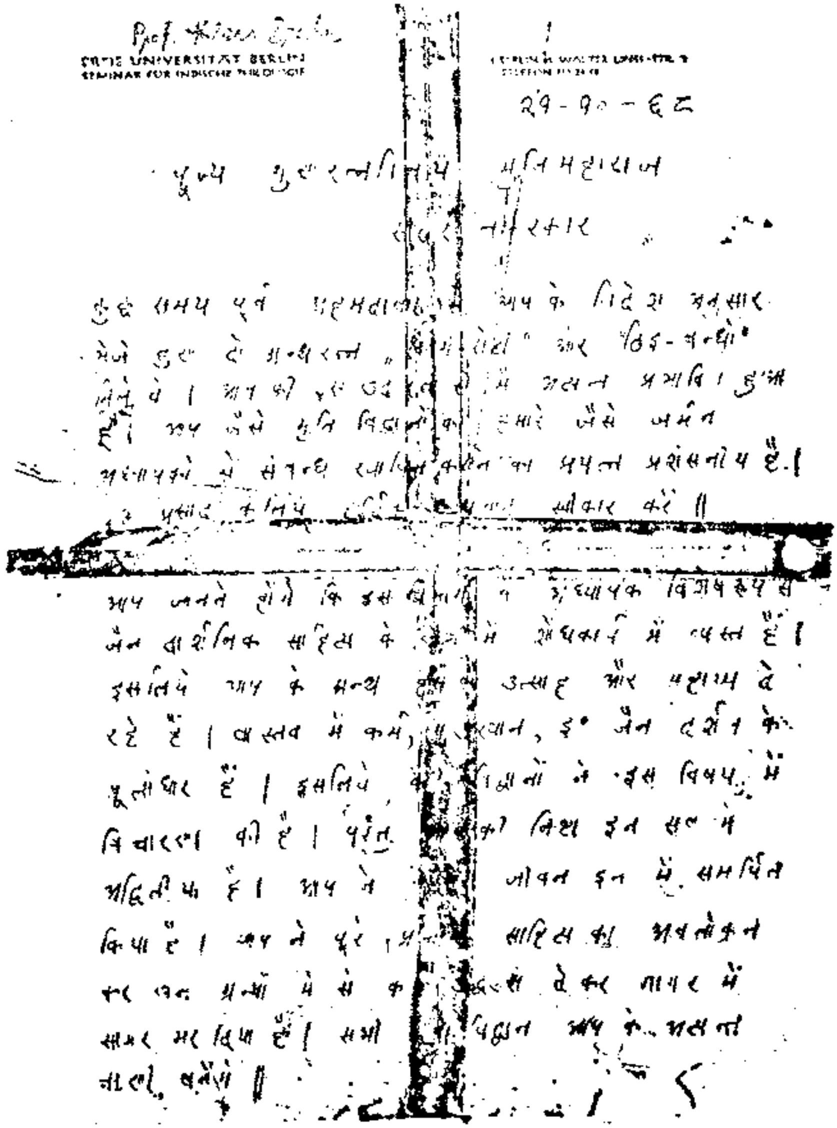

Prof. Klaus Bruhn
FREIE UNIVERSITÄT BERLIN
SEMINAR FÜR INDISCHE PHILOLOGIE

२९-१०-६८

पूज्य गुणरत्नविजय मुनि महाराज
सविनय नमस्कार

कुछ समय पूर्व अहमदाबाद से आप के निर्देश अनुसार भेजे हुए दो ग्रन्थरत्न "खवगसेढी" और "ठिइ-बन्धो" मिले थे। आप की इस उदारता से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। आप जैसे मुनि विद्वानों का हमारे जैसे जर्मन अध्यापकों से संबन्ध रखने का प्रयत्न प्रशंसनीय है। [illegible] प्रसाद के लिये [illegible] स्वीकार करें॥

आप जानते होंगे कि इस [illegible] के अध्यापक विशेष रूप से जैन दार्शनिक साहित्य के [illegible] में शोधकार्य में व्यस्त हैं। इसलिये आप के ग्रन्थ हमें उत्साह और सहायता दे रहे हैं। वास्तव में कर्म, गुणस्थान, इ॰ जैन दर्शन के मूलाधार हैं। इसलिये कई विद्वानों ने इस विषय में विचारणा की है। परंतु [illegible] इन सब में अद्वितीय है। आप ने [illegible] जीवन इन में समर्पित किया है। आप ने पूरे [illegible] साहित्य का अवलोकन कर उन ग्रन्थों में से [illegible] देकर गागर में सागर भर दिया है। सभी [illegible] विद्वान आप के [illegible] आभारी बनेंगे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

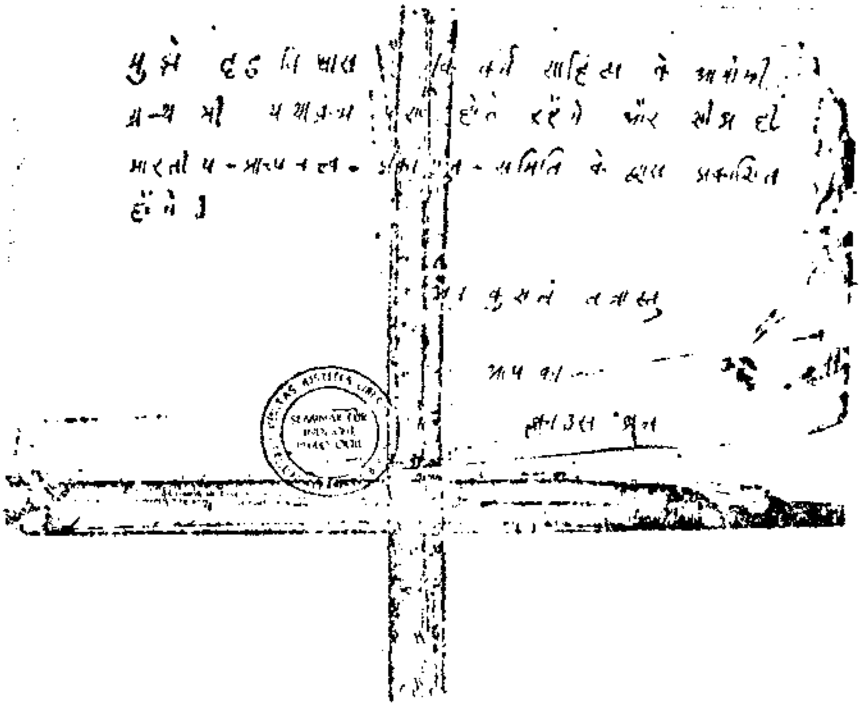

पूज्यश्री की अद्‌भुत वक्तृत्व कला व सौम्य स्वभाव पत्थर को भी पानी बना देता है। पूज्यश्री द्वारा प्रतिबोधित करीब ७१ पुण्यात्माओं ने संयम स्वीकार कीया है। उपधान, संघ प्रतिष्ठा, उद्यापन आदि के माध्यम से पूज्य श्री आबालवृद्ध हजारों आत्माओं के उद्धारक बने हैं।

युवावर्ग में आध्यात्मिक उत्थान हेतु ग्रीष्मावकाश में आध्यात्मिक ज्ञान शिविर व चातुर्मास में रविवारीय शिविर का आयोजन आपश्री की निश्रा में समय-समय पर होता है। नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ से आपश्री द्वारा प्रसारित पत्राचार पाठ्यक्रम आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग को लिए सन्मार्ग का प्रदर्शन करता है।

तीर्थाधिराज शत्रुंजय महातीर्थ की भाव यात्रा एवं भवोभव के पुद्‌गल विसर्जन की क्रिया कराना आपश्री महत्त्वपूर्ण पसंदगी है। घर बैठे अपूर्व हर्षोल्लास से आबेहूब तीर्थ यात्रा का आभास हो जाता है। पुद्‌गल विसर्जन प्रक्रिया से निरर्थक पाप के भार से हल्कापन अनुभव होता है।

आप श्री २५ शिष्य-प्रशिष्य रूप विशाल परिवार के अग्रणी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-परिचय

उपशमना के दो प्रकार है —

(१) करणकृतोपशमना (२) अकरणकृतोपशमना

प्रस्तुत में करणकृतोपशमना का अधिकार है। करणकृतोपशना के भी दो प्रकार है।

(१) सर्वोपशमना (२) देशोपशमना।

(१) सर्वोपशमना में निम्न ७ अधिकार है-—

(१) प्रथम सम्यक्त्व उत्पादन (२) देशविरति प्ररूपणा। (३) सर्वविरति प्ररूपणा। (४) अनंतानुबन्धि विसंयोजना। (५) दर्शनमोहनीय क्षपणा। (६) दर्शनमोहनीय उपशमना (७) चारित्रमोहनीय उपशमना।

(१) **प्रथमसम्यक्त्व उत्पादन** सर्वोपशमना मोहनीयकर्म की होती है। उसके योग्य जीव पञ्चेन्द्रियत्व,संज्ञित्व,पर्याप्तत्व रूप तीनलब्धि अथवा उपशमन लब्धि, श्रवणलब्धि तीन करण हेतु प्रकृष्ट योगलब्धि रूप तीन लब्धि से युक्त होता है। उसकी विशुद्धि अभव्यसिद्धिक की विशुद्धि से अनंतगुण विशुद्ध्यमान होता है, अन्यतरसाकारोपयोग में वर्तमान, विशुद्धलेश्यावाला, आयुष्यकर्म के सिवाय सातकर्मों की स्थिति अंतःकोटाकोटी सागरोपम करके अशुभकर्मों का द्विस्थानक व शुभकर्मों चतुस्थानक रस बांधता है। ध्रुवबंधि एवं आयुष्यसिवाय भवप्रायोग्य परावर्तमान शुभप्रकृति बांधता है। योग के अनुसार प्रदेशबंध जघन्य मध्यम व उत्कृष्ट तीन प्रकार का होता है। एक स्थितिबंध के बाद अगला स्थितिबंध का पल्योपम संख्यातभाग-हीन हीनतर करता है। क्रमश यथाप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण करके चौथी उपशान्ताद्धा को प्राप्त करता है।

तीनों करणों में प्रतिसमय विशुद्धि में अनंतगुणवृद्धि होती है। प्रथम दो करणों में प्रतिसमय असंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाण विशुद्धिस्थान होते हैं। जघन्योत्कृष्ट विशुद्धि जानने के लिए इस प्रकार निदर्शन है---जैसे कि दो जीव एक साथ करण को प्रतिपन्न करते हैं। प्रथम की सर्वजघन्य विशुद्धि है द्वितीय की सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि है। यथाप्रवृत्तकरण में प्रथम जीव की सर्वजघन्य विशुद्धि से द्वितीय समय में सर्वजघन्य विशुद्धि अनंतगुण है। इस प्रकार यथाप्रवृत्तकरण के संख्यातभाग पसार होने पर उससे प्रथमसमयवर्ती द्वितीय जीव की सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण है। उससे करण के संख्यातभागोपरवर्ती प्रथम जीव की सर्वजघन्य विशुद्धि अनंतगुण है, उससे दूसरे जीव की द्वितीयसमयवर्ती उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण है, उससे प्रथम जीव की अगले (Next) समय में विशुद्धि अनंतगुण होती है। इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमशः अन्तिमसमयवर्ती प्रथम जीव की जघन्यविशुद्धि अनंतगुण। तत्पश्चात् द्वितीय जीव की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण, उससे अगले (Next) समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण इस प्रकार द्वितीय जीव की यावत् अन्तिम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण।

अपूर्वकरण के प्रथमसमय की जघन्यविशुद्धि यथाप्रवृत्तकरण के समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से अनंतगुण उससे प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण, उससे द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि अनंतगुण। इस प्रकार क्रमशः यथावत् अपूर्वकरण की चरम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुण। अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिघात, रसघात, स्थितिबन्ध गुणश्रेणि ये चारों अधिकार युगपत् प्रारम्भ होते हैं।

स्थितिघातमें उत्कृष्ट से अनेक सागरोपम प्रमाण स्थिति कण्डक को छेदता है व जघन्य से पल्योपमसंख्येयभाग प्रमाण स्थितिकण्डक को छेदता है। अपूर्वकरण के प्रथम स्थितिघात में अशुभकर्म के अनंतानुभागों को क्षय करता है। पुनः शेष अनुभाग के अनंतानुभागों का क्षय करता है। इस प्रकार एक स्थितिघात में हजारों रसघात होते हैं। हजारों स्थिति-घातों से अपूर्वकरण पूर्ण होता है। अपूर्वकरण के प्रारम्भ में जितनी स्थिति सत्ता है उसी से संख्यातगुणहीन चरम समय में होती है। अपूर्वकरण के प्रथमसमय में यथाप्रवृत्तकरण चरमसमय से पल्योपमसंख्येयभागहीन अपूर्वस्थिति बन्ध होता है। इस प्रकार चरमसमय तक समझना। स्थितिबन्ध और स्थितिघात युगपत् प्रारंभ होते हैं और युगपत् समाप्त होते हैं।

अब गुणश्रेणि का निरूपण इस प्रकार समझिये–उपर की स्थिति के पुद्गलों को ग्रहण करके उदयवती प्रकृति के पुद्गलों को उदयसमय में व अनुदयवती प्रकृति के पुद्गलों का उदयावलिका के उपर प्रथम समय में थोडा प्रक्षेप करता है द्वितीयसमय में असंख्येयगुण इस प्रकार यावत् अन्तर्मुहुर्त। गुणश्रेणि अपूर्वकरणाद्धा अनिवृत्तिकरणाद्धा से विशेषाधिक होती हैं। प्रथमसमयमें जितनी गुणश्रेणिकाल की लंबाई है वह प्रतिसमय अनुभव से ह्रस्व होती है अतः शेष स्थिति में प्रक्षेप होता है।

अनिवृत्तिकरणाद्धा की यहां प्ररूपणा इस प्रकार है--अपूर्वकरण में प्रवृत्त चारों अपूर्व पदार्थ यहां भी युगपत् प्रवृत्त होते हैं। अनिवृत्तिकरण सभी जीवों का समान काल और समान विशुद्धि वाला होता है। इसलिए इस कारण का अनिवृत्तिकरण नाम सार्थक है। अनिवृत्ति-करणाद्धा का एक संख्यातवां भाग बाकि रहने पर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति नीचे छोडकर जीव मिथ्यात्व का अन्तकरण करता है। इसका प्रमाण किञ्चिन्न्यूनाभिनव-स्थितिबन्धाद्धा के समान है। अन्तरकरणप्रारम्भकाल के समय में मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिबन्ध प्रारंभ होता है वह स्थितिबन्ध और अन्तरकरणकाल युगपत्समाप्त होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरकरण करने पर गुणश्रेणि निक्षेप के अग्रभागसे उसके संख्यातभाग का खण्डन करता है। उत्कीर्यमाण दलिक प्रथमस्थिति व द्वितीयस्थिति में प्रक्षेप करता है। इस प्रकार अन्तरकरण (रिक्तस्थान) हो जाता है। प्रथमस्थिति में वर्तमान प्रथमस्थितिसत्क दलिक को उदयावलिका में प्रक्षेप करता है वह उदीरणा तथा द्वितीयस्थिति के दलिक को उदयावलिका में प्रक्षेप करता है, वह आगाल कहलाता है। प्रथमस्थिति के दो आवलिका शेष रहने पर आगाल एवं एक आवलिका शेष रहने पर उदीरणा का विच्छेद होता है। मिथ्यात्व का उदय क्षीण होने पर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अपने चरमसमय में द्वितीयस्थितिगत दलिक को तीन प्रकार में विभाजन करता है—सम्यक्त्व, मिश्र और मिथ्यात्व। सम्यक्त्व देशघाति, मिश्र और मिथ्यात्व सर्वघाति होता है।

औपशमिक सम्यक्त्वप्राप्ति के प्रथमसमय में गुणसंक्रमण से मिथ्यात्व के अल्प दलिक को सम्यक्त्व में उससे असंख्यातगुण मिश्र में संक्रम करता है। द्वितीय समय में मिश्र से सम्यक्त्व में असंख्यातगुण उसी समय में उससे असंख्यातगुण मिश्र में इसप्रकार यावत् अन्तर्मुहूर्त, तत्पश्चात् विध्यातसंक्रम होता है।

आयु सिवाय सात कर्मों का स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि ये तीनों गुणसंक्रम तक प्रवृत्त रहते हैं बाद में नहीं होते हैं। परन्तु मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति के एकावलिका शेष रहने तक ही स्थितिघात रसघात होते हैं पश्चात् नहीं होते हैं। प्रथमस्थिति के दो आवलिका शेष रहने तक मिथ्यात्व की गुणश्रेणि होती है। अन्तरकरण के प्रथमसमय से यावदन्तर्मुहूर्त उपशम सम्यक्त्व होता है।

उपशान्ताद्धा के साधिक आवलिका शेष रहने पर जीव तीनों कर्मों के पूंजों से दलिक को अन्तरकरणाद्धा के आवलिका में प्रवेश कराता है। आवलिका मात्र अन्तकरणाद्धा शेष रहने पर अध्यवसाय के अनुसार तीनों में से किसी एक प्रकार के दलिक का उदय होता है। उपशान्ताद्धा के जघन्य से १ समय उत्कृष्ट से छः आवलिका शेष रहने पर कोई जीव सास्वादन भाव को प्राप्त करता है।

सम्यग्दृष्टि गुरु के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन की नियमा श्रद्धा करता है। सम्यग्दृष्टि विशेष ज्ञान के न होने पर गुरु की आज्ञापारतन्त्र्य से असत्य प्रवचन की भी श्रद्धा करता है। मिथ्यादृष्टि जीव नियमा प्रवचन की निर्मल श्रद्धा नहीं करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रदृष्टि को साकार अथवा अनाकार उपयोग होता है। यदि साकार उपयोग होता है तो व्यंजनावग्रह होता है अर्थावग्रह नहीं होता है क्योंकि संशयज्ञानी अव्यक्त ज्ञानी होता है।

चारित्रमोहोपशामक अविरत, देशविरत अथवा सर्वविरत प्ररूपणाधिकार:-

चारित्रमोहोपशामक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि (श्रेणि में उपशम अथवा क्षायिक सम्यग् दृष्टि) अथवा उसी के साथ तद्युक्त देशयति अथवा सर्वविरत साधु होता है। वह जीव विशुद्धयमान होना चाहिये।

अविरत-व्रत को नहीं जानता, नहीं ग्रहण करता, नहीं सावद्य व्यापार का त्याग करता इत्यादि आठ भङ्गो में से प्रथम सात भङ्गो में अविरत होता है।

जघन्य से एक अणुव्रत को भी ग्रहण करने वाला देश विरति कहलाता है।

सर्वसावद्य योगों को तिविहं तिविहेण त्याग करने वाला सर्वविरत कहलाता है।

औपशमिक सम्यक्त्व के बाद में देशविरति आदि प्राप्त करने वाला देशविरति अथवा सर्वविरति प्रापक पूर्ववत् प्रथम दो करण करता है सिर्फ अपूर्वकरण में गुणश्रेणि नहीं करता है।

अपूर्वकरण पूर्ण होने पर देशविरति अथवा सर्वविरति की प्राप्ति होती है। तब उदयावलिका के ऊपर अन्तर्मुहूर्त तक नियमा गुणश्रेणि करता है। उसके बाद भजना है।

अनाभोग से परिणाम-ह्रास होने पर पतित देशविरत अथवा सर्वविरत करण कीये बिना देशविरति अथवा सर्वविरति प्राप्त करता है। आभोग पूर्वक पतित तो करण करके ही उक्त दो गुणस्थानक को प्राप्त करता है। यावत् परिणामानुसार हानिवृद्ध अथवा अवस्थित गुणश्रेणि करता है।

अनंतानुबंधि विसंयोजना अधिकार—चारों गति के पर्याप्ता यथासंभव असंयत, देशविरत अथवा सर्वविरत अनंतानुबंधि कषाय का विनाश करते हैं। पूर्ववत् यहां पर भी तीनों करण होते है, सिर्फ अंतरकरण और उपशम नहीं करता है। अनिवृत्ति करण में वर्तमान उद्वलना संक्रम से अनंतानुबंधि को सम्पूर्ण विनाश करता है।

दर्शनमोहक्षपणाऽधिकार—

अनंतानुबंधि विसंयोजना की तरह यहां दर्शन-मोह क्षपणा समझना। दर्शनमोह-क्षपणा का प्रस्थापक जिनकालसंभवी ८ वर्ष से ज्यादा उम्र वाला मनुष्य होता है। अपूर्व-करण के प्रथम समय से मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय का गुणसंक्रम और उद्वलना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संक्रम होता है। अपूर्वकरण के प्रारंभ में जितनी स्थिति थी उससे संख्यातभाग प्रमाण स्थिति अंत में रहती है। इसी प्रकार स्थितिबंध भी समझना। तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करता है। वहां भी स्थितिघातादि पूर्ववत् प्रवृत्त रहते हैं। दृष्टित्रिक देशोपशमना निधत्ति निकाचना रहित होती है। स्थितिसत्ता क्रमशः असंज्ञीपंचेन्द्रिय चतुरिन्द्रियादि तुल्य होती है। प्रत्येक अंतर में हजारों स्थितिघात होते हैं। क्रमशः दर्शन मोहनीय की सत्ता पल्योपम के संख्यातभाग प्रमाण होती हैं। तत्पश्चात् पल्योपम के संख्यातभाग, संख्यातभाग प्रमाण स्थितिघात प्रतिसमय करता है। हजारों स्थितिघात होने पर मिथ्यात्व के असंख्यातभाग और सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोहनीय के संख्यातभाग का घात करता है।

इस प्रकार बहुत स्थितिघात होने पर उदयावलिकारहित समस्त मिथ्यात्व का घात हो जाता है। तदनंतर मिश्रमोहनीय के असंख्यातभाग का नाश करता है। बहुत स्थिति-घात के बाद उदयावलिका रहित समस्त मिश्रमोहनीय के दलिक को सम्यक्त्वमोहनीय के दलिक में प्रक्षेप करता हैं। उस वक्त सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति आठ वर्ष रहती हैं। निश्चयनय से वहां से ही दर्शनमोह का क्षपक कहलाता हैं। यहां से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण सम्यक्त्व मोहनीय के स्थितिखण्ड का उत्कीरण कर उदय समय से लेकर गुणश्रेणि सिर तक असंख्यगुण, असंख्यगुण प्रक्षेप करता है। तत्पश्चात् विशेषहीन विशेषहीन यावत् चरमस्थिति। पूर्व पूर्व से असंख्यगुण असंख्यगुण दलिक का उत्किरण करता है। द्विचरम से चरमखंड संख्यात गुण उत्किरण करता हे। चरमखण्ड का घात करता हुआ गुणश्रेणि के संख्यातभाग और अन्य संख्यातगुण स्थिति का घात करता है। उसका प्रक्षेप उदय समय से गुणश्रेणि सिर तक असंख्यातगुण, असंख्यातगुण प्रक्षेप करता है उसके उपर उत्कीर्ण खण्ड ही होता है अतः वहां प्रक्षेप नहीं होता है। उस वक्त जीव कृतकरण कहलाता है। वहाँ पर जीव काल करे तो चारों गति में जा सकता है। वहां शेष दलिक को वेदन कर क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है। वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उसी भव में, तीसरे भव में अथवा चौथे भव में मोक्ष में जाता है।

दर्शनमोहोपशमनाऽधिकार

उपशमश्रेणि आरोहक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि यदि क्षायिक समकित प्राप्त नहीं करता है तो वह अवश्यमेव दर्शनत्रिक की पूर्ववत् उपशमना करता है। विशेष यह है कि अनुदित मिथ्यात्व मिश्र की आवलिकाप्रमाण प्रथमस्थिति होती है। उदित सम्यक्त्व मोहनीय की प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। उत्कीर्यमाण दलिक को सम्यक्त्वमोहनीय की प्रथमस्थिति में ही प्रक्षेप करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्रमोहोपशमनाधिकार

संक्लेशविशोधिवशात् प्रमत्ताऽप्रमत्तभाव में हजारों बार परावर्तन कर, चारित्रमोहोपशमना के लिए यथाप्रवृत्तादि तीन करण करता है। वे पूर्ववत् समझना, किन्तु तीसरे अनिवृत्तिकरण में निम्नलिखित विशेष हैं अनिवृत्तिकरण के प्रथमसमय में आयु सिवाय सात कर्मों की सत्ता अन्तःसागरोपमकोटिकोटिप्रमाण होती है। अंतः सागरोपमकोटि प्रमाण बन्ध पल्योपमसंख्यातभागन्यून न्यूनतर होता है। अल्पबहुत्व पूर्वक्रम से समझना।

अनिवृत्तिकरणाद्धा के प्रथम समय से ही देशोपशमना, निधत्ति, निकाचना करणों का विच्छेद होता है। स्थितिबन्ध सागरोपमसहस्रपृथक्त्वप्रमाण होता है। उसके बाद अनिवृत्तिकरणाद्धा के संख्यातभाग, संख्यातभाग जाने पर क्रमशः असंज्ञिपञ्चेन्द्रियादि तुल्य स्थितिबन्ध होता है। इस प्रकार यावत् एकेन्द्रिय तुल्य स्थितिबंध होता है। उसके बाद हजारों स्थितिबन्ध पसार होने पर नामगोत्र कर्म का पल्योपमस्थितिक, ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अंतराय इन चारों का १½ पल्योपम प्रमाण और मोहनीयकर्म का २पल्योपमस्थितिक बंध होता हे। इस प्रकार क्रमशः यावत् मोहनीय कर्म का एक पल्योपम प्रमाणस्थितिबन्ध होता है तब मोहनीय सिवाय कर्मों का पल्योपम संख्येयभाग प्रमाण बन्ध होता है। यहां अल्पबहुत्व इस प्रकार होता है सर्वस्तोक नामगोत्र, ज्ञानावरणादि ४ कर्मों का है असंख्यातगुण, मोहनीय कर्म का संख्यातगुण।

उसके बाद हजारों स्थितिबन्ध पसार होने पर ज्ञानावरणादि ३ और अन्तराय का स्थितिबन्ध असंख्यातगुण तब स्थितिसत्कर्म अपेक्षा से अल्पबहुत्व इस प्रकार होता है—नामगोत्र कर्म सर्वस्तोक, ज्ञानावरणादि ४ का असंख्यातगुण, उससे मोहनीय का संख्यातगुण।

उसके बाद हजारों स्थितिबन्ध पसार होने पर एक प्रहार से ही ज्ञानावरणादि ४ से मोहनीय असंख्यातगुण हीन बन जाता है। स्थितिसत्ता का अल्पबहुत्व इस प्रकार होगा—सर्वस्तोक नामगोत्र कर्म, मोहनीय कर्म का असंख्यातगुण उससे ज्ञानावरणादि ४ का असंख्यातगुण। उसके बाद हजारों स्थितिबन्ध पसार होने पर एक प्रहार से ही नाम गोत्र से कम मोहनीय का स्थितिबन्ध होता हे। अल्पबहुत्व इस प्रकार होगा सर्वस्तोक मोहनीय का स्थितिबन्ध, नामगोत्र का असंख्यातगुण, ज्ञानावरणादि ४ का असंख्यातगुण। इस प्रकार हजारों स्थितिबन्ध पसार होने पर तृतीय वेदनीय कर्म सर्वोपरि हो जाता है। अल्पबहुत्व इस प्रकार होगा सर्वस्तोक मोहनीय, नामगोत्र असंख्यातगुण, ज्ञानावरणादि ३ असंख्यातगुण, वेदनीय असंख्यातगुण। उक्त अल्पबहुत्व विधि से संख्यात हजार स्थितिबन्ध पसार होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर ज्ञानावरणादि ३ से ऊपर नामगोत्र की स्थिति हो जाएगी। वहाँ अल्पबहुत्व इस प्रकार होगा सर्वस्तोक मोहनीय, ज्ञानावरणादि ३ असंख्यात गुण, नामगोत्र असंख्यातगुण, वेदनीय विशेषाधिक।

जिस काल में सभी कर्मों का पल्योपम असंख्येयभाग स्थितिबंध होता है उस वक्त असंख्येयसमयप्रबद्ध कर्मों की उदीरणा होती है। दानांतराय और मनः पर्यवज्ञानावरण का देशघाति रसबन्ध होता है। तत्पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्ध गुजरने पर अवधिद्विक लाभांतराय का देशघाति रसबंध होता है। उसके बाद संख्यात हजार स्थिति बंध होने पर श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण, भोगांतराय का देशघाति रसबंध होता है। उसके बाद संख्यातहजार स्थितिबन्ध जाने पर चक्षुदर्शनावरण का देशघाति रस बंध करता है। तदनंतर संख्यातहजार स्थितिबंध जाने पर मतिज्ञानावरण परिभोगांतराय का देशघाति अनुभाग बंध करता है। वहां से संख्यात हजार स्थितिबंध निकल जाने पर वीर्यांतराय का देशघाति अनुभाग बंध करता है। क्षपकश्रेणि अथवा उपशमश्रेणि को अप्राप्त उक्त दानांतरादि का सर्वघाति अनुभाग बंध करता है।

वीर्यांतराय के देशघाति अनुभागबंध करने के पश्चात् संख्यातहजार स्थितिबंध जाने पर संयमघाति १२ कषाय (अनंतानुबंधि सिवाय) ९ नोकषाय इन २१ प्रकृतियों का अंतरकरण करता है। चार संज्वलन कषाय में से अन्यतम कषाय और ३ वेद में से अन्यतम वेद की स्वोदय काल समान प्रथमस्थिति होती है। शेष कषाय और नोकषाय की प्रथमस्थिति आवलिका प्रमाण होती है।

अंतरकरण करने पर द्वितीय समय में निम्न सात अधिकार युगपत् प्रवृत्त होते हैं—

१. पुरुषवेद व संज्वलन कषाय का आनुपूर्वी संक्रम।

२. संज्वलनलोभ का संक्रमाऽभाव।

३. बध्यमान प्रकृतियों का छ आवलिका अतिक्रान्त होने पर ही उदीरणा।

४. मोहनीय कर्म का एकस्थानक रसबंध।

५. ,, ,, संख्येयवार्षिक स्थितिबंध।

६. ,, ,, ,, उदयोदीरणा।

७. मोहनीय के संख्येयवार्षिक स्थितिबन्ध होने के बाद अन्य अन्य स्थितिबन्ध पूर्व पूर्व से संख्यातगुणहीन। शेष कर्मों का असंख्येयगुणहीन स्थितिबंध।

अन्तरकरण होने पर द्वितीयसमय से असंख्येयगुण, असंख्येयगुण के क्रम से उपशम होता है। उसमें नपुंसकवेद के उपशान्त होने पर जीव पूर्वोक्त क्रम से स्त्रीवेद की उपशमना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रारम्भ करता है। उपशमनाद्धा के संख्यातभाग पसार होने पर ज्ञानावरण दर्शनावरणान्तराय का संख्येयवर्षप्रमाण स्थितिबंध होता है। यहां से आगे ज्ञानावरणादि ३ के स्थितिबंध संख्यातगुणहीन होते है। जिस वक्त ज्ञानावरणादि ३ घातिकर्मों का संख्यातवर्ष प्रमाण स्थितिबन्ध होता है। उसी वक्त केवलज्ञानदर्शनावरण वर्ज शेष ज्ञानदर्शनावरण कर्मों का एक स्थानिक रस बन्ध होता है। वहाँ से संख्यातहजार स्थितिबन्ध व्यतीत होने पर स्त्रीवेद उपशान्त होता है।

उसके बाद शेष सात नोकषाय की उपशमना जीव प्रारंभ करता है। पूर्वोक्त प्रकार से उपशमनाद्धा के संख्यातभाग व्यतीत होने पर नाम गोत्र कर्म का संख्यात वार्षिक स्थिति बन्ध होता हे। वेदनीय का असंख्येयवार्षिक स्थितिबन्ध होता है। वह स्थितिबन्ध पूर्ण होने पर द्वितीय स्थितिबन्ध वेदनीय का संख्येयवार्षिक स्थितिबन्ध होता है। वहां से संख्यात-हजार स्थितिबन्ध व्यतीत होने पर सात नोकषाय उपशान्त हो जाते है। लेकिन जिस समय छ नोकषाय उपशान्त हुए उस समय पुरुषवेद की एक समय प्रमाण स्थिति शेष रहती है। और समयोन दो आवलिका काल में बद्ध दलिक अनुपशान्त रहता है, उसे उतने समय में जीव उपशम करता है।

जिस वक्त जीव अवेदक होता है उस वक्त अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन क्रोध इन तीनों प्रकार के कर्मों का उपशमन करता है। शेष मानादि तीन कषाय का भी इसी प्रकार उपशमन करता है। संज्वलन कषाय की उपशमना पुरुष वेद के समान जानना। परन्तु प्रथमस्थिति एकावलिका अधिक होती है। संज्वलनलोभ की प्रथम स्थिति के दो तृतीय भागप्रमाण प्रथमस्थिति करता है। दो तृतीयांश भाग में द्वितीय स्थिति से दलिक को ग्रहण कर डालता है। प्रथम तृतीयभाग अश्वकर्णकरणाद्धा, दूसरा किट्टीकरणाद्धा और तीसरा भाग किट्टीवेदनाद्धा कहलाता है। किट्टिकरणाद्धा में प्रतिसमय गणना से असंख्यगुण-हीन क्रम से किट्टि होती है। उससे विपरीत दलिक में समझना। प्रथमसमयकृत किट्टियों का अनुभाग क्रमशः अनंतगुण अनंतगुण होता है। मोहनीय कर्म संज्वलन कषाय के ४ मास प्रमाण स्थितिबंध होने पर स्थितिबंध के संख्यातगुणहीन क्रमशः समझना। इस प्रकार से यावत् किट्टीकरणाद्धा के प्रथम समय में दिवसपृथक्त्व प्रमाण स्थितिबंध होता है।

किट्टिकरणाद्धा के संख्यातभाग जाने पर संज्वलन लोभ का स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। तीन घातिकर्म का दिनपृथक्त्व एवं नामगोत्र का वर्षसहस्रपृथक्त्व स्थिति-बंध होता है। चरम किट्टिकरणाद्धा के चरमसमय में संज्वलनलोभ का चरमस्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। शेष घाति कर्म का अहोरात्रि प्रमाण और नामगोत्र कर्म दो वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अन्तर्गत होता है। उस वक्त समयोनावलिकाद्विकबद्ध एवं किट्टिकरणाद्धा की एकावलिका अनुपशान्त होता है शेष सर्वदलिक उपशान्त होता है। अगले समय जीव सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक को प्राप्त करता है पहले की हुई किट्टि द्वितीयस्थिति से खींच कर सूक्ष्मसंपरायद्धा के तुल्य करता है। तथा प्रथम और अन्तिमसमयकृत किट्टीयों को असंख्यभाग छोडकर शेष किट्टि की उदीरणा करता है। द्वितीय समय में उदयप्राप्त किट्टीओं का असंख्यभाग उपशान्त होने से उदय में जीव नहीं देता है और अपूर्व असंख्य-भाग उदीरणा करण से ग्रहण करता है। इस प्रकार सूक्ष्मसंपराय के चरमसमय तक समझना। द्वितीयस्थितिगत दलिक को भी पूर्ववद् उपशम करता है। उसके बाद उपशान्तमोह गुणस्थानक प्राप्त करता है।

उपशांतमोहगुणस्थानक पर उपशान्ताद्धा के संख्यातभागप्रमाण गुणश्रेणि की रचना करता है। वह गुणश्रेणि सम्पूर्ण उपशान्ताद्धा तक प्रदेश और काल की अपेक्षा समान रहती है। उपशान्ताद्धा करण रहित होती है परन्तु दृष्टित्रिक में संक्रमण व अपवर्तना होती हैं। जिस विधि से आरूढ होता है, उसी विधि से प्रमत्त गुणस्थानक तक उतरता है। उसमें विशेष इस प्रकार अन्तर है कि उतरता हुआ जीव द्वितीय स्थिति से दलिक ग्रहण कर प्रथमस्थिति करता है और उदयादि स्थिति में प्रक्षेप करता है। प्रक्षेप में प्रथमसमय में ज्यादा द्वितीयसमय में विशेषहीन विशेषहीन यावत् आवलिका आवलिका के उपर असंख्यगुण असंख्यगुण गुणश्रेणि के क्रम से प्रक्षेप समझना। यह क्रम वेद्यमान प्रकृतियों का समझना। अवेद्यमान प्रकृति का तो आवलिका के बाहर ही गुणश्रेणि का क्रम समझना। अवरोह को आनुपूर्वी सक्रम नहीं होता है। छ आवलिका के बाद उदीरणा होना वह भी नहीं होता है। वेद्यमान संज्वलनाद्धा से अधिक शेष मोहनीय प्रकृतियों की गुणश्रेणि अधिक होती है, तथा जिस संज्वलन से श्रेणि को प्रतिपन्न हुआ उस कषाय का उदय होने पर उसकी गुणश्रेणि शेषकर्म सदृश होती है।

क्षपक, उपशमक अवरोहक को अशुभकर्मों का स्थितिबंध क्रमशः दुगना दुगुना बंध होता है और अनुभाग अनंतगुण अनंतगुण अधिक होता हैं। शुभ प्रकृतियों का उक्त प्रमाण से विपरीत क्रम होता है। उपशमनाद्धा में वर्तमान जीव काल करता है, वह अवश्य देव बनता है। क्योंकि शेष तीन बद्धायु कर्म वाला श्रेणि आरोहण नहीं करता है, बन्धनादिकरण आरोहक जहां जहां व्यवच्छिन्न करता है। अवरोहक वहाँ वहाँ उन करणों को उद्घटित करता है। एक भव में उत्कृष्ट से दो बार श्रेणि का आरोहण होता है। उपरोक्त क्रम पुरुषवेद से उपशमश्रेणि प्रतिपन्न का है। लेकिन स्त्रीवेद से प्रतिपन्न जीव प्रथम-स्थिति की एक उदयस्थिति को छोडकर शेष सर्व स्त्रीवेद उपशांत हो जाता है। अवेदक होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सात प्रकृतियों को युगपदुपशान्त करता है। शेष पुरुषवेद की तरह समझना। तथा नपुंसकवेदी जीव एक उदयस्थिति को छोडकर युगपत् नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का उपशमन करता है। क्रमशः प्रारम्भ होने पर स्त्रीवेद अथवा पुरूषवेद से उपशमश्रेणि को प्रतिपद्यमान जिस स्थान पर नपुंसक वेद का उपशमन करता है वहां तक नपुंसकवेद से श्रेणि प्रतिपन्न केवल नपुंसकवेद को उपशमन करता है। उसके बाद नपुंसक और स्त्री दोनों वेदों का उपशमन करता है। जिस वक्त स्त्रीवेद उपशान्त हो जाता है उस वक्त नपुंसकवेद की केवल एक समय मात्रोदयस्थिति रहती है। उसके पसार होने पर अवेदक होकर सातों प्रकृतियों को युगपदुपशम करता है। उसके बाद पुरूषवेद की उपशमना समझना।

इस प्रकार उपशमनाकरण भाग-१ (सर्वोपशमनाधिकार) का संक्षिप्त विषय परिचय सम्पूर्ण होता है। उपशमनाकरण भाग-२ (देशोपशमनाधिकार) भविष्य में शीघ्र संपादित करने की तमन्ना है।

प्रस्तुत प्रेमगुणा टीका का संपादन मेरे द्वारा हुआ है उसमें गीतार्थ शिरोमणि, सिद्धांत दिवाकर पूज्यपादाचार्यदेव श्रीमद् जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा की प्रबल प्रेरणा व अध्ययन संपादनादि कार्य में सफल मार्गदर्शक, इस टीका के रचयिता, भवोदधितारक, पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य प्रवर श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी महाराजा की असीमकृपा से।

जिन शासन में यद्यपि मोक्षमार्गोपयोगी लोक भाषा (Public language) में बहुत साहित्य छपता है, वह अल्प समय तक ही उपयोगी सिद्ध होता है, परन्तु प्राकृत-संस्कृत भाषा मे लिखा हुआ साहित्य तो चिरकाल तक अमरकृति बन जाता है।

आज मुझे अत्यंत हर्ष है कि मेरा लगभग ५ सालों का प्रयत्न साकार हो रहा है। शासन के अमूल्य खजाने मे एक कोहिनूर हीरे की अभिवृद्धि हो रही है। मुझे मृत्यु के वक्त भी एक आनंद रहेगा कि जिस तारणहार जैनशासन ने मुझे मुक्ति-मार्ग के ऊंचे स्तर तक पहोंचाया उसके प्रति कृतज्ञ-भाव के रूप मे यत्किञ्चत् वफादारी मैं निभा सका हूँ। परम पिता परमेश्वर से मेरी यहीं प्रार्थना है कि "उट्ठिए नो पमाए" इस आगमिक उद्बोधन को पाकर मेरे द्वारा श्रुतभक्ति के ऐसे सुकृत पुनःपुनः होते रहें। इस अभिलाषा के साथ............।

संपादन, प्रस्तावना लेखन आदि कार्य मे जिनाज्ञा विरुद्ध अथवा ग्रन्थकार, टीकाकार आदि के आशय से अनभिमत कोई भी कार्य हुआ हो तो उसके लिए क्षमा-याचना चाहता हूँ।

श्री प्रेमसूरीश्वरजी गुरुमंदिर पिंडवाडा
वि.सं २०४८ चैत्र सुद ७, गुरुवार
दिनांक ९ अप्रेल १९९२

लि०
युवक जागृतिप्रेरक पूज्यपाद गुरुदेव
आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी
महाराजापादपद्मरेणु **मुनि संयमरत्नविजय**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

विषया:	पृष्ठाङ्का:
मङ्गलाचरणादि	१-२
चतुर्दशपूर्ववर्णनम्	२-३
उपशमनाया द्वैविध्यम्	४-५
औपशमिकसम्यक्त्वाधिकार:	
योग्यतालक्षणपूर्वभूमिका	६
नारकादीनां प्रकृतिबन्ध:	८
स्थित्यादीनां बन्ध:	१०
नरकगता उदय:	१३
सुरस्योदय:	१६
मनुष्यस्योदय:	१९
प्रकृतिसत्ता	२२
स्थित्यादीनां सत्ता	२६
यथाप्रवृत्तकरणाधिकार:	
स्थितिबन्धादय:	२७
अध्यवसायानां तीव्रतामन्दते	२९
अनुकृष्टि:	३०
अध्यवसायस्थानानि	३३
अपूर्वकरणाधिकार:	
अध्यवसायस्थानप्ररूपणा	३७
तीव्रतामन्दते	३८
स्थितिघातरसघातश्च	३९
अपूर्वस्थितिबन्धाद्धा	४१
गुणश्रेणि:	४२
अपवर्तना	४४
अनिवृत्तिकरणाधिकार:	५०
अध्यवसायविशोधि:	५१
अन्तरकरणम्	५१
उपशमसम्यक्त्वप्राप्ति:	५५
मिथ्यात्वस्य त्रिपुञ्जकरणम्	५८
गुणसंक्रम:	६०
विध्यातसंक्रम:	६३
उपशान्ताद्धाया अन्त उदय:	६५

विषय:	पृष्ठाङ्का:
सास्वादनस्य प्रतिपत्ति:	६६
सम्यग्दृष्टे: स्वरूपम्	६८
मिथ्यादृष्टे: स्वरूपम्	६९
कालमाश्रित्याऽल्पबहुत्वम्	७०
चारित्रमोहोपशमकाऽविरत्यादित्रयाणां स्वरूपम्	७९
अकरणानां देशविरत्यादि प्राप्तिक्रम:	८५
देशविरतौ	
(१) अल्पबहुत्वप्ररूपणा	८६
(२) स्वामित्वप्ररूपणा	८९
(३) स्थानप्ररूपणा	९०
(४) तीव्रमन्दताप्ररूपणा	९२
सर्वविरतौ	
(१) अल्पबहुत्वप्ररूपणा	९७
(२-३) स्वामित्वप्ररूपणा स्थानप्ररूपणा च	९८
(४) तीव्रमन्दताप्ररूपणा	९९
(५) स्थानप्ररूपणा	१०१
अनंतानुबंधिसंयोजनाधिकार:	
विसंयोजका: यथाप्रवृत्तादिकरणत्रयश्च	१०५
अनन्तानुबन्धिनामुपशमना	१११
क्षायिकसम्यक्त्वप्रतिपत्त्यधिकार:	
क्षपणाप्रस्थापक:	११४
अपूर्वकरणे स्थितिसत्त्वादय:	११५
अनिवृत्तिकरणे स्थितिसत्त्वादय	१२०
क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्ति:	१४१
कतिभवेषु मोक्षगमनम्	१४५
अनुभागखण्डोत्कीर्णाऽद्धादिनां कालतोऽल्पबहुत्वम्	१४७
दर्शनत्रिकोपशमनाधिकार:	
उपशामक:	१५२
अपूर्वकरणे स्थितिघातादय:	१५३
अंतरकरणप्ररूपणा	१५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चारित्रमोहोपशमनाधिकारः	
यथाप्रवृत्तकरणादयः	१५८
अपूर्वकरणगुणस्थाने स्थितिघातादयः	१५६
अनिवृत्तिकरणे स्थितिबन्ध सत्ता च	१६१
बन्धसत्त्वयोरल्पबहुत्वम्	१६२
असंख्येयप्रबद्धोदीरणादयः	१७०
संयमघातिप्रकृतीनामन्तरकरणम्	१७२
दलिकप्रक्षेपविधिः	१७६
अन्तरकरणकृते सप्तपदार्थाः	१७८
नपुंसकवेदोपशमना	१८०
स्त्रीवेदोपशमना	१८२
हास्यषट्कपुरुषवेदोपशमना	१८३
क्रोधस्योपशमना	१९२
मानमायोपशमना	१९५
अश्वकर्णकरणाद्धा	१९९
किट्टिकरणाद्धा	२००
किट्टिवेदनाद्धा	२०५
उपशान्तमोहगुणस्थानकवक्तव्यता	२११
प्रतिपातः	२१४
अन्तरकरणे दलप्रक्षेपविधिः	२१६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
स्थित्यनुभागबन्धश्च	२१६
सूक्ष्मसंपराये किट्टेरुदयः	२२१
संज्वलनमायामानानुपशमना	२२३
क्रोधवेदकाद्धा	२२५
पुरुषवेदोदयः	२२६
स्त्रीवेदोदयः	२२७
नपुंसकवेदोदयः	२२८
अपूर्वकरणयथाप्रवृत्तकरणे	२३३
आसास्वादनं प्रतिपातः	२३४
स्त्रीनपुंसकवेदोदयविशिष्टस्य प्रक्रियाविशेषः	२३६
संज्वलनमानमायालोभोदयेनारूढावरोहणस्य प्रक्रियाविशेषः	२३७
पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधोदयेनारूढस्याऽपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यन्त संभाव्यमानानामष्टानवतिपदानामल्पबहुत्वम्	२४२
प्रशस्तिः	२५६
परिशिष्टानि	२६४
शुद्धिपत्रकम्	२६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊ अर्हं नमः।

श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथो विजयतेतमाम् ।

सिद्धान्तमहोदधि-श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

श्रीमत्तपोगच्छगगनाङ्गणदिनमणि-सुविहितविशालगच्छाधिपतिसिद्धान्तमहोदधि-सच्चारित्र-चूडामणि-कर्मशास्त्रनिष्णात-प्रातःस्मरणीयाचार्यशिरोमणि-श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरा-न्तेवासिस्याद्वादनयप्रमाणविशारदाचार्यदेवश्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वर-शिष्य प्रशिष्य-सिद्धान्तदिवाकराचार्यदेवश्रीमद् विजयजयघोषसूरीश्वर-धर्मजित्सूरीश्वर-हेमचन्द्रसूरीश्वर-गुणरत्नसूरीश्वर-संगृहीतपदार्थकया मेवाडदेशोद्धारकाचार्य-देवश्रीमद्विजयजितेन्द्रसूरीश्वरान्तिषदाचार्यदेवश्रीविजयगुणरत्नसूरीश्वर-विरचितया प्रेमगुणाख्यवृत्त्या विभूषितं श्रीपूर्वधराचार्यदेवश्री-शिवशर्मसूरीश्वरसंदृब्धं

कर्मप्रकृतिगतमुपशमनाकरणम्

श्रेयो दिशतु वः पार्श्वः शङ्खेश्वरपुराधिपः। यस्याऽचिन्त्यप्रभावोऽत्र कलिकाले विजृम्भते॥१॥
कर्मपङ्कविनिर्मुक्ता लोकालोकविलोकिनः। लोकन्ते सर्ववस्तूनि सिद्धाः पुनन्तु मां जडम् ॥२॥
नमामि शिवशर्माणं कर्मशास्त्रविशारदम् । येन विरचितं शास्त्रं कर्मप्रकृतिनामकम् ॥३॥
प्रणम्य तानभिनौमि निष्णातान् कर्मशास्त्रे विशेषतः। सुशमनधुरा यैः समोह्यत प्रेमसूरिभिः॥४॥
प्रणम्य गुरुवर्यादीन् स्मृत्वा च श्रुतदैवतम् । मयोपशमनानामकरणं वर्ण्यते मुदा ॥५॥

कर्मसाहित्यवारिधिनदीष्णा भारतवर्षविख्यातश्रवो भवाऽब्धिमज्जत् त्रिभुवनजनपोताय-माना: सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररत्नत्रयरक्षणैकपरायणा अनेकबालयुववृद्धानां संयमपथे प्रेरका अज्ञानतिमिरदिवाकरायमाणाश्चतुर्विधसंघचकोरचन्द्रायमाणाः कुसुमशरोन्मीलितनेत्रशंभवः सुहृदयमैत्रान्तिकचक्रवर्तिनः कन्दर्पोत्पन्नतापशिशिरायमाणा विषयोत्पन्नतीव्रोष्मसलिलायमाना मनमानसमत्तमयूरप्रावृषेण्यघनघनायमाना अनूचानसंक्रन्दनाः पियूषवाचः प्रातःस्मरणीयाः पूज्याः **सिद्धान्तमहोदधयः आचार्यदेवाः श्री प्रेमसूरीश्वरा** मयि सुप्रसन्ना भवन्तु ।

शक्तिविकला अपि जना गुरुकृपया दुष्कराणां कार्याणां पारं यान्ति इत्येव श्रद्धया मयाऽस्मिन् ग्रन्थे प्रयत्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्व चेदं दुष्करं कार्यं क्वाऽहं जडमतिर्लघुः ।
तथाऽपि श्रद्धामुग्धस्य प्रवृत्तौ मे गुरुकृपा ॥१॥

इह खल्वनादिकालप्रवाहतः कर्मसलिलसंभृते जन्मजरामरणतरङ्गभङ्गतरङ्गित इष्टाऽनिष्टवियोगसंयोगमच्छकच्छपसङ्कुलेऽपारे संसारपारावारे संसरतामैदंयुगीन भव्यप्राणिनां निर्वाणाऽनन्यकारणीभूतं द्वादशाङ्गीनिस्यन्दभूतमिदं प्रकरणं कुमतिप्रक्षोदनसमर्थैर्धैर्यधनैः कोविदकुलचमत्कारकृद्वैदुष्यवैभवशालिभिर्भगवद्भिः **शिवशर्मसूरिभिः** समुद्धृतं श्रुतसागरात् ।

तत्र श्रुतं द्विविधम्–अङ्गप्रविष्टमनङ्गप्रविष्टम् । अङ्गप्रविष्टं तु दशभेदम्-चाराङ्गप्रभृतिभेदात् । तत्र द्वादशमङ्गं दृष्टिवादः । स पञ्चविधः परिकर्मसूत्रप्रथमाऽनुयोगपूर्वगतचूलिकाभेदात् । तत्र पूर्वगतस्य चतुर्दश भेदाः, तथाहि...उत्पादपूर्वम्, अग्रायणीयम्, वीर्यप्रवादम्, अस्तिनास्तिप्रवादम्, ज्ञानप्रवादम्, सत्यप्रवादम्, आत्मप्रवादम्, कर्मप्रवादम्, प्रत्याख्याननामधेयम्, विद्यानुप्रवादम्, अवन्ध्यनामधेयम्, प्राणायुः, क्रियाविशालम्, लोकबिन्दुसारम्, इति चतुर्दश पूर्वाणि=शास्त्रविशेषाः ;

तत्राऽऽद्यमुत्पादपूर्वम्, सर्वद्रव्याणां पर्यायाणां चोत्पादा वर्ण्यन्ते यत्र, तदुत्पादपूर्वमेककोटिपदम् १०००००००। द्वितीयमग्रायणीयम्, यत्र सर्वद्रव्याणां पर्यायाणां च सर्वजीवविशेषाणां चाऽग्रं परिमाणं वर्ण्यते, तदग्रायणीयं षण्णवतिशतसहस्रपदम् ९६०००००। तृतीयं वीर्यप्रवादम्, यत्र जीवानामजीवानामजीवानां च सकर्मेतरद्वीर्यं प्रोच्यते, तद्वीर्यप्रवादं सप्ततिशतसहस्रपदम् ७००००००। चतुर्थमस्तिनास्तिप्रवादम्, स्याद्वादाऽभिप्रायेण तदेवाऽस्ति नाऽस्तीत्येवं प्रवदनं यत्र, तदस्तिनास्तिप्रवादं षष्टिशतसहस्रपदप्रमाणम् ६००००००। पञ्चमं ज्ञानप्रवादम्, यत्र मतिज्ञानादिपञ्चकस्य सप्रभेदप्ररूपणा यथाकृता, तज्ज्ञानप्रवादमेकोनकोटिपदम् ९९९९९९९। षष्ठं सत्यप्रवादम्, सत्यं संयमः सत्यवचनं वा सभेदं सप्रतिपक्षं च वर्णितं यत्र, तत्सत्यप्रवादं षडधिकैककोटिपदम्, १००००००६। सप्तममात्मप्रवादम्, यत्राऽऽत्माऽनेकधा नयदर्शनैर्वर्ण्यते, तदात्मप्रवादम्, तस्य पदराशिः षड्विंशतिकोटयः २६०००००००। अष्टमं कर्मप्रवादम्, यत्र ज्ञानावरणादिकमष्टविधं कर्म प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभिरन्यैश्चोत्तरोत्तरभेदैर्वर्ण्यते, तत्कर्मप्रवादम् । तस्य पदप्रमाणमशीतिशतसहस्राऽधिकैकाकोटी १८००००००। नवमं प्रत्याख्याननामधेयम्, यत्र सर्वप्रत्याख्यानस्वरूपं व्याख्यायते, तत्प्रत्याख्याननामधेयं चतुरशीतिशतसहस्रपदम् ८४०००००। दशमं विद्यानुप्रवादम्, यत्राऽनेके विद्याऽतिशया निरूपितास्तद्विद्यानुप्रवादम्, तस्मिन् दशशतसहस्राऽधिका एका कोटी पदानि ११००००००। एकादशमवन्ध्यम्, वन्ध्यं निष्फलं न वन्ध्यमवन्ध्यं सफलमित्यर्थः, यत्र सर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानतपःसंयमयोगाः सफला वर्ण्यन्तेऽप्रशस्ताश्च प्रमादादयः सर्वेऽऽशुभफला वर्णितास्तदवन्ध्यम्, तत्र पदानि षड्विंशतिकोटयः २६०००००००। अन्ये तु कल्याणनामधेयमित्याहुः. द्वादशं प्राणायुः, यत्राऽऽयुः प्राणविधानं सर्वसप्रभेदमन्ये च प्राणा वर्णितास्तत्प्राणायुः तत्र त्रयोदश-कोटयः पदानि १३००००००००। त्रयोदशं क्रियाविशालम्, यत्र कायक्रियाहिंसादयो विशालं सप्रभेदाः संयमक्रिया बन्धक्रियाश्च विहितास्तत्क्रियाविशालम्, अस्मिन् पदानां नव कोटयो भवन्ति ९०००००००। चतुर्दशं लोकबिन्दुसारम्, यदमुस्मिल्लोंके श्रुतलोके चाऽक्षरस्य बिन्दुरिव सर्वोत्तमः सर्वाऽक्षरसन्निपातहेतुत्वात्तल्लोकबिन्दुसारम्, तत्र पदानि पञ्चाशच्छत-सहस्राऽधिकद्वादशकोटयः १२५०००००००।

अथ प्रत्येकं पूर्वस्य वस्तूनि चूलिकाश्चाऽभिधीयन्ते। तत्र वस्तूनि पूर्वगताऽधिकार-विशेषाः। उत्पादपूर्वस्य दश वस्तूनि चूलिकाश्च चतस्रः प्ररूपिताः। अग्रायणीयस्य चतुर्दश वस्तूनि चूलिकाश्च द्वादश प्ररूपिताः। वीर्यप्रवादस्याऽष्टौ वस्तूनि चूलिकाश्चाऽष्टौ। अस्तिनास्ति-प्रवादस्याऽष्टादश वस्तूनि चूलिकाश्च दश। अथ शेषाणां चूलिका न सन्ति। ज्ञानप्रवादस्य द्वादश वस्तूनि, सत्यप्रवादस्य द्वे वस्तुनी, आत्मप्रवादस्य षोडश वस्तूनि, कर्मप्रवादस्य त्रिंशद्-वस्तूनि, प्रत्याख्याननामधेयस्य विंशतिर्वस्तूनि, विद्यानुप्रवादस्य पञ्चदश वस्तूनि, अवन्ध्यनाम-धेयस्य द्वादश वस्तूनि, प्राणायुः पूर्वस्य त्रयोदश वस्तूनि, क्रियाविशालस्य त्रिंशद्वस्तूनि, लोक-बिन्दुसारस्य पञ्चविंशतिर्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

इत्थं दृष्टिवाद एकस्मिन् श्रुतस्कन्धे चतुर्दशपूर्वाणि संख्यातानि वस्तूनि संख्याताश्चूलिकाः संख्याताः प्राभृताः संख्याताः प्राभृतिकाः संख्याताः प्राभृतप्राभृतिका इत्यादि। विशेषस्तु ग्रन्थान्तरादवसेयः, ग्रन्थगौरवभयादत्र न वितन्यते।

अत्राऽग्रायणीयेनाऽधिकारः, तत्र चतुर्थकर्मप्रकृतिप्राभृतस्याऽवस्थानात्। तत्कर्मप्रकृति-प्राभृतं च चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारमयम्। विद्वद्वृन्दवृन्दारकोत्तमाङ्गविधूननशेमुषीशालिभिः श्री-मद्भिर्भगवद्भिः शिवशर्मसूरीश्वरैर्दृष्टिवादैकदेशचतुर्दशपूर्वस्याऽनेकवस्तुसमन्विताऽग्रायणीयाऽ-भिधाद्द्वितीयपूर्वस्य विंशतिप्राभृतपरिमाणपञ्चमवस्त्वेकदेशं चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारमयकर्मप्रकृत्या-ख्यचतुर्थप्राभृतादिदं कर्मप्रकृत्याख्यं शास्त्रं समुद्धृतम्। एतेन ग्रन्थस्य कपोलकल्पितत्वं निरस्तम्।

तत्र मङ्गलं ग्रन्थस्यादौ वक्तव्यम्, यतः श्रेयांसि बहुविघ्नानि, उक्तञ्च "श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि।" अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्वाऽपि यान्ति विना-यकाः॥१॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु मङ्गलं ग्रन्थस्यादौ वक्तव्यमिति कथमुच्यते ? अस्य ग्रन्थस्य परमपदप्राप्तिबीजभूतत्वेन श्रेयोरूपत्वात्, **श्रेयांसि बहुविघ्नानीति** न्यायेनाऽत्र विघ्नसंभवेन तेषां निराकरणार्थं मङ्गलाचरणमिति चेत्, न, अस्य ग्रन्थस्यैव श्रुतज्ञानत्वेन परममङ्गलरूपत्वात् पृथग्मङ्गलाचरणं निरर्थकम्। अत्रोच्यते, ग्रन्थस्य मङ्गलरूपत्वेऽपि शिष्टाचाराऽनुरोधेन शिष्टशेमुषीमङ्गलपरिग्रहार्थं च मङ्गलोपन्यासः। तन्मङ्गलोपन्यास आदौ मध्येऽवसाने च कर्तव्यः। नन्वयुक्तो मङ्गलत्रयोपन्यास आदिमङ्गलेनैवाऽभिष्टार्थसिद्धेरिति, एतदसम्यक्, आदिमङ्गलं शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहार्थं निर्विघ्नपरिसमाप्तये वा, मध्यमङ्गलाऽवगृहीतशास्त्रार्थस्थिरीकरणार्थमन्तिममङ्गलं च शिष्यप्रशिष्यपरम्परया शास्त्रस्याऽव्यवच्छेदार्थम्। उक्तञ्च "......**तं मंगलमाइए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स पढमं सत्थत्थाविग्घपारगमणाय निद्दिट्ठं॥ तस्सेव य थेज्जत्थं मज्झिमयं अंतिमंपि तस्सेव। अव्वोच्छित्तिनिमित्तं सस्सपसिस्साइवंसस्स॥** अत्राऽऽद्यं मङ्गलं ग्रन्थकृता पूर्वमुक्तम्। **सिद्धं सिद्धत्थसुअं वन्दिय णिद्धोयसव्वकम्ममलं। कम्मट्ठगस्स करणट्ठमुदयसंताणि वोच्छामि॥१॥** इति। अन्तिममङ्गलं तु "**जस्सवरसासणावयवफरिसपविकसियविमलमइकिरणा। विमलेंति कम्ममइले सो मे सरणं महावीरो॥१**" इति वक्ष्यते। संप्रत्युपशमनावसरे मध्यमङ्गलं चिकीर्षुराचार्य आह.........

> करणकयाकरणावि य दुविहा उवसामणत्थ बिइयाए।
> अकरणअणुइन्नाए अणुओगधरे पणिवयामि ॥१॥

> करणकृताकरणापि च द्विविधोपशमनाऽत्र द्वितीयायाः।
> अकरणानुदीर्णाया अनुयोगधरान् प्रणिपतामि ॥१॥ इति पदसंस्कारः

अथोपशमना, उपशम्यते उदयोदीरणानिद्धत्तिनिकाचनाकरणाऽयोग्यत्वेन व्यवस्थाप्यते कर्म यया, सोपशमना "**णिवेत्त्यासश्रन्थघट्टवन्देरनः**" (सिद्धहेम. ५ ३-१११) इति सूत्रेण स्त्रियाम्'अन्' प्रत्ययः। अनप्रत्ययस्य स्त्रीवृत्तित्वात् "**आत्**"(सिद्धहेम. २-४-१८) इति सूत्रेण 'आप्' प्रत्ययः। तत्रैतेऽर्थाऽधिकाराः। तद्यथा— (१) प्रथमसम्यक्त्वोत्पादप्ररूपणा (२)देशविरतिलाभप्ररूपणा (३) सर्वविरतिलाभप्ररूपणा (४) अनन्तानुबन्धिविसंयोजना (५) दर्शनमोहनीयक्षपणा (६) दर्शनमोहनीयोपशमना (७) चारित्रमोहनीयोपशमना (८) देशोपशमना (८) देशोपशमना च सप्रभेदा। तत्रेदमुपशमनाकरणं सप्रभेदं सर्वथा व्याख्यातुमशक्यम्, यतः सर्वथा मतिज्ञानावरणीयादीनां कर्मणां सर्वजघन्यानुभागोदीरकैः सर्वज्ञप्रणीतशास्त्राब्धिशर्करामूर्तिभिश्चतुर्दशपूर्ववद्भिर्लोकालोकदर्शिभिश्च केवलज्ञानिभिर्भगवद्भिरेव व्याख्यातुं

शक्यत्वात् । यत्रांशे आत्मनोऽशक्तिस्तत्रांशे तद्वेत्तृणामाचार्यो नमस्कारं चिकीर्षुराह... 'करणकय' त्ति । नमस्कारश्च पराऽवधिकस्वापकर्षबोधानुकूलव्यापारः । तत्रोपशमना द्विविधा—'करणकयाकरणा' इत्यादि, करणकृताऽकरणकृता च । तत्र करणं क्रिया यथाप्रवृत्ताऽनिवृत्तिकरणसाध्यः क्रियाविशेषस्तेन कृता करणकृता "कारकं कृता" । सिद्धहेम (३।१।६८) इति समासः, न करणमकरणम्, अकरणेन कृता अकरणकृता । या जन्मजरामरणलतावितानसंभृतायां नानाविभ्रमसंकल्पविकल्पशृगालादिसङ्कुलायां दुरवगाहमहामोहतमोभीषणायामार्तरौद्रध्यानवात्यापरिपूरितायां मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषायलुण्टाकव्याप्तायां भवाटव्यां भ्रमतां संसारिणां जीवानां गिरिनदीपाषाणवृत्ततादिसंभववद् यथाप्रवृत्तादिकरणं विनाऽपि वेदनानुभवनादिभिः कारणैरुपशमनोपजायते साऽकरणकृतेत्यर्थः ।

इदं च करणकृताऽकरणकृतत्वरूपं द्वैविध्यं देशोपशमनाया एव द्रष्टव्यम्, न सर्वोपशमनायाः, तस्याः करणेभ्य एव भावात्, उक्तञ्च पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्...'देशोपशमना करणकृता करणरहिता च सर्वोपशमना तु करणकृतैवेति' तस्या अकरणकृताया उपशमनायाः संप्रत्यनुयोगो व्यवच्छिन्नः, तत आचार्यः स्वयं तस्या अनुयोगमजानानस्तद्वेत्तृणां चतुर्दशपूर्वधराणां नमस्कारमाह 'बिइयाए' इत्यादि, द्वितीयाया अकरणकृताया उपशमनाया अकरणानुदीर्णरूपनामधेयद्वययुक्ताया अनुयोगधरान् व्याख्याकुशलान् विशिष्टमतिप्रभाकलितचतुर्दशपूर्वधरान् प्रणिपतामि । 'प्रणिपतामि' इत्यत्र प्रशब्दो वाक्कायमनसां प्रह्वीभावप्रकर्षं द्योतयति, उपहासनमस्कारं च निराकरोति । अन्यथा नमस्यं तत्सखि प्रेमघण्टारसितसोदरम् । कम्मकशिमनिस्सार मारम्भगुरुऽम्बरम्, इत्यादिवदुपहासनमस्कारभ्रमोऽपि स्यादिति ।

उपशमनाया द्वैविध्यं तथैकैकस्या नामाऽन्तरं व्याजिहीर्षुराह—

सव्वस्स य देसस्स य करणुवसमणा दुन्निसन्नि एक्किका ।
सव्वस्स गुणपसत्था देसस्स वि तासि विवरीया ॥२॥
सव्वुवसमणा मोहस्सेव........................

सर्वस्य च देशस्य च करणोपशमना द्विसंज्ञैकका । सर्वस्य गुणप्रशस्ता देशस्यापि तयो विपरीता ॥२॥
सर्वोपशमता मोहस्यैव ....—...
इति पदसंस्कारः

'सव्वस्स' इत्यादि सा करणकृतोपशमना द्विविधा सर्वस्य देशस्य च सर्वविषया देशविषया चेत्यर्थः "एक्किक्का" त्ति, एकैकस्या अपि 'दुसन्नि' त्ति द्वे सञ्ज्ञे द्वे नामधेये तद्यथा—'सव्वस्स' सर्वस्य सर्वोपशमना प्रशस्तोपशमना चेति, तथा 'देशस्य' देशोपशमनायास्ताभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां विपरीते नामधेयेऽगुणोपशमनाऽप्रशस्तोपशमना च ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सर्वोपशमना तु मोहनीयस्यैवेति। एतेन देशोपशमना सर्वेषां कर्मणां भवतीति ज्ञापितम्।

अथादावुपशमसम्यक्त्वाऽधिकारः। अनादिकालतो भवाटव्यां भ्रमन्तोऽनादिमिथ्यादृष्टयः प्राणिन आदावुपशमसम्यक्त्वमेव प्राप्नुवन्तीति मन्यन्ते कार्मग्रन्थिकाः। आदौ जीवा उपशमसम्यक्त्वं क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं वाऽश्नुवत इति मन्यन्ते सैद्धान्तिकाः। न क्षायिकसम्यक्त्वमित्युभयोर्मतम्। ननु कस्यामपि गतौ कस्याश्चिदवस्थायां वर्तमानः सम्यक्त्वमासादयति, उत गतिविशेष एव वर्तमान सम्यक्त्वं प्राप्नोतीति शङ्कापरिहारार्थमाचार्या अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाणां प्राग् योग्यतालक्षणां 'पूर्वभूमिकां' प्रदर्शयितुकामाः प्राहः--

........................उ तस्सुवसमक्किरिया जोग्गो।
पंचिंदिश्रो उ सन्नीपज्जत्तो लद्धितिगजुत्तो ॥३॥
पुव्वंपि विसुज्झंतो गंठियसत्ताणऽइक्कमियसोहिं।
अन्नयरे सागारे जोगे य विसुद्धलेसासु ॥४॥
ठिइसत्तकम्मअंतोकोडीकोडी करित्तु सत्तण्हं।
दुट्ठाण चउट्ठाणे असुभसुभाणं च अणुभागं ॥५॥
बंधंतो धुवपगडी भवपाउग्गा सुभा अणाऊ य।
जोगवसा य पएसं उक्कस्सं मज्झिम जहण्णं ॥६॥
ठिइबंधद्धापुण्णे नवबंधं पल्लसंखभागूणं।
असुभसुभाणणुभागं अणंतगुणहाणिवुड्ढीहिं ॥७॥

तु तस्योपशमक्रियायोग्यः। पञ्चेन्द्रियस्तु संज्ञी पर्याप्तो लब्धित्रिकयुक्तः ॥३॥
पूर्वमपि विशुध्यमानो ग्रन्थिकसत्त्वानामतिक्रम्य शोधिम्। अन्यतरस्मिन् साकारे योगे च विशुद्धलेश्यासु ॥४॥
स्थितिसत्कर्म अन्तःकोटाकोटीं कृत्वा सप्तानाम्। द्विस्थानं चतुःस्थानेऽशुभशुभानां चानुभागम् ॥५॥
बध्नन् ध्रुवप्रकृतीर्भवप्रायोग्याः शुभा अनायुषश्च योगवशाच्च प्रदेशं उत्कृष्टो मध्यमो जघन्यः ॥६॥
स्थितिबन्धाद्धापूर्णे नवबन्धं पल्यसंख्यभागोनम्। अशुभशुभानामनुभागमनन्त-गुणहानिवृद्धिभ्याम् ॥७॥
इति पदसंस्कारः

'तस्स' इत्यादि, तस्य मोहनीयस्य सर्वोपशमाक्रियायोग्यः प्रस्तुते च दर्शनमोहनीयस्य **'पंचिंदिओ सन्नीपज्जत्तो' 'पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियः'** लब्ध्यपर्याप्ता जीवा अथवा लब्धिभिः पर्याप्तत्वेऽपि करणाऽपर्याप्तत्वेन करणापर्याप्ता जीवाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्राप्तुं नाऽर्हन्ति, सम्यक्त्वप्राप्तौ तेषां तथाविधविशुद्ध्यभावात्। एवमेकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिया असं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च पर्याप्ताऽपर्याप्ता जीवा अपि तथाविधविशुद्ध्यभावात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वं न प्राप्नुवन्ति। अतः संज्ञिपञ्चेन्द्रियः सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वमुत्पादयति. स च सादिमिथ्यादृष्टिरनादिमिथ्यादृष्टिर्वा ज्ञेयः। नन्वत्र को नाम सादिमिथ्यादृष्टिरिति चेद्, उच्यते, येन जन्तुना सकृदौपशमिकादिसम्यक्त्वं प्राप्तं परिणामपतनाच्च मिथ्यात्वमभ्युपगच्छति, स सादिमिथ्यादृष्टिरुच्यते। न च सादिमिथ्यादृष्टेः प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वप्राप्तिः कथं भवितुमर्हति, यतस्तस्य जन्तोः सकृदौपशमिकसम्यक्त्वस्य लाभत्वेन द्वितीयाद्यौपशमिकसम्यक्त्वं संभवतीति वाच्यम्, यत उपशमश्रेणिगतौपशमिकसम्यक्त्वव्यतिरिक्तौपशमिकसम्यक्त्वं प्रथमत्वेन व्यपदिश्यते।

(२)卐**लब्धित्रिकयुक्तः**-उपशमलब्ध्युपदेशश्रवणलब्धिप्रयोगलब्धित्रिकयुक्तः। करणकालात्पूर्वमपि प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्राप्तय उद्यत आत्मा लब्धित्रययुक्तो भवति। तत्रोपशमलब्धिः-कर्मदलिकानामुपशमनाय या शक्तिः, सा उपशमलब्धिरित्यभीधयते। उपदेशलब्धिः-उपदेशकाऽऽचार्यादीनां प्राप्तिस्तथोपदेशपरिणमनाय शक्तिविशेषः। यद्यपि नैसर्गिकसम्यक्त्वप्राप्त्यवसर उपदेशश्रवणस्य निमित्तं न भवति, तथाऽपि जीवस्योपदेशश्रवणशक्त्या नियमेन भवितव्यम्। प्रयोगलब्धिः-सम्यक्त्वप्राप्तये करणत्रयहेतुभूतमनोवाक्काययोगस्य लब्धिः।

(३) **विशुद्धिः**—करणकालात्पूर्वमप्यन्तर्मुहूर्तकालं यावत्प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या '**विशुद्ध्यमानः**' ग्रन्थिकसत्त्वानां कोऽर्थः? ग्रन्थिर्नाम रागादीनां तीव्राऽनुबन्धकारिका परिणतिः, सा च ग्रन्थिरत्यन्तं दुर्भेद्याऽतिकठिना कर्कशा च भवति, उक्तञ्च "**गंठित्ति सुदुब्भेओ कक्खडघणगूढरूढगंठिव्व। जीवस्स कम्मजणिओ घणरागदोसपरिणामो**॥१॥ ग्रन्थिरेव **ग्रन्थिका, "यावादिभ्यः कः"**सिद्धहेम ७।३।१५। इति सूत्रेण स्वार्थिकः 'क' प्रत्ययः। ग्रन्थिकायां ग्रन्थिदेशे स्थिताः सत्त्वाः=ग्रन्थिकसत्त्वाः "**मयूरव्यंसकेत्यादयः**" (सिद्धहेम० ३।१।११६) इति सूत्रेण मध्यमपदलोपिसमासः, तेषां ग्रन्थिकसत्त्वानामभव्यानां या विशोधिस्तामतिक्रम्य वर्तमानः, ततोऽनन्तगुणविशुद्ध इत्यर्थः।

(४) **अन्यतरस्मिन्साकार उपयोगे वर्तमानः**—मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानानामन्यतमे साकारोपयोगे वर्तमानः।

卐 टीप्पणम्-लब्धिसारे तु लब्धिपञ्चकमुक्तम्-तद्यथा-खयउवसमिय विसोहि देसणपाउग्गकरलद्धीय चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते ॥३॥

छाया-क्षायोपशमविशुद्धदेशनाप्रायोग्यकरणलब्धयश्च चतस्रोऽपि सामान्यात्करणं सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) **योगे च वर्तमानः**—मनोयोगचतुष्टयवचनयोगचतुष्टयौदारिककाययोगवैक्रियकाययोगानामन्यतमे योगे वर्तमानः '**योगे य**' इत्यत्र चकराद् वेदे कषाये च वर्तमान इति ज्ञेयम्।

(६) **वेदे वर्तमानः**–अन्यतमे पुरुषवेदे स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च वर्तमानः

(७) **कषाये वर्तमानः**-क्रोधादिचतुष्टयेऽन्यतमे कषाये वर्तमानस्तथा प्रतिसमयं हीयमानकषायी प्रवर्धमानविशुद्धयां प्रवर्तमानत्वात्

(८) **विसुद्धलेश्यायां वर्तमानः**—भावतो विशुद्धस्य लेश्यात्रयस्यान्यतमायां लेश्यायां वर्तमानो जघन्यपरिणामेन तेजोलेश्यायां मध्यमपरिणामेन पद्मलेश्यायामुत्कृष्टपरिणामेन शुक्ललेश्यायां वर्तमान इत्यर्थः। द्रव्यतस्तु लेश्याषट्के वर्तमान उपशमसम्यक्त्वमुत्पादयति, नरकगतौ द्रव्यतोऽशुभलेश्याया एव सद्भावात्।

तथाऽऽयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां स्थितिमन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणामपि हीनां कुर्वन्नशुभानां कर्मणामनुभागं द्विस्थानकं सन्तमप्यनन्तगुणहीनं कुर्वन् शुभानां च कर्मणां चतुःस्थानकं सन्तमप्यनन्तगुणं कुर्वन्नास्ते।

(९) **प्रकृतिबन्ध**--(१) अथ **मूलप्रकृतिबन्ध**–'बंधंतो धुवपगडी भवपाउग्गा' मूलप्रकृतय आयुष्यवर्जाः सप्तैव बध्यन्ते यत आयुर्बन्धो मध्यमपरिणाम एव भवति, अत्र तु अतीवविशुद्धयमानपरिणामत्वादायुर्बन्ध नाऽऽरभते न करोतीत्यर्थः, नाप्यायुबन्धेऽप्रमत्तगुणस्थानकवत् पूर्वप्रवृत्तो वर्तते।

उत्तरप्रकृतयो ध्रुवास्तु स्वभवप्रायोग्या बध्यन्ते तथाहि–

(२) **अथोत्तरप्रकृतिबन्धः**–ध्रुवप्रकृतयः पञ्चविधज्ञानावरणनवविधदर्शनावरणमिथ्यात्वकषायषोडशभयजुगुप्सातैजसकार्मणवर्णगन्धरसस्पर्शाऽगुरुलघूपघातनिर्माणाऽन्तरायपञ्चकरूपाः सप्तचत्वारिंशत्तथा स्वभवप्रायोग्याः प्रकृतीः परावर्तमानमध्यस्था आयुष्यवर्जाः शुभा एव बध्नाति।

तथाहि—तिर्यङ् मनुष्यो वा ध्रुवबन्धिसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीस्तथा देवगतिप्रायोग्याः शुभाः प्रकृतीर्देवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजाति-आद्यसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तखगतित्रसदशकरूपा नामकर्मण एकोनविंशतिसंख्याकास्तथोच्चैर्गोत्रं सातवेदनीयं च मोहनीयस्य हास्यरतिपुरुषवेदरूपास्तिस्रः प्रकृतीर्बध्नाति। इत्थं मनुष्यस्तिर्यङ् वा एकसप्तति प्रकृतीर्बध्नाति।

सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको देवो वा ध्रुवबन्धिसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीस्तथा मनुष्यगतिप्रायोग्या मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रथमसंस्थानाऽऽद्यसंहननौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वासप्रशस्तखगतित्रसदशकरूपा नामकर्मणो विंशतिसंख्याकाः प्रकृतीस्तथोच्चैर्गोत्रं सातवेदनीयं च मोहनीयस्य हास्यरतिपुरुषवेदरूपास्तिस्रः प्रकृतीर्बध्नाति।

इत्थं सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको देवो वा द्विसप्तति प्रकृतीर्बध्नाति। यदि सप्तमपृथ्वीनारकः सादिमिथ्यादृष्टिरनादिमिथ्यादृष्टिर्वा प्रथममुपशमसम्यक्त्वमुत्पादयति तदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्राणां स्थाने तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्राणि वक्तव्यानि, यतः सप्तमपृथ्वीनारकः प्रथमगुणस्थानके तीव्रतरविशुद्ध्यमानोऽपि तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्ररूपाः प्रकृतीरेव बध्नाति तथास्वाभाव्यात्, तथा सप्तमनरके केचिज्जीवा उद्योतमपि बध्नन्ति। इत्थं सप्तमपृथ्वीनारका द्वासप्ततिं त्रयःसप्ततिं वा प्रकृतीर्बध्नन्ति।

ननु रत्नप्रभादिपृथ्वीनारका उद्योतं कथं न बध्नन्तीति इति चेद्, उच्यते, यदा जीवास्तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्ति, तदैवोद्योतं बध्नन्ति, नाऽन्यथा। प्रथमादिपृथ्वीनारकाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयन्तो मनुष्यगतिप्रायोग्या एव प्रकृतीर्बध्नन्ति, न तिर्यग्प्रायोग्याः। अतस्त उद्योतबन्धं विभाषयाऽपि न कुर्वते। सप्तमपृथ्वीनारकास्तु तिर्यक्प्रायोग्या एव प्रकृतीर्बध्नन्ति। अत एव तेषु केचिदुद्योतबन्धमपि कुर्वत इत्युक्तो विकल्पेन तेषामुद्योतबन्धः। सम्यक्त्वाऽभिमुखगतिचतुष्कवर्तिनः प्राणिन आश्रित्य प्रत्येककर्मणो बध्यमानोत्तरप्रकृतीनां यन्त्रम्।

यन्त्रम जीवः	ज्ञानावरणीयम्	दर्शनावरणीयम्	मोहनीयम्	अन्तरायम्	सातवेनीयम्	उच्चैर्गोत्रम्	नामकर्म	संकलितः प्रकृतयः
मनुष्यस्तियङ् वा	५	९	२२	५	१	१	देवगति प्रा० २८	७१
देवः सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको वा	५	९	२२	५	१	१	मनुष्यगति प्रा० २९	७२
सप्तमपृथ्वीनारकः	५	९	२२	५	१	१	तिर्यग्गति प्रा. २९	७२
उद्योतं बध्नन्सप्तमपृथ्वीनारकः	५	९	२२	५	१	१	तिर्यग्गति प्रा० ३०	७३

उक्ताभ्योऽन्याः प्रकृतीर्जीवः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन्न बध्नाति। तत्र मनुष्यस्तियङ् वा नामकर्मणो देवगतिवर्जगतित्रिकपञ्चेन्द्रियवर्जजातिचतुष्कौदारिकद्विकाऽऽहारकद्विकसंहननषट्काऽऽद्यवर्जसंस्थानपञ्चकदेवानुपूर्वीरहिताऽऽनुपूर्वीत्रिकाऽप्रशस्तखगत्यातपोद्योतजिननामस्थावरदशकरूपाणामेकोनचत्वारिंशत्संख्याकानां प्रकृतीनां तथा शेषकर्मणां च स्त्रीनपुंसकशोकाऽरत्यायुश्चतुष्काऽसातवेदनीयनीचैर्गोत्ररूपाणां दशसङ्ख्याकानां प्रकृतीनामबन्धकः। इत्थं भवतीहैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामबन्धकः।

प्रथममुपशमसम्यक्त्वमुत्पादयन् देवः सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको वा प्रथमसंहननवर्जाः पूर्वोक्ता अष्टाचत्वारिंशत्प्रकृतीर्न बध्नाति। अत्राऽयं विशेषः—मनुष्यस्तियङ् वा या औदारिद्विकदेवगतिवर्जगतित्रिकदेवानुपूर्वीवर्जाऽऽनुपूर्वीत्रिकरूपा अष्ट प्रकृतीर्न बध्नाति, तत्स्थाने देवः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको वा वैक्रियद्विकमनुष्यगतिवर्जगतित्रिकमनुष्यानुपूर्वीवर्जाऽऽनुपूर्वीत्रिकरूपाः प्रकृतीर्न बध्नाति । तथाहि—देवः सप्तमपृथ्वीवर्जनारको वा नामकर्मणो मनुष्यगतिवर्जगतित्रिकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्कवैक्रियद्विकाहारकद्विकाऽऽद्यवर्जसंहनन-संस्थानपञ्चकमनुष्यानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रिककुखगत्यातपोद्योतजिननामस्थावरदशकरूपा अष्टात्रिंशत्संख्याकास्तथा शेषकर्मणाञ्च स्त्रीनपुंसकवेदशोकाऽरत्यायुश्चतुष्काऽसातवेदनीयनीचैर्गोत्ररूपा दशसंख्याकाः प्रकृतीर्न बध्नाति । अतोऽष्टाचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्धको भवति ।

अथ सप्तमपृथ्वीनारकः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन्नितरनारकवदष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धं न करोति । अत्र विशेषस्त्वयम्—इतरनारका मनुष्यगतिवर्जगतित्रिकमनुष्यानुपूर्वीवर्जाऽऽनुपूर्वीत्रिकनीचैर्गोत्ररूपा याः प्रकृतीर्न बध्नाति, तत्स्थाने सप्तमपृथ्वीनारकस्तिर्यग्गतिवर्जगतित्रिकतिर्यगानुपूर्वीवर्जाऽऽनुपूर्वीत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाः प्रकृतीर्न बध्नाति । तथाहि—सम्यक्त्वाऽभिमुखः सप्तमपृथ्वीनारको नामकर्मणस्तिर्यग्गतिवर्जगतित्रिकपञ्चेन्द्रियवर्जजाति-चतुष्कवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकप्रथमवर्जसंहननसंस्थानपञ्चककुखगतितिर्यगानुपूर्वीवर्जानुपूर्वीत्रिकातपजिननामस्थावर—दशकरूपाः सप्तत्रिंशत्संख्याः शेषकर्मणाञ्च स्त्रीनपुंसकवेदशोकारत्यायुश्चतुष्काऽसातवेदनीयोच्चैर्गोत्रिरूपा दशसंख्याकाः प्रकृतीर्न बध्नाति । इत्थमयं नारकः सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्धको भवति । सप्तमपृथ्वीनारक उद्योतं विकल्पेन बध्नाति, तेनोद्योतमबध्नञ्जन्तुरुद्योतेन सहाऽष्टाचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्धको भवति ।

सक्षेपतोऽबन्धप्रकृतियन्त्रम्...

जीवः	अबध्यमानप्रकृतयः
मनुष्यस्तिर्यङ् वा	४९
देवः सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको वा	४८
उद्योतं बध्नन् सप्तमपृथ्वीनारकः	४७
इतरः सप्तमपृथ्वीनारकः	४८

१० **स्थितिबन्धः**—सम्यक्त्वाभिमुखो बध्यमानमूलप्रकृतीनां स्थितिमन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणामेव बध्नाति नाऽधिकाम्, तथाऽन्तर्मुहूर्तकाले व्यतीते स्थितिबन्धे च परिपूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं प्राक्तनस्थितिबन्धाऽपेक्षया पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं कुर्वन्नेवमुत्तरोत्तरं प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पूर्वाऽपेक्षया पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं करोति ।

११ **अनुभागबन्धः**—प्रथममुपशमसम्यक्त्वमुत्पादन्नात्मा बध्यमानानामशुभानां कर्मप्रकृतीनामनुभागं द्विस्थानकं बध्नाति, तमपि प्रतिसमयं पूर्वाऽपेक्षयाऽनन्तगुणहीनं तथा शुभानां प्रकृतीनां चतुःस्थानकमनुभागं बध्नाति, तमपि प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२ **प्रदेशबन्धः**—पूर्वं 'योगवशाच्च प्रदेशाग्रमुत्कृष्टं मध्यमं जघन्यं च बध्नाति' इत्युक्तं तत्र विशेषो लिख्यते, तथाहि—प्रथममुपशमसम्यक्त्वमुत्पादयन्नात्मा मनुष्यस्तिर्यङ् वाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वमोहनीयदेवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुभगत्रिकसुखगतिरूपाणां सप्तदशानां कर्मप्रकृतीनां प्रदेशबन्धमुत्कृष्टयोग्यमुत्कृष्टमनुत्कृष्टयोग्यमनुत्कृष्टमेव प्रदेशबन्धं करोति। शेषचतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टमेव प्रदेशबन्धं करोति, यतो ज्ञानावरणीयपञ्चकदर्शनावरणीयचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसातवेदनीयोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिरूपाणां सप्तदशसंख्याकानां प्रकृतीनां सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकवर्तिन एवोत्कृष्टयोग उत्कृष्टप्रदेशबन्धो भवति नान्यस्य। तथा चाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धमविरतिः सम्यग्दृष्टिरुत्कृष्टयोगे वर्तमानः करोति। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं देशविरतिरुत्कृष्टयोगे वर्तमानः करोति, तथा पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायालोभरूपाणां पञ्चसंख्यानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धमनिवृत्तिकरणगुणस्थानके यथाक्रमं मोहनीयस्य पञ्चप्रकृतीनां चतुष्प्रकृतीनां त्रिप्रकृतीनां द्वयोः प्रकृत्योरेकस्याः प्रकृतेर्बन्धक उत्कृष्टयोगे वर्तमानः करोति। निद्राद्विकहास्यरतिभयजुगुप्सारूपाणां षट्संख्यानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धमुत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽविरतसम्यग्दृष्टिप्रभृत्यपूर्वकरणगुणस्थानकपर्यन्तवर्ती करोति।

इत्थं षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टय एव कुर्वन्ति। यद्यपि शेषाणामष्टादशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धका मिथ्यादृष्टयो जीवास्तथापि सम्यक्त्वाऽभिमुखो मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वाऽष्टादशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं न करोति, यतस्तैजसकार्मणशरीरवर्णगन्धरसस्पर्शाऽगुरुलघूपघातनिर्माणबादरप्रत्येकरूपाणामेकादशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धमपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्या नामकर्मणस्त्रयोविंशतिप्रकृतीर्बध्नन्नेव करोति तथा पर्याप्तपराघातोच्छ्वासस्थिरशुभरूपाणां पञ्चसंख्यानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धमपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यनामकर्मणः पञ्चविंशतिं प्रकृतीर्बध्नन्नेव करोति, तथा पञ्चेन्द्रियजातेस्त्रसस्य चोत्कृष्टप्रदेशबन्धमपर्याप्तविकलतिर्यङ्मनुष्यपञ्चेन्द्रियप्रायोग्याः पञ्चविंशतिं प्रकृतीर्बध्नन्नेव करोति। सम्यक्त्वाऽभिमुखस्तु संज्ञीपञ्चेन्द्रियो मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ्मनुष्यो वा नामकर्मणो देवगतिप्रायोग्या एवाऽष्टाविंशतिसंख्याः प्रकृतीर्बध्नाति। अतो मनुष्यस्तिर्यङ् वा पूर्वोक्तानां षट्त्रिंशतः प्रकृतीनां तथाऽष्टादशप्रकृतीनामुत्कृष्टबन्धं न करोति। अतस्तस्य चतुष्पञ्चाशतः प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध एव भवति।

सम्यक्त्वाऽभिमुखो देवः सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको वोत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्ववज्रऋषभनाराचरूपाणां नवसंख्यानामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति तथानुत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति। यतो मिथ्यादृष्टेरप्यासां नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धसम्भवः, अतो मिथ्यादृष्टिर्देवः सप्तमपृथ्वीनारकवर्जो नारको नवप्रकृतीनामुत्कृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ष्टप्रदेशबन्धं वा करोति, शेषत्रिषष्टिप्रकृतीनामनुत्कृष्टमेव प्रदेशबन्धम् । तत्र मनुष्यतिर्यग्भिर्बध्यमानानां चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धनिषेधे यत्कारणमुक्तं, तदत्रापि ज्ञातव्यम् । अथ नवप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धे कारणं प्रोच्यते । तथाहि—औदारिकशरीरनामकर्मण उत्कृष्टप्रदेशबन्धमेकेन्द्रियप्रायोग्यास्त्रयस्तथा मनुष्यद्विकमौदारिकमौदारिकोङ्गोपाङ्गञ्चेति तिसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धमपर्याप्तमनुष्यप्रायोग्याः पञ्चविंशतिं प्रकृतीर्बध्नन्नेव करोति । तथा मनुष्यस्तिर्यङ् वा सुभगत्रिकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं देवगतिप्रायोग्या नामकर्मणोऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नन् करोति प्रस्तुते तु सम्यक्त्वाऽभिमुखो देवो नारको वा मनुष्यप्रायोग्यमेकोनत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकबन्धस्थानं बध्नातीति कृत्वा नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं न करोति । इत्थं त्रिषष्टिप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं देवः सप्तमपृथ्वीनारकवर्जनारको वा न करोतीति कृत्वाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धमेव करोति तथा पूर्वोक्तानामनन्तानुबन्ध्यादीनां नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं वा करोति ।

सप्तमपृथ्वीनारको द्विसप्तति प्रकृतीर्बध्नाति । तत्र पूर्वोक्तानां नवानां तथा नीचैर्गोत्रस्योत्कृष्टयोग उत्कृष्टप्रदेशबन्धमनुत्कृष्टयोगेऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । नवप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धे बीजं पूर्वोक्तमेव तथा नीचैर्गोत्रस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धमुत्कृष्टयोगी सम्यक्त्वाऽभिमुखः सप्तमपृथ्वीनारकोऽपि करोति । अतो दशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं वा करोति तथा शेषद्वाषष्टिप्रकृत्यन्तर्वर्तितिर्यग्द्विकस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं मिथ्यादृष्टिर्मनुष्यस्तिर्यङ नैकेन्द्रियप्रायोग्यास्त्रयोविंशतिं प्रकृतीर्बध्नन्नेव करोति । अतः सम्यक्त्वाऽभिमुखः सप्तमपृथ्वीनारको द्विषष्टिप्रकृतीनामनुत्कृष्टं प्रदेशबन्धं करोति तथा दशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टमनुत्कृष्टं वा प्रदेशबन्धं करोति । उद्योतं बध्नन् सप्तमपृथ्वीनारकस्तु त्रिसप्ततिं प्रकृतीर्बध्नाति । तत्रेतरसप्तमनारकवदुद्योतं बध्नन् सप्तमपृथ्वीनारकोऽपि वज्रर्षभनाराचसंहननवर्जनवप्रकृतीनामुत्कृष्टयोगे वर्तमान-उत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति, अनुत्कृष्टयोगेऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । उद्योतं बध्नतो जन्तोर्वज्रर्षभनाराचसंहननस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धो न भवति, यतो नामकर्मण एकोनत्रिंशत्प्रकृत्यात्मके बन्धस्थानके बध्यमाने वज्रर्षभनाराचस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धो भवति । उद्योतं बध्नञ्जीवो नामकर्मणस्त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानकं बध्नातीति कृत्वा नामकर्मणो बध्यमानप्रकृतीनामाधिक्याद्वज्रर्षभनाराचसंहननस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं न करोति । शेषाणां चतुष्षष्टिप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । तत्र वज्रर्षभनाराचस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धनिषेधे कारणमुक्तम्, द्वाषष्टिप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धे कारणमुद्योतमबध्नत्सप्तमपृथ्वीनारकवज्ज्ञेयम् । तथोद्योतस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धमेकेन्द्रियप्रायोग्या उद्योतेन सह षड्विंशतिसंख्याः प्रकृतीर्बध्नन् मनुष्यस्तिर्यङ् वा करोति । तत उद्योतस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं सप्तमपृथ्वीनारको न करोति ।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

उत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यानां तथोत्कृष्टप्रदेशबन्धाऽयोग्यानां प्रकृतीनां यन्त्रम्—

स्वामी	उत्कृष्टप्रदेशबन्ध-योग्याः प्रकृतयः	उत्कृष्टप्रदेशबन्धा-ऽयोग्याः प्रकृतयः	बध्यमान-प्रकृतयः
सम्यक्त्वाऽभिमुखो मनुष्यस्तिर्यङ् वा	१७	५४	७१
" देवः सप्तमपृथ्वी-नारकवर्जो नारकः	९	६३	७२
" सप्तमपृथ्वीनारकः	१०	६२	७२
" उद्योतं बध्नन् सप्तमपृथ्वीनारकः	९	६४	७३

ग्रन्थकृता प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयतो मिथ्यादृष्टेः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्ध उक्तः। उपलक्षणत्वादस्माभिरुदयसत्ते अप्यधीयेते।

१३ **नरकगतौ**— प्रथमसम्यक्त्वाऽभिमुखमिथ्यादृष्टेरुदये वर्तमानाः प्रकृतयो ज्ञानावरणस्य पञ्च दर्शनावरणस्य चतस्रोऽथवा निद्राद्विकादन्यतरस्या निद्रया सह पञ्चाऽन्यतरद् वेदनीयं नीचर्गोत्रं नरकायुर्मोहनीयस्याऽनन्तानुबन्ध्यादिकषायचतुष्कनपुंसकवेदाऽन्यतरयुगलमिथ्यात्वप्रकृत्यात्मकमष्टकं स्थानम्, भयेन जुगुप्सया वा सह नवकं स्थानमुभाभ्यां सह नवकं स्थानमुभाभ्यां सह दशकं स्थानम्। नन्वेकस्मिन्समय एककषायस्योदयसंभवादत्राऽनन्तानुबन्ध्यादि चतुष्कोदयः कथमुच्यत इति चेत्, उच्यते, एकस्मिन्समये क्रोधादिचतुष्टयेऽन्यतमस्योदयो भवति। तत्र क्रोधादीनामन्यतरस्यैकैकस्याऽनन्तानुबन्धिप्रभृतयश्चत्वारो भेदाः सन्ति। अथ प्रथमगुणस्थानके यद्यप्यनन्तानुबन्धिकषायोदयोऽस्ति, तथाऽपि तदुदयेऽप्रत्याख्यानावरणीयप्रत्याख्यानावरणीयसंज्वलनकषायोदयस्याऽन्तर्भावाच्चतुर्णामनन्तानुबन्ध्यादीनां कषायाणामुदयः प्रथमगुणस्थानके घटते। इदन्त्ववधेयम्—क्रोधादिचतुष्टयेऽन्यतमकषायस्योदयो भवति, यतः क्रोधमानमायालोभा युगपन्नोदयमायान्ति, किन्तु क्रमेण। तथाहि—यदा क्रोध उदेति न तदा मानो नाऽपि माया न चाऽपि लोभः। यदा मान उदयमधिगच्छति न तदा क्रोधो नाऽपि मायेत्यादि। केवलमेकस्मिन्ननन्तानुबन्धिक्रोध उदयमाने शेषा अपि अप्रत्याख्यानावरणादित्रयक्रोधा उदयमायान्ति, एवं मानादौ शेषा मानादयोऽप्युदयमागच्छन्ति। तेनाऽग्र उदयभङ्गगणनाप्रसंगे यत्र कषायभङ्गा गणयिष्यन्ते, तत्र चतुर्णामेव गुणनं करिष्यते।

तथा नरकगतौ नामकर्मण एकोनत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकमेकमुदयस्थानकमस्ति। तत्र प्रकृतयोऽध्रुवोदया नरकगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकहुण्डकसंस्थानकुखगत्युपघातपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कदुर्भगचतुष्करूपाः सप्तदश ध्रुवोदयाश्च वर्णचतुष्कतैजसकार्मणशरीराऽगुरुलघुनिर्माणस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभरूपा द्वादश। इत्थं जघन्यतो नरकगतौ कस्यचिज्जीवस्य मिथ्या-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

दृष्टेरुदये वर्तमानाः प्रकृतयो ज्ञानावरणस्य पञ्च, दर्शनावरणस्य चतस्रः, अन्तरायस्य पञ्च, मोहनीयस्याऽष्टकं नरकायुरेका वेदनीयस्यैका नीचैर्गोत्रं नामकर्मण एकोनत्रिंशदिति चतुष्पञ्चाशत्। उत्कृष्टतो भयजुगुप्साऽन्यतरनिद्राभिस्सहिताः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतयः। इत्थं प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयतो नारकस्य चत्वायुदयस्थानकानि। तत्र प्रथममुदयस्थानकं चतुष्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्, द्वितीयमुदयस्थानकं पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्, तृतीयोदयस्थानकं षट्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्, चतुर्थोदयस्थानकं सप्तपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्। तत्र प्रत्येकोदयस्थानकं भिन्नभिन्नप्रकृतीराश्रित्याऽनेकविधं भवति। कश्चित्क्रोधोदयविशिष्टो जीवः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयति, कश्चिद् मानोदयविशिष्टः, कश्चिद् मायोदयविशिष्टः, कश्चन लोभोदयविशिष्टः। एवंविधाश्चत्वारो जीवा असातोदयविशिष्टाश्चत्वारः सातोदयविशिष्टा वा भवन्ति। इत्थमनेकविधं प्रत्येकमुदयस्थानकं भवति।

प्रकृतिभेदेनैकस्योदयस्थानकस्य यावन्तः प्रकारा भवन्ति, तावन्तस्तस्योदयस्थानकस्य भङ्गाः प्रत्येकोदयस्थानकस्य निम्नलिखिता भङ्गा ज्ञेयाः।

चतुष्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकोदयस्थानके चतुर्णां क्रोधादीनामन्यतमकषायोदयः, हास्यरतिरूपयुगलशोकाऽरतिरूपयुगलयोरन्यतरस्य युगलस्योदयस्तथाऽन्यतरस्य वेदनीयस्योदयः। शेषाः प्रकृतय उदये न व्यत्यस्यन्ते, यतो नारकाणां नपुंसकवेदस्योदयो भवति तथा नामकर्मणो दुर्भगदुःस्वराऽनादेयाऽयशःकीर्त्यशुभखगतिरूपाणामशुभानां प्रकृतीनामेवोदयो भवति।

अथ भङ्गाः परिगण्यन्ते-चत्वारः कषाया युगलद्विकेन गुण्यन्ते, यतो द्वे युगले पर्यायेण प्राप्येते इति गुणिता अष्टौ भङ्गाः, ते च वेदनीयद्विकेन गुणिताः षोडशभङ्गाः, इति चतुष्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकोदयस्थानकस्य भङ्गा उक्ताः।

स्थापना—कषायाः४×युगले२-×वेदनीये२=संकलितभङ्गाः १६।

अथ कस्यचिज्जीवस्य भयेन जुगुप्सयाऽन्यतरनिद्रया वा युक्त पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं भवति। तद्भङ्गास्त्वित्थं भावनीयाः। यदा भयेन युक्तमुदयस्थानकम्, तदा पूर्वं एव षोडश भङ्गा भवन्ति, भयस्य एकप्रकृत्यात्मकत्वेन व्यत्यासाभावात्प्रतिपक्षत्वाभावच्च। यदा जुगुप्सया युक्तमुदयस्थानकम्, तदाऽपि पूर्व एव षोडश भङ्गा भवन्ति। यदा अन्यतरनिद्रया युक्तमिदमुदयस्थानकम्, तदा द्विकेन ते गुणिता द्वात्रिंशत्। इत्थं पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतिस्थानकस्य त्रयो विकल्पाश्चतुष्षष्टिः भङ्गाः।

नन्वेकान्तविशुद्ध्या चतुःस्थानकरसबन्धकत्वेन साकारोपयोगस्यैवप्रतिपादितत्वेन निद्रोदयस्यासंभव एवेति कथं तद्भङ्गाः प्ररूप्यन्ते, अथ च स्त्यानर्द्धित्रिकसत्कभङ्गाश्च कथं न गण्यन्ते? इति चेत्, उच्यते कर्मप्रकृतौ क्षपकश्रेणौ निद्राद्विकस्योदयानभ्युपगमेऽप्युपशमश्रेणा उप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तमोहं यावत्तदुदयस्याभ्युपगमात् प्रस्तुतेऽपि तत्सम्यक्त्वोत्पत्तौ चतुःस्थानकरसबन्धस्य संभवः, तन्मन्दोदयात् । साकारोपयोगेऽपि मन्दनिद्रोदयो न विरुध्यते, स्त्यानर्द्धित्रिकस्य तु तीव्ररसोदयसंभवात् तद्वर्जनम् ।

आवश्यकहारिभद्रीयवृत्यादिष्वनाकारोपयोगेऽपि सम्यक्त्वप्रतिपत्तेरभ्युपगमात् तत्र निद्रोदयस्याविरुद्धत्वं सूपपद्यते तन्मतेनेत्यवधेयम् ।

स्थापना

उदयस्थानकम् प्रकृतयः ५५
(द्वितीयम्)

	कषायाः		युगले		वेदनीये		निद्रे		भङ्गाः
(१) ५४+भयः	४	×	२	×	२		-	=	१६
(२) ५४+जुगुप्सा	४	×	२	×	२		-	=	१६
(३) ५४+अन्यतरनिद्रा	४	×	२	×	२	×	२	=	३२
									६४

अथ कस्यचिज्जीवस्य भयजुगुप्सानिद्राणामन्यतमाभ्यां युक्तं षट्पचाशत्प्रकृत्यात्मकं तृतीयमुदयस्थानकं भवति, तद्भङ्गास्त्वित्थं भावनीयाः । यदा भयजुगुप्साभ्यां युक्तमिदमुदयस्थानकम्, तदा पूर्ववत् षोडश भङ्गाः । यदा निद्राभयाभ्यां युक्तम्, तदा षोडश भङ्गा निद्राद्विकेन गुणिता द्वात्रिंशद् भङ्गाः । यदा निद्राजुगुप्साभ्यां युक्तमिदमुदयस्थानकं तदा भङ्गाः पूर्ववद् द्वात्रिंशत् । इत्थं षट्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकस्य तृतीयोदयस्थानकस्य त्रयो विकल्पा अशीतिश्च भङ्गाः

स्थापना

तृतीयमुदयस्थानकम्

विकल्पाः	प्रकृतयः ५६	कषायाः		युगले		वेदनीये,		निद्रे		सङ्कलिता भङ्गाः
प्रथमः	५४+भय+जुगुप्सा	४	×	२	×	२			=	१६
द्वितीयः	५४+१ निद्रा+भयः	४	×	२	×	२	×	२	=	३२
तृतीयः	५४+१ निद्रा+जुगुप्सा	४	×	२	×	२	×	२	=	३२
										८०

कस्यचिज्जीवस्य भयजुगुप्सानिद्राभिर्युक्तं सप्तपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं चतुर्थोदयस्थानकं भवति । भङ्गास्तु पूर्वोदयस्थानकस्य तृतीयविकल्पप्रमाणा द्वात्रिंशत्तथैव ।

स्थापना

चतुर्थमुदयस्थानकम् प्रकृतयः ५७ कषायाः, युगले, वेदनीये, निद्रे=सङ्कलिता भङ्गाः

५४+ भय+ जुगुप्सा+ निद्रा ४ × २ × २ × २=३२

अथ भङ्गगणनाया विधिरभिधीयते—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ व्यत्यस्यमानाः प्रकृतीराश्रित्य भङ्गा गण्यन्ते । अत्र कषाययुगलवेदनीयनिद्रारूपाणां प्रकृतीनां व्यत्यासो भवति, नाऽन्यासाम् । अतस्ता एवाऽऽश्रित्याऽत्र भङ्गा आनेयाः । यदुदयस्थानके यासु व्यत्यस्यमानप्रतिपक्षाऽनेकप्रकृतिषु यस्या अन्यतमायाः प्रकृतेरुदयो भवति, तदुदयस्थानके तत्प्रकृतिस्थाने तासां व्यत्यस्यमानानेकप्रकृतीनां सङ्ख्या स्थाप्या, इति नियमः । प्रतिपक्षत्वं चाऽत्र युगपदुदयाऽभाववत्त्वं द्रष्टव्यम्, तद्यथा प्रथमगुणस्थानके कषायचतुष्केऽन्यतमस्य कषायस्योदयो भवति, ततः कषायस्थाने व्यत्यस्यमानानेकप्रकृतिलक्षणक्रोधादिकषायचतुष्कस्य चतुःसंख्या स्थाप्या । एवं द्वयोर्युगलयोरन्यतरस्य युगलस्योदयस्ततो युगलस्थाने द्विकं स्थाप्यम् । द्वयोर्वेदनीययोरन्यतरस्य वेदनीयस्योदयस्ततस्तत्स्थाने द्विसंख्या स्थाप्या । तदनन्तरं परस्परं गुणनं कर्तव्यम् । एवं प्रकारेण भङ्गाः प्राप्यन्ते ।

ननु द्वितीयोदयस्थानके भयजुगुप्सयोः परस्परं व्यत्यासात्पूर्वोक्तनियमेन ४ × २ × २ षोडशसंख्या भयजुगुप्सात्मकसंख्याभ्यां द्वाभ्यां गुणितव्येति चेत्, उच्यते, द्वितीयोदयस्थानके भयजुगुप्सयोः परस्परं व्यत्यासेऽपि प्रतिपक्षत्वाऽभावात् षोडशसंख्या द्वाभ्यां न गुण्यते । अत्र पृथक् पृथक् द्वौ विकल्पौ कृतौ, एको जुगुप्साप्रक्षेपेण द्वितीयश्च भयप्रक्षेपेण । तृतीयस्तु विकल्पोऽन्यतरनिद्राप्रक्षेपेण क्रियते ।

सम्यक्त्वाऽभिमुखनारकस्योदयभङ्गाः ।

उदयस्थानके प्रकृतयः	५४	५५	५६	५७	
भङ्गाः	१६	६४	८०	३२	= सङ्कलितभङ्गाः १९२

सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य सुरस्योदये वर्तमानाः प्रकृतयः—

ज्ञानावरणस्य पञ्च दर्शनावरणस्य चतस्रोऽथवा निद्राद्विकादन्यतरया निद्रया सह पञ्च अन्तरायस्य पञ्च वेदनीयद्विकस्याऽन्यतरं वेदनीयमुच्चैर्गोत्रं देवायुर्मोहनीयस्य च कषायचतुष्कं स्त्रीपुरुषयोरन्यतरो वेदो युगलद्विकस्याऽन्यतरद्युगलं मिथ्यात्वमित्यष्टकं भयेन सह जुगुप्सया सह वा नवकम्, उभाभ्यां सह दशकमिति जघन्यतो नामकर्मवर्जशेषकर्मणां पञ्चविंशतिरुत्कृष्टस्त्वष्टाविंशतिः प्रकृतयस्तथा सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तत्वान्नामकर्मण एकोनत्रिंशत्प्रकृतयः । ताश्चेमाः—ध्रुवोदया द्वादश तथा देवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगत्युपघातपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुस्वराः सुभगो दुर्भगो वाऽऽदेयोऽनादेयो वा यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरा चेति नामकर्मण एकोनत्रिंशत् ।

सम्यक्त्वाभिमुखदेवस्य जघन्यपदे चतुष्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं चरममुदयस्थानकम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरगतौ प्रत्येककर्मण उदये वर्तमानानामुत्तरप्रकृतीनां यन्त्रम् —

	ज्ञाना०	दर्शना०	अन्तरायम्	वेदनीयम्	गोत्रम्	आयुः	मोह०	नाम	संकलिताः प्रकृतयः
जघन्यतः	५	४	५	१	१	१	८	२६	५४
उत्कृष्टतः	५	५	५	१	१	१	१०	२९	५७

देवगतौ प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयतः सुरस्य चत्वार्युदयस्थानकानि । तत्राऽऽद्यं चतुष्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्, द्वितीयं पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्, तृतीयं षट्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम्, चतुर्थं सप्तपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम् यद्यपि देवस्योदयस्थानकानि नरकगतिवत्सन्ति, तथाऽप्यत्र यो विशेषः, सोऽत्राभिधीयते । नरकगतौ नपुंसकवेदस्यैवोदयः, सुरगतौ तु स्त्रीपुरुषयोरन्यतरस्य वेदस्योदयः, तथा नारकस्य दुर्भगत्रिकस्यैवोदयः, 卐 देवगतौ तु सुभगदुर्भगयोरन्यतरस्योदयः आदेयानादेययोरन्यतरस्योदयः, यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरस्योदयः, इति नारकाऽपेक्षया सुरस्य (२×२×२×२=१६) षोडशगुणा भङ्गा भवन्ति । तथाहि नारकस्य द्विनवतिशतं (१९२) भङ्गा भवन्ति, देवस्य तु त एव षोडशभिर्गुणिता द्विसप्तत्यधिकानि त्रीणि सहस्राणि भङ्गा भवन्ति।

विशेषपरिज्ञानार्थं सुरगतौ प्रत्येकोदयस्थानकस्य पृथक् पृथग् भङ्गाः प्रदर्श्यन्ते ।

	कषायाः	युगले	वेदौ	वेदनीये-सुभगादिभिस्सह दुर्भगादयः			निद्रे	
प्रथममुदयस्थानकम्-प्रकृतयः ५४	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२	=२५६
द्वितीयमुदयस्थानकम्-प्रकृतयः ५५								
५४ + निद्रा, प्रथमः	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ × २	=५१२
५४ + भयः, द्वितीयः	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२	=२५६
५४ + जुगुप्सा, तृतीयः	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२	=२५६
								१०२४
तृतीयमुदयस्थानकम्-प्रकृतय ५६								
५४+निद्रा+भयः, प्रथमः	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ × २	=५१२
५४+जुगुप्सा+निद्रा, द्वि.	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ × २	=५१२
५४+भय जुगुप्सा तृतीयः	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२	=२५६
								१२८०
चतुर्थमुदयस्थानकम्-प्रकृतयः ५७								
५४+भय+जुगुप्सा + निद्रा	४ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ × २	=५१२
							कुलभङ्गाः	३०७२

卐 दिगम्बरैर्देवगतौ दुर्भगाऽनादेयाऽयशःकीर्तीनामुदयो नाऽभ्युपगम्यते, तेन तेषां मताऽनुसारेण नारकाऽपेक्षया सुरस्य द्विगुणाश्चतुरशीतित्रिशतं भङ्गा भवन्ति—

१९२×२=३८४ तथा चोक्तं **लब्धिसारे देवगतावपि नरकगतिवत्,** अयं तु विशेषः-तत्र नामकर्मप्रकृतयः प्रशस्ता एवोच्चैर्गोत्रमेव मोहनीयप्रकृतिषु नपुंसकवेदमपनीयस्त्रीपुरुषवेदमेलनाद् द्विगुणभङ्गाः ।

सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य तिरश्च उदये वर्तमानाः प्रकृतयः—ज्ञानावरणस्य पञ्च दर्शनावरणस्य चतस्रोऽथवा निद्राद्विकस्याऽन्यतरया सह पञ्चाऽन्तरायस्य पञ्च वेदनीयद्विकस्याऽन्यतरद्वेदनीयं नीचैर्गोत्रं तिर्यगायुर्मोहनीयस्य कषायचतुष्को वेदत्रिकस्याऽन्यतरो वेदो युगलद्विकस्याऽन्यतरद्युगलं मिथ्यात्वमित्यष्टकम्, भयजुगुप्सयोरन्यतरया सह नवकम्, उभाभ्यां सह दशकमिति नामकर्मवर्जशेषाणां जघन्यतः पञ्चविंशतिरुत्कृष्टतस्त्वष्टाविंशतिः प्रकृतयस्तथा सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तस्तिरश्चो नामकर्मणस्त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकमथवोद्योतेन सहैकत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकम्। तत्र प्रकृतयो ध्रुवोदया द्वादश तिर्यग्गतिः पञ्चेन्द्रियजातिरौदारिकद्विकं संहननषट्केऽन्यतमं संस्थानषट्केऽन्यतमं खगतिद्विकेऽन्यतरा खगतिरुपघातपराघातोच्छ्वासौ त्रसचतुष्कं सुस्वरदुःस्वरयोरन्यतरः सुभगदुर्भगयोरन्यतर आदेयाऽनादेययोरन्यतरो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरेति त्रिंशत्, उद्योतेन सह त्वेकत्रिंशत्, अतो जघन्यपदे पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकम्। उत्कृष्टपद एकोनषष्टिप्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकमिति पञ्चोदयस्थानकानि।

स्थापनया तिर्यग्गतौ भङ्गा अधो दर्श्यन्ते—प्रथममुदयस्थानकम्, प्रकृतयः ५५

कषायाः,	युगले,	वेदाः,	वेदनीये,	खगती,	स्वरौ,	सुभगदुर्भगौ,	आदेयानादेयौ,	यशोयशसी,	संघय०,	संस्था०
४ ×	२ ×	३ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	२ ×	६ ×	६

=५५२९६ भङ्गाः

द्वितीयमुदयस्थानकं प्रकृतयः ५६

विकल्पः	प्रकृतयः।		निद्रे		
प्रथमः	५५ + निद्रा	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६	× २	=	११०५९२
द्वितीयः	५५ + भयः	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६		=	५५२९६
तृतीयः	५५ + जुगुप्सा	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६		=	५५२९६
चतुर्थः	५५ + उद्योतः	४ × · × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६		=	५५२९६
					२७६४८०

तृतीयमुदयस्थानकम् प्रकृतयः ५७

विकल्पः	प्रकृतयः			निद्रे		
प्रथमः	५५+निद्रा	+भयः	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६	× २	=	११०५९२
द्वितीयः	५+निद्रा	+जुगुप्सा-	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६	× २	=	११०५९२
तृतीयः	५५+निद्रा	+उद्योतः	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६	× २	=	११०५९२
चतुर्थः	५५+जुगुप्सा	+भयः	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६		=	५५२९६
पञ्चमः	५५+भय	+उद्योतः	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६		=	५५२९६
षष्ठः	५५+जुगुप्सा	+उद्योतः	४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६		=	५५२९६
						४९७६६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थमुदयस्थानकम् – ५८ प्रकृतयः

विकल्पः, प्रकृतयः	निद्रे	
प्रथमः ५५+भयः +जुगुप्सा+निद्रा	४×२×३×२×२×२×२×२× २ × २× ६ ×६ × २	=११०५९२
द्वितीयः ५५+उद्योतः +निद्रा+भयः	४×२×३ ×२ ×२×२×२×२×२× २ × ६ × ६ ×२	=११०५९२
तृतीयः ५५+जुगुप्सा+उद्योतः+निद्रा	४×२×३×२×२×२×२×२×२×२×६ × ६ × २	११०५९२
चतुर्थः ५५+भयः+जुगुप्साः+उद्योतः	४×२×३×२×२×२×२×२×२×२×६×६	= ५५२९६
		३८७·७२

पञ्चममुदयस्थानकम् प्रकृतयः ५९

विकल्पः

प्रथमः ५५ + भयः + जुगुप्सा + निद्रा + उद्योतः   निद्रे

४×२×३×२×२×२ × २×२×२ × २×६×६×६×२ =११०५९२

तिर्यग्गतौ वर्तमानस्य सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य पञ्चानामुदयस्थानकानां संकलिता भङ्गाश्चतुरधिकशतसप्तविंशतिसहस्रत्रयोदशशतसहस्रप्रमाणाः ।

॥ स्थापना ॥

उदयस्थानकम्–	प्रथमम्	द्वितीयम्	तृतीयम्	चतुर्थम्	पञ्चमम्	संकलिताभङ्गाः
भङ्गाः–	५५२९६,	२७६४८०,	४९७६६४,	३८७०७२,	११०५९२,	=१३,२७१०४

सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य मनुष्यस्योदये वर्तमानाः प्रकृतयः–

ज्ञानावरणस्य पञ्च, दर्शनावरणस्य चतस्रोऽथवा निद्राद्विकेऽन्यतरया निद्रया सह पञ्च, अन्तरायस्य पञ्च, वेदनीयद्विकस्याऽन्यतरद्वेदनीयम्, गोत्रद्विकस्यान्यतरद्गोत्रम्, मनुष्यायुः, मोहनीयस्य प्राग्वदष्टकं नवकं दशकं वेति नामकर्मवर्जशेषकर्मणां जघन्यतः पञ्चविंशतिरुत्कृष्टतोऽष्टाविंशतिप्रकृतयस्तथा नामकर्मणः प्रकृतयस्त्रिंशत्तिर्यग्वत् किन्तु तिर्यग्गतिस्थाने मनुष्यगतिर्वक्तव्या । अत्रोद्योतेन सहैकत्रिंशत्प्रकृत्यात्मकमुदयस्थानकं नाऽस्ति, स्वभावस्थमनुष्याणामुद्योतोदयाभावात् । सुभगदुर्भगादीनामन्यतरस्योदयस्तिर्यग्वज्ज्ञेयः । अत्र चत्वार्युदयस्थानानि । तत्र प्रथममुदयस्थानकं पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकं चरममुदयस्थानकमष्टपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकम् । भङ्गास्तु निम्नलिखिताः ।

मनुष्यगतौ प्रत्येककर्मण उदये वर्तमानानां प्रकृतीनां यन्त्रम् ।

	ज्ञाना०	दर्श०	अन्त०	वेदनी०	गोत्र०	आयुः०	मोह०	नाम०	संकलिताः प्रकृतयः
जघन्यतः–	५	४	५	१	१	१	८	३०	५५
उत्कृष्टतः–	५	५	५	१	१	१	१०	३०	५८

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

प्रथममुदयस्थानकं प्रकृतयः ५५

कषायाः, युगले, वेदः, वेदनीये, गोत्रे, खगतो, सु. दु., आ. अना, य. अय, संघ., सं.,
४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ = ११०५९२

द्वितीयमुदयस्थानकम्

प्रकृतयः ५६

विकल्पः निद्र

प्रथमः ५५ + निद्रा ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ × २ = २२११८४
द्वितीयः ५५ + भयः ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ = ११०५९२
तृतीयः ५५ + जुगुप्सा ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ = ११०५९२

तृतीयमुदयस्थानकम्

प्रकृतयः ५७

विकल्पः

प्रथमः ५५ + निद्रा + भयः ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ × २ = २२११८४
द्वितीयः ५५ + निद्रा + जुगुप्सा ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ × २ = २२११८४
तृतीय : ५५ + भय. + जुगुप्सा ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ = ११०५९२

चतुर्थमुदयस्थानकम्

प्रकृतय. ५८

५५ + निद्रा + भयः + जुगुप्सा ४ × २ × ३ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × ६ × ६ × २ = २२११८४

सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य मनुष्यस्य सङ्कलितभङ्गाश्चतुरधिकशतसप्तविंशतिसहस्रत्रयोदशशत-सहस्रप्रमाणाः ।

"यन्त्रम्"

उदयस्थानकम्–प्रथमम् - द्वितीयम् - तृतीयम् - चतुर्थम् = सङ्कलिताः भङ्गाः

भङ्गाः-११०५९२-४४२३६८–५५२९६०-२२११८४=१३२७१०४

सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य तिरश्चः सर्वेषामुदयस्थानकानां यावन्त उदयभङ्गास्तावन्त एव सम्यक्त्वमुत्पादयतो मनुष्यस्योदयभङ्गाः। कथमिति चेद् , उच्यते– मनुष्यगतौ सम्यक्त्वमुत्पादयत उद्योतोदयो न भवत्यतस्तद्भङ्गा मनुष्यगतौ न भवन्ति । तथाऽपि तिर्यग्गतौ नीचैर्गोत्रस्यैवोदयः, मनुष्यगतौ तु गोत्रद्विकस्याऽन्यतरस्योदयो भवतीति सङ्कलितभङ्गसङ्ख्याया न वैषम्यम् ।

चतुर्षु गतिषु वर्तमानानां सम्यक्त्वाऽभिमुखानां जीवानां सर्वोदयस्थानकानामुदय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भङ्गांश्च दर्शयद्यन्त्रम्—

उदयस्थानके वर्तमानाः प्रकृतयः	५४	५५	५६	५७	५८	५९	सङ्कलित-भङ्गाः
नारकस्योदयभङ्गाः	१६	६४	८०	३२	×	×	१९२
देवस्योदयभङ्गाः	२५६	१०२४	१२८०	५१२	×	×	३०७२
तिरश्चोदयभङ्गाः	×	५५२९६	२७६४८०	४९७६६४	३८७०७२	११०५९२	१३२७१०४
मनुष्यस्योदयभङ्गाः	×	११०५९२	४४२३६८	५५२९६०	२२११८४	×	१३२७१०४
							२६५७४७२

एवं द्विसप्तत्यधिकचतुःशतसप्तपञ्चाशत्सहस्रषड्विंशतिशतसहस्रप्रमाणा भङ्गा भवन्ति। कषायप्राभृतस्य चूर्णिकारैः सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य जीवस्य निद्राप्रचलयोरुदयो नाऽभ्युपगम्यते। दर्शनावरणचतुष्कस्यैवोदयस्तैरभ्युपगम्यते। तथा च तद्ग्रन्थः "**पंचदंसणावरणीय चदुजादिणामाणि चदुआणुपुव्विणामाणि आदावथावरसुहुमअपज्जत्तसाहारणसरीरणामाणि एदाणि उदएण वोच्छिण्णाणि।**" तेन तदभिप्रायेण निद्राभङ्गानपनीय शेषा भङ्गा ज्ञेयाः। ते च सङ्कलितभङ्गास्तृतीयांशप्रमाणा भवन्ति। तथाहि—ये सङ्कलितभङ्गास्तेषां त्रयोंऽशाः कर्तव्याः, प्रथमांशो निद्राद्विकोदयवर्जितस्योदयस्थानकस्य, द्वितीयांशः निद्रोदयसहितस्योदयस्थानकस्य, तृतीयांशः प्रचलोदयसहितस्योदयस्थानकस्य। इत्थं द्वावंशौ निद्राद्विकोदयसहितस्योदयस्थानकस्य। अतस्तेषां मतेन एकोंऽशः संभवतीति हेतोः सङ्कलितभङ्गास्त्रिभिः संख्याभिर्भज्यन्ते, भागफलं च तेषां मताऽनुसारेण भङ्गा भवन्तीति चतुर्विंशत्यधिकाऽष्टशतपञ्चाशीतिसहस्राऽष्टशतसहस्रप्रमाणा भङ्गाः प्राप्यन्ते ॥८८५८२४॥

चातुर्गतिकसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य प्रकृत्युदयोऽभिहितोऽथ स्थित्यनुभागप्रदेशोदयोऽभिधीयते।

स्थित्युदयः—उदयप्राप्तस्यैकस्थितिस्थानकस्योदयो भवति तथोदीरणाकरणेनोदयावलिकावर्जसत्तास्थसर्वस्थितिस्थानकानां दलिकान्युदयन्ति।

अनुभागोदयः—卐उदयवत्प्रकृतीनामप्रशस्तानां प्रशस्तानां चाजघन्याऽनुत्कृष्टरसस्याऽभिधीयते।

卐 टिप्पणी-जयधवलायामुदयवत्प्रकृतीनामप्रशस्तानां द्विस्थानकस्य प्रशस्तानां च चतुःस्थानकस्यानुभागोऽभिहितः। तथा च तद्ग्रन्थः 'जाओ अपसत्थपयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासि विट्ठाणिओ अणुभागो संतादो अणंतगुणहीणो उदएण अज्झीणाओ।। जाओ पसत्थ पयडीओ उदएण अज्झीणाओ तेसि पयडीण चउट्ठाणीओ अणुभागो बंधादो अणंतगुणहीणसरुवो उदयादो अज्झीणो'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७ प्रकृतिसत्ता— चातुर्गतिकाः सम्यक्त्वमुत्पादयन्तो मिथ्यादृष्टयो जीवा द्विविधाः (१) अनादिमिथ्यादृष्टयः (२) सादिमिथ्यादृष्टयश्च

अत्रोपशमसम्यक्त्वोत्पादनायाऽधिकारः । अनादिमिथ्यादृष्टिना कदाऽपि सम्यक्त्वं न प्राप्तम् । ततस्तस्य जन्तोः सम्यक्त्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्य च सत्ता न भवति, यतोऽनयोः प्रकृत्योः सत्ता सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वगुणस्थानकचरमसमयेऽथवा मताऽन्तरेण सम्यक्त्वप्राप्तिसमये सम्यग्दृष्टेस्त्रिपुञ्जकरणेन भवति । सम्यक्त्वतः पतितस्तु मिथ्यात्वगुणस्थानकवर्ती सादिमिथ्यादृष्टिस्तावदुपशमसम्यक्त्वं नोत्पादयति, यावद् द्वे प्रकृती उद्वलनासङ्क्रमेण निस्सत्ताके न भवतः । किन्तु स क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं प्राप्तुं समर्थो भवति । प्रथमगुणस्थानक उद्वलनासङ्क्रमेण ते द्वे प्रकृती सत्कर्मतः विच्छिद्यैव करणत्रयेण प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वमश्नुते ।

न चानयोः प्रकृत्योरुद्वलनामृते पुनरुपशमसम्यक्त्वं कथं न प्राप्यत इति वाच्यम् , यतः सास्वादनगुणस्थानकस्याऽन्तरं जघन्यतः पल्योपमाऽसंख्येयभागोऽस्ति । सास्वादनगुणगुणस्थानकं चौपशमिकसम्यक्त्वतः परिपतता जन्तुना प्राप्यते, नाऽन्यथा । उपशमसम्यक्त्वतश्च पतित्वा पल्योपमाऽसंख्येयभागे काले व्यतिक्रान्त एव पुनरुपशमसम्यक्त्वमुत्पादयति, यतो मिथ्यात्वमासाद्य मिश्रसम्यक्त्वपुञ्जा उद्वलनासङ्क्रमेणाऽविनाश्य पुनरुपशमसम्यक्त्वं प्राप्तुं न शक्नोति । तथा मिश्रसम्यक्त्वपुञ्जयोर्विनाशश्चोद्वलनासंक्रमणेन पल्योपमाऽसंख्येयभागरूपेण कालेन भवति । अतः पञ्चसङ्ग्रहस्य द्वितीये द्वार एकषष्टितमगाथायाष्टीकायां सास्वादनगुणस्थानकस्याऽन्तरं प्रदर्शयद्भिः श्रीमद्भिर्मलयगिरिसूरीश्वरैरुक्तम्...

इह सास्वादनमनुभूय भूयोऽपि सास्वादनभावं भजते, तर्हि नियमाज्जघन्यतोऽपि पल्योपमाऽसंख्येयभागेऽतिक्रान्ते नाऽर्वाक् । कथमेतदवसीयत इति चेद् , उच्यते—इह सास्वादनभावमासादयति नियमादौपशमिके सम्यक्त्वे वर्तमानो नाऽन्यथा, सास्वादनभावाऽनुभवतश्च मिथ्यात्वं गतोऽवश्यं भूयः सम्यक्त्वमासादयति षड्विंशतिसत्कर्मा सन् करणत्रयपूर्वकमौपशमिकं नाऽन्यः, षड्विंशतिसत्कर्मा च भवति मिश्रसम्यक्त्वपुञ्जयोरुद्वलितयोः, तदुद्वलना च पल्योपमाऽसंख्येयभागरूपेण कालेन नाऽन्यथा । ततो भूयः सास्वादनभावप्रतिपत्तेरन्तरं जघन्यतोऽपि पल्योपमाऽसंख्येयभागः ।

किञ्च शतकनामकर्मग्रन्थस्य चतुरशीतितमाया गाथायाष्टीकायां श्रीमद्भिर्देवेन्द्रसूरीश्वरैरप्युक्तम्...तत्र सास्वादनगुणस्थानकस्य जघन्याऽन्तरं पल्यो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पमाऽसंख्येयभागः, इतरगुणस्थानकानां तु जघन्यमन्तर्मुहूर्तमित्यक्षरार्थः ।

भावार्थः पुनरयम्—योऽनादिमिथ्यादृष्टिरुद्वलितसम्यक्त्वमिश्रपुञ्जो वा मिथ्यादृष्टिः षड्विंशतिसत्कर्मा सन्नन्तरकरणादिप्रकारेणोपलब्धौपशमिकसम्यक्त्वोऽनन्तानुबन्ध्युदयात्सास्वादनभावमासाद्य मिथ्यात्वं गतस्सन् यदि तदेव सास्वादनं पुनर्लभतेऽन्तरकरणप्रकारेणैव, तदा जघन्यतोऽपि पल्योपमाऽसंख्येयभागोर्ध्वं गतस्य प्रथमसमये सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जौ सत्तायामवश्यं तिष्ठत एव । न च तयोः सत्तायां वर्तमानयोः पुनरुपशमसम्यक्त्वं लभते । तदभावात्सासादनं दूरापास्तमेव । तथा चाऽग्रेऽप्यस्या एव गाथायाष्टीकायामुक्तम् "**यतः पल्योपमाऽसंख्येयभागेन मिश्रसम्यक्त्वपुञ्जयोरुद्वलितयोस्तदन्ते कश्चिज्जन्तुः पुनरप्यौपशमिकसम्यक्त्वमासाद्य सासादनत्वं गच्छतीत्येवं सासादनस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागोऽन्तरं भवतीति** ।

एतेन स्पष्टं भवति यावत्सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जौ सत्तायां भवतस्तावत्कश्चिदपि मिथ्यादृष्टिर्जन्तुरुपशमसम्यक्त्वं प्राप्तुं नार्हति । अतः औपशमिकसम्यक्त्वमुत्पादयतः सम्यक्त्वमोहनीयमिश्रमोहनीये प्रकृती सत्तायां न भवतः । तेन सम्यक्त्वमोहनीयमिश्रमोहनीयायुस्त्रिकाऽऽहारकचतुष्कजिननामकर्मरूपा दश प्रकृतयोपि सत्तायां न विद्यन्ते, शेषास्तु जघन्यतोऽष्टात्रिंशच्छतं प्रकृतयः सत्तायां भवन्ति, किन्तु बद्धपरभवायुष्कस्य त्वेकोनचत्वारिंशच्छतं प्रकृतयः सत्तायां भवन्ति ।

ननु प्रथममुपशमसम्यक्त्वमुत्पादयत आहारकचतुष्कं जिननाम च पञ्च प्रकृतयः सत्त्वेन भवितुं कथं नाऽर्हन्तीति चेद्, उच्यते—योऽनादिमिथ्यादृष्टिस्तस्यैताः प्रकृतयस्सत्त्वेन न भवन्ति, यत आहारकचतुष्कमप्रमत्तप्रभृतिगुणस्थानकेऽविरतिसम्यग्दृष्टिप्रभृतिगुणस्थानके च जिननाम बध्यते । यः सादिः मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य तदन्वप्रमत्तगुणस्थानकं न प्रापत्, अथवाऽप्रमत्तगुणस्थानकं प्राप्याऽपि नैयतिकबन्धाऽभावेनाऽऽहारकचतुष्कमबद्ध्वा मिथ्यात्वं प्रतिनिवृत्तस्तस्याऽऽहारकचतुष्कं सत्त्वे न विद्यते, किञ्च येन जन्तुनाऽप्रमत्तगुणस्थानक आहारकचतुष्कं बद्धम्, यदि परिणामपतनेन मिथ्यात्वादिगुणस्थानकं लभेत, तर्हि तस्य पूर्वमुद्वलनासङ्क्रमेणाऽऽहारकचतुष्कं निःसत्ताकं भवति, तत ऊर्ध्वमेव सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जौ निःसत्ताकौ भवतः । एतेन सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जयोर्निःसत्त्वमाहारकचतुष्कस्य निःसत्त्वादूर्ध्वं भवति । तथा षड्विंशतिसत्कर्मा सन्नेव प्रथमं सम्यक्त्वमुत्पादयति, नाऽन्यः, तत्र मिश्रसम्यक्त्वपुञ्जयोरभावादाहारकचतुष्काऽभावः सिद्ध एव ।

जिननामसत्कर्मा मिथ्यात्वं नाऽधिगच्छति, नवरं बद्धनरकायुष्कः जिननामसत्कर्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिरान्तर्मौहूर्तिकायुषि शेषे मिथ्यात्वं गच्छति, स पुनरौपशमिकसम्यक्त्वं न प्रतिपद्यते, किन्तु मृत्वा नरके पर्याप्तः सन् स। नारकः क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमेवाऽश्नुते। अत उपशमसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य जिननाम सत्त्वे न भवति। इत्थं सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य सत्तायामष्टात्रिंशच्छतमेकोनचत्वारिंशच्छतं वा प्रकृतयो भवन्ति।तत्र षड्विंशतिशतं प्रकृतयो ध्रुवसत्ताकाः। ध्रुवत्वं चाऽऽसामनादिमिथ्यादृष्टेः सत्तायामवश्यंभावात्। अध्रुवसत्ताकाश्च द्वादश त्रयोदश वा तत्र तेजोवायुकायिकजीवमध्यादागतस्याऽपर्याप्ताऽवस्थायामन्तर्मुहूर्तं यावद् मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च सत्त्वे न विद्येते। तत ऊर्ध्वमवश्यं बध्यमानत्वेन तासां सत्कर्म भवत्येव। तथा चैकेन्द्रियेण देवद्विकनरकद्विकवैक्रियशरीरसंघातबन्धनाङ्गोपाङ्गलक्षणवैक्रियचतुष्करूपा अष्टौ प्रकृतय उद्वलनासङ्क्रमेणोद्वल्यन्ते, तस्मादेकेन्द्रियाऽवस्थायामासामभावोऽपि भवति। एकेन्द्रियान्निष्क्रान्तस्य संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्याऽप्यासामभावोऽल्पकालपर्यन्तमेव। अन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते सत्तायामेताः प्रकृतयो बन्धद्वारेणाऽवश्यं प्राप्यन्ते। तेनैता उपशमसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य सत्तायामवश्यं भवन्ति। इत्थं सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य वेद्यमानाऽऽयुषा सह ध्रुवसत्ताकाष्षड्विंशतिशतं देवद्विकनरकद्विकवैक्रियचतुष्कमनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपाश्च द्वादश प्रकृतय इत्यष्टात्रिंशच्छतं बद्धपरभवायुष्कस्य त्वेकोनचत्वारिंशच्छतं प्रकृतयः सत्तायां भवन्ति।

अत्र कषायप्राभृतचूर्णिकृतो मताऽनुसारेण मोहनीयस्य सप्तविंशतिसत्कर्माऽष्टाविंशतिसत्कर्मा वाऽपि प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयति।

ननु मोहनीयस्य सप्तविंशतिसत्कर्माऽष्टाविंशतिसत्कर्मा वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वं लभत इति कषायप्राभृतचूर्णिकारैरुक्तम्, कथमेतदवसीयत इति चेद्, उच्यते–प्रकृतिविभक्त्यधिकारे मोहनीयस्य सप्तविंशतिसत्कर्मणोऽवस्थानकालो जघन्यत एकसमयप्रमाणः कषायप्राभृतचूर्णिकारैर्भणितस्तद्यथा––"**सत्तावीस विहत्ती केवचिरं कालादो? जहण्णेण एगसमओ।**" तथा सत्तास्थानकस्याऽन्तरद्वारेऽष्टाविंशतिसत्कर्मणो जघन्यमन्तरमेकसमयप्रमाणं भवति, अक्षराणि त्वेवम्–"**अट्ठावीस विहत्तस्स जहण्णेण एगसमओ।**" इदमन्तरमुपशमसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जयोः सत्कर्म अभ्युपगम्यैवोपपन्नं भवति, अन्यथाऽष्टाविंशतिसत्तास्थानकस्य जघन्यमन्तरं सप्तविंशतिस्थितिस्थानकस्य च जघन्यतोऽवस्थानकालोऽपि पल्योपमाऽसंख्येयकालप्रमाणो भवेत्, यतः सम्यक्त्वतः परिभ्रश्य मिथ्यात्वं गतोऽष्टाविंशतिसत्कर्मा सम्यक्त्वमोहनीयं मिश्रमोहनीयं चोद्वलयितुमारभते। पल्योपमाऽसंख्येयभागेन कालेनोद्वलिते सम्यक्त्वमोहनीये तस्य सप्तविंशतिसत्कर्म भवति। अत्र यदि षड्विंशतिसत्कर्मा प्रथमसम्यक्त्वमासादयतीत्यभ्युपगम्यते, तर्हि मिश्रमोहनीयमप्युद्वलितव्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वमोहनीयोद्वलनायाः परतो मिश्रमोहनीयं च पल्योपमाऽसंख्येयभागेन कालेन सर्वथोद्वलयति, तत एव षड्विंशतिसत्कर्मा भवति, नाऽर्वाक्। ततः कश्चिद् षड्विंशतिसत्कर्मा जन्तुः करणत्रयेण भूयोऽष्टाविंशतिसत्कर्मा भवेत् तर्हि मोहनीयकर्मण सप्तविंशतिसत्कर्मणो जघन्याऽवस्थानकालोऽष्टाविंशतिसत्कर्मणो जघन्यमन्तरं च पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमेव भवेन्न समयप्रमाणम्।

कषायप्राभृतचूर्णिकारैस्तु सप्तविंशतिसत्कर्मणो जघन्याऽवस्थानकालोऽष्टाविंशतिसत्कर्मणश्च जघन्यमन्तरमेकसमयप्रमाणमेव स्वीकृतमिति सप्तविंशतिसत्कर्मणो जघन्याऽवस्थानकालस्याऽष्टाविंशतिसत्कर्मणो जघन्याऽन्तरस्योपपत्तये सप्तविंशतिसत्कर्माऽष्टाविंशतिसत्कर्माऽपि प्रथमोपशमिकसम्यक्त्वमुत्पादयतीत्यवश्यमभ्युपगन्तव्यम्। तथाहि-मिथ्यात्वगुणस्थानके सम्यक्त्वसम्यक्त्वमिथ्यात्वपुञ्जौ तावदुद्वलयति यावदन्तर्मुहूर्तन्यूनपल्योपमासंख्येयभागो व्यतिक्रान्तो भवति। ततः कश्चिदुपशमसम्यक्त्वाभिमुखो जीवो यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि करोति। यदा तेनाऽनिवृत्तिकरणस्य द्विचरमसमयः प्राप्यते, तदा सर्वसम्यक्त्वपुञ्जमुद्वलितं भवति, न किञ्चित्सत्तायामवतिष्ठते। अतस्तस्य जन्तोर्मोहनीयस्य सप्तविंशतिसत्कर्म भवति। तत औपशमिकसम्यक्त्वप्राप्तिसमये त्रिपुञ्जकरणेनाष्टाविंशतिसत्कर्म प्राप्यत इति सप्तविंशति सत्कर्मणोऽवस्थानकाल एकसमयप्रमाणस्तथैवाऽष्टाविंशतिसत्कर्मणो जघन्याऽन्तरमप्येकसमयप्रमाणमुपपद्यते, अत्र जघन्याऽन्तरस्योपपत्तयेऽसौ प्रक्रिया प्रदर्शिता। अन्यः कश्चिज्जन्तुस्त्वनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयपर्यन्तमप्युद्वलयन्नुपशमसम्यक्त्वप्राप्तिसमयेऽपि सर्वथा सम्यक्त्वमोहनीयं निस्सत्ताकं न करोतीति मोहनीयस्याऽष्टाविंशतिसत्कर्मा सन्नपि प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वमश्नुते।

इदमत्र हृदयम्—सम्यक्त्वतः पतित्वा मिथ्यात्वं गतो जन्तुरन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जयोरुद्वलनामारभते। उद्वलनासङ्क्रमेणोद्वलयतो जन्तोर्यावदुदयाऽयोग्या स्थितिः सत्तायां न भवेत्तावद्यदि कश्चिज्जन्तु सम्यक्त्वं लभेत, तर्हि क्षायोपशमिकमेव। यदोद्वलयता जन्तुना सत्तायामुदयाऽयोग्या स्थितिः प्राप्यते, ततः प्रभृति करणत्रयपूर्वकमौपशमिकसम्यक्त्वमेव लभते, न क्षायोपशमिकम्। इत्थं सप्तविंशतिसत्कर्माऽष्टाविंशतिसत्कर्मा वा प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वं प्राप्तुमर्हति। ननु कियती स्थितिरुदयाऽयोग्या भवतीति चेद्, उच्यते—जघन्यतः पल्योपमाऽसंख्येयभागोनसागरोपमप्रमाणस्थितिरुदययोग्या, ततो हीना स्थितिरुदयाऽयोग्या, कथमेतदवसीयते? इति चेद्, उच्यते—मिश्रमोहनीयस्य जघन्यस्थित्युदीरणैकेन्द्रियजातावुद्वलयतस्तत आगतस्य संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागोनसागरोपमप्रमाणोक्ता, तस्मात्तावत्येव स्थितिरुदययोग्या, ततो हीनोदयाऽयोग्या। किन्तु त्रसकाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्वलयतो जन्तोर्मिश्रस्योदययोग्या स्थितिः पूर्वतोऽधिका वाच्या, एकेन्द्रियत आगतस्य संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्यैव मिश्रस्य जघन्यस्थित्युदीरणायाः स्वामित्वेन निर्देशात् । एवमेव मिथ्यात्वगुणस्थानक उद्वलयतो जन्तोः सम्यक्त्वमोहनीयस्योदयाऽयोग्या स्थितिस्तावत्येव संभाव्यते ।

तथा सास्वादनस्य जघन्यमन्तरमपि पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमस्मिन्मतेऽप्युपपन्नं भवति, यत उभौ सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जा उद्वलनासङ्क्रमेण पल्योपमासंख्येयभागे व्यतिक्रान्त एवोदयायोग्यौ भवतः ।

स्थितिसत्ता—"**गिरिनदीपाषाणवृत्तता**" इति न्यायेनास्मिन्संसारे संसरतां प्राणिनां स्थितिरन्तःसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणा यावन्न भवति, तावत्कोऽप्युपशमसम्यक्त्वाऽभिमुखो न भवति । अतः सत्तायां स्थितिरन्तःसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणैव विद्यते ।

(१९) **अनुभागसत्ता**–सम्यक्त्वाभिमुखस्य सत्तायां याः प्रकृतयस्सन्ति, तासामजघन्यानुत्कृष्टोऽनुभागो विद्यते । तत्राऽप्रशस्तानां प्रकृतीनां द्विस्थानकः प्रशस्तानां प्रकृतीनां बध्यमानानां चतुःस्थानकोऽबध्यमानानां द्विस्थानको वा त्रिस्थानको वा चतुःस्थानको वा सत्तायां भवति ।

(२०) **प्रदेशसत्ता**—卐 सम्यक्त्वाऽभिमुखस्याऽजघन्याऽनुत्कृष्टा प्रदेशसत्ता भवति । प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुत्पादयतो योग्यता लक्षणाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणभूमिकाया वक्तव्यतां विस्तरत उक्त्वा करणत्रयस्य कालनिर्देशसहितां वक्तव्यतामुपशान्ताद्धां च व्याजिहीर्षुराह—

करणं अहापवत्तं अपुव्वकरणमनियट्टिकरणं च ।
अंतोमुहुत्तियाइं उवसंतद्धं च लहई कमा ॥८॥

करणं यथा प्रवृत्तमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च ।
आन्तर्मौहूर्तिकान्युपशान्ताद्धां च लभते क्रमात् ॥८॥ इति पदसंस्कारः ।

करणकालात्पूर्वमन्तर्मुहूर्तकालं यावदुपयुक्तविशुद्ध्या प्रवर्धमानः करणत्रयं करोति, तत्र करणं=परिणामविशेषः । आदौ यथाप्रवृत्तं करणं करोति, ततः क्रमेणाऽपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च करोति । एतानि त्रीण्यपि करणानि प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तप्रमाणानि, करणत्रयकालोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव । तत्राऽनिवृत्तिकरणकालात्संख्येयगुणोऽपूर्वकरणकालस्तथा चोक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ अल्पबहुत्वाऽधिकारे त्रयोविंशतिशततमसूत्रे "अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा १२४ अपुव्वकरणाद्धा संखेज्जगुणा ।" करणत्रयनिष्पादनक्रमादनन्तरमुप-

卐 जयधवलायामप्रशस्तानामनुभागसत्कर्म द्विस्थानकं प्रशस्तानां च चतुःस्थानकं विद्यते इत्युक्तम् । तदक्षराणि त्वेवम् .."अणुभागसंतकम्मंपि अप्पसत्थाणं कम्माणं .. बिट्ठाणियाणुभागसंतकम्मिओ पसत्थाणं पि पयडीणं चउट्ठाणाणुभागसंतकम्मिओ" (जयधवला पृष्ठ १६६८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्ताद्धां च लभते, उपशान्ताद्धां च लभमान उपशमसम्यक्त्वमासादयति। सा उपशान्ताऽद्धा-प्यान्तर्मौहूर्तिकी ज्ञातव्या।

क्रमश एकैककरणस्य स्वरूपं तत्र च प्रवर्तमानक्रियां व्याचिख्यासुराह—

अणुसमय वड्ढंतो अज्झवसाणाणणंतगुणणाए।
परिणामट्ठाणाणं दोसु वि लोगा असंखिज्जा ॥१॥

अनुसमये वर्धमानोऽध्यवसायानामनन्तगुणनया।
परिणामस्थानानां द्वयोरपि लोका असंख्येयाः॥ इति पदसंस्कार:।

आदौ यथाप्रवृत्तकरणस्याऽधिकारः। तत्र वक्ष्यमाणस्वरूपाः स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिगुणसङ्क्रमश्च न भवन्ति, तद्योग्यविशुद्ध्यभावात्। तथा चाऽस्य करणस्य प्रथमसमये नूतनः स्थितिबन्धो भवति, तत्स्थितिबन्धः पूर्वस्थितिबन्धाऽपेक्षया पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति। अयं स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तकालं यावद्भवति, तत ऊर्ध्वं स्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्य-स्थितिबन्धः पूर्वस्थितिबन्धाऽपेक्षया पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति। + इत्थं प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पूर्वपूर्वस्थितिबन्धाऽपेक्षयोत्तरोत्तरस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति। अत्र स्थिति-बन्धस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण उक्तः तेनेदमुक्तं भवति—यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये यः स्थितिबन्ध आरब्धः, स एव स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावद्भवति, न न्यूनाऽधिकः।

नन्वेक एव स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं कथं भवति ? प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पा-दकस्य प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्यमानत्वाद्, विशुद्धौ हि सत्यां स्थितिन्यूना बध्यत इति नियमादिति चेत्, उच्यते, प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्यमानत्वेऽपि सम्य-क्त्वाऽभिमुखस्य स्थितिरेकैव बध्यते, केवलमनुभागो विषमो बध्यते, यत एकस्य बध्यमान-स्थितिस्थानस्य हेतुभूतकषायोदयस्थानकान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि। तत्रैकैककषा-योदयस्थानेऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यनुभागबन्धाऽध्यवसायस्थानानि तेन प्रतिसमयं विशुद्धेर्वर्धमानत्वेऽप्येकस्थितिबन्धे न कश्चिद्विरोधः, अनुभागबन्धे तु विशेषोऽस्त्येव।

अशुभानां प्रकृतीनां द्विस्थानकः शुभानाञ्च प्रकृतीनां चतुःस्थानिकोऽनुभागो बध्यते। प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या विशुद्ध्यमानत्वाच्छुभप्रकृतीनामनन्तगुणवृद्धोऽशुभप्रकृतीनां चाऽनन्तगुणहीनो बध्यते।

+ टिप्पणम्—यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथम समये यः स्थितिबन्धो भवति तदपेक्षया सहस्रैर्हीयमानैः स्थितिबन्धैश्चरमसमये संख्येयगुणहीनो भवतीत्युक्तं लब्धिसारे तथा च तदक्षराणि........
आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि। संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होइ नियमेण ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदमत्राऽवधेयम्--यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमयमभव्यसिद्धिका अपि प्राप्नुवन्तीत्येतदुक्तम्, तत्र विशुद्धयपेक्षयोभयेषां भव्याऽभव्यानां यथाप्रवृत्तकरणं भिन्नमस्तीति प्रतिभासते, यतो यथाप्रवृत्तकरणात्पूर्वाऽवस्थायां विशुद्धिं प्रदर्शयता ग्रन्थकृता ग्रन्थिकसत्त्वाऽभव्याऽपेक्षयाऽनन्तगुणवृद्धयाविशुद्धिः सम्यक्त्वाऽभिमुखस्य भव्यस्य करणत्रयस्य पूर्वाऽवस्थायां दर्शिता, ततोऽपि प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धिः प्रवर्धमाना भवति, तेनोभयोर्यथाप्रवृत्तकरणं विशुद्धयाऽपेक्षया भिन्नं वक्तव्यम् ।

"**अणुसमयं**" ति. अनुसमयं=समये समय इति वीप्सायां "**योग्यतावीप्सार्थाऽनतिवृत्तिसादृश्ये**" (सिद्धहेम० ३।१।४०) इति सूत्रेणाव्ययीभावसमासः "**अज्झवसाणाणं**" इत्यादि, अध्यवसानानामनन्तगुणतया विशुद्धया प्रवर्धमानो यावत्करणसमाप्तिर्भवति, तावन्निरन्तरं वर्धते । कियन्ति पुनरध्यवसायस्थानकानि प्रत्येकं करणेषु लभ्यन्त इति चेद् , उच्यते— "**परिणामट्ठाणाणं दोसु वि लोगा असंखिज्जा**" द्वयोरपि यथाप्रवृत्ताऽपूर्वकरणयोः परिणामस्थानानामनुसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि ।

इयमत्र भावना—यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमयेऽध्यवसायस्थानकान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति । यथाप्रवृत्तकरणस्य द्वितीये समयेऽप्यध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति, किन्तु पूर्वतो विशेषाऽधिकानि, एवं द्वितीयात्समयात्तृतीयसमये विशेषाऽधिकानि, एवं यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमयं यावद् वाच्यम् । यथाप्रवृत्तकरणस्य द्विचरमसमयाऽपेक्षया चरमसमयेऽध्यवसायस्थानकानि विशेषाऽधिकानि वक्तव्यानि तथा चैतान्युपर्युपरि मुखान्यनुचिन्त्यमानान्यनन्तगुणवृद्धया प्रवर्धमानान्यध्यवसायस्थानानि तिर्यक् च षट्स्थानपतितानि । स्थाप्यमानान्यध्यवसायस्थानानि विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति ।

न चैकस्मिन्समय एकस्य जीवस्यैकमेवाऽध्यवसायस्थानं भवति, अत्र यथावृत्तकरणस्य प्रथमसमयेऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्तीति कथमुच्यत इति वाच्यम् , यतः सत्यमेतत् , यद्यप्येकस्मिन्समय एकस्य जीवस्यैक एवाऽध्यवसायस्थानं विद्यते । तथाऽपि त्रिकालमाश्रित्य यथाप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयवर्तिनानाजीवाऽपेक्षयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि वक्तव्यानि ।

ननु यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमयं स्पृशन्तस्त्रिकालमाश्रित्य जीवा अनन्ता भवन्ति, अध्यवसायस्थानानि त्वसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यभिहितानि, अनन्तानि कथं न वाच्यानि ? उच्यते, यद्यपि जीवा अनन्तास्तथाऽप्यध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि, यतो यथाप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयवर्तिनां बहूनामनन्तानां जीवानां समानान्यध्यवसायस्थानानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवन्ति, तथाहि—त्रिकालमाश्रित्य यथाप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयवर्तिषु केषाञ्चिदनन्तानां जीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाऽध्यवसायस्थानेभ्यः सर्वजघन्यमध्यवसायस्थानं यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमये भवति, इतरेषां केषाञ्चिदनन्तानां जीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाऽध्यवसायस्थानेभ्यः पूर्वतो विशुद्धतरमन्यदध्यवसायस्थानं भवति, ततोऽपि विशुद्धतरमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाऽध्यवसायस्थानेभ्य इतरदध्यवसायस्थानमन्येषामनन्तानां जन्तूनां भवति। एवं तावद् वाच्यम्, यावदसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाऽध्यवसायस्थानानामुत्कृष्टमध्यवसायस्थानम्। एवं शेषसमयेष्वप्यवगन्तव्यम्। इत्येवमनन्तानां जीवानां समानाऽध्यवसायस्थानत्वेनाध्यवसायस्थानानामसंख्येयत्वमविरुद्धम्। तेषामन्यतममध्यवसायस्थानं यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये भवति। एवं शेषेषु समयेष्वप्यवगन्तव्यम्।

यथाप्रवृत्तकरणस्याऽध्यवसायस्थानानां प्ररूपणां कृत्वा तेषां तीव्रतामन्दतानिरूपणं चिकीर्षुराह—

मंदविसोही पढमस्स संखभागाहि पढमसमयम्मि।
उक्कस्सं उप्पिमहो एक्केक्कं दोण्ह जीवाणं ॥१०॥
आचरमाओ सेसुक्कोस्सं पुव्वप्पवत्तमिइ नाम।
बिइयस्स बिइयसमए जहन्नाणावि अणंतगुणा ॥११॥

मन्दविशोधिः प्रथमस्य संख्यभागात् प्रथमसमये। उत्कृष्टमुपर्यध एकैकं द्वयोर्जीवयोः ॥१०॥
आचिरमाच्छेषोत्कृष्टा पूर्वप्रवृत्तमिति नाम। द्वितीयस्य द्वितीयसमये जघन्याऽप्यनन्तगुणोत्कृष्टा ॥११॥इति।

यत्र तत्तत्समयवर्तिनां जीवानां समानमध्यवसायस्थानं भवति, तत्र सर्वेषां विशुद्धिरपि समाना विद्यते, विशुद्धेर्न किञ्चिद्वैषम्यम्। अत्र तु यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रतिसमयमध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि, ततो यथाप्रवृत्तकरणे तत्तत्समयवर्तिनां जीवानां विशुद्धेरपि भिन्नत्वम्, केषाञ्चिज्जघन्या केषाञ्चिद् मध्यमा केषाञ्चिदुत्कृष्टा विशोधिरित्यर्थः। एतदुक्तं भवति—तत्तत्समयवर्तिनां जन्तूनां विशुद्धिभेदेऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानकपतितान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति। तथाहि—यथाप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयवर्तिषु जीवेषु कस्यचिज्जीवस्याऽपेक्षया तदन्यस्याऽनन्तभागवृद्धम्, असंख्यातभागवृद्धम्, संख्यातभागवृद्धम्, संख्यातगुणवृद्धम्, असंख्यातगुणवृद्धम्, अनन्तगुणवृद्धं वाऽध्यवसायस्थानं भवति, एवं कस्यचिज्जीवस्याऽपेक्षया तदन्येषां भिन्नभिन्नजन्तूनां षड्विधहानिविशिष्टान्यध्यवसायस्थानान्यपि भवन्ति, एवं सर्वसमयेषु वाच्यम्। इयं तिर्यङ्मुखीविशुद्धिरुच्यते। यत्र तत्तत्समयस्थानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाऽध्यवसायस्थानानां परस्परं विशुद्धिर्विमृश्यते, सा तिर्यङ्मुखी विशुद्धिरुच्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊर्ध्वमुखी विशुद्धिः—पौर्वसामयिकविशुद्ध्यपेक्षयोत्तरसामयिकविशुद्धेर्विमर्शनमूर्ध्वमुखी विशुद्धिरुच्यते। तद्यथा..."**मंदविसोही**" इत्यादि, इह द्वौ पुरुषौ युगपद्यथाप्रवृत्तकरणप्रतिपन्नौ बुद्ध्याऽऽरोप्येते। एकः सर्वजघन्यया विशुद्ध्या यथाप्रवृत्तकरणप्रतिपन्नः, अपरस्तु सर्वोत्कृष्टया विशुद्ध्या। तत्र '**पढमस्स**" त्ति प्रथमस्य पुरुषस्य "**मंदाविसोही**" त्ति, सर्वजघन्या विशोधिः, एतदुक्तं भवति सर्वजघन्यया विशुद्ध्या प्रतिपन्नस्य पुरुषस्य यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये सर्वजघन्या विशोधिः सर्वस्तोका, ततो द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा, ततस्तृतीयसमये जघन्यविशोधिरनन्तगुणा, एवं तावद्वाच्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य '**संखेज्जभागाहिआहि**' त्ति, संख्येयभागो गतो भवति। अयं च यथाप्रवृत्तकरणस्य संख्येयभागो नाम्ना कण्डकमिति विज्ञेयम्। प्रथमकण्डकस्य चरमसमयस्य जघन्य विशुद्धेर्द्वितीयस्य पुरुषस्य यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा वाच्या।

ततोऽपि प्रथमकण्डकस्योपरितनप्रथमसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा, ततो यथाप्रवृत्तकरणस्य द्वितीयसमय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा, ततः प्रथमकण्डकस्योपरितनद्वितीयसमये विशोधिरनन्तगुणा। ततो यथाप्रवृत्तकरणस्य तृतीयसमय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा। ततः प्रथमकण्डकस्योपरितनतृतीयसमये विशोधिरनन्तगुणा। एवम् "**उप्पिमहो**" त्ति, उपर्यधश्चैकैकं विशोधिस्थानमनन्तगुणतया तावद् वाच्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमकण्डकस्य चरमसमये जघन्या विशोधिः। ततः '**आचरमाओ सेसुक्कोस**' त्ति, चरममभिव्याप्य यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसंख्यातभागस्याऽर्थाच्चरमकण्डकस्य योत्कृष्टा विशोधिरनुक्ता सा क्रमेण निरन्तरमनन्तगुणा वाच्या। तथाहि—यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमये या जघन्या विशुद्धिस्ततो यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमकण्डकस्य योत्कृष्टा विशोधिरनुक्ता सा प्रथमसमयेऽनन्तगुणा, ततो द्वितीयसमयेऽनन्तगुणा। एवं क्रमेण यावच्चरमसमयमुत्कृष्टा विशुद्धिर्वाच्या, उपर्युक्तविशुद्धेः परिपाटिर्यथाप्रवृत्तकरणस्याऽध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिं ज्ञापयति। अतः सा विवर्ण्यते।

तत्राऽनुकर्षणमनुकृष्टिः "**स्त्रियां क्तिः**" सिद्धहेम (५।३।९१) इति भावे '**क्ति**' प्रत्ययः, कतिपयानां प्राक्तनसमयस्थाऽध्यवसायस्थानानामग्रेतनसमयेऽनुवृत्तिरिति यावत्। इदमुक्तं भवति—प्रथमसमयस्थानि कतिपयाऽध्यवसायस्थानानि द्वितीयसमयेऽप्यनुवर्तन्ते, एवं तृतीयादिसमयेष्वपि, अन्यथा प्रथमसमयाऽपेक्षया द्वितीयसमयेऽध्यवसायस्थानान्येकान्तेन भिन्नान्येव स्युः। ननु यदि सर्वाण्येकान्तेन भिन्नान्येव स्युः, ततः किं स्यात्, इति चेदुच्यते, यदि प्रथमसमयाऽपेक्षया द्वितीयसमय एकान्तभिन्नान्येवाऽध्यवसायस्थानानि स्युस्तर्हि प्रथमसमयस्थसर्वोत्कृष्टविशुद्धाऽध्यवसायस्थानापेक्षया द्वितीयसमयस्य सर्वजघन्याऽध्यवसायस्थानकस्य

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

विशुद्धिरनन्तगुणा वाच्या, वक्ष्यमाणाऽपूर्वकरणवत्। किन्त्वत्र तु यथाप्रवृत्तकरणसत्कप्रथमसंख्यातभागचरमसमयं यावज्जघन्या विशुद्धिरुत्तरोत्तराऽनन्तगुणा तथा संख्यातभागस्य चरमसमयस्य जघन्यविशुद्धितो यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमय उत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा प्रागुक्ता। अतो यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमयस्योत्कृष्टविशुद्धेरपि यथाप्रवृत्तकरणसत्कप्रथमसंख्यातभागस्यचरमसमये जघन्या विशुद्धिरनन्तगुणहीना भवति तथा प्रथमसंख्यातभागस्योपरितनसमये जघन्या विशुद्धिर्यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमयधुत्कृष्टविशुद्धितोरनन्तगुणा।

विशुद्धेरियं परिपाटिरध्यवसायानामनुकृष्टिं सूचयति। तद्यथा–यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये यान्यध्यवसायस्थानानि तानि क्रमशस्तस्य संख्येयभागं प्रथमकण्डकसंज्ञं यावत्प्रतिसमयं हीयमानान्यनुवर्तन्ते तथा प्रथमकण्डकरूपसंख्येयभागस्याऽग्रेतनसमये प्रथमसमयवर्त्येकमप्यध्यवसायस्थानं नाऽनुवर्तत इत्येवं द्वितीयसमयवर्तीन्यध्यवसायस्थानानि द्वितीयकण्डकस्य प्रथमसमयं यावदनुवर्तन्ते। एवं तृतीयसमयवर्तीन्यध्यवसायस्थानानि द्वितीयकण्डकस्य द्वितीयसमयं यावद् गच्छन्ति, एवं यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमकण्डकस्य प्रथमसमयवर्तीन्यध्यवसायस्थानानि यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमयं यावद् गच्छन्ति।

अत्रेदमवधेयम्—प्रथमसमयवर्तीनि यावन्त्यध्यवसायस्थानानि, तावन्ति सर्वाणि द्वितीयसमये नाऽनुवर्तन्ते, किन्त्वेककण्डकस्याऽसंख्येयसमयप्रमाणत्वात्प्रथमसमयवर्तिनो जघन्याऽध्यवसायस्थानादारभ्याऽसंख्येयतमं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यध्यवसायस्थानानि द्वितीयसमये प्राप्यन्तेऽन्यानि चाऽऽयान्ति। न च जघन्याऽध्यवसायस्थानं कथमुच्यते, विशुद्धेरेव जघन्यत्वमुत्कृष्टत्वं च भवतीति वाच्यम्, 'कारणे कार्योपचारः' इति न्यायेनाऽध्यवसायस्थानस्याऽपि जघन्यत्वमुत्कृष्टत्वं च घटते, तेन जघन्याऽध्यवसायस्थानं कोऽर्थः ? जघन्यविशुद्धिजनकमध्यवसायस्थानमित्यर्थः, तथा प्रथमसमयवर्तीनि यान्यध्यवसायस्थानानि मुक्तानि तदपेक्षया द्वितीयसमय आगच्छन्त्यध्यवसायस्थानानि विशेषाऽधिकानि भवन्ति; अत एव प्रथमसमयाऽपेक्षया द्वितीयसमयेऽध्यवसायस्थानानि विशेषाऽधिकानि भवन्ति। एवं यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमयं यावद् वाच्यम्, तथा च प्रथमसमये विमुच्यमानाऽध्यवसायस्थानेभ्यो द्वितीयसमये विमुच्यमानाऽध्यवसायस्थानानि विशेषाऽधिकानि भवन्ति, एवं यावद् द्विचरमसमयं ज्ञेयम्। किञ्च द्वितीयसमय आगच्छद्भ्योऽध्यवसायस्थानेभ्यस्तृतीयसमय आगच्छन्त्यध्यवसायस्थानानि विशेषाऽधिकानि। ततोऽपि चतुर्थसमय आगच्छन्त्यध्यवसायस्थानानि विशेषाऽधिकानि। एवं आ यथाप्रवृत्तकरणसत्कचरमसमयाद् वाच्यम्।

यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये यान्यध्यवसायस्थानानि विमुच्यन्ते, तानि केवलं प्रथमसमयवर्तीनि, अग्रेतने कस्मिंश्चिदपि समये तेषां गमनाऽभावेन तान्यननुकृष्टान्युच्यन्ते। एवं

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चरमसमय आगच्छतामध्यवसायस्थानानामपि चरमस्थानमात्रवर्तित्वेन पूर्वमनागतत्वादननुकृष्टत्वं ज्ञेयम् । यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमयवर्तीन्यध्यवसायस्थानानि करणस्य संख्येयभागरूपकण्डकगतानि संख्येयसमयप्रमाणं यावदनुवर्तन्ते, तत आ यावद्भ्यः समयेभ्यः प्रथमसमयस्याऽध्यवसायस्थानान्यनुकृष्यन्ते, तावन्ति खण्डानि कर्तव्यानि । तत्राऽपि पूर्वपूर्वखण्डेभ्यरुत्तरोत्तरखण्डानि विशेषाऽधिकानि विशेषाऽधिकानि द्रष्टव्यानि, यत उत्तरोत्तरसमये विशेषाऽधिकानि विशेषाऽधिकान्यध्यवसायस्थानानि विमुच्यन्ते । द्वितीयसमये पूर्वकृतानां खण्डानां प्रथमखण्डो विमुच्यते, तथा प्रथमसमयस्य चरमखण्डाद् विशेषाऽधिकमन्यत्खण्डं संकल्यते, तृतीयसमये द्वितीयसमयस्याऽऽद्यखण्डं त्यज्यते, तथाऽत्रापि पूर्ववद् द्वितीयसमयस्य चरमखण्डात्संकल्यमानमन्यत्खण्डमपि विशेषाऽधिकं ज्ञेयम् । एवं तावद् वाच्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य संख्येयभागो गतो भवति ।

अत्र प्रथमसमयवर्तिनामध्यवसायस्थानानां चरमखण्डस्याऽनुकृष्टिः परिसमाप्ता, ततः परं तस्याऽनुवृत्त्यभावात् । तदनन्तरं यथाप्रवृत्तकरणस्य प्रथमकण्डकस्य द्वितीयसमयवर्त्यध्यवसायस्थानानां चरमखण्डस्याऽनुकृष्टिः प्रथमकण्डकस्योपरितनाऽऽद्यसमये परिसमाप्ता । एवं तृतीयादिकसमयवर्तिचरमखण्डानामनुकृष्टौ परिसमाप्यमानायां यदा यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमसमयः प्राप्यते, तदा यथाप्रवृत्तकरणस्य चरमकण्डकस्य चरमसंख्यातभागस्य प्रथमसमयवर्तिखण्डस्याऽनुकृष्टिः परिसमाप्ता भवति । इदन्त्ववधेयम्—प्रत्येकखण्डे प्रथमाऽध्यवसायस्थानस्य विशुद्धेश्चरमाऽध्यवसायस्थानस्य विशुद्धिरनन्तगुणा तथा कस्मिंश्चिदपि खण्डे चरमाऽध्यवसायस्थानस्य विशुद्धेस्तदुत्तरखण्डस्य प्रथमाऽध्यवसायस्थानस्य विशुद्धिरनन्तगुणा ज्ञेया । अस्मिन् क्रमे स्वीक्रियमाण एव यथाप्रवृत्तकरणे विशुद्धिक्रमोपपत्तेः, तथा च प्रत्येकसमयस्याऽध्यवसायस्थानानां विशुद्धिः षट्स्थानपतिता, ततः प्रत्येक खण्डस्योपचरमाऽध्यवसायस्थानादनन्तभागवृद्धविशुद्धं चरमाऽध्यवसायस्थानं वाच्यम् , ततः परस्याऽध्यवसायस्थानस्याऽनन्तगुणवृद्धत्वात् । किञ्च षट्स्थानकेऽनन्तगुणवृद्धस्थानकात्पूर्वेण स्थानेनाऽनन्तभागवृद्धेन भवितव्यमिति नियमात् । प्रथमसमयस्य प्रथमखण्डं केनाऽपि खण्डेन न सदृक्षम् , एवं चरमसमयस्य चरमखण्डं केनाऽपि सदृग् न भवति, मध्यसमयवर्तिखण्डानां परस्परं सादृश्यं विद्यते । तथाहि—यत्प्रथमसमयस्य द्वितीयखण्डं तदेव द्वितीयसमयस्य प्रथमखण्डम् , एवं प्रथमसमयस्य तृतीयं खण्डं तदेव द्वितीयसमयस्य द्वितीयं खण्डं तथा तृतीयसमयस्य प्रथमं खण्डम् ।

अत्र प्रत्येक खण्डेऽध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकालोकाशप्रदेशप्रमाणानि तथा प्रतिसमयमागच्छन्त्यध्यवसायस्थानान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाप्रवृत्तकरणस्य सर्ववक्तव्यताऽसत्कल्पनया स्थापना यन्त्रम् (पृ. ३४) आश्रित्य प्रदर्श्यते- प्रथमसमये प्रथमाऽध्यवसायस्थानादारभ्य चतुरधिकसहस्रतमपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानानि चतुरधिकसहस्रं भवन्ति । द्वितीयसमये प्रथमाऽध्यवसायस्थानादारभ्याऽष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानान्यष्टचत्वारिंशदधिकद्विशतं विमुच्यन्ते । तथा पञ्चाऽधिकसहस्रतमाऽध्यवसायस्थानादारभ्य षष्ट्यधिकद्वादशशततमाऽध्यवसायस्थानानि षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशतसंख्याकान्यागच्छन्तीत्यर्थः. अतो नवचत्वारिंशदधिकद्विशततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्य षष्ट्युत्तरद्वादशशततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानानि द्वितीयसमये द्वादशाऽधिकसहस्रप्रमाणानि भवन्ति । तृतीयसमये नवचत्वारिंशदुद्विशततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्याऽष्टानवत्यधिकचतुःशततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानानिपञ्चाशदुत्तरद्विशतं विमुच्यन्ते. एकषष्ट्यधिकद्वादशशततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्याऽष्टादशाऽधिकपञ्चदशशततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानान्यष्टपञ्चाशदुत्तरद्विशतप्रमाणान्यागच्छन्ति सङ्क्रल्यन्त इति यावत्, अतस्तृतीयसमये नवनवतिचतुःशततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्याऽष्टादशाऽधिकपञ्चदशशततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानानि विंशत्यधिकसहस्रप्रमाणानि भवन्ति। एवमाद्विचरमसमयं वाच्यम् ।

द्विचरमसमय एकसप्तत्यधिकपञ्चविंशतिशततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्य चतुःपञ्चाशतषट्त्रिंशच्छततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानानि चतुरशीत्यधिकसहस्रम्; तेभ्यश्चरमसमय एकसप्तत्युत्तरपञ्चविंशतिशततमाऽध्यवसायस्थानात्प्रभृत्यष्टात्रिंशदधिकाऽष्टाविंशतिशततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तान्यध्यवसायस्थानान्यष्टषष्ट्यधिकद्विशतप्रमाणानि विमुच्यन्ते तथा पञ्चपञ्चाशदधिकषट्ऽत्रिंशच्छततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्य त्रिंशदधिकैकोनचत्वारिंशच्छततमाऽध्यवसायस्थानपर्यवसानानि षट्सप्तत्यधिकद्विशतमन्यान्यागच्छन्ति;अत एकोनचत्वारिंशदधिकाऽष्टाविंशतिशततमाऽध्यवसायस्थानादारभ्य त्रिंशदधिकैकोनचत्वारिंशच्छततमाऽध्यवसायस्थानपर्यन्तानि द्विनवतिदशशतप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि चरमसमये भवन्ति । अत्राऽपुनरुक्ताऽध्यवसायस्थानानि त्रिंशदधिकैकोनचत्वारिंशच्छतप्रमाणानि भवन्ति; पुनरुक्तान्यध्यवसायस्थानानि षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतद्वादशसहस्रप्रमाणानि भवन्ति ।

तत्समयवर्त्यध्यवसायस्थानानां चत्वारि खण्डानि क्रियन्ते, ततः सर्वाण्यष्टाचत्वारिंशत्खण्डानि भवन्ति, यद्यपुनरुक्तानि खण्डानि परिगण्यन्ते, तर्हि पञ्चदशैव खण्डानि भवन्ति, तद्यथा— २४८, २५०, २५२. २५४, २५६, २५८, २६०, २६२, २६४, २६६, २६८, २७०, २७२, २७४, २७६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"स्थापना"

समयः	प्रथमखण्डम्	द्वितीयम्	तृतीयम्	चतुर्थम्	←कतितमं खण्डम् ↓	खण्डगता अध्यवसायाः	सङ्कलिताध्यवसायस्थानानि	विमुच्यमानखण्डवर्त्यध्यवसायस्थानानि	आगच्छत्खण्डवर्त्यध्यवसायस्थानानि	आद्याध्यवसायस्थानम्	पर्यन्ताध्यवसायस्थानम्
प्रथमः	२४८ (१-२४८)	२५० (२४९-४९८)	२५२ (४९९-७५०)	२५४ (७५१-१००४)			१००४			१	१००४
द्वितीयः	२५०	२५२	२५४	२५६	पञ्चमम्	१००५-१२६०	१०१२	२४८	२५६	२४९	१२६०
तृतीयः	२५२	२५४	२५६	२५८	षष्ठम्	१२६१-१५१८	१०२०	२५०	२५८	४९९	१५१८
चतुर्थः	२५४	२५६	२५८	२६०	सप्तमम्	१५१९-१७७८	१०२८	२५२	२६०	७५१	१७७८
पञ्चमः	२५६	२५८	२६०	२६२	अष्टमम्	१७७९-२०४०	१०३६	२५४	२६२	१००५	२०४०
षष्ठः	२५८	२६०	२६२	२६४	नवमम्	२०४१-२३०४	१०४४	२५६	२६४	१२६१	२३०४
सप्तमः	२६०	२६२	२६४	२६६	दशमम्	२३०५-२५७०	१०५२	२५८	२६६	१५१९	२५७०
अष्टमः	२६२	२६४	२६६	२६८	एकादशम्	२५७१-२८३८	१०६०	२६०	२६८	१७७९	२८३८
नवमः	२६४	२६६	२६८	२७०	द्वादशम्	२८३९-३१०८	१०६८	२६२	२७०	२०४१	३१०८
दशमः	२६६	२६८	२७०	२७२	त्रयोदशम्	३१०९-३३८०	१०७६	२६४	२७२	२३०५	३३८०
एकादशः	२६८	२७०	२७२	२७४	चतुर्दशम्	३३८१-३६५४	१०८४	२६६	२७४	२५७१	३६५४
द्वादशः	२७०	२७२	२७४	२७६	पञ्चदशम्	३६५५-३९३०	१०९२	२६८	२७६	२८३९	३९३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाप्रवृत्तकरणम्

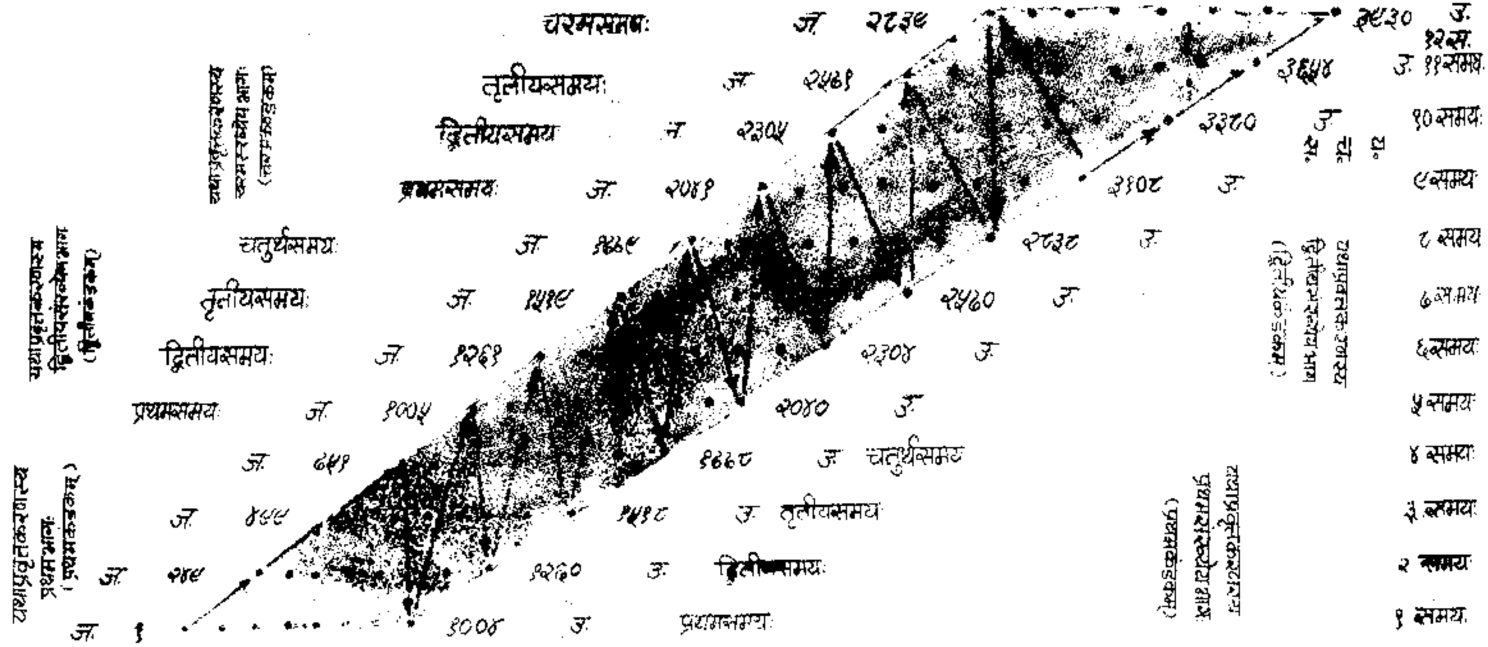

.... तिर्यक्स्थापितैरेभिर्बिन्दुभिरध्यवसायस्थानानि सूचितानि, तानि च परमार्थतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राणि, पूर्वपूर्वसमयतश्चोत्तरोत्तरसमये विशेषाधिकानि । स्थाप्यमानानि च विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति ।

ज०=तत्तत्समये प्रथमबिन्दुना यदध्यवसायस्थानं सूचितं, तस्य या विशोधिः, सा जघन्या ।

उ०=तत्तत्समयेऽन्तिमबिन्दुना यदध्यवसायस्थानं सूचितं, तस्य या विशोधिः, सोत्कृष्टा ।

शेषबिन्दुभिः सूचिताऽध्यवसायस्थानानां या विशोधिः सा मध्यमा, सा च मिथः षट्स्थानपतिता ।

असत्कल्पनया यथाप्रवृत्तकरणस्य १२ समयाः कल्पिताः, तत्संख्येयभागश्च चतुस्समयमात्रः ।

→ एतच्चिह्नमनन्तगुणतां सूचयति ।

प्रथमसमयस्य प्रथमखण्डं वर्जयित्वा शेषाणि सर्वाणि खण्डानि द्वितीयसमयेऽनुवर्तन्ते। एवं द्वितीयसमयस्य प्रथमखण्डं वर्जयित्वा शेषाणि सर्वाणि खण्डानि तृतीयसमयेऽनुवर्तन्ते। एवं यावद् द्विचरमसमयस्य प्रथमखण्डं वर्जयित्वा शेषाणि सर्वाणि खण्डानि चरमसमयेऽनुवर्तन्त इति वक्तव्यम्। प्रथमसमयवर्तिप्रथमखण्डं तथा चरमसमयवर्तिचरमखण्डं चाऽन्यत्र नानुवर्तेते, शेषाणि खण्डानि तूत्तरत्राऽनुवर्तन्ते। प्रथमसमयस्य जघन्यमध्यवसायस्थानं प्रथमं भवति तथा द्वितीयसमयस्य जघन्यमध्यवसायस्थानमेकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमं भवति। तत्र प्रथमसमयसत्कप्रथमखण्डस्य प्रथमाऽध्यवसायस्थानत एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमाऽध्यवसायस्थानस्य द्वितीयखण्डसत्काऽऽद्याऽध्यवसायस्थानत्वेनाऽनन्तगुणवृद्धं भवति, तथा तदुत्तरवर्तिखण्डस्याऽऽद्यमप्यनन्तगुणवृद्धं भवति। इदमेकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमाऽध्यवसायस्थानं प्रथमसमयस्य द्वितीयखण्डवर्तितेष्वध्यवसायस्थानं प्रथमसमयवर्तिप्रथमखण्डसत्कचरमाऽध्यवसायस्थानादप्यग्रेतनं भवतीति प्रथमखण्डस्य जघन्यलक्षणप्रथमाऽध्यवसायस्थानाच्चरमाऽष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमाऽध्यवसायस्थानस्याऽनन्तगुणवृद्धत्वेनैकोनपञ्चाशदद्विशततमस्य सुतरामनन्तगुणत्वं सिध्यति।

अत एव प्रथमसमयस्य जघन्याऽध्यवसायस्थानाद् द्वितीयसमयवर्तिजघन्याऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणवृद्धम्। एवं द्वितीयसमयस्य जघन्याऽध्यवसायस्थानात्तृतीयसमयवर्तिजघन्याऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणं वृद्धम्, एवं तृतीयसमयवर्तिजघन्याऽध्यवसायस्थानाच्चतुर्थसमयवर्तिजघन्याऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणं वृद्धं भवति। चतुर्थसमयस्य जघन्याऽध्यवसायस्थानस्यैकपञ्चाशदधिकसप्तशततमत्वेऽपि प्रथमसमयस्य चतुर्थखण्डस्य जघन्याऽध्यवसायो भवति, तथा प्रथमसमयस्य चतुर्थखण्डस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानं चतुरधिकसहस्रतमं भवति, तच्च जघन्याऽध्यवसायस्थानतोऽनन्तगुणं भवति। तत एव चतुर्थसमयवर्तिजघन्याऽध्यवसायस्थानतः प्रथमसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणवृद्धम्। पञ्चमसमयसत्कजघन्याऽध्यवसायस्थानं यत्पञ्चमखण्डस्य प्रथमं तच्चतुर्थखण्डसत्कचरमाऽध्यवसायस्थानादनन्तगुणं वृद्धम्, यतः कस्यचिदपि खण्डस्य चरमाऽध्यवसायस्थानात्तदुत्तरवर्त्तिखण्डस्य प्रथमाऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणवृद्धं भवति।

तत एव चतुर्थखण्डस्य चरमाऽध्यवसायस्थानलक्षणप्रथमसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानात्पञ्चमखण्डस्य प्रथमाऽध्यवसायरूपं पञ्चमसमयस्य जघन्यमध्यवसायस्थानमनन्तगुणवृद्धं भवति तथा पञ्चमखण्डस्य प्रथमाऽध्यवसायस्थानरूपात्पञ्चमसमयसत्कजघन्याऽध्यवसायस्थानाद् द्वितीयसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानं पञ्चमखण्डस्य चरमाऽध्यवसायस्थानत्वेनाऽनन्त-

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

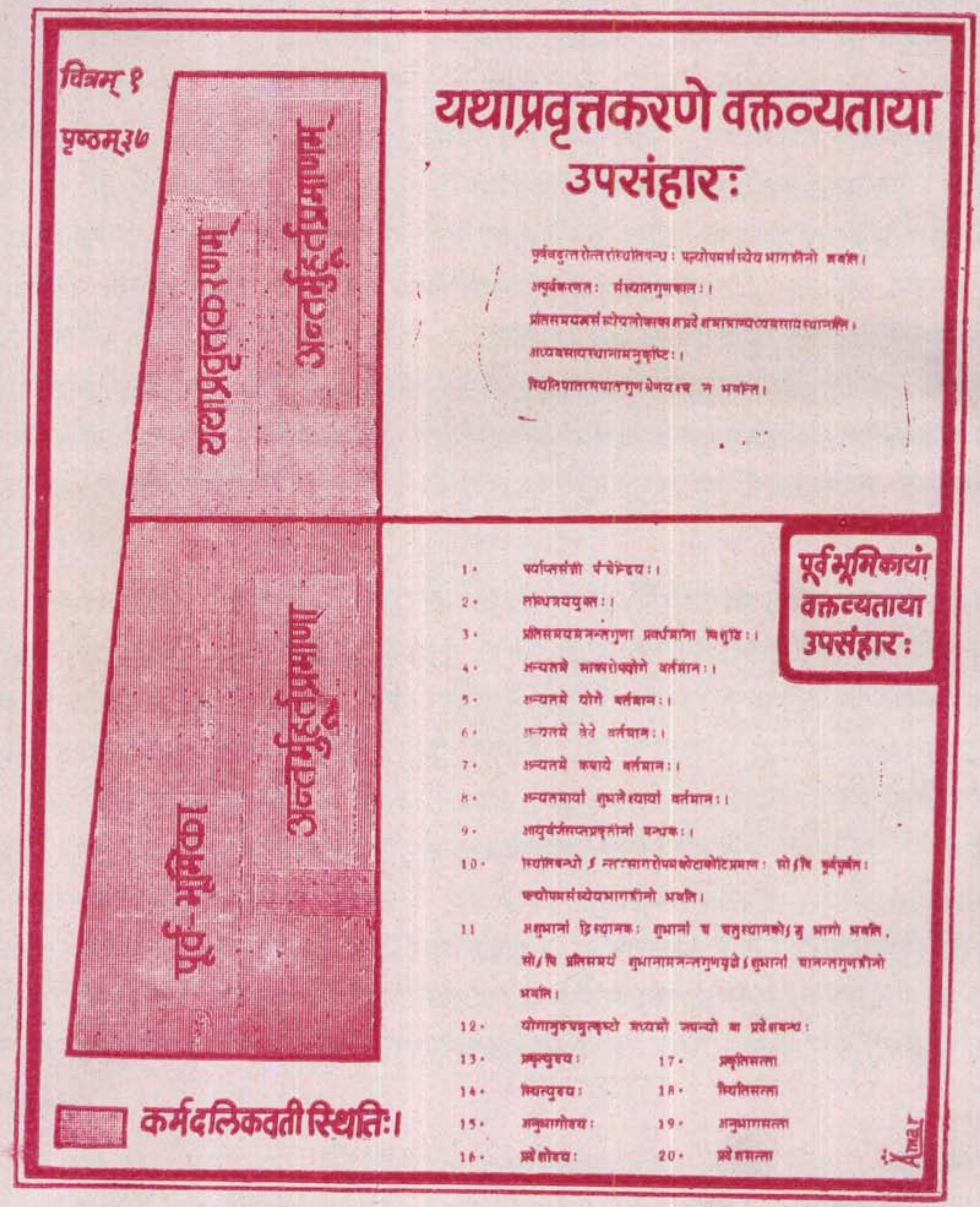
चित्रम् १
पृष्ठम् ३७
यथाप्रवृत्तकरणम्
अन्तर्मुहूर्तप्रमाणम्
पूर्वभूमिका
अन्तर्मुहूर्तप्रमाणा
यथाप्रवृत्तकरणे वक्तव्यताया उपसंहारः
पूर्ववदुत्तरोत्तरस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति।
अपूर्वकरणतः संख्यातगुणकालः।
प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राण्यध्यवसायस्थानानि।
अध्यवसायस्थानामनुकृष्टिः।
स्थितिघातरसघातगुणश्रेणयश्च न भवन्ति।
पूर्वभूमिकायां वक्तव्यताया उपसंहारः
1. पर्याप्तसंज्ञी पंचेन्द्रियः।
2. लब्धित्रययुक्तः।
3. प्रतिसमयमनन्तगुणा प्रवर्धमाना विशुद्धिः।
4. अन्यतमे साकारोपयोगे वर्तमानः।
5. अन्यतमे योगे वर्तमानः।
6. अन्यतमे वेदे वर्तमानः।
7. अन्यतमे कषाये वर्तमानः।
8. अन्यतमायां शुभलेश्यायां वर्तमानः।
9. आयुर्वर्जसप्तप्रकृतीनां बन्धकः।
10. स्थितिबन्धोऽन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणः सोऽपि पूर्वपूर्वतः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति।
11 अशुभानां द्विस्थानकः शुभानां च चतुःस्थानकोऽनुभागो भवति, सोऽपि प्रतिसमयं शुभानामनन्तगुणवृद्धोऽशुभानां चानन्तगुणहीनो भवति।
12. योगानुरूपमुत्कृष्टो मध्यमो जघन्यो वा प्रदेशबन्धः
13. प्रकृत्युदयः
14. स्थित्युदयः
15. अनुभागोदयः
16. प्रदेशोदयः
17. प्रकृतिसत्ता
18. स्थितिसत्ता
19. अनुभागसत्ता
20. प्रदेशसत्ता
कर्मदलिकवती स्थितिः।
Amar

गुणवृद्धम् । ततः षष्ठसमयसत्कजघन्यमध्यवसायस्थानं षष्ठखण्डस्याऽऽद्यत्वेनाऽनन्तगुणवृद्धं भवति । एवं यावदेकादशखण्डस्य चरमाऽध्यवसायस्थानलक्षणाऽष्टमसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानाद् द्वादशसमयस्य जघन्यमध्यवसायस्थानं द्वादशखण्डस्याऽऽद्याऽध्यवसायत्वेनाऽनन्तगुणवृद्धं वाच्यम् । ततो नवमसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानं द्वादशखण्डस्य चरमाऽध्यवसायस्थानत्वेनाऽनन्तगुणवृद्धं भवति, अत्र जघन्यवक्तव्यतायाः परिसमाप्तिः । अथ नवमसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणं वृद्धं वाच्यं त्रयोदशखण्डस्य चरमाऽध्यवसायस्थानत्वात् । एवं यावद् द्वादशसमयस्योत्कृष्टाऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणवृद्धं वाच्यम् ।

अस्य यथाप्रवृत्तकरणस्य द्वितीयं नाम 'पुव्वप्पवत्तमिइ नाम' त्ति, पूर्वप्रवृत्तमिति शेषकरणाभ्यां पूर्वं प्रवृत्तत्वात् । (पश्यन्तु पाठका यथाप्रवृत्तकरण-चित्रम्-?)

अथाऽपूर्वकरणमभिधीयते । यथाप्रवृत्तकरणे समाप्ते सम्यक्त्वाऽभिमुखोऽपूर्वकरणं प्रविशति ।

अपूर्वकरणेऽपि पूर्ववत्प्रतिसमयं विशोधेरनन्तगुणावृद्धिर्जायते, तथाऽपि यथाप्रवृत्तकरणादस्य पृथक्करणे द्वे कारणे विद्येते ।

(१) यथाप्रवृत्तकरणे तत्तत्समयवर्त्यध्यवसायस्थानानां नानाजीवाऽपेक्षयोत्तरोत्तरसमयेऽनुकृष्टिर्भवति तथेहाऽनुकृष्टिर्न भवति, किन्तु प्रतिसमयाप्राप्तान्येवाऽपूर्वाण्यध्यवसायस्थानानि प्राप्यन्ते ।

(२) यथाप्रवृत्तकरणे वक्ष्यमाणस्वरूपाः स्थितिघातादयो न भवन्ति, अत्र तु भवन्ति । इति द्वे करणे पृथक् क्रियेते ।

अध्यवसायस्थानप्ररूपणा–"परिणामट्ठाणाणं दोसुवि लोगा असंखिज्जा" इति पूर्वमुक्तं तथाऽप्यत्र विशेषतोऽध्यवसायस्थानानि निरूप्यन्ते । अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽध्यवसायस्थानानि नानाजीवाऽपेक्षयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि, तद्घटना तु पूर्ववत्कार्या तथा चाऽत्र पूर्वपूर्वसमयादुत्तरोत्तरोत्तरसमयेऽध्यवसायस्थानानि विशेषाऽधिकानि भवन्ति । एवं यावदपूर्वकरणस्य चरमसमयं वाच्यम् ।

अस्मिन्करणे सर्वाण्यध्यवसायस्थानान्युत्तरोत्तरसमयेऽप्राप्तान्येव प्राप्यन्ते, न तु यथाप्रवृत्तकरणाऽध्यवसायस्थानवत्प्राप्ताऽप्राप्तन्युभयान्यपि प्राप्यन्ते, तथाहि–प्रथमसमये यान्यध्यवसायस्थानानि प्राप्तानि द्वितीयसमये तानि न प्राप्यन्ते, अपि त्वनन्तगुणवृद्ध्या प्रवर्धमानान्यप्राप्तानि विशेषाऽधिकानि प्राप्यन्ते एवमुपर्युपरिमुखान्यनुचिन्त्यमानानि प्रतिसमयमनन्तगुण-

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

वृद्धया प्रवर्धमानान्यप्राप्तानि विशेषाधिकानि प्राप्यन्ते, । तिर्यक् च षट्स्थानपतितानि ★ एव-मुपर्यु परिमुखान्यमून्यनुचिन्त्यमानानि प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया प्रवर्धमानान्यप्राप्तानि विशेषाधिकानि प्राप्यन्ते ।

अस्य करणस्य स्थाप्यमानान्यध्यवसायस्थानानि विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति ।

तीव्रमन्दता--"बीइयस्स" इत्यादि, द्वितीयस्याऽपूर्वकरणस्य द्वितीयसमये जघन्यमपि विशोधिस्थानमनन्तरोत्कृष्टात्प्रथमसमयभाविन इत्कृष्टाद्विशोधिस्थानादनन्तगुणं वाच्यम् ।

इदमत्र हृदयम्--इह यथाप्रवृत्तकरण इवाऽऽदितो निरन्तरं जघन्यानि विशोधिस्थानान्यनन्तगुणतया न वाच्यानि किन्तु प्रथमसमये जघन्या विशुद्धि प्रथमतस्सर्वस्तोका वाच्या सा च यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाव्युत्कृष्टविशुद्धिस्थानादनन्तगुणा । 卐 ततः प्रथमसमय एवोत्कृष्टाविशोधिरनन्तगुणा ततोऽपि द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा ततोऽपि तस्मिन्नेव द्वितीयसमय उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा, ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा ततोऽपि, एवं जघन्या उत्कृष्टा च विशोधिरनन्तगणवृद्धया तावन्नेया यावदपूर्वकरणस्य चरमसमये जघन्यत उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । तिर्यग्मुखी विशोधिरत्र प्रतिसमयं षट्स्थानपतिता यथाप्रवृत्तकरणवज्ज्ञेया । तथाहि--अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयवर्तिनानाजीवाऽपेक्षयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति, तत्र कस्यचिज्जीवस्याऽध्यवसायस्थानमनन्तभागवृद्धम्, कस्यचिदसंख्येयभागवृद्धम्, कस्यचित्संख्येयभागवृद्धम, कस्यचित्संख्येयगुणवृद्धम; कस्यचिदसंख्येयगुणवृद्धम्, कस्यचिदनन्तगुणवृद्धम्, कस्यचिज्जीवस्याऽध्यवसायस्थानमनन्तभागवृद्धम्, कस्यचिदसंख्येयभागवृद्धम्, कस्यचित्संख्येयभागवृद्धम्, कस्यचित्संख्येयगुणवृद्धम्, कस्यचिदसंख्येयगुणवृद्धम्, कस्यचिदनन्तगुणवृद्धं वेत्यर्थः ।

यथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्वकरणयोरध्यवसायस्थानसत्कतीव्रतामन्दतयोर्वक्तव्यतां निरूप्याऽपूर्वकरणस्य निर्वचनमभिधित्सुराह--

---

★ टिप्पण— यथाप्रवृत्तकरणसत्कसर्वाऽध्यवसायस्थानेभ्योऽपूर्वकरणस्य सर्वाण्यध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति । उक्तं च लब्धिसारे --"यथाऽधःप्रवृत्तकरणपरिणामा व्याख्यातास्तथाऽपूर्वकरणपरिणामा व्याख्यातव्याः । अयं तु विशेषः अधःप्रवृत्तकरणपरिणामेभ्योऽसंख्येयलोकमात्रेभ्योऽपूर्वकरणपरिणामा असंख्येयलोकगुणिता भवन्ति ।"

卐 टिप्पणी-कुदो असंखलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि अंतरिदूणेदिस्से समुप्पत्ति अब्भुवगमादो इति जयधवला

निव्वयणमवि ततो से ठिइरसघायठिइबन्धगद्धा तु ।
गुणसेढी विय समगं पढमे समये पवत्तं ति ॥१२॥

निर्वचनमपि ततस्तस्य स्थितिरसघातस्थितिबन्धकाद्धा तु ।
गुणश्रेणिरपि च समकं प्रथमे समये प्रवर्तन्ते ॥ १२॥ इति पदसंस्कारः

"ततो से" त्ति, तस्याऽपूर्वकरणस्य "निव्वयणं" ति, निर्वचनम्—निश्चितमन्वर्थाऽनुयायि वचनं प्रतिपादनीयम् । तद्यथा—अपूर्वाण्यभिनवानि करणानि स्थितिघातरसघातगुणश्रेणिस्थितिबन्धादीनि निर्वर्तनानि यस्मिंस्तदपूर्वकरणम्, तथाहि—अपूर्वकरणं प्रविशज्जीवः प्रथमसमय एव स्थितिघातरसघातगुणश्रेणीः स्थितिबन्धं चाऽन्यं युगपदारभते । तथा चाऽऽह—"ठिइरस" इत्यादि, स्थितिघातो रसघातः स्थितिबन्धाऽद्धा गुणश्रेणिरपि चेत्येते चत्वारः पदार्था अभिनवाः समकं युगपत्प्रथमसमय एव प्रवर्तन्ते ।

अपूर्वकरणस्याऽन्वर्थनाम प्रतिपादयित्वा स्थितिघातं रसघातं च विविरुयासिषुराह—

उयहिपुहत्तुक्कस्सं इयरं पल्लस्स संखतमभागा ।
ठिइकण्डगमणुभागाणणंतभागा मुहुत्तंतो ॥१३॥
अणुभागकंडगाणं बहुहिं सहस्सेहिं पूरए इक्कं ।
ठिइकण्डसहस्सेहिं तेसिं बीयं समाणेइ ॥१४॥

उदधिपृथक्त्वमुत्कृष्टमितरः पल्यस्य संख्यतमभागः ।
स्थितिकण्डकमनुभागानामनन्तभागा मुहुर्त्तान्तः ॥१३॥
अनुभागकण्डकानां बहुभिः सहस्रैः पूरयेदेकम् ।
स्थितिकण्डकसहस्रैस्तेषां द्वितीयं समानयति ॥१४॥ इति पदसंस्कारः

स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागाद् "उयहिपुहुत्तुक्कस्सं" ति, उत्कर्षत उदधिपृथक्त्वं प्रभूतसागरोपमशतप्रमाणमित्यर्थः "इयरं पल्लस्स संखतमभागो" इत्यादि, जघन्यतश्च पल्योपमसंख्येतमभागमात्रं स्थितिकण्डकमुत्किरति खण्डयतीत्यर्थः, उत्कीर्य चाऽधः प्रतिसमयं तद्दलिकं प्रक्षिपति, अन्तमुहूर्तेन च कालेन तत्स्थितिकण्डकमुत्कीर्यते खण्डयत इत्यर्थः, उक्तं च पञ्चसग्रहे उपशमनाऽधिकारे-"उक्कोसेण बहुसागराणि इयरेण पल्लसंखंसं । ठितिअग्गाओ घायइ अंतमुहुत्तेण ठितिकण्डं ॥१॥" अत एवाऽन्तमुहूर्ते व्यतिक्रान्ते कण्डकप्रमाणा स्थितिः सत्तायां न्यूना भवति । ततो द्वितीयेऽन्तमुहूर्ते पुनरप्यधस्तात्पल्योपमसंख्येयभागमात्रंस्थितिकण्डकमन्तमुहूर्तेनैव कालेनोत्कीर्यते पूर्वोक्तप्रकारेण च निक्षिप्यते । एवं तावद् वाच्यं यावदपूर्वकरणस्य चरमाऽन्तमुहूर्तम् । इत्थमपूर्वकरणाऽद्धायाः प्रभूतानि स्थितिकण्डकसहस्राणि व्यतिक्रामन्ति, तथा च सत्यपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत्स्थितिसत्कर्माऽऽसीत्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं जातम्, अर्थात्संख्येयभागमात्रं भवति, नाऽधिकम्। उक्तञ्च **पञ्चसङ्ग्रहे**— **"जा करणाईए ठिई करणंते तीइ होइ संखंसो।"**

संप्रति रसघातोऽभिधीयते **"अणुभाग"** इत्यादि, अशुभानां प्रकृतीनां यदनुभागसत्कर्म, तस्याऽनन्ततमं भागं मुक्त्वा शेषानन्तानन्नुभागानन्तर्मुहूर्तेन कालेन विनाशयति, अनन्तगुणहीनं करोतीति यावत्। ततः पुनरपि द्वितीयेऽन्तर्मुहूर्ते तस्य प्राङ्मुक्तस्याऽनन्ततमस्य भागस्याऽनन्ततमभागं मुक्त्वा शेषानन्तानन्नुभागानन्तर्मुहूर्तेन कालेन विनाशयति। एवं प्रत्यन्तर्मुहूर्तमशुभप्रकृतीनामनुभागसत्कर्माऽनन्तगुणहीनं करोतीत्यर्थः। अत्र रसघातस्याऽन्तर्मुहूर्तं स्थितिघातस्याऽन्तर्मुहूर्तात्संख्येयगुणहीनं भवति। ततः **"अणुभागकण्डगाण"** इत्यादि, अनेकान्यनुभागखण्डानि सहस्राण्येकस्मिन् स्थितिखण्डे व्यतिक्रामन्ति। **"ठिइकण्डसहस्सेहिं"** इत्यादि, तेषां स्थितिखण्डानां सहस्रैः **"बीयं"** इत्यादि, द्वितीयमपूर्वकरणं समापयति=परिसमापयति। अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये स्थितिघातो रसघातश्च युगपदारभ्येते, एकस्मिंश्च स्थितिघाते सहस्राण्यनुभागखण्डानि भवन्ति। ततोऽनन्तरसमये नूतनः स्थितिघात आरभ्यते, तद् रसघातोऽपि नूतन आरभ्यते, एतेन स्थितिघाताऽऽरम्भे सति नियमतो रसघाताऽऽरम्भो भवति, किन्तु रसघातारम्भे स्थितिघाताऽऽरम्भस्याऽनैयत्यम्। तथा चाऽपूर्वकरणे परिसमाप्यमाने चरमस्थितिखण्डं चरमाऽनुभागखण्डश्च युगपत्परिसमाप्येते।

एकस्मिन् स्थितिघाताद्धायां सहस्राणि रसघातानि भवन्ति। तत्र प्रतिरसघाते यदनन्ततमभागमवशिष्यते, शेषाणि च भागानि विनाश्यन्ते तत्सर्वमसत्कल्पनया प्रदर्श्यते—

अपूर्वकरणं प्रविशतो जीवस्य १००० कोट्यः रसस्पर्द्धकानि सत्तायां भवन्ति।

स्थितिघाताद्धाः	घातितानुभागस्पर्द्धकानि	अवशिष्टानुभागस्पर्द्धकानि
प्रथमस्थितिघाताद्धायाम्	प्रथमेऽनुभागकण्डके ९०० कोट्यः	१०० कोट्यः
	द्वितीये ,, ९० ,,	१० ,,
	तृतीये ,, ९ ,,	१ कोटी
द्वितीय ,,	प्रथमे ,, ९० लक्षाणि	१० लक्षाणि
	द्वितीये ,, ९ ,,	१ लक्षम्
	तृतीये ,, ९० सहस्राणि	१० सहस्राणि
तृतीय ,,	प्रथमे ,, ९ सहस्राणि	१ सहस्रम्
	द्वितीये ,, ९ शतानि	१ शतम्
	तृतीये ,, नवतिः (९०)	दश (१०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्रकम्–१ अ

अपूर्वकरणे चित्रेण प्रदर्श्यमानः स्थितिघातः (गाथा–13-14)

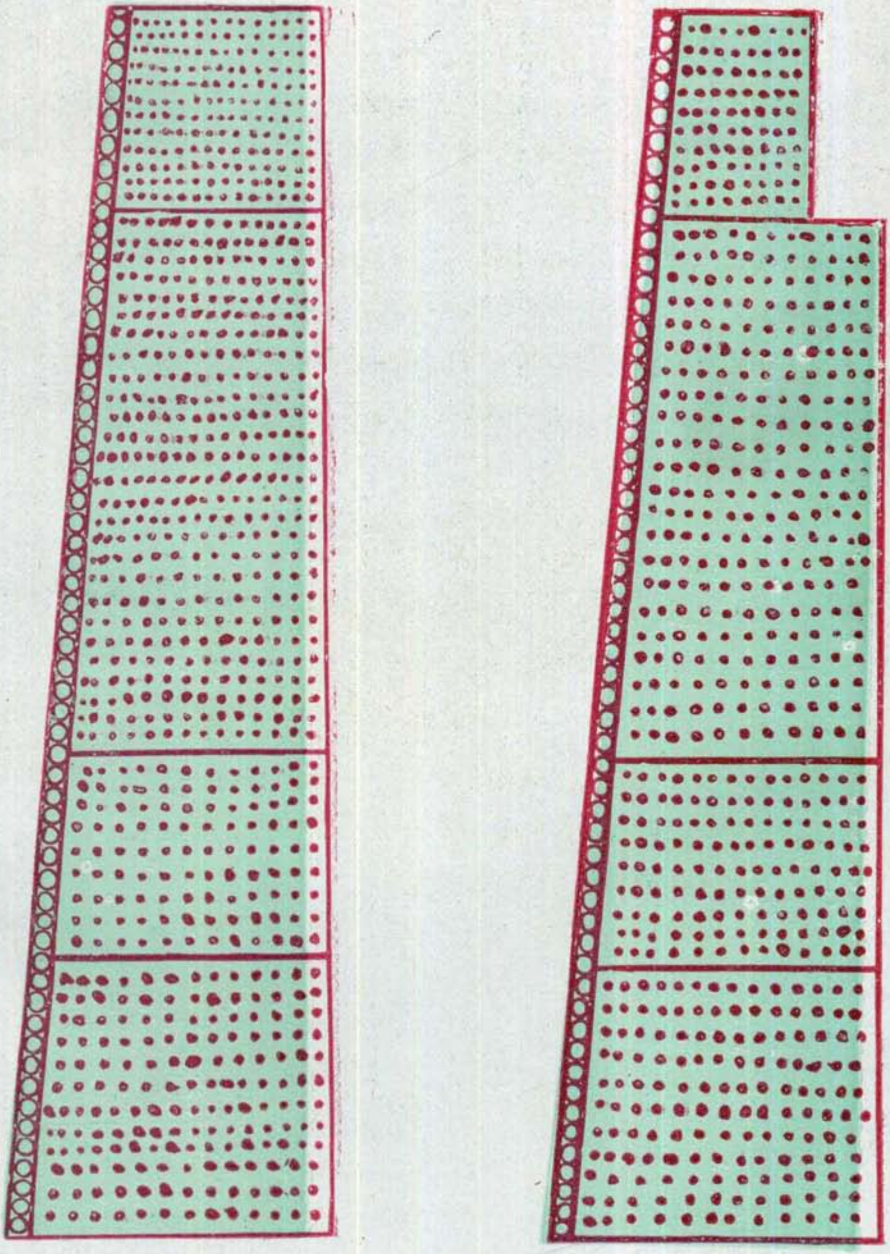

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्रकम्–१ ब

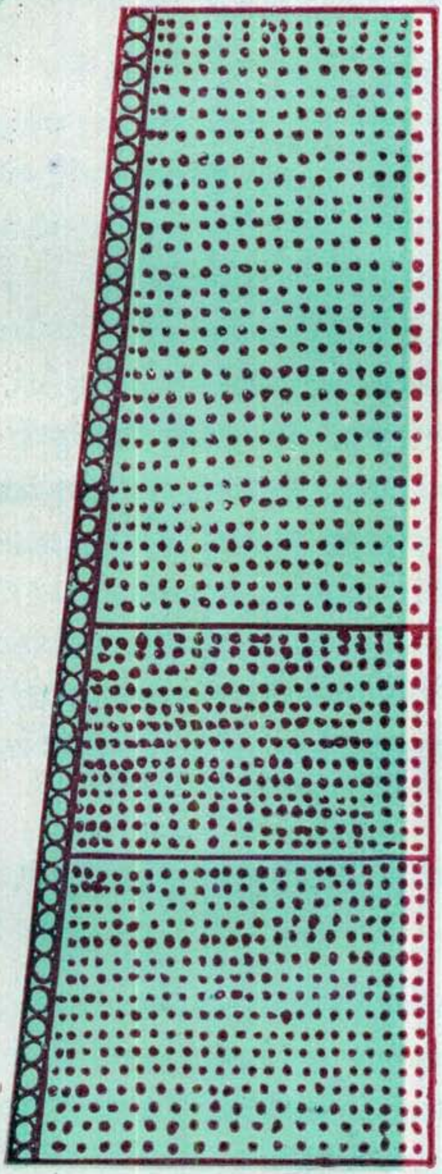

स्थितिघाताद्धाचरमसमये तत्स्थितिखण्डगतसर्वदलिकानि गृहीत्वाऽधस्तात् प्रक्षिपति,
तेन तदानीं स्थितिसत्ता खण्डप्रमाणा हीना भवति ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रानन्तराशिस्थानेऽसत्कल्पनया दश सङ्ख्या कल्पिता तस्मादनन्ततमभागो दशमो भागो ज्ञेयः । अपूर्वकरणस्य चरमसमयं यावदनेकसहस्राणि रसघाता भवन्ति, संख्यया तत्प्रमाणं च स्थितिघातप्रमाणादपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यन्तमनेकसहस्रगुणं ज्ञेयम् । प्रथमसमयाऽपेक्षया चरमसमयेऽशुभप्रकृतीनामनुभागः सत्तायामनन्तगुणो हीनो भवति, यत एकस्मिन्नेव रसघाते परिसमाप्तेऽनुभागसत्कर्माऽनन्तगुणहीनं भवति । अपूर्वकरणेऽनेकसहस्राणि रसघाताः परिसमाप्ता भवन्ति । शुभप्रकृतीनां स्थितिघातत्वेऽपि रसघातो न भवति ।

रसघाताद्धायां घातितस्पर्द्धकानां प्रमाणं दर्शयद्भिः **कलिकालजन्तुहितार्थिभिः कषायप्राभृतचूर्णिकारैरल्पबहुत्वमुक्तम्, तदत्राऽभिधीयते तद्यथा– "तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि थोवाणि (८३) अइच्छावणाफद्दयाणि अणंतगुणाणि (८४) णिक्खेवफद्दयाणि अणंतगुणाणि, (८५) आगाइदफद्दयाणि अणंतगुणाणि"** । भावार्थः पुनरयम्–(१) एकस्मिन्प्रदेशगुणहानिस्थानाऽन्तरेऽनुभागस्पर्द्धकानि स्तोकानि सत्तायां यान्यनुभागस्पर्द्धकानि, तेषु जघन्याऽनुभागस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां प्रदेशा बहवः, ततो द्वितीयवर्गणायां विशेषहीना, एवं विशेषहीना क्रमेण प्रथमवर्गणागतप्रदेशतो यत्र प्रदेशा अर्द्धा भवन्ति, तद् द्विगुणहानिस्थानमुच्यते, जघन्यरसस्पर्द्धकस्य प्रथमवर्गणाया आरभ्य द्विगुणहीनप्रदेशविशिष्टाऽनुभागवर्गणापर्यन्तानि रसस्पर्द्धकानि तेषां समुदाय एकप्रदेशगुणहानिस्थानाऽन्तरेऽनुभागस्पर्द्धकान्युच्यन्ते, तानि च स्तोकानि । (२) ततोऽपवर्तनायामतीत्थापनाऽनन्तगुणा । उपरितनरसस्पर्द्धकान्यपवर्त्य जघन्यतो यानि स्पर्द्धकान्यतिक्रम्याऽधो निक्षिपति तेषां रसस्पर्द्धकानां राशिरतीत्थापनोच्यते । सा च पूर्वतोऽनन्तगुणा । (३) ततो निक्षेपोऽनन्तगुणः । निक्षेपोऽनुभागखण्डस्याऽधस्तादतीत्थापनागतरसस्पर्द्धकानि मुक्त्वाऽधोऽवशिष्टसर्वाऽनुभागस्पर्द्धकप्रमाणरूपः, स च पूर्वतोऽनन्तगुणः । (४) आघातितानि स्पर्द्धकान्यनन्तगुणानि ।

एकस्मिन् रसघाते घातितानि रसस्पर्द्धकानि तान्याघातितानि स्पर्द्धकान्युच्यन्ते, तानि च पूर्वतोऽनन्तगुणानि भवन्ति ।

अथ स्थितिबन्धाद्धा भण्यते—अपूर्वकरणस्य प्रथमे समयेऽन्य एवाऽपूर्वोऽभिनवः स्थितिबन्धोऽभिनवाभ्यां स्थितिघातरसघाताभ्यां सार्धमारभ्यते, स च स्थितिबन्धः पूर्वतः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति । एवं प्रत्यन्तमुहूर्तं पूर्वपूर्वस्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्यः स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति । ननु प्रत्यन्तमुहूर्तं पूर्वस्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्यः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनः पूर्वभूमिकायामपि भवति, तथैवाऽत्राप्युत्तरोत्तरस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति, तर्ह्यभिनवः कथमुच्यत इति चेद् , उच्यते--यद्यपि बन्धस्याऽयं क्रमः पूर्वभूमिकायामप्यासीत् , तथाप्यपूर्वास्थितिघातादिप्ररूपणाऽवसरे पुनरभिधानं क्रियते, यतोऽस्य स्थितिबन्धस्याऽऽन्तमौहूर्तिककालः स्थितिघातकालेन तुल्यो भवति, अतोऽपूर्वाकरणे ते स्थितिबन्धाद्धाः स्थितिघाताद्धा संख्यया तुल्या भवन्ति, अपूर्वकरणे यावत्यः स्थितिघाताद्धा भवन्ति तावत्यः स्थितिबन्धाद्धा भवन्तीत्यर्थः। उक्तं च पञ्चसङ्ग्रह उपशमनाऽवसरे "करणाइए अपुव्वो जो बन्धो सो न होई जा अण्णो। बंधगद्धा सा तुल्लिगाउ ठिइकंडगद्धाए" इति हेतोरभिनवस्थितिबन्धः पुनरभिधीयते, अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये स्थितिघातस्थितिबन्धौ रसघातश्च युगपदारभ्यन्ते, तथैकस्मिन् स्थितिघाते स्थितिबन्धे च सहस्राणि रसघाता भवन्ति, स्थितिघातस्थितिबन्धौ युगपदारभ्येते युगपदेव निष्ठां यातः, अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यः स्थितिबन्धो भवति, तस्य संख्येयभागमात्रश्चरमसमये भवति, संख्येयगुणहीनो भवतीति यावत्।

अधुना गुणश्रेणेः स्वरूपमाविश्चिकीर्षुराह--

गुणसेढी निक्खेवो समये समये असंखगुणणाए ।
अद्धादुगाइरित्तो सेसे सेसे य निक्खेवो ॥१५॥

गुणश्रेणिनिक्षेपः समये समयेऽसंख्यगुणनया ।
अद्धाद्विकातिरिक्तः शेषे शेषे च निक्षेपः॥ इति पदसंस्कारः

सूत्रगाथाऽक्षरयोजना-गुणश्रेण्या निक्षेपः समये समयेऽसंख्यगुणनया पूर्वपूर्वसमयाऽपेक्षयोत्तरोत्तरोत्तरसमये वृद्ध्यात्मकया, सोऽपि च निक्षेपोऽद्धाद्विकाऽतिरिक्तोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणकालाभ्यां मनागधिककालमानस्तथाऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणसमयेष्वनुभवतः क्रमशः क्षीयमाणेषु सत्सु गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपः शेषे शेषे भवत्युपरि च न वर्धते।

इदमुक्तं भवति, गुणेन गुणकारेण श्रेणिर्दलरचना गुणश्रेणिः तत्र केन गुणकारेण विधीयते ? इत्याह "समये समये असंखगुणणाए" त्ति, प्रतिसमयमसंख्यगुणनया, उक्तञ्च **शतकनामनि पञ्चमकर्मग्रन्थे "गुणसेढी दलरयणाऽणुसमयमुदयादसंखगुणणाए"** । ननु केभ्यः स्थितिस्थानेभ्यो दलिकान्यपकृष्याऽसंख्येयगुणनया गुणश्रेणिं रचयतीत्याशङ्कापरिहारार्थं **श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वरा** आह-"**यत्स्थितिकण्डकं घातयति तन्मध्याद्** दलिकं गृहीत्वोदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तचरमसमयं यावत्प्रतिसमयमसंख्येयगुण-

यन्त्रकम्-४

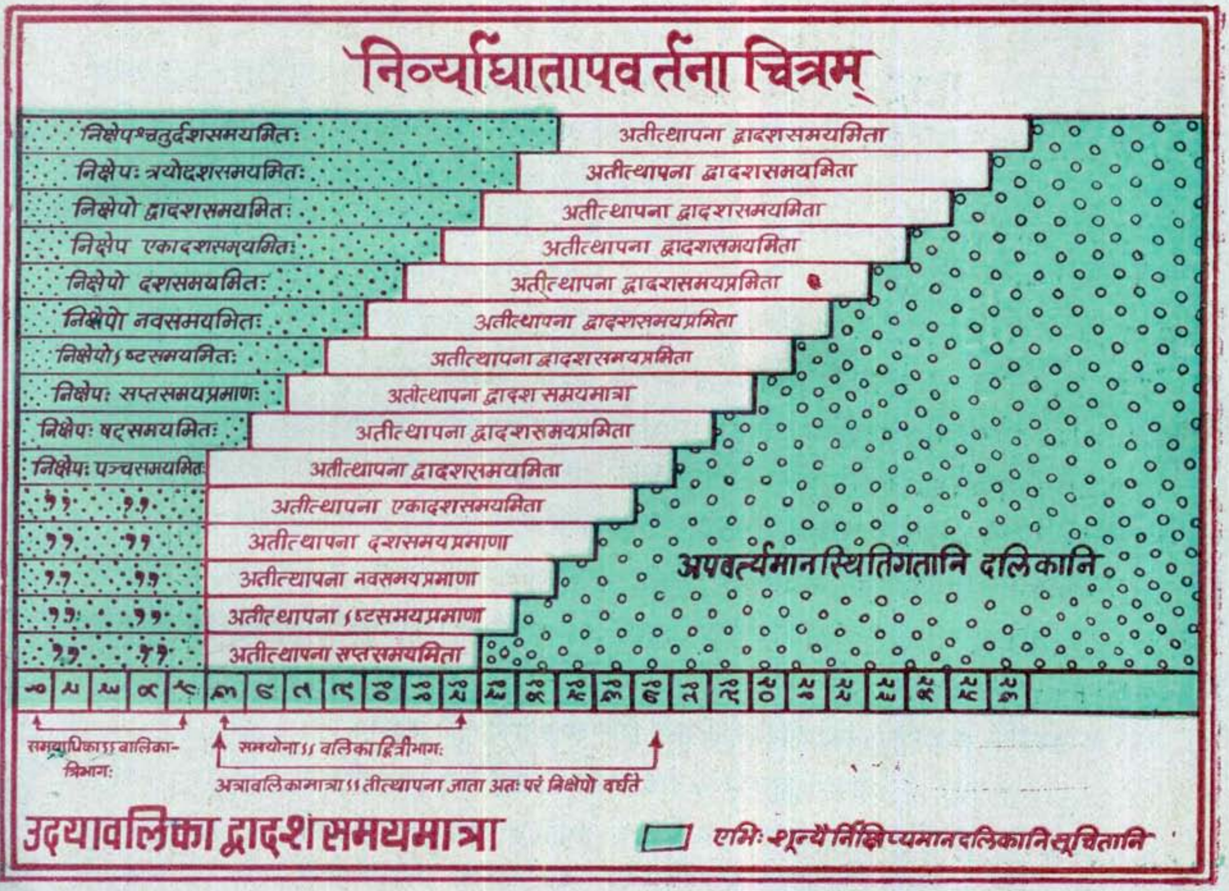

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नया क्षिपति । उपरितनस्थितेरवतारितदलिकमुदयक्षणे स्तोकं निक्षिपति, द्वितीये क्षणेऽसंख्यातगुणमित्येवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणकारेण दलरचना तावन्नेया यावद् गुणश्रेणिमस्तकमिति, तथैव पञ्चसङ्ग्रहोपशमनाकरणे "घाइयठिइओ दलियं घेत्तु घेत्तु असखगुणणाए । साहियदुकरणकालं उदयाइ रएइ गुणसेढि ॥१॥" कर्मप्रकृतिचूर्णिकारास्तु "उवरिल्लाओ ठिति उ पोग्गले घेत्तूण उदयसमए थोवा पक्खिवति बितीए समए असखेज्जगुणा एवं जाव अंतमुहुत्तम्" इति वदन्ति। अयं भावः–उपरितनस्थितेर्दलिकानि गृहीत्वा प्रक्षिपति न तु यत्स्थितकण्डकमुत्किरति तन्मात्राया यस्थिते तत्रोदयसमये स्तोकं प्रक्षिपति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं प्रक्षिपति, एव तावद्वक्तव्यं यावदन्तमुहूर्तम् । तथैवाऽन्यत्राऽपि–-

卐 उवरिल्लट्ठईहिंतो घितूणं पुग्गले उ सो खिवइ ।
उदयसमयम्मि थोवे तत्तो असंखगुणिए तु ॥१॥
बीयम्मि खिवइ समये तइए तत्तो असंखगुणिए उ ।
एवं समए समए अंतमुहूत्तं जा पुन्नं ॥२॥

तथा चोपरितनस्थितेर्दलिकाऽवतरणस्याऽप्ययमेव क्रमो वाच्यः, तथाहि––गुणश्रेणिरचनायाः प्रथमसमय उपरितनस्थितेर्दलिकं स्तोकं गृह्णाति, द्वितीये समयेऽसंख्यातगुणम् , एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणकारेण तावन्नेयं यावद् गुणश्रेणिकरणचरमसमय इति ।

तथा चोक्तमन्यत्रापि–– (पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम् २)

\+ दलियं तु गिण्हमाणो पढमे समयम्मि थोवयं गिण्हे ।
उवरिल्लठिईहिंतो बीयम्मि असंखगुणियं तु ॥१॥
गिण्हइ समए दलियं तइए समए असंखगुणियं तु ।
एवं समए समए जा चरिमो अंतसमओ त्ति ॥२॥

अयमुदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणनिक्षेप उदयवतीनां प्रकृतीनां द्रष्टव्यः । अनुदयवतीनामपि प्रकृतीनां गुणश्रेणिरचनायाः क्रमोऽयमेव वाच्यः, नवरं तासां गुणश्रेणिरचनोदयावलिकोपरितनसमयादारभ्याऽन्तमुहूर्तकाले भवति, इत्थं गुणश्रेण्यायाम उदयप्रकृत्यपेक्षयाऽऽवलिकान्यूनो भवति । (पश्यन्तु पाठकायन्त्रकम्...३) कषायप्राभृतचूर्णौ उदयवतीनां प्रकृतीनामपि गुणश्रेणिरचना उदयावलिकाया उपरितनसमयादारभ्याऽन्तमुहूर्तकाले भवतीति तेषां मते उदयवतीनामनुदयवतीनां च प्रकृतीनां दलनिक्षेपस्तुल्यः ।

卐 उपरितनस्थितेर्गृहीत्वा पुद्गलांस्तु स क्षिपति । उदयसमये स्तोकांस्ततश्चासंख्यगुणितांस्तु ॥१॥ द्वितीये क्षिपति समये तृतीयस्मिंस्ततोऽसंख्येयगुणितांस्तु। एवं समये समये अंतमुहूर्तं तु यावत्पूर्णम् ॥२॥

\+ दलिकं तु गृह्णन् प्रथमे समये स्तोकं गृह्णीयात् । उपरितनस्थिते द्वितीयेऽसंख्यगुणितं तु ॥१॥ गृह्णाति समये तृतीये समयेऽसंख्यगुणितं तु । एवं समये समये यावच्चरमोंतसमय इति ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणनिक्षेपकालो दलरचनारूपगुणश्रेणिकालोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धाद्वयाद् विशेषाऽधिको द्रष्टव्यः, तावत्कालमध्ये चाऽधस्तनोदयसमये वेदनतः क्षीणे सति शेषसमयेषु दलिकं रचयति, न पुनरुपरि गुणश्रेणिं वर्धयति। अर्थात्प्रथमसमये यद् गुणश्रेणेः शिर आसीत्, तदेव द्वितीयसमयेऽपि भवति, किन्त्वग्रे न प्रवर्धते, ततः प्रथमसमयसत्करचनाया द्वितीयसमयरचना समयन्यूना भवति, समयस्य वेदितत्वात्। एवमपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणयोर्यावन्तस्समया वेदिता भवन्ति, तावन्तस्समया गुणश्रेणिनिक्षेपान्न्यूना भवन्ति। वेदितसमयवर्जशेषाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो निक्षेपो भवतीत्यर्थः।

उक्तं च 卐

सेढीए कालमाणं दुण्ह य करणा य समहिअं जाण।
खिज्जइ सा उदएणं जं सेसं तम्मि निक्खेवो ॥१॥

अथ स्थितिघातादिषु पदार्थेषु विशेषोऽभिधीयते-

ननु यदोपरितनस्थितौ स्थितिघातो भवति, तदा तद्व्यतिरिक्तस्थितौ निर्व्याघातभाव्यपवर्तना भवति, उत न? यदि भवति, तर्हि कुत्र? इति चेद्, उच्यते-स्थितिघातो नाम व्याघातभाव्यपवर्तना। अपवर्तना खलु द्विधा-व्याघातभाविनी निर्व्याघातभाविनी च। तत्र व्याघातभाविन्यपवर्तनास्थितिघातयोर्नाम्नैव भिन्नत्वं पदार्थेन त्वभिन्नत्वम्। अर्थात् स्थितिघातस्य व्याघातभाव्यपवर्तनात्वेन व्यपदेशो भवति। उक्तं च "**ठिइघाओ एत्थ होइ वाघाओ**" तत्स्वरूपं तु स्थितिघाताऽवसरे दर्शितम्। द्वितीया निर्व्याघातभाव्यपवर्तना, सा चोदयावलिकावर्जसर्वस्थितिस्थानकेषु भवति। तत्र निर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां स्थितेर्घातो न भवति, अपि तूदयावलिकायां गताः स्थितयः सकलकरणायोग्या इति कृत्वोदयावलिकावर्जप्रत्येकस्थितिस्थानात्कतिपयानि दलिकानि गृहीत्वाऽऽवलिकामात्रां स्थितिमतिक्रम्याऽधस्तनसर्वस्थितिस्थानकेषु प्रक्षिपति, अतिक्रम्यमाणा स्थितिरतीत्थापना इति व्यपदिश्यते।

अतिस्थाप्यतेऽतिक्रम्यते या स्थितिः, सा अतीत्थापना "**णिवेत्त्यासश्रन्थघट्टवन्देरनः**" (सिद्धहेम ५।३।११३) इति सूत्रेण कर्मणि 'अन' प्रत्ययः। 'अन्' प्रत्ययस्य स्त्रीवृत्तित्वात् "**आत्**" (सिद्धहेम० २।४।१८) इति सूत्रेण 'आप्' प्रत्यय। तत आवलिकामात्रस्थितिरतीत्थापना भवति, किन्तूदयावलिकाया या उपरितना समयमात्रा स्थिति, तस्या दलिकान्यपवर्तयन्नुदयावलिकाया उपरितनौ द्वौ त्रिभागौ समयोनावतिक्रम्याऽधस्तने समयाऽधिके तृतीये भागे निक्षिपति, एष जघन्यो निक्षेपः। निक्षिप्यतेऽस्मिन्निति निक्षेपः "**भावाऽकर्त्रोः**" (सिद्धहेम० ५।३।१८)

छाया 卐-श्रेणेः कालमानं द्वयोः करणयोः समाधिकं जानीहि। क्षीयते सोदयेन यच्छेषं तस्मिन्निक्षेपः॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्रकम्-३

अपूर्वकरणप्रथमसमये द्वितीयसमये चानुदयवतीनां प्रकृतीनां गुणश्रेणिः

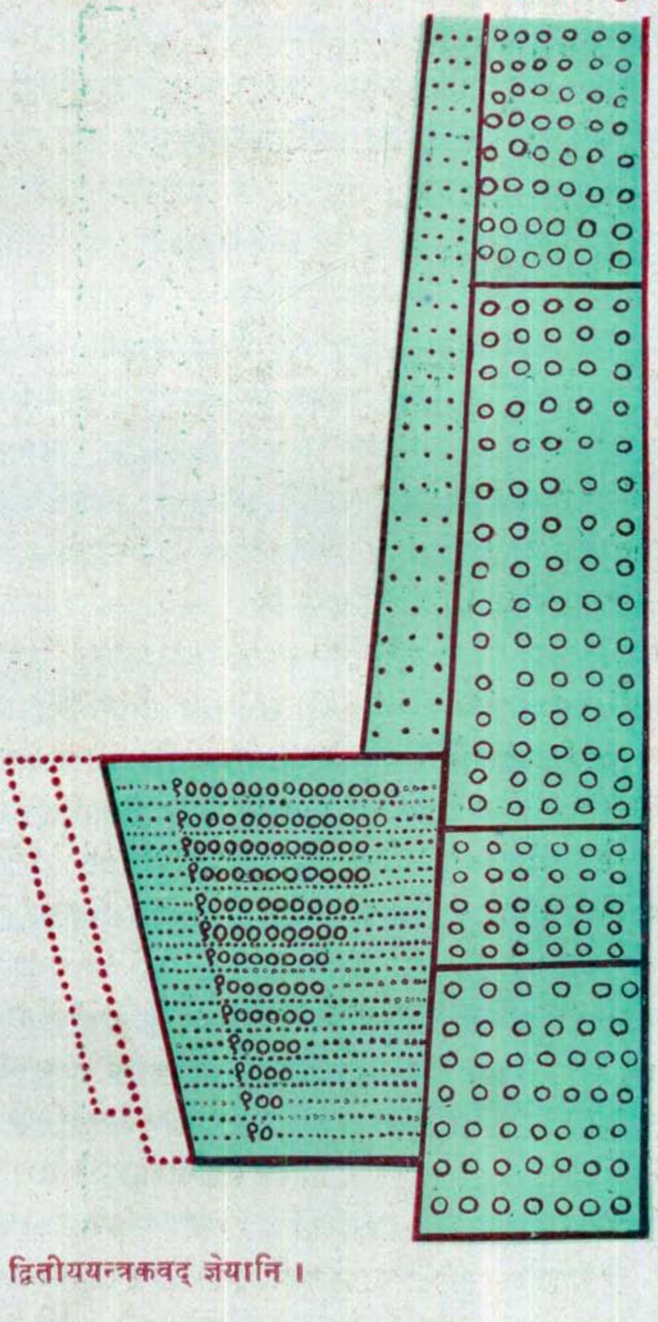

उदयावलिकावर्जकरणाद्युदयकालतो विशेषाधिको गुणश्रेण्याम: ।

उदयावलिका—

सूचना—शेषसंकेतानि द्वितीययन्त्रकवद् ज्ञेयानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति सूत्रेणाऽधिकरणे 'घञ्'। तथा जघन्याऽतीत्थापनावलिकाया द्वौ त्रिभागौ समयोनौ भवति। यदोदयावलिकामस्त्कोपरितनद्वितीयसमयस्थितिगतानि दलिकान्यपवर्त्यावलिकाया द्वौ त्रिभागौ वर्जयित्वाऽधस्तने समयाऽधिके तृतीये भागे निक्षिपति, तदाऽतीत्थापना प्रागुक्तप्रमाणा समयाऽधिका भवति, निक्षेपस्तु तावन्मात्र एव। यदोदयावलिकाया उपरितनात्तृतीयस्थितिस्थानकाद् दलिकान्यपवर्त्यन्ते, तदा प्रागुक्तमानाऽतीत्थापना द्विसमयाऽधिका भवति, आवलिकाया द्वौ त्रिभागौ समयाऽधिकाऽतीत्थापना भवतीत्यर्थः। निक्षेपस्तु तावानेव। एवमतीत्थापना प्रतिसमयं तावद् वर्धयितव्या, यावदावलिका परिपूर्यते, निक्षेपस्तु तावन्मात्र एवाऽनुवर्तते, ततः परमतीत्थापना सर्वत्र तावन्मात्रैव प्रवर्तते, निक्षेपस्तु वर्धते।

अयं भावः--उदयावलिकामस्त्कोपरितनाऽऽवलिकायाः समयाधिकस्य त्रिभागस्योपरितनसमयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य समयाऽधिकाऽऽवलिकातृतीयभागपर्यन्तरूपजघन्यनिक्षेपे प्रक्षिप्यन्तेऽतीत्थापना चाऽवलिकाप्रमाणा भवति। तदुपरितनसमयस्य दलिकान्यतीत्थापनारूपाऽऽवलिकामतिक्रम्य द्विसमयाऽधिकोदयावलिकामस्त्कतृतीये भागे निक्षिपति। एवमुत्तरोत्तरनिक्षेप एकैकसमयप्रमाणो वर्धयितव्यः। तृतीयाऽऽवलिकायाः प्रथमसमयस्य दलिकान्यतीत्थापनारूपामधस्तनद्वितीयाऽऽवलिकामतिक्रम्य प्रथमाऽऽवलिकायामर्थादुदयावलिकायां निक्षिप्यन्ते। एवं तृतीयाऽऽवलिकाया अग्रेतनसमयस्य दलिकान्यतीत्थापनारूपामावलिकामतिक्रम्य समयाऽधिकोदयावलिकायां निक्षिप्यन्ते। एवमपवर्त्यमानचरमस्थितिस्थानकस्य दलिकान्यतीत्थापनारूपामावलिकामतिक्रम्य शेषसर्वस्थितिस्थानकेषु प्रक्षिप्यन्ते। तत एव निर्व्याघातेऽपवर्तनाऽधिकार उत्कृष्टनिक्षेपः समयाऽधिकाभ्यां द्वाभ्यामावलिकाभ्यां न्यूनोत्कृष्टस्थितिरुच्यते। तथाहि--कस्यचिदपि कर्मण उत्कृष्टस्थितिं बद्ध्वा बन्धाऽऽवलिकाऽन्तर्गतं कर्म सकलकरणाऽयोग्यमिति कृत्वा बन्धाऽऽवलिकायां व्यतिक्रान्तायां सत्यां तत्कर्माऽपवर्त्यते नाऽर्वाक्। तत्र यदा सर्वोपरितनस्थितिस्थानमपवर्तयति, तदाऽतीत्थापनारूपाऽऽवलिकामात्रमधोऽवतीर्याऽधस्तनेषु सर्वेष्वपि स्थितिस्थानेषु निक्षिपति। तस्मादुत्कृष्टो निक्षेपोऽपवर्त्यमानस्थितिसमयरहिता बन्धावलिकातीत्थापनावलिकारहिता च सर्वाऽपि कर्मस्थितिः। ततो निर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां समयाऽधिकेनाऽऽवलिकाद्वयेन न्यूनोत्कृष्टनिक्षेपो भवति। उक्तं पञ्चसङ्ग्रहेऽपवर्तनाऽधिकारे--

समयाहियइत्थवणा बंधावलिया य मोत्तुं णिक्खेवो।
卐 कम्मठिइबन्धोदयवलिया मोत्तु ओवट्टे ॥१॥

छाया- 卐समयाधिकातिस्थापना बंधावलिकां च मुक्त्वा निक्षेपः।
कर्मस्थितिबंधोदयावलिकां मुक्त्वापवर्तयति ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुते यदोपरितनस्थितिषु स्थितिघातरूपव्याघातभाव्यपवर्तना भवति, तदा घात्यमान-खण्डवर्जशेषासु स्थितिषु निर्व्याघातभाव्यपवर्तनाऽपि भवति, तन्निर्देशस्त्वनयाऽपवर्तनया-स्थितेर्घाताऽभावेन स्थितिसत्कर्मणो न्यूनताऽभावाच्च कृतः ।

असत्कल्पनयाऽत्र निर्व्याघातभाव्यपवर्तनाया वक्तव्यता प्रदर्श्यते । अत्राऽऽवलिका द्वादशसमयप्रमाणा बुद्धावारोप्यते, आवलिकासमयानां कृतयुग्मसंख्याकत्वात्

अथावलिकाया उपरितनस्य त्रयोदशस्य समयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य पञ्चसु समयेषु क्षिप्यन्ते समयाधिकावलिकात्रिभागस्य जघन्यनिक्षेपत्वादतीत्थापना षष्ठसमयादारभ्य द्वादशसमयपर्यन्ता सप्तसमयप्रमाणा समयोनावलिकाद्वित्रिभागयोजघन्याऽतीत्थापनात्वात् । ततश्चतुर्दशस्य समयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य पञ्चसमयेषु प्रक्षिप्यन्ते, अतीत्थापना षष्ठसमयादारभ्य त्रयोदशसमयपर्यन्ताऽष्टसमयप्रमाणा पञ्चदशस्य समयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य पञ्चसमयेषु प्रक्षिप्यन्ते, अतीत्थापना षष्ठसमयादारभ्य चतुर्दशसमयपर्यन्ता नवसमयप्रमाणा। षोडशसमयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य पञ्चसमयेषु निक्षिप्यन्ते, अतीत्थापना षष्ठसमयादारभ्य पञ्चदशसमयपर्यन्ता दशसमयप्रमाणा । सप्तदशसमयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्या पञ्चसमयेषु निक्षिप्यन्ते, अतीत्थापना षष्ठसमयादारभ्य षोडशसमयपर्यन्तैकादशसमयप्रमाणा । अष्टादशसमयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य पञ्चसमयेषु निक्षिप्यन्ते, अतीत्थापना च षष्ठसमयादारभ्य सप्तदशसमयपर्यन्ता द्वादशसमयप्रमाणा भवति, द्वादशसमयप्रमाणाऽऽवलिका पूर्णा भवति । अतः परं निक्षेपः प्रवर्धतेऽतीत्थापना तु तावत्येव । एकोनविंशतितमसमयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य षष्ठसमयपर्यन्तेषु षट्सु समयेषु निक्षिप्यन्ते, अतीत्थापना सप्तमसमयादारभ्याऽष्टादशसमयपर्यन्ता द्वादशसमयप्रमाणा । विंशतितमसमयस्य दलिकान्युदयसमयादारभ्य सप्तमसमयपर्यन्तेषु सप्तसु समयेषु निक्षिप्यन्ते, अतीत्थापनाऽष्टमसमयादारभ्यैकोनविंशतितमसमयपर्यन्ता द्वादशसमयप्रमाणा एवमग्रेऽपि—अतीत्थापनाऽऽवलिकामात्रा निक्षेपस्थापानन्तं वृद्धिः ।

पश्यन्त पाठका यन्त्रकम्–४

ननु स्थितिघातस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति, तत्राऽन्तर्मुहूर्तसत्कद्विचरमसमयपर्यन्तसत्तास्थस्थितेन्यूनत्वं न दृश्यते । किन्तु यदा चरमसमये कण्डकप्रमाणायाः स्थितेः शेषाणि सर्वाणि दलान्युत्कीर्यन्ते, तदा स्थितिसत्कर्मणः कण्डकप्रमाणा स्थितिन्यूना भवति । ततो द्विचरमसमयपर्यन्तं निर्व्याघातभाव्यपवर्तना तथा चरमसमये व्याघातभाव्यपवर्तना प्रोच्यते, आहोस्विन्न ? इति चेद् , अत्रोच्यते–अन्तर्मुहूर्तकालस्य द्विचरमसमयपर्यन्तं निर्व्याघातभाव्यपवर्तना वक्तुं शक्यते, किन्तु सामान्यनिर्व्याघातभाव्यपवर्तनातोऽत्र विशेषः। सामान्यत्वं करणकालरहितकालेऽपवर्तनात्वं करणकाले तु घात्यमानव्यतिरिक्तस्थितौ प्रवर्तमानाऽपवर्तनात्वं च ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्रकम्–२

अपूर्वकरणप्रथमसमये द्वितीयसमये चोदयवतीनां प्रकृतीनां गुणश्रेणिः

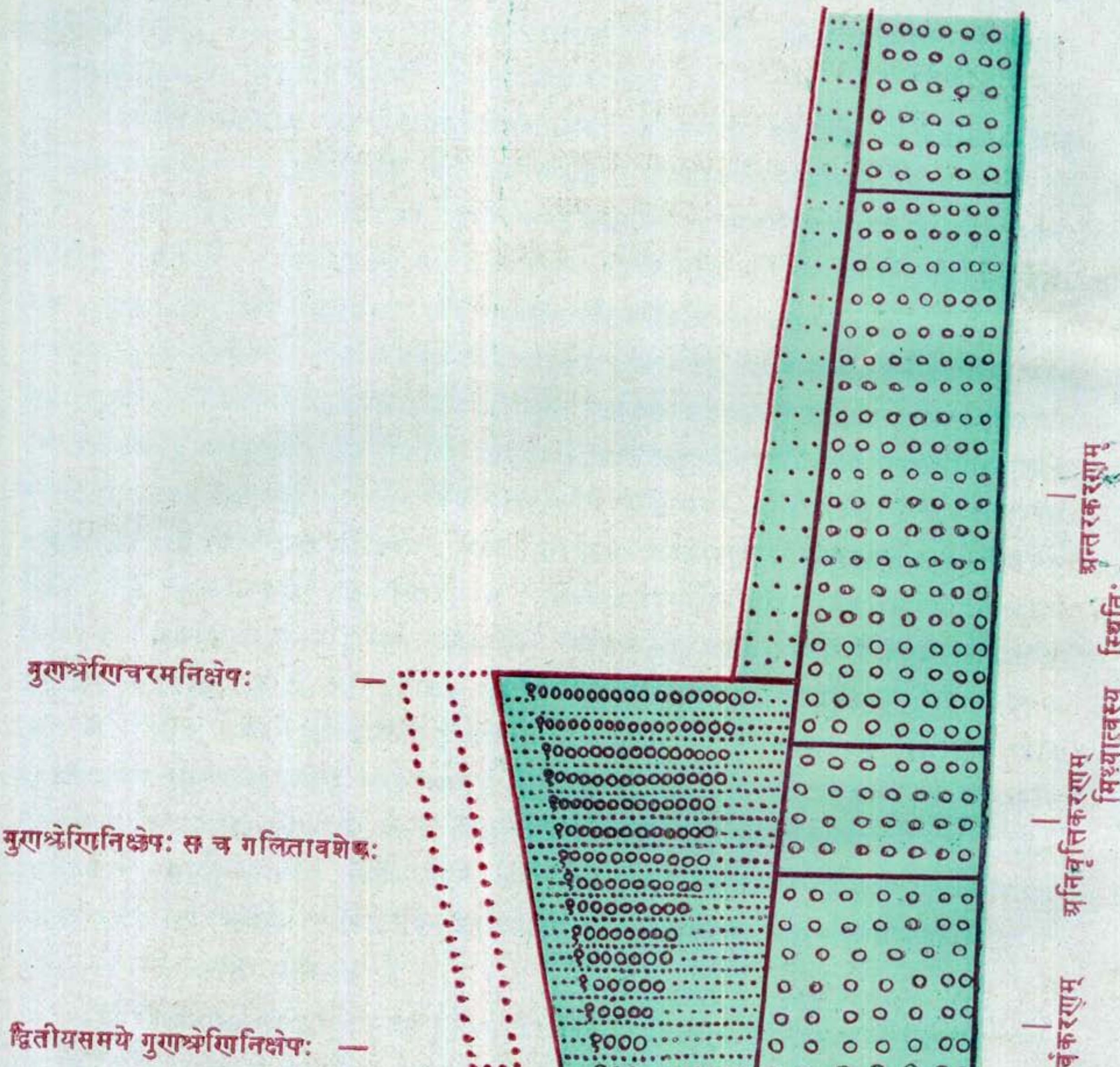

सङ्केत विवरणम्—

(1) ००० एभिः शून्यैर्गुणश्रेणितः प्राग् निषेकरचना सूचिता ।

(2) .... एतैर्बिन्दुभिरपूर्वकरणे गुणश्रेण्यां दीयमानं दलं सूचितम् ।

(3) दशसंख्या 10 अत्राऽसंख्येयत्वेन कल्पिता, तेन गुणश्रेण्यामुत्तरोत्तरनिषेके दशगुणं दलं दीयते, वस्तुतस्त्वसंख्येयगुणं दलं दीयते । गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽसंख्येयगुणहीनं दलं तदुपरितने निषेके प्रक्षिपति, ततः सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण तावत् प्रक्षिपति, यावदतीत्थापनाऽप्राप्ता भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सामान्यनिर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां प्रत्येकस्थितितः प्रतिसमयमुत्कीर्यमाणानि दलानि पूर्वपूर्वसमयादुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणानि भवन्तीति नियमो न भवति, अत्र तु नियमतस्तत्तद्घात्यमानस्थितिकण्डकमध्यप्रत्येकस्थितितः पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये स्थिति-घाताद्धाचरमसमयपर्यन्तं दलिकान्यसंख्येयगुणान्युत्कीर्यन्ते ।

(२) तथा च पञ्चमषष्ठगुणस्थानवर्तिगुणश्रेणिभ्यां विना सामान्यनिर्व्याघातभाव्यपव-र्तनाप्रवर्तनकाले विवक्षितसमये यानि दलिकान्युत्कीर्यन्ते, तेभ्य उद्वर्तनायां यावद् दलं भवति, ततो विशेषहीनं वा समानं वा विशेषाऽधिकं वा दलमपवर्तनायां भवति, अत्र तूद्वर्तनागतदलि-कतोऽपवर्तनायामसंख्यातगुणं भवति ।

उक्तञ्च कषायप्राभृते-

वड्डीदु होदि हाणी अधिगा हाणीदु तह अवट्ठाणं ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥१६०॥

तच्चूर्णि— विहासा जं पदेसग्गमुक्कड्डिज्जदि सा वड्ढी त्ति सण्णा, जमो-कड्डिज्जदि सा हाणि त्ति सण्णा, जं ण ओक्कड्डिज्जदि ण उक्कड्डिज्जदिण पदेसग्गं तमवट्ठाणं त्ति सण्णा, एदाए सण्णाए एक्कं ठिदिं वा पडुच्च सव्वाओ वा ट्ठिदिओ पडुच्च अप्पाबहुगं तं जहा—(१) वड्ढी थोवा (२) हाणि असंखेज्ज-गुणा (३) अवट्ठाणमसंखेज्जगुणं, अक्खवगाणुवसामगस्स पुण सव्वाओ ट्ठिदिओ एगट्ठिदिं वा पडुच्च वड्डीदो हाणी तुल्ला वा विसेसहिया वा विसेसहीणा वा अवट्ठाणमसंखेज्जगुणं ।

(३) तथा सामान्यनिर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां सत्तागतदलं पल्योपमाऽसंख्येयभाग-रूपेण भागाकारेण विभज्योत्किरति, अत्राऽपि घात्यमानस्थितिगतं दलं विवक्षितसमये पल्यो-पमाऽसंख्येयभागमात्रेण भागाकारेण विभज्योत्किरति । किन्तु पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये स्थितिघाताद्धा द्विचरमसमयपर्यन्तं भागाकारोऽसंख्येयगुणहीनो भवति । इत्थं सामान्यनिर्व्याघा-तभाव्यपवर्तनातोऽत्र स्थितिघाताद्धायाः प्रथमसमयात्प्रभृतिप्रवर्तमाननिर्व्याघातभाव्यपवर्तनाया विशेषस्य सत्त्वात् सामान्यनिर्व्याघातभाव्यपवर्तना नोच्यते, किन्तु निर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां सत्यामपि **"कारणे कार्योपचार"** इति न्यायेन स्थितिघाताद्धारूपाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालस्य प्रथमसमयादपि व्याघातभाव्यपवर्तना नाम्ना स्थितिघात इति उपचर्यते । तथाहि—स्थितिघाताद्धा-लक्षणाऽन्तर्मुहूर्तकालस्य चरमसमये व्याघातभाव्यपवर्तनारूपस्थितिघातः कार्यः, स्थितिघाताद्धा-रूपाऽन्तर्मुहूर्तकालस्य तु प्रथमसमयादारभ्य प्रवर्तमाननिर्व्याघातभाव्यपवर्तना स्थितिघाताद्धा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरमसमये प्रवर्तमानव्याघाताभाव्यपवर्तनायाः कारणम्। तत्र कारणे=निर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां कार्यस्य=व्याघातभाव्यपवर्तनारूपस्थितिघातस्योपचारो भवतीति स्थितिघाताद्धारूपाऽन्तर्मुहूर्तकालस्य प्रथमसमयात्प्रभृति द्विचरमसमयपर्यन्तं निर्व्याघातभाव्यपवर्तनायां सत्यामपि स्थितिघातत्वेन व्यपदेशो भवति।

ननु घात्यमानस्थितेर्दलिकान्यावलिकालक्षणामतीत्थापनां विमुच्य सर्वस्थितिस्थानेषु क्षिप्यन्ते, उत तत्र कश्चिद्विशेषोऽस्ति ? उच्यते—कर्मप्रकृतिचूर्णौ तु घात्यमानस्थितेर्दलिकानि कुत्र प्रक्षिप्यन्ते, इति न निर्दिष्टं किन्तु श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वरैर्न्यायविशारदैश्च न्यायाम्भोधिश्रीमद्यशोविजयोपाध्यायैस्तथा सप्ततिकाचूर्णिकारैर्निर्दिष्टमेतद्यत्स्थितिखण्डकमुत्कीर्यते तस्य दलानि याऽधस्तनस्थितिं न खण्डयिष्यति तस्यां प्रक्षिपति। तथा चाऽऽहुः श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वराः—"जघन्येन पुनः पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिकण्डकमुत्किरति, उत्कीर्य च या स्थितिरधो न खण्डयिष्यति, तत्र तद्दलिकं प्रक्षिपति"।

तथैव श्रीमदुपाध्यायवृत्तौ "स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागादुत्कर्षेण उदधिपृथक्त्वं प्रभूतसागरोपमप्रमाणम्, जघन्येन च पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिकण्डकमुत्किरति खण्डयतीत्यर्थः। उत्कीर्य च या स्थितिरधो न खण्डयति, तत्र तद्दलिकं प्रक्षिपति। तथा चोक्तं सप्ततिकाचूर्णौ अनन्तानुबन्ध्युपशमनाऽधिकारे "तत्थ ठितिघाओ नाम ठिदिसंतकम्मस्स अग्गगाओ उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं जहण्णेणं पलिओवमस्स (अ) संखेज्जभागे ठिति छिंदित्तु तं दलियं हेट्ठओ जाओ ट्ठिओ न खंडेति तत्थ छुभंति" इति।

तथा शतकनामकपञ्चमकर्मग्रन्थवृत्तौ (नव्यशतकवृत्तौ) श्रीमद्भट्टारकैर्देवेन्द्रसूरीश्वरैरप्युक्तम् "तत्र स्थितिघातो नाम "स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागादुत्कर्षतः प्रभूतसागरोपमशतपृथक्त्वमात्रं जघन्यतः पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिखण्डं खण्डयति तद्दलिकं चाऽधस्ताद्यां स्थितिं न खण्डयति तत्र प्रक्षिपति।" इति।

एतानि सर्वाण्यक्षराणि ज्ञापयन्ति—यदुत्कीर्यमाणानि दलान्यघात्यमानस्थितौ निक्षिप्यन्ते, किन्तु घात्यमानस्थितौ न प्रक्षिप्यन्ते। कषायप्राभृतचूर्णिकारास्तु—"वाघादेण अइत्थावणा एक्का जेणावलिया अदिरित्ता होई। तं जहा ट्ठिदिघादकरंतेण खंडयमागाइदं तत्थ जं पढमसमए उक्कीरदिपदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स आवलियाए अइच्छावणा। एवं जाव दुचरिमसमयं अणुक्किण्णं खंडयंति। चरिमसमए जा खंडयस्स अग्गट्ठिदि तिस्से अइच्छावणा खंडयसमयूणं। एसा उक्कसिया अइच्छावणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाघादे ।" इति वदन्ति । भावार्थः पुनरयम्——व्याघातभाव्यपवर्तनायामपि द्विचरमसमयपर्यन्तमेकावलिकाऽतीत्थापना, अर्थात्स्थितिकण्डक उत्कीर्यमाणे यावत्स्थितिघाताद्धारूपाऽन्तमुहूर्तकालस्य द्विचरमसमयं दलिकनिक्षेपोऽतीत्थापनाऽऽवलिकावर्जसर्वस्थितौ * भवति, तस्मादुत्कीर्यमाणे खण्डेऽपि दलिकनिक्षेपो भवतीत्यर्थः ।

इदमुक्तं भवति । यस्मात्स्थितिस्थानकाद् दलिकोत्कीर्णं भवति, ततोऽधस्तनाऽऽवलिकावर्जसर्वस्थितिस्थानकेषु दलिकानि प्रक्षिप्यन्ते । तथाहि——अपवर्त्यमानसत्तागतचरमस्थितिस्थानकस्य दलिकान्यतीत्थापनारूपामावलिकां विमुच्य घात्यमानस्थितिस्थानकेष्वन्येषु च स्थितिस्थानकेषु निक्षिप्यन्ते । ततः समयाधिकाऽऽवलिकामात्रेषु स्थितिस्थानकेषु न निक्षिप्यन्ते । व्याघातभाव्यपवर्तनायां स्थितिघाताद्धारूपाऽन्तमुहूर्तकालस्य चरमसमये तु कण्डकप्रमाणायाः स्थितेन्यूनत्वं भवतीति कृत्वा चरमसमये घात्यमानखण्डस्य चरमस्थितिस्थानकस्य दलिकानि समयोनकण्डकप्रमाणस्थितिरूपाऽतीत्थापनामतिक्रम्याऽधस्तनाऽघात्यमानस्थितिस्थानकेषु क्षिप्यन्ते । तथा घात्यमानखण्डसत्कद्विचरमस्थितिस्थानकस्य दलिकानि द्विसमयोनकण्डकप्रमाणस्थितिरूपाऽतीत्थापनामतिक्रम्यादधस्तनाऽघात्यमानस्थितिस्थानकेषु क्षिप्यन्ते । तथा घात्यमान खण्डसत्कद्विचरमस्थितिस्थानकस्य दलिकानि द्विसमयोनकण्डकप्रमाणस्थितिरूपाऽतीत्थापनामतिक्रम्यऽधस्तनऽघात्यमानस्थितिस्थानकेषु क्षिप्यन्ते । एवं पूर्वपूर्वाऽपेक्षयोत्तरोत्तरऽधस्तनस्थितेर्दलिकानामतीत्थापना न्यूना भवति, यावद्घात्यमानकण्डकस्याऽधस्तनसमयाऽधिकप्रथमाऽऽवलिकायाश्चरमसमयस्य दलिकान्यावलिकाप्रमाणामतीत्थापनां विमुच्याऽधस्तनस्थितिस्थानकेषु निक्षिप्यन्ते ।

ततोऽधस्तनसर्वस्थितिस्थानदलान्यावलिकारूपामतीत्थापनां विमुच्याऽधस्तनस्थितिस्थानकेषु प्रक्षिप्यन्त इति सिद्धम् , स्थितिघाताद्धारूपाऽन्तमुहूर्तकालस्य द्विचरमसमयपर्यन्तं घात्यमानस्थितिस्थानकेष्वपि दलिकनिक्षेपो भवति, इति कषायप्राभृतचूर्णिकृद्महर्षेः श्रीमन्मलयगिरिपादानां च द्वेऽपि परस्परं मताऽन्तरे ज्ञातव्ये । यद्वा याः स्थितीरधो न खण्डयति, तत्र तद्दलिकं प्रक्षिपतीत्यनेनेदं ज्ञातव्यम् । स्थितिघाताद्धारूपाऽन्तमहूर्तकालस्य चरमसमय एव स्थितेन्यूनत्वं भवतीति तत्र चरमसमयस्य विवक्षा क्रियते, यतो द्विचरमसमयपर्यन्तं कण्डकप्रमाणस्थितावुत्कीर्यमाणायामपि सत्तागतस्थितेन्यूनत्वं न भवतीति कृत्वा घात्यमानस्थितौ

टिप्पणी * कषायप्राभृतस्य जयधवलाटीकायामनुभागसङ्क्रमाऽधिकारेऽप्युक्तम्—उक्कस्साऽणुभागखंडए आघाइदे दुचरिमहेट्ठिमकालेसु अंतमुहुत्तमंतिसु सव्वत्थ जहण्णाइच्छावणो चेव पुव्वुत्तपरिमाणा होइ तक्काले वाघादाभावादो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिकनिक्षेपे न कश्चिद् दोषः । चरमसमये च कण्डकप्रमाणस्थितिसत्कर्मणोऽन्मुहूर्तत्वं भवतीति घात्यमानस्थितौ दलिकनिक्षेपो न भवति । तत्त्वं तु सर्वज्ञा विदन्ति ।

ननूत्कीर्यमाणानां दलानां निक्षेप उदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तमसंख्येयगुणकारेणोक्तः, अन्तर्मुहूर्तात्परेषु स्थानेषु निक्षेपो भवति न वा ? यदि भवति तर्हि को निक्षेपक्रमः ? इति चेत्, उच्यते - गुणश्रेणिनिरूपणाऽवसरे उदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तमसंख्येयगुणकारेण निक्षेप उक्तोऽन्यत्र निक्षेपो नोक्तः, यतस्तत्र गुणश्रेणेरेवाऽधिकारस्तथाऽपि स्थितिघातप्ररूपणाऽवसरे या स्थितिरधो न खण्डयति, तत्र तद्दलिकं प्रक्षिपतीति पूज्ययशोविजयैरुपाध्यायभट्टारकैरुक्तम्, एतेन ज्ञाप्यते गुणश्रेणिरचनारूपाऽन्तर्मुहूर्तादन्यत्राऽपि दलिकनिक्षेपो भवति । अर्थात् गुणश्रेणिरचनाया उपरितनस्थितिष्वपि निक्षेपो भवति । निक्षेपक्रमस्त्वेवम् । गुणश्रेणिशिरस्तोऽनन्तरस्थितिस्थाने पूर्वतोऽसंख्येयगुणहीनस्ततोऽनन्तरस्थितिस्थाने स्थाने विशेषहीनक्रमेण तावदभिधातव्यं यावदतीत्थापनाऽप्राप्ता भवति । 卐 विशेषस्तु क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्तौ वक्ष्यामः । (पश्यन्तु यन्त्रकम्......३)

उपर्युक्तैः स्थितिघातादीनां ＋ सहस्रैरपूर्वकरणसमयाननुभवन्ननिवृत्तिकरणं प्रविशतीत्यनुवृत्तिकरणस्य वक्तव्यतां व्याचिकीर्षुराह––

अनियट्टिम्मि वि एवं तुल्ले काले समा तओ नामं ।

अनिवृत्तावप्येवं तुल्ये काले समा ततो नाम ।।इति ।। पदसंस्कारः

संप्रत्यनिवृत्तिकरणे स्थितिघातादयश्चत्वारः पदार्था अध्यवसायेभ्यो विशोधिभ्यश्चाऽर्वाक् प्ररूप्यन्ते प्रत्यासत्तेः । अयं भावः पूर्वस्यामेव गाथायामपूर्वकरणे स्थितिघातादीनां स्वरूपं कथितम्, तेन ते पदार्था किमनिवृत्तिकरणेऽपि भवन्ति, उत न ? इत्याशङ्कापरिहारार्थमाह–– "अनियट्टिम्मि वि एवं" त्ति यथाऽपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थितिघातादयो युगपत् प्रवर्तमाना उक्ताः, एवमनिवृत्तिकरणेऽपि वाच्याः, तथाहि— अपूर्वकरणे प्रविशन्नभिनवस्थितिघातम-

---

卐 टिप्पणी ... तथा चोक्तं षट्खण्डागमस्य धवलाटीकायामपि "एवमसंखेज्जगुणणाए सेढीए णेदव्व जाव गुणसेढी चरिमसमओ त्ति तदो उवरिमाणतराए ठिदिए असखेज्जगुणहीणं दव्वे देदि तदुवरिमट्ठिदिए विसेसहीणं देदि एवं विसेसहीणं विसेसहीणं चेव पदेसग्गं निरंतरं देदि जाव अप्पप्पणो उक्कीरिदट्ठिदिमावलियकालेण अपत्तो त्ति ।"

＋ टिप्पणम्....अत्र 'सहस्र' शब्दःसंख्यावाचकः' आदशभ्याः सङ्ख्या सङ्ख्येये वर्तते न सङ्ख्याने इति न्यायेन विंशत्यादिसङ्ख्या तु संख्याने च प्रवर्तते यथा – एकोनविंशतिर्घटाः घटानामेकोनविंशतिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिनवस्थितिबन्धं तथाऽभिनवरसघातं चाऽऽरभते, अन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते पुनर्द्वितीयमभिनवस्थितिघातं द्वितीयं स्थितिबन्धमभिनवरसघातं चाऽऽरभते, अत्र रसघातो य आरभ्यते, स न द्वितीयः, किन्त्वनेकसहस्रतमो रसघातो भवति, स्थितिघातकाले स्थितिबन्धकाले वाऽनेकसहस्ररसघातानां व्यतिक्रान्तत्वात् । एवमपूर्वकरणे बहुसहस्राणि स्थितिघातादयो भवन्ति, तथैवाऽनिवृत्तिकरणेऽपि स्थितिघातादयो भवन्ति ।

अथाऽध्यवसायानां विशोधिराविर्भिकीर्षुराह—"तुल्ले काले समा तओ नामं" तुल्ये=समाने काले, यतः समा सर्वेषामपि प्रविष्टानां विशोधिर्भवति, न विषमा. ततो नाम मा=अनिवृत्ति, अन्वर्थम् । तद्यथा—न वर्तते निवृत्तिः प्रविष्टानां तुल्यकालानां जीवानामध्यवसायानां मिथस्तिर्यक्षट्स्थानपतिता वैषम्यलक्षणा व्यावृत्तिर्यस्मिन् करणे तदनिवृत्ति, अनिवृत्ति च तत्करणं चेत्यनिवृत्तिकरणम् , इति व्युत्पत्त्यर्थो ग्राह्यः । इदमुक्तं भवति—अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये वर्तन्ते, ये च वृत्ताः, ये च वर्तिष्यन्ते, तेषां समा विशोधिः किन्तु प्रथमसमय--भाविविशोध्यपेक्षया त्वनन्तगुणा, एवमनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयं यावद् वाच्यम् । इत्थं त्रिकालगोचरसर्वजीवानां प्रतिसमयमेकमेवाऽध्यवसायस्थानम् । नवरं प्रथमसमयाऽध्यवसायस्थानाऽपेक्षया द्वितीयसमयस्याऽध्यवसायस्थानमनन्तगुणवृद्धम् , अतोऽनिवृत्तिकरणे यावन्तसमयास्तावन्त्यध्यवसायस्थानानि पूर्वपूर्वस्मादनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्धानि । एतानि च मुक्तावलीसंस्थानेन स्थापयितव्यानि, उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे– "अनियट्टिकरणमओ मुत्तावलीसंठियं कुणई ।" इति । उक्तविशुद्ध्यां प्रवर्धमानोऽनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेऽन्तरकरणस्य विशिष्टां क्रियां करोतीत्याचार्योऽभिव्यनक्ति—

संखिज्जइमे सेसे भिन्नमुहुत्तं अहो मुच्चा ॥१६॥
किंचूणमुहुत्तसमं ठिइबन्धद्धाअ अंतरं किच्चा ।
आवलिदुगेक्कसेसे आगालउदीरणा समिया ॥१७॥

संख्येयतमे शेषे भिन्नमुहूर्तमधो मुक्त्वा ॥१६॥
किंचिदूनमुहूर्तसमं स्थितिबन्धाद्धयाऽन्तरं कृत्वा ।
आवलिकाद्विकैकशेष आगालोदीरणे शान्ते ॥१७॥ इति पदसंस्कारः

"संखेज्ज" इत्यादि, अनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्स्वेकस्मिंश्च संख्येयतमे भागेऽवतिष्ठमाने भूयोऽभिनवस्थितिघातादयः पदार्था आरभ्यन्ते तदा मिथ्यात्वस्याऽन्तरकरणं करोति, कर्तुमारभत इत्यर्थः । अन्तरकरणं करोति नामोदयक्षणादुपरि मिथ्यात्वस्थितिमन्तर्मुहूर्तमानामतिक्रम्योपरितनीं च मिथ्यात्वस्थितिं विष्कम्भयित्वा मध्यगत अन्त-

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

मुहूर्तप्रमाणस्थितितो दलिकान्युत्कीर्य तत्र मिथ्यात्वदलिकानामभावं करोति, अन्तरकरणक्रियाकालश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽभिनवस्थितिबन्धाद्धयाऽभिनवस्थितिघाताद्धया वा सम इत्यन्तर्मुहूर्तकालेनाऽन्तरकरणं भवति। अर्थाद् यदाऽभिनवस्थितिबन्धाद्धा पूर्णा भवति, तदाऽन्तरकरणमपि समापयति। इदमुक्तं भवति—अभिनवस्थितिघाताद्धायां व्यतिक्रान्तायामन्तरकरणक्रियाऽपि परिसमाप्ता भवति, उदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणाया मिथ्यात्वस्थितेरुपरितनाऽन्तर्मुहूर्तस्थितिर्मिथ्यात्वदलिकाऽभाववती ॐ भवतीत्यर्थः। उदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा प्रथमस्थितिस्तथाऽनन्तरकरणस्योपरितनस्थितिर्द्वितीयस्थितिरिति व्यपदिश्यते।

पूर्वोक्तगुणश्रेणिरचनाऽपूर्वकरणादनिवृत्तिकरणकालात् किञ्चिदधिककालप्रमाणा भवति। अन्तरकरणे क्रियमाणे मिथ्यात्वस्य गुणश्रेणेः संख्येयतमं भागमन्तरकरणदलिकेन सहोत्किरति नाशयतीत्यर्थः। शेषाश्च गुणश्रेणिसंख्येयभागाः प्रथमस्थित्याश्रितास्तिष्ठन्ति। कर्मप्रकृतिचूर्णौ तु "अंतरकरेमाणे अनियट्टिगुणसेढी निक्खेवस्स अग्गग्गातो (अ) संखेज्जतिभागं खण्डेति" त्ति, असंख्येयतमभागं खण्डयतीत्युक्तम्। तदशुद्धं प्रतिभाति।

उत्कीर्यमाणं दलिकं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति। तथाहि—यदुताऽन्तरकरणस्थितेर्मध्याद् दलिकं गृहीत्वाऽधस्तात्प्रथमस्थितावुपरि च द्वितीयस्थितौ निक्षिपति। एवं प्रतिसमयं तावत्प्रतिक्षिपति यावदन्तरकरणदलिकं सकलमप्युत्कीर्यते, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालेनाऽन्तरकरणसत्कसकलदलान्युत्कीर्यन्ते। उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे—"अन्तरकरणस्स विही घेत्तुं घेत्तुं ठिईउ मज्झाओ। दलियं पढमठिईए विछुभइ तहा उवरिमाए॥" अन्तरकरणक्रियायां परिपूर्णायामपि स्थितिघातादयश्चत्वारः पदार्थाः प्रवर्तन्ते।

ॐ न चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितेरन्तरकरणम्, स्थितिघातश्च जघन्यतोऽपि पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणस्थितेर्भवति, कथमुभयोरुत्कीर्णकालसम उच्यत इति वाच्यम्, तथा स्वभावात्। न चाऽन्तरकरणसत्कस्थितेर्न्यूनत्वेन तत्र दलिकान्यल्पानि सन्ति, स्थितिघातस्य तु स्थितेराधिक्येन दलिकानि बहूनि ततः कथमुभयोर्दलिकोत्कीर्णकालः समः, अन्तरकरणस्याऽल्पदलिकवत्त्वेन दलिकोत्कीर्णकालोऽल्पो वक्तव्य इति वाच्यम्, यतो दलिकाऽपेक्षयोत्कीर्णकालो विचार्यते तर्हि न कश्चिद् भेदः प्रतिभाति, यतः स्थितिघातः स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागतः क्रियते, अन्तरकरणं तूदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितेरुपरितनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितेः क्रियते, घात्यमानाऽग्रिमस्थितौ प्रत्येकस्थितिस्थानगतदलिकाऽपेक्षयाऽन्तरकरणे प्रत्येकस्थितिस्थानकस्यदलिकान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति, यतोऽन्तरकरणतोऽसंख्यातद्विगुणहानिस्थानेषु व्यतिक्रान्तेषु घात्यमानस्थितिस्थानकानि प्राप्यन्ते; अतः स्थितिघाते स्थितिस्थानकान्यन्तरकरणसत्कस्थितिस्थानेभ्योऽसंख्येयगुणानि, अन्तरकरणे च स्थितिघातस्य प्रत्येकस्थितिस्थानगतदलिकाऽपेक्षया प्रत्येकस्थितिस्थानकस्यदलिकान्यसंख्येयगुणानि भवन्तीति दलिकाऽपेक्षया न कश्चिद्विशेषः प्रतिभाति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरकरणं कुर्वतः प्रथमस्थितेश्चित्रम् (गाथा-16-17)

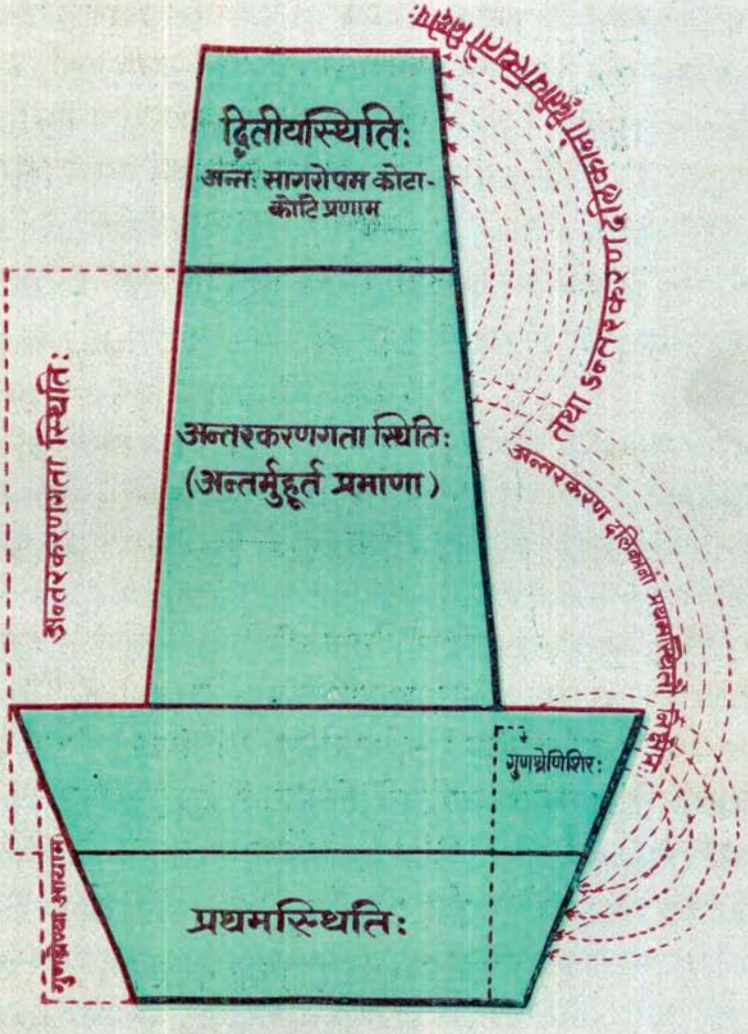

स्पष्टीकरणम्

(1) **प्रथमस्थिति** :—अन्यतमस्य यस्य वेदस्य, यस्य च कषायस्योदयः, तयो. प्रथमस्थितिः, तस्याञ्चाऽन्तरणत उत्कीर्यमाणं दलिकं प्रक्षिपति । अयन्तु विशेषः —वेद्यमानवेदप्रथमस्थितितो वेद्यमानकषायप्रथमस्थितिर्विशेषाधिका बोध्या ।

(2) **गुणश्रेण्या आयामः** — स च करणद्वयकालतो विशेषाधिकः । तस्य च संख्येयतमभागमन्तरकरणं कुर्वन् घातयति ।

(3) **अन्तरकरणगता स्थिति.**—तस्या दलमुत्कीर्याऽन्तरकरणं क्रियते । उत्कीर्यमाणं च दलं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिप्यते ।

(4) **गुणश्रेणिशिर.**→अनेन चिह्नेन गुणश्रेणिशिरः प्रदर्शितम् ।

(5) यत्र दलिकं प्रक्षिपति, तत्....→अनेन चिह्नेन दर्शितम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरकरणे कृते सति सम्यक्त्वाऽभिमुख उपशामक उच्यते । उक्तञ्च कर्मप्रकृतिचूर्णौ– "एवं अंतरकरणकयं भवति ततो पभिति उवसामगो लब्भत्ति ॥"

तथा चोक्तं कषायप्राभृतचूर्णौ–"तदो अंतरं कीरमाणं कयं तदोप्पहुडि उवसामगो त्ति भण्णइ" इति । यद्यप्यस्य कश्चिदपि विशेषः कर्मप्रकृतिवृत्तिकारैर्न्यैर्वा नाऽभिहितः, तथाऽपि इदमस्माभिः संभाव्यते–यथाऽनन्तानुबन्ध्युपशमनाऽधिकारेऽन्तरकरणे कृते सति तदनन्तरसमयेऽनन्तानुबन्धिनो द्वितीयस्थितिगतदलिकमुपशमयितुमारभते,तत्राऽयं क्रमः... प्रथमसमये स्तोकं दलिकं द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम् , एवं यावदन्तमुहूर्तकालम् , अन्तमुहूर्तकालेन च सर्वथोपशमयति, तथैवाऽत्राऽपि तेन क्रमेणोपशमयति, अतः कर्मप्रकृतावुक्तस्योपशामकशब्दस्य व्युत्पत्त्यर्थ उपशमयतीत्युपशामक इत्युपपद्यते ।

इदमत्र हृदयम्–अन्तरकरणे कृते तदनन्तरसमयादारभ्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणं द्वितीयस्थितिगतं दलमुपशमयति, एवमनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयं यावद् द्वितीयस्थितिगतसर्वदलमुपशमयति, नवरं समयन्यूनाऽऽवलिकद्विकेन बद्धानि दलिकानि नोपशमयति, यतो यस्मिन्समये यानि कान्यपि दलिकानि बध्यन्ते, तत्समयादारभ्याऽऽवलिकापर्यन्तं तेषु न किमपि करणं प्रवर्तते, बन्धाऽऽवलिकायाः सकलकरणाऽयोग्यत्वात् । ततो द्वितीयाऽऽवलिकायाः प्रथमसमयादारभ्योपशमयितुमारभते, ततः प्रभृत्यावलिकायां पूर्णायां प्रथमसमये बद्धानि दलानि सर्वाण्युपशमितानि भवन्ति ।

यत एकसमये बद्धानि दलिकान्युपशमयितुमावलिकामात्रः कालो गच्छति । एवं प्रथमाऽऽवलिकायाः द्वितीयसमये बद्धानि दलान्यावलिकाकालेन सर्वथोपशम्यन्ते, तेनाऽत्रापि मिथ्यात्वसत्कप्रथमस्थितेर्द्विचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये बद्धानि दलिकानि बन्धाऽऽवलिका सकलकरणाऽयोग्येति कृत्वाऽऽवलिकापर्यन्तमुपशमयितुं नाऽऽरभते, ततश्चरमाऽऽवलिकायाश्चरमसमये द्विचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये बद्धानि सर्वाणि दलान्युपशम्यन्ते, परन्तु समयन्यूनद्विचरमावलिकायां चरमावलिकायां च बद्धानि दलान्युपशमितानि तिष्ठन्ति तानि दलान्यसंख्येयगुणनया तावता कालेनोपशान्ताद्धायामुपशमयति, तत उपशान्ताद्धायाः समयोनाऽऽवलिकाद्वये व्यतिक्रान्ते सति सर्वदलमुपशम्यते न किञ्चिदनुपशान्तमुपतिष्ठते । उपशान्तं नाम अन्तर्मुहूर्तकालायोदयोदीरणाकरणाऽयोग्यकरणम् , तेनाऽग्रे वक्ष्यमाणत्रिपुञ्जकरणं न विरुध्यते ।

"आवलिदुगेक्कसेसे" इत्यादि, तथा मिथ्यात्वमोहनीयस्योदयोदीरणाभ्यां च तावत्प्रथमस्थितिमनुभवति, यावदावलिकाद्वयप्रमाणा प्रथमस्थितिशेषा तिष्ठति, प्रथमस्थितौ चाऽऽवलिकाद्वयशेषायामागालः शान्तो=व्यवच्छिन्नो भवति । आगालो नाम मिथ्यात्वस्य द्वितीय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितेः सकाशाद् यदुदीरणाप्रयोगेण दलिकानि समाकृष्योदयसमये प्रक्षिप्यन्ते, सोदीरणाऽपि पूर्वसूरिभिर्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमागाल इत्युच्यते तत ऊर्ध्वमुदीरणैव प्रथमस्थितितः प्रवर्तते, साऽपि प्रथमस्थितेरावलिकाप्रमाणस्थितौ शेषायां शान्ता=व्यवच्छिन्ना भवति, ततः केवलेन शुद्धेनोदयेनाऽऽवलिकामात्रां प्रथमस्थितिमनुभवति । उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे-"इगदुग आवलि सेसाइ णत्थि पढमा उदीरणागालो । पढमठिइए उदीरण बीयाओ एइ आगाला ॥१॥" इत्येवं कषायप्राभृतचूर्णावप्युक्तम्-"पढमट्ठिदीओ वि बिदियट्ठिदियो वि आगाल पडिआगालो ताव, जाव आवलिअपडिआवलियाओ सेसाओ" इति, ✠ अत्राऽऽवलिकाशब्देनोदयावलिका ग्राह्या, प्रत्यावलिकाशब्देन चोदयावलिकोपरितनाऽऽवलिकाप्रमाणस्थितिर्ज्ञेया । तेन चूर्णिसूत्रस्याऽयं भावार्थः—प्रथमस्थितित उद्वर्त्यमानस्थितिः प्रत्यागालः, द्वितीयस्थितितोऽपवर्त्यमानस्थितिरागालः । तौ तावद् वक्तव्यौ यावदुदयावलिकोपरितना ऽवलिका शेषा भवति । प्रथमस्थितेरावलिकाद्विकं शेषं भवतीत्यर्थः । + आगालो नाम द्वितीयस्थितेर्दलानामपवर्तनया प्रथमस्थितौ प्रक्षेपणम् , प्रत्यागालो नाम प्रथमस्थितेर्दलानामुद्वर्तनया द्वितीयस्थितौ निक्षेपणमित्यर्थः ।

ननु प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां प्रत्यागालो व्यवच्छिद्यते, कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते—यदा मिथ्यात्वस्य प्रत्यागालः प्रवर्तते तदा मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितितो दलान्युद्वर्तनया द्वितीयस्थितौ निक्षिप्यन्ते । उद्वर्तनाऽऽवलिकागतं कर्म सकलकरणाऽयोग्यमिति कृत्वाऽऽवलिकापर्यन्तं तद्दलिकं तदवस्थं तिष्ठति । ततः परं तदुपशमयितुं प्रक्रमते, एकसमयेनोद्वर्तितदलिकमावलिकाकालेन सर्वथोपशम्यते, एकसमयबद्धनूतनदलिकवत् । तथा च सति यदि प्रत्यागालोऽनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयपर्यन्तं प्रवर्तेत, तर्हि यथाऽनिवृत्तिकरणस्य चरमसमये समयोनाऽऽवलिकाद्विकबद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति तथैव समयोनाऽऽलिकाद्विकेनोद्वर्तितमपि दलं द्वितीयस्थितावनुपशान्तं तिष्ठेत् । न चोद्वर्तितमपि दलमनिवृत्तिकरणचरमसमयेऽनुपशान्तं तिष्ठतु विरोधाऽभावादिति वाच्यम् , अनिवृत्तिकरणचरमसमये समयोनाऽऽलिकाद्विकेन बद्धाऽभिनवदलिकमनुपशान्तं तिष्ठतीत्येवं संभवादिति वयं ब्रूमः ।

✠ उक्तञ्च जयधवलायाम्—"तत्थ आवलिया त्ति वुत्तं उदयावलिया घेत्तव्वा पडिआवलिया त्ति एदेण वि उदयावलियादो उवरिम बिदियावलिया गेण्हयव्वा" ।

+ उक्तञ्च जयधवलायाम्-आगालनमागालो बिदियट्ठिदिपदेसाणं पढमट्ठिदीए ओकड्डणावसेणागमणमिति वुत्त होइ । प्रत्यागलन प्रत्यागाल-पढमट्ठिदिपदेसाण बिदियट्ठिदीए उक्कड्डणावसेण गमणमिदं भणिदं होइ । तदा पढमबिदियट्ठिदिपदेसाणमुक्कड्डुणोकड्डणावसेण परोप्परं विसयसंकमो आगालपडिआगालो त्ति घेत्तव्वो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदाऽऽवलिकाद्वये शेष आगालो विच्छिद्यते, तदा मिथ्यात्वस्य गुणश्रेणिरपि व्यवच्छिन्ना भवति।

नन्वन्तरकरणक्रियायां पूर्णायां गुणश्रेणेर्दलिकप्रक्षेपः कुत्र भवति।

यतः पूर्वोक्तप्रकारेणाऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धायाः किञ्चिदधिके काले गुणश्रेणिदलरचना भवेत्तर्हि मिथ्यात्वाऽभावत्यन्तरकरणेऽपि दलिकनिक्षेपः स्यात्, तेनाऽनिवृत्तिकरणे परिसमाप्तेऽन्तरकरणं प्रविशन् मिथ्यात्वस्य दलान्यनुभवेत्। मिथ्यात्वं चाऽनुभवन्नौपशमिकसम्यक्त्वं नाऽश्नुयादिति चेद्, उच्यते— अन्तरकरणं कुर्वन्नन्तरकरणगतगुणश्रेणिसंख्येयतमभागस्य दलान्यप्युत्किरति, अपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धाया उपरितनकिञ्चिदधिककालप्रमाणगुणश्रेणिनिक्षेपं संकुच्याऽन्तरकरणक्रियाऽनन्तरं गुणश्रेणिरचनामनिवृत्तिकरणाद्धापर्यन्तं करोति, ततो गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपोऽनिवृत्तिकरणाद्धापर्यन्तमेव भवति, नाऽग्र इति युक्तिप्रयुक्तिभिर्वयं संभावयामहे। तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति।

यदा प्रथमस्थितेरावलिकायां शेषायामुदीरणा व्यवच्छिद्यते, तदा मिथ्यात्वस्य स्थितिघातावपि निवर्तते, आयुर्वर्जशेषकर्मणां स्थितिघातरसघातौ गुणश्रेणिश्च भवन्ति। एकविंशतितमगाथायां मूलकारः स्वयमेव वक्ष्यते 'ठिइरसघाओ' इत्यादि।

तथा चाऽऽह चूर्णिकारः—

मिच्छत्तस्स पढमट्ठिति जाव एगावलिसेसा ताव।
ठितिघातो रसघातो य अत्थि परउ नत्थि॥

तथैव पञ्चसङ्ग्रहे—

"मिच्छत्तस्स इगि दुगावलिसेसाए पढमाए"।

उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णिकारैरपि- **आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो नत्थि।**

प्रथमस्थिता एकस्यामावलिकायां शेषायां स्थितिघातो निवर्तते, तस्य कारणमस्माभिरिदं संभाव्यते, उपशमाद्धाप्रवेशाऽवसरे समयोनाऽऽवलिकाद्वयमात्रे बद्धान्येव दलिकान्यनुपशमितानि तिष्ठन्ति, यदि च चरमसमयपर्यन्तं स्थितिघातो मन्येत, तर्ह्यनिवृत्तिकरणस्य समयोनचरमाऽऽवलिकायां घातितस्थितेर्दलिकान्युपशान्ताद्धां प्रविष्टस्याऽनुपशमितानि तिष्ठेयुः। किं कारणमिति चेद्, उच्यते—यथा बन्धाऽऽवलिकायामतीतायामभिनवान्येकसमयबद्धदलिकान्युपशमयितुमेकावलिका व्यतिक्रान्ता भवति, तथैव स्थितिघाततः प्राप्तानि दलिकान्युपशमयितुमेकाऽऽवलिका व्यतिक्रान्ता भवति, तथैव स्थितिघाततः प्राप्तानि दलिकान्युपशमयितुमेकाऽऽवलिका गच्छेदिति कृत्वा समयोनाऽऽवलिकया घातितस्थितेर्दलान्यप्यनिवृत्तिकरणचरमसमयेऽनुपशमि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तानि तिष्ठेयुरिति युक्तिभिः संगच्छत इत्यस्माभिः सभाव्यते, न कुत्रचिदेतादृगुल्लेखो दृश्यते ।

मिथ्यात्वस्थितिबन्धस्तु प्रथमस्थितेश्चरमसमये निवर्तते, मिथ्यात्वस्य ध्रुवबन्धित्वादुदयबन्धित्वाच्च । षट्खण्डागमस्य धवलाटीकायां स्थितिघातो रसघातो वा कुत्र निवर्तते, तन्न दर्शितम् , तथाऽपि प्रथमस्थितेश्चरमसमयपर्यन्तं स्थितिघातो रसघातश्च भवत इति मतं विद्यते धवलाकाराणामिति प्रतिभाति, यतो **धवलायामल्पबहुत्वाऽधिकारे चरमस्थितिबन्धाद्धा चरमस्थितिघाताद्धया तुल्या इत्युक्तमस्ति** । तथा तट्टीकाकारानुसृत्य लब्धिसारग्रन्थकारेणाऽप्युक्तम् "**दर्शनमोहस्य प्रथमस्थितिसमाप्तिसमकालभावी (संपूर्णं भवतीत्यर्थः) शेषकर्मणां गुणसङ्क्रमचरमसमयसमकालभावि यदनुभागकण्डकं तदन्त्याऽनुभागकण्डकमीत्युच्यते**" इति । चरमरसघातः प्रथमस्थितिसमाप्तिसमकाले पूर्णो भवतीत्यर्थः । किञ्चोपर्युक्तवक्तव्यतायां स्वीक्रियमाणायां प्रथमस्थितेश्चरमसमयं मिथ्यात्वसत्कस्थितिघातयोर्व्यवच्छेदे कषायप्राभृतचूर्णिकारस्य विरोधस्स्यात् , यदुक्तं **चूर्णिकारेण—"आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि ।"**

न च चूर्णिकारस्याऽल्पबहुत्वविषयसूत्रे विरोध आपद्यत इति वाच्यम् , चूर्णिकारस्य सूत्रमेवंभूतं नास्ति, "**चरमस्थितिघाताद्धा चरमस्थितिबन्धाद्धा दो वि तुल्ला ।**" किन्त्वित्थं सूत्रमस्ति **चरमट्ठिदीखण्डउक्कीरणकालो तम्हि चेव ठिदिबंधकालो च दोवि तुल्ला" (संखेज्जगुणा)** इति । यश्चरमस्थितिखण्डोत्कीर्णकालस्तस्मिंश्चरमस्थितिखण्डोत्कीर्णकाले प्रवर्तमानो यः स्थितिबन्धस्तस्य कालः, तयोरुभयोस्तुल्यत्वमित्यर्थः । अत्र स्थितिबन्धकालस्य तुल्यत्वं दर्शितम् , न तु **चरमस्थितिघातकालस्य**, अत एव **चरमस्थितिघातकालस्य** तत्कालीनस्थितिबन्धकालेन तुल्यत्वे सत्युभयोर्व्यवच्छिन्नकालभेदे न कश्चिद्विरोधो विद्यते । उभयोर्व्यवच्छिन्नकालभेदादेव "**आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि**" इति चूर्णिसूत्रमपि सङ्गच्छते ।

मिथ्यात्वस्य स्थितिघातरसघातयोर्निवृत्तयोः केवलेन शुद्धेनोदयेनाऽऽवलिकाप्रमाणां प्रथमस्थितिमनुभवत आवलिकायाश्चरमसमये मिथ्यात्वस्य बन्धोदयौ युगपन्निवर्तेते । ततोऽनन्तरसमय उपशान्ताद्धां प्रविशति । उपशान्ताद्धां प्रविष्टस्य सतो जन्तोः प्रथमसमय एव मोक्षबीजमौपशमिकं सम्यक्त्वमुपजायते उक्तञ्च **पञ्चसङ्ग्रहे—"आवलीमेत्तं उदयेणवेइउं ठाइ उवसमद्धाए । उवसमिय तत्थ भवे सम्मत्तं मोक्खबीयं जं ॥१॥"** इति । इयमुपशान्ताद्धा परिनिष्ठिताऽन्तरकरणैकदेशस्तेनोपशान्ताद्धाप्रवेशसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्नोति, मिथ्यात्वदलिकवेदनाऽभावात् । अमुमेव पदार्थं सूत्रकृद् विस्तरशो व्याचिकीर्षुराह—

(पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम् .....४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्रकम्–४ ब

अनिवृत्तिकरणतोऽन्यतरसम्यक्त्वप्राप्ति यावत् चित्रम्

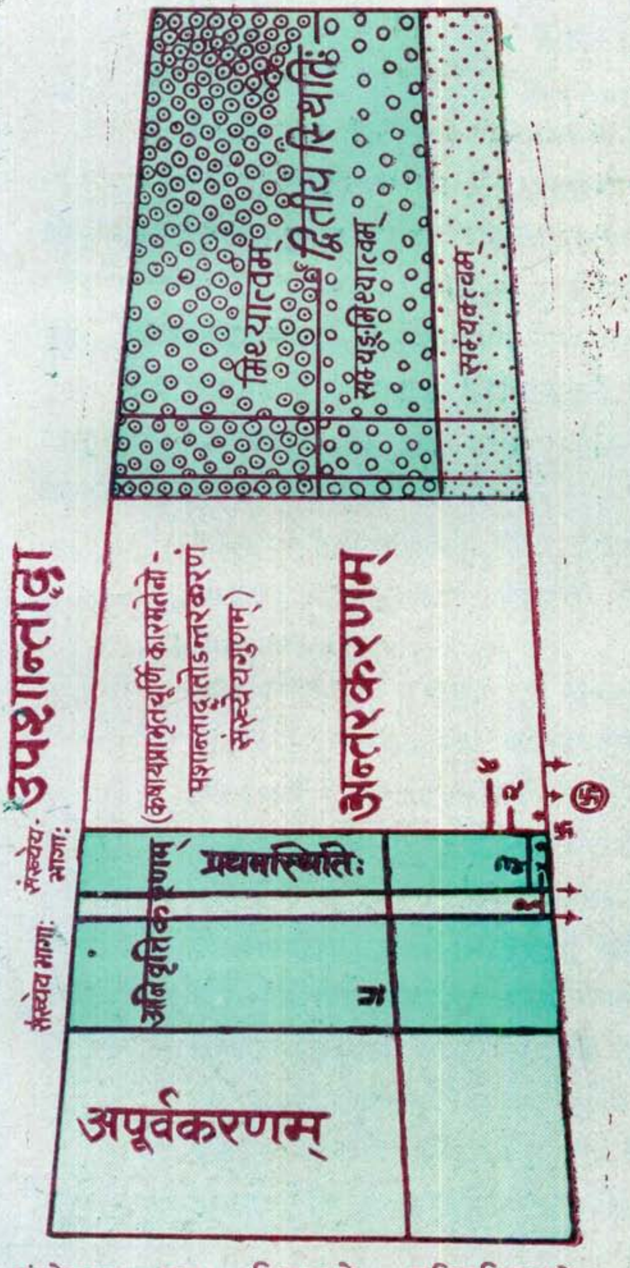

द्वितीयस्थितितो दर्शनत्रिकस्य दलं गृहीत्वाऽऽ-
←वलिकायां गोपुच्छाकारेण निषेकं विरचयति ।

→द्वितीयस्थिते. प्रथमनिषेक: ।

दर्शनत्रिकोऽन्यतरस्य चोदय: ।

2–卐 मिथ्यात्वस्य गुणसंक्रमो निवर्तते, विध्यात-संक्रम च प्रवर्तते । शेषकर्मणां स्थितिघातादय: निवर्तन्ते ।

* अन्तरकरणस्य प्रथमसमये सम्यग्दृष्टि: सन् द्वितीयस्थितिगत मिथ्यात्वदलमनुभाग-भेदेन त्रिधा करोति, मिथ्यात्वस्य गुणसंक्रम-प्रारम्भ: ।

卐 मिथ्यात्वचरमोदय: स्थितिबन्धश्च ततो व्यवह्रियेते ।

• आवलिकाशेष उदीरणा व्यवच्छिन्ना । मिथ्यात्वस्य च स्थितिघातरसघातयोर्निवर्तनम् ।

× आवलिकाद्वयशेष आगालो मिथ्यात्वगुण-श्रेणिश्च व्यवच्छिद्यते ।

3–अन्तरकरणे जाते मिथ्यात्वप्रथमस्थिति: ।

4–गुणश्रेणिशिर: ।

5–अपूर्वकरणाऽन्तर्मुहुर्तम्, अनिवृत्तिकरणं चाऽन्तर्मुहूर्तम्, उभे करणे मिलिते अप्यन्त-र्मुहूर्तप्रमाणम् ।

संशोधनम्—अत्र चित्रमध्ये अनिवृत्तिकरणे प्रथमस्थितिसंख्येयभागा: मुद्रिता तत्स्थाने संख्येयभाग: बोद्धव्य: ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम् ४)

मिच्छत्तुदए खीणे लहए सम्मत्तमोवसमियं सो ।
लंभेण जस्स लभई आयहियमलद्धपुव्वं जं ॥१८॥

मिथ्यात्वोदये क्षीणे लभते सम्यक्त्वमौपशमिकं सः ।
लंभेन यस्य लभते आत्महितमलब्धपूर्वं यत् ॥१८॥ इति पदसंस्कारः ॥

"मिच्छत्तुदए" इत्यादि, मिथ्यात्वस्योदये क्षीणे सति स जीव उक्तेन प्रकारेणौपशमिकं सम्यक्त्वं लभते=अश्नुते । "जस्स" इत्यादि, यस्य सम्यक्त्वस्य लाभेन यदात्महितमलब्धपूर्वम्=अनादौ संसारसागरेऽप्राप्तपूर्वम्, संसारसागरस्य वडवाग्निकल्पम्, शिवहर्म्यसोपानम्, चिन्तमणिरत्नसदृशं जिनेन्द्रप्रणीततत्त्वप्रतिपत्त्यादिरूपम्, तल्लभते ।

यथा निदाघर्तौ मध्याह्नकाले निर्जलवने सहस्ररश्मेरातापेन पीड्यमानः पथिको जलचन्दनलेपादि प्राप्याऽपूर्वाऽऽनन्दमनुभवति, तथैव सम्यक्त्वलाभे सति तत्पुरुषस्य महान् प्रमोदो जायते । उक्तं च सम्यक्त्वप्रकरणे--

संसारगिम्मतविओ तत्तो गोसीसचंदणरसोव्व ।
अइपरमनिव्वुइकर तस्संते लहइ सम्मत्तं ॥

तथैवाऽन्यत्रापि —

जात्यन्धस्य यथा पुंसश्चक्षुर्लाभे शुभोदये ।
सद्दर्शनं तथैवाऽस्य सम्यक्त्वे सति जायते ॥
आनन्दो जायतेऽत्यन्तं तात्त्विकोऽस्य महात्मनः ।
सद्व्याध्यपगमे यद्व्याधितस्य सदौषधात् ॥

तथा चोक्तं समरादित्यकथायां प्रथमभवाधिकारे—

★ सम्मत्तं उवसममाइएहि लक्खिज्जई उवाएहि ।
आयपरिणामरूवं बज्झेहिं पसत्थजोगेहिं ॥१॥
एत्थं परिणामो खलु जीवस्स सुहो उ होइ विन्नेओ ।
किं मलकलंकमुक्कं कणयं भुवि सामलं होइ ॥२॥
पयईइ कम्माणं वियाणिउं वा विवागअसुहत्ति ।
अवरद्धे वि ण कुप्पइ उवसमओ सव्वकालं पि ॥३॥

★ सम्यक्त्वमुपशमादिकैर्लक्ष्यते उपायैः । आत्मपरिणामरूपं बाह्यैः प्रशस्तयोगैः ॥१॥
अत्र च परिणामः खलु जीवस्य शुभस्तु भवति विज्ञेयः। किं मलकलङ्कमुक्तं कनकं भुवि श्यामलं भवति॥२॥
प्रकृतेश्च कर्मणां विज्ञाय वा विपाकमशुभमिति । अपराद्धेऽपि न कुप्यत्युपशमतः सर्वकालमपि ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरविबुहेसरसोक्खं दुक्खं चिय भावओ उ मन्नन्तो ।
संवेगओ न मोक्ख मोत्तूण किंचि पत्थइ ॥४॥
नारयतिरियनराऽमराऽमरभवेसु निव्वेयओ वसइ दुक्खं ।
अकयपरलोयमग्गो ममत्तविसवेगरहिओ वि ॥५॥
दट्ठूण पाणिनिवहं भीमे भवसागरम्मि दुक्खत्तं ।
अवसेसओ अणुकम्पादुहा वि सामत्थओ कुणइ ॥६॥
मन्नइ तमेव सच्चं नीसंङ्कं जं जिणेहि पन्नत्तं ।
सुहपरिणामो सव्वं कंखाइ विसोत्तियारहिओ ॥७॥
एवंविहपरिणामो सम्मदिट्ठी जिणेहि पन्नत्तो ।
एसो य भवसमुद्दं थेवेण कालेण ॥८॥

मिथ्यात्वस्य त्रिपुञ्जकरणस्वरूपं वक्तुकाम आह--

तं कालं बीयठिइं तिहाणुभागेण देसघाइत्थ ।
सम्मत्तं संमिस्सं मिच्छत्तं सव्वघाइओ ॥११॥

तस्मिन् काले द्वितीयस्थितिं त्रिधानुभागेन देशघात्यत्र ।
सम्यक्त्वं सम्मिश्रं मिथ्यात्वं सर्वघातिकः ॥ १ ॥ इति पदसंस्कारः

"तं कालं" इत्यादि, तस्मिन् काले सम्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमय इत्यः, औपशमिकसम्यग्दृष्टिर्द्वितीयस्थितिगतानि मिथ्यात्वदलिकान्यनुभागभेदेन त्रिधा करोति शुद्धमर्धशुद्धमशुद्धं चेति, कथमेतदवसीयत इति चेत्, उच्यते---औपशमिकसम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वप्राप्तित आवलिकाया अभ्यन्तरे सम्यग्मिथ्यात्वस्य सङ्क्रमो न भवति, किं कारणमिति चेद्? उच्यते--मिथ्यात्वपुद्गला एव सम्यक्त्वाऽनुगतविशोधिप्रभावतः सम्यङ्मिथ्यात्वरूपाः क्रियन्त इति कृत्वाऽन्यप्रकृतिरूपतया परिणामाऽन्तरमापद्यन्ते, अन्यप्रकृतिरूपतया परिणामाऽन्तरापादानं च सङ्क्रम उच्यते, सङ्क्रमावलिकागतं च कर्म सकलकरणायोग्यमिति कृत्वा सम्यक्त्वलाभादावलिकाया

★ नरविबुधेश्वरसौख्यं दुःखमेव भावतस्तु मन्यमानः। संवेगतो न मोक्षं मुक्त्वा किञ्चित्प्रार्थयते ॥४॥
नारकतिर्यग्नरामरभवेषु निर्वेदतः वसति दुःखम्। अकृतपरलोकमार्गं ममत्व विषवेगरहितोऽपि ॥५॥
दृष्ट्वा प्राणिनिवहं भीमे भवसागरे दुःखार्तम्। अविशेषतोऽनुकम्पां द्विधाऽपि सामर्थ्यतः करोति ॥६॥
मन्यते तदेव सत्यं निःशङ्कं यज्जिनैः प्रज्ञप्तं शुभपरिणामः सर्वं काङ्क्षाविविश्रोतसिकारहितः ॥७॥
एवंविधपरिणामः सम्यग्दृष्टिर्जिनैः प्रज्ञप्तः। एष च भवसमुद्रं लङ्घते स्तोकेन कालेन ॥८॥

अभ्यन्तरे सम्यङ्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न सङ्क्रम्यते। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "अट्ठावीस-संतकम्मियस्स सम्मत्तलंभातो आवलियाए परतो वट्टमाणस्स सम्मत्तं पडिग्गत्ते-त्ति फेडिए सत्तावीसा संकमति, तस्सेव आवलिया अब्भंतरतो वट्टमाणस्स कमो सम्मामिच्छत्तस्स संकमो णत्थि त्ति छव्विसा संकमंति।" अत्र प्रथमसम्यक्त्वप्राप्ति आवलिकापर्यन्तं सम्यङ्मिथ्यात्वस्य (मिश्रस्य) सङ्क्रमो निषिध्यते, न त्वौपशमिकसम्यक्त्वा-ऽभिमुखस्य मिथ्यात्वचरमसमयतः, न वा सम्यक्त्वप्राप्तितः समयोनाऽऽवलिकापर्यन्तमिति हेतोरन्तरकरणप्रथमसमय औपशमिकसम्यग्दृष्टिस्त्रीन् पुञ्जान् करोति। उक्तं चाऽन्यत्राऽपि। तथा चाऽत्र शतकचूर्णिः पढमसम्मत्तं उप्पाडितो तिन्नि करणाणि करेओ उवसमसम्मत्त-पडिवन्नो मिच्छत्तदलियं तिपुंजी करेइ सुद्धं मीसं असुद्धं चेत्ति। तथैव कर्मस्तवे-ऽप्युक्तम् - इहाऽनन्तराऽभिहितविधिनौपशमिकसम्यक्त्वेनौषधिविशेषकल्पेन मदन-कोद्रवस्थानीयं मिथ्यात्वमोहनीयं कर्म शोधयित्वा त्रिधा करोति तद्यथा-शुद्धमर्ध-विशुद्धमशुद्धं चेति।

तथा चोक्तं कषायप्राभृतचूर्णावपि "चरिमसमयमिच्छादिट्ठी से काले उवसंत-दंसणमोहणीओ ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा अप्पादिदा"

तत्र शुद्धं सम्यक्त्वमोहनीयम्, तच्च देशघाति देशघातिरससमन्वितत्वात्तस्याऽनुभाग एकस्थानको मन्दद्विस्थानको वा। अर्धविशुद्धं मिश्रमोहनीयम्, तच्च सर्वघाति, तस्य सर्व-घातिरससमन्वितत्वात् तस्याऽनुभागो मध्यमद्विस्थानकः, अशुद्धं मिथ्यात्वमोहनीयं तच्च सर्व-घातिरससमन्वितत्वात्तस्यानुभागः मध्यमद्विस्थानकादग्रेतनो यावत् त्रिचतुःस्थानको तदेव सूत्रकारोऽभिधत्ते-"सम्मिस्सं" इत्यादि, मिश्रेण सहितं मिथ्यात्वं सर्वघाति भवति। मिथ्यात्वसत्काऽनुभागस्य त्रिधा करणं त्रिपुञ्जकरणमित्युच्यते, पञ्चसङ्ग्रहादिकाराणामभि-प्रायेण पुनस्त्रिपुञ्जा मिथ्यात्वचरमोदये वर्तमानेन सम्यक्त्वाऽभिमुखेन मिथ्यादृष्टिना क्रियते।

उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहकारैः—

उवरिमठिइ अणुभागं तं च तिहा कुणइ चरिममिच्छुदए।
देसघाईणं सम्मं इयरेण मिच्छमीसाइं ॥१॥

मूलटीका—उपरिमस्थितेर्द्वितीयस्थितेः कर्मदलं रसभेदेन त्रिधा करोति शुद्धि-मधिकृत्य; शुद्धं किञ्चिच्छुद्धमिति। तच्च प्रथमस्थितिचरमसमये मिथ्यात्वमनुभव-मानो जीवो देशघातिरसेन सम्यक्त्वपुञ्जं सर्वघातिरसेन द्विस्थानकेन सम्यग्मि-थ्यात्वपुञ्जं (द्वि) त्रिचतुःस्थानरसेन सर्वघातिना मिथ्यात्वपुञ्जं प्रारम्भयतीत्यर्थः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मलयगिरिटीका--प्रथमस्थितिचरमसमये मिथ्यात्वोदये वर्तमानो मिथ्यादृष्टिरुपरितनस्थितेर्द्वितीयस्थितेः सम्बन्धिनां कर्मपरमाणूनामनुभागं त्रिधा करोति, अनुभागभेदेन त्रिधा द्वितीयस्थानगतं मिथ्यात्वदलिकं करोतीत्यर्थः ।

चरमसमयमिच्छदिट्ठी से काले उवसमसम्मदिट्ठी होहि त्ति ताहे बितीयट्ठितीते तहा अणुभागं करोति तं जहा सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तमिति । इति कर्मप्रकृतिचूर्णिकाराणामक्षराणामयमर्थः, मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यात्वचरमोदये वर्तमानस्सन् त्रीन् पुञ्जान् करोति इति श्रीमन्मलयगिरीपादैः कृतस्तथा चाऽत्र कर्मप्रकृतिमलयगिरिटीका "तस्मिन् काले यतोऽनन्तरसमय औपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भविष्यति तस्मिन् प्रथमस्थितौ चरमसमय इत्यर्थः, मिथ्यादृष्टिस्सन् द्वितीयं द्वितीयस्थितिगतं दलिकमनुभागेनाऽनुभागभेदेन त्रिधा करोतीति । तथैवोपाध्यायप्रवरैः स्वकर्मप्रकृतिटीकायामप्युक्तम्, एवं सप्ततिकावृत्तावप्युपर्युक्त एवाऽर्थः कृतः, तथा चाऽत्र सप्ततिकावृत्तिः-तस्मिंश्च मिथ्यात्वप्रथमस्थितिवेदनचरमसमये द्वितीयस्थितिगतं मिथ्यात्वदलिकमनुभागभेदेन त्रिधा करोति, तद्यथा-सम्यक्त्वं सम्यङ्मिथ्यात्वं मिथ्यात्वञ्चेत्येवं नव्यशतकवृत्तावपि ।

श्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिभिस्स्वककर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनक एवमुक्तम्- ताहे बितीयट्ठिईए तिहाणुभाग करेइ त्ति प्रथमस्थितिचरमसमयवर्ती द्वितीयस्थितेः त्रिधाऽनुभागं करोति मिथ्यादृष्टिरपि सन् । नन्वेव सम्यक्त्वमिश्रपुञ्जयोरुत्पादितयोः को गुणो इति चेत् ? उच्यते-औपशमिकसम्यक्त्वप्रथमसमयप्रभृत्येकमिथ्यात्वस्य गुणसंक्रम प्रवर्तते । न चासावप्रतिग्रहो युक्त इति प्रागेव प्रतिग्रहसिद्धौ सोऽबाधितरूप एव यथा प्रवर्तते तथा मिथ्यात्वानुभागव्यवस्थान क्रियत इति मिथ्यात्वं चेति द्वितीयस्थितिगतं मिथ्यात्वदलमनुभागभेदेन त्रिधा करोति सम्यक्त्वं सम्यङ्मिथ्यात्वं मिथ्यात्वं चेति । तच्च सम्यक्त्वप्राप्तिसमये वा मिथ्यात्वोदयचरमसमये वा करोतीति तत्त्वं त्वतिशायिज्ञानिनो विदन्ति ।

उपशमसम्यक्त्वप्रथमसमयादारभ्य जन्तुर्गुणसङ्क्रममारभते, तमभिधित्सुः सूत्रकार आह--

पढमे समये थोवो सम्मत्ते मीसए असंखगुणो ।
अणुसमयमविय कमसो भिन्नमुहुत्ता हि विज्झाओ ॥२०॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

प्रथमसमये स्तोकं सम्यक्त्वे मिश्रेऽसंख्येयगुणः ।
अणुसमयमपि च क्रमशो भिन्नमुहूर्ताद्धि विध्यातः ॥२०॥ इति पदसंस्कारः।

"पढमे" इत्यादि, औपशमिकसम्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमयादारभ्य मिथ्यात्वदलानि गुणसङ्क्रमण मिश्रसम्यक्त्वयोः सङ्क्रमयति । सङ्क्रमक्रमश्चाऽयम्—प्रथमसमये सम्यक्त्वे स्तोकं मिथ्यात्वदलं निक्षिप्यते, ततो मिश्रेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि द्वितीयसमये सम्यक्त्वेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि तस्मिन्नेव द्वितीयसमये मिश्रेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि तृतीयसमये सम्यक्त्वेऽसंख्येयगुणम्, ततस्तस्मिन्नेव तृतीयसमये मिश्रेऽसंख्येयगुणं निक्षिप्यते । एवम् "अणुसमयं" ति, प्रतिसमयं तावद् वक्तव्यं यावदन्तर्मुहूर्तम् । मिथ्यात्वस्य गुणसङ्क्रमारम्भसमयादूर्ध्वमावलिकाऽनन्तरं गुणसङ्क्रमेण सम्यक्त्वमोहनीये मिश्रमोहनीयस्य सङ्क्रमोऽपि भवति । इयमत्र भावना—मिथ्यात्वस्य गुणसङ्क्रमो मिश्रस्य च गुणसङ्क्रम उभौ युगपन्नारभ्येते । किन्तु मिथ्यात्वमोहनीयस्य सङ्क्रमारम्भाऽनन्तरमावलिकायां व्यतिक्रान्तायामेव भवति, यतः सङ्क्रमावलिका सकलकरणाऽयोग्या । 卐

उक्तं च कर्मप्रकृतिमलयगिरिटीकायाम्- **तस्यैवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मण आवलिकायामभ्यन्तरे वर्तमानस्य सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न सङ्क्रामति यतो मिथ्यात्वपुद्गला एव सम्यक्त्वाऽनुगतविशोधिप्रभावतः सम्यग्मिथ्यात्वलक्षणं परिणामाऽन्तरमापादिता अन्यप्रकृतिरूपतया परिणामाऽन्तरमापादानं च सङ्क्रमः, सङ्क्रमावलिकागतं च सकलकरणाऽयोग्यमिति सम्यक्त्वलाभादावलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानेन सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न सङ्क्रम्यते किन्तु केवलं मिथ्यात्वमेव ।**

कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेऽपि त्रिपुञ्जकरणे परप्रकृतिसङ्क्रमः स्वीक्रियते, कथमेतदवगन्तव्यमिति चेद्? उच्यते—**कषायप्राभृतचूर्णिकारा** मिश्रस्य सङ्क्रमं मन्यन्ते सम्यक्त्वप्राप्तितो द्वितीयात्समयादारभ्य न त्वावलिकायां व्यतिक्रान्तायाम्, तथा च तद् ग्रन्थः "**सम्मामिच्छत्तस्स सकमो को होई? मिच्छाइट्ठी उव्वेल्लाओ सम्माइट्ठी वा नीरासणो मोत्तूण पढमसमयसम्मामिच्छसंतकम्मीयम्।**" औपशमिकसम्यक्त्वप्रथमसमये त्रिपुञ्जकरणेन मिश्रस्य सत्कर्म प्राप्यते, तद्द्वितीयसमयात्प्रभृति मिश्रमोहनीय सङ्क्रम्यते, न च सम्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमये मिश्रस्य सङ्क्रमः कथं न भवतीति वाच्यम्, मिश्रस्योत्पत्तिक्रियासङ्क्रमक्रिययोः परस्परं विरोधात् । तेन तेषां मते मिश्रस्यौपशमिकसम्यक्त्वद्वितीयसमयाद् गुणसङ्क्रमो प्रवर्तते ।

卐 औपशमिसम्यक्त्वप्रथमसमये मिश्रप्रकृतिस्त्रिपुञ्जक्रियायां मिथ्यात्वस्य संक्रमेण प्राप्यते, सङ्क्रमाऽऽवलिका च सकलकरणाऽयोग्येत्यौपशमिकसम्यक्त्वप्रथमसमयादावलिकापर्यन्तं मिश्रमोहनीयमन्यत्र सङ्क्रमयितुं नाऽलम् ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

अत्र गुणसङ्क्रमः कः पदार्थ इति चेद् ? अत्र वयं ब्रूमः-अत्र गुणशब्दो न क्षमादिगुणानां वाचकः, न च रूपादिगुणानां वाचकः, अपि त्विह "भामा सत्यभामा" इति न्यायेन गुणशब्दस्याऽसंख्येयगुणे वृत्तिर्ज्ञातव्या, यद्वा पारिभाषिको गुणशब्दोऽयं योऽसंख्येयगुणे वर्तते, यत्र पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणकारेण प्रक्रिया भवति, तत्र बहुलमस्मिन् शास्त्रे गुणशब्दो व्यवह्रियते । यथा गुणोपशमना, यत्र पूर्वपूर्वसमयादुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणकारेण दलान्युपशम्यन्ते । एवं गुणश्रेणिरपि-यत्र सम्यक्त्व-चारित्रादिप्रशस्तगुणान्वितेन जीवेन पूर्वपूर्वसमयादुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणकारेन श्रेणिर्दलरचना क्रियते । तथैव गुणसङ्क्रमः पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणनया प्रवर्तमानः संक्रमः तेन सम्यक्त्वलाभप्रथमसमये यावन्ति दलानि सङ्क्रमयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणानि दलानि सङ्क्रमयति, ततस्तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणानि सङ्क्रमयति, एतेनाऽसंख्येयगुणकारेण क्रमेण दलानि यावत्संक्रमयति, स गुणसङ्क्रमपदार्थ इति भावः ।

गुणसङ्क्रमस्य सामान्यलक्षणम्— अपूर्वकरणप्रभृतिगुणस्थानकेऽथवाऽपूर्वकरणादारभ्याऽबध्यमानानामशुभप्रकृतीनां कर्मदलिकानां प्रतिसमयं गुणेनाऽसंख्येयगुणकारेण बध्यमानासु स्वजातीयासु प्रकृतिषु यः प्रक्षेपः स गुणसंक्रमः । अपवादतो मिथ्यात्वमोहनीयमिश्रमोहनीययोरसंख्येयगुणनया स्वबध्यमानसजातीये यथायोगं सम्यक्त्वमोहनीये मिश्रमोहनीये वाऽपि यः प्रक्षेपः स गुणसंक्रम उच्यते ।

उक्तञ्च पञ्चसंग्रहे संक्रमाऽधिकारे—

> असुभाण पएसग्गं बज्झंतीसु असंखगुणणाए ।
> सेढीए अपुव्वाई छुभंति गुणसंकमो एसो ॥१॥

स च गुणसङ्क्रमोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वमिश्रमोहनीयरूपषट्प्रकृतिवर्जानां शेषाऽबध्यमानाऽशुभप्रकृतीनामपूर्वकरणप्रभृतिगुणस्थानके भवति । विसंयोजनाकालेऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाऽशुभप्रकृतीनां तथा दर्शनत्रिकक्षपणाकाले मिथ्यात्वमिश्रमोहनीययोरशुभप्रकृत्योर्गुणसङ्क्रमोऽपूर्वकरणादारभ्य भवति । प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाऽवसरे तु मिथ्यात्वमिश्रपुञ्जयोर्गुणसंक्रमः सम्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमयादारभ्यैवाऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं भवति नाऽर्वाक् । ननु मिथ्यात्वस्य गुणसंक्रमः सम्यक्त्वमोहनीये सम्यक्त्वप्राप्तेरर्वागपूर्वकरणादारभ्य कुतो न भवतीति चेद् ? उच्यते-मिथ्यात्वस्य ध्रुवबन्धित्वेन प्रथमगुणस्थानकेऽवश्यं बध्यमानत्वादनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयपर्यन्तमबध्यमानत्वाऽभावात् पतद्ग्रहरूपसम्यक्त्वमोहनीयस्याभावाच्च गुणसङ्क्रमो न भवति । गुणसङ्क्रमो ह्यबध्यमानानां प्रकृतीनां भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्वा यः संक्रमोऽन्तरकरणस्थितेनौपशमिकसम्यक्त्वलक्षणप्रशस्तगुणाऽन्वितेन क्रियत इति स गुणसंक्रमः । तथा चोक्तं पंचसंग्रहे--

गुणसंकमेण एसो होइ संकमो सम्ममीसेसु ।
अंतरकरणम्मि ठिओ कुणइ जओ सपसत्थ गुणा ॥१॥

ननूपशमसम्यक्त्वप्राप्तितो य आरब्धो गुणसङ्क्रमः, स गुणसङ्क्रमोऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तमेव प्रवर्तते । न चाऽयमुपशमसम्यक्त्वकालपर्यन्तं कुतो न प्रवर्ततेऽन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्त एव कुतो न निवर्तत इति वाच्यम्, यतोऽत्राऽयं नियमः प्रतिभाति, करणकालात्पूर्वाऽवस्थायां तथा यथाप्रवृत्तादिषु करणेषु या प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशोधिः, सा प्रथमसम्यक्त्वादिगुणप्राप्तिप्रथमसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं प्रवर्तते, तत ऊर्ध्वं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशोधिर्न प्रवर्तत इति । तस्मादत्राऽप्युपशमसम्यक्त्वप्राप्तिसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तं यावदनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्यां वर्तमानो जन्तुर्भवतीति संभाव्यतेऽत एव सम्यक्त्वप्राप्तिसमयादन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं गुणसङ्क्रमो भवति, तत उर्ध्वं गुणसङ्क्रमो निवर्तते । तथा चाऽन्तर्मुहूर्तात्परतः प्रवर्धमानविशुद्धेरसंभवाद् गुणसङ्क्रमेण सह मिथ्यात्ववर्जशेषकर्मणां स्थितिघातादयोऽपि निवर्तन्ते । गुणसङ्क्रमसम्बन्धिन्यन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते गुणसङ्क्रमो निवर्तते । ततश्च विध्यातसङ्क्रमः प्रवर्तते । विध्यातसङ्क्रमेण सम्यक्त्वमोहनीये मिथ्यात्वसम्यक्त्वमिथ्यात्वपुञ्जौ मिश्रमोहनीये च मिथ्यात्वपुञ्जं सङ्क्रमयति ।

ननु किं नाम विध्यातसङ्क्रम इति चेद् ? उच्यते– विध्यातसङ्क्रमोऽपि गुणप्रत्ययतो भवप्रत्ययतो वाऽबध्यमानानां प्रकृतीनां भवति, किन्त्वनेन सङ्क्रमेण स्तोकान्येव दलिकानि परप्रकृतिषु सङ्क्रम्यन्ते । प्रथमसमये विध्यातसङ्क्रमेण यावत्कर्मदलिकं परप्रकृतिषु सङ्क्रम्यते, तेन मानेनाऽवशिष्टदलिकस्याऽपहारे क्रियमाणे क्षेत्रतोऽङ्गुलाऽसंख्येयतमभागगताऽऽकाशप्रदेशैरपहारो भवति, कालतश्चाऽसंख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणिभिरपहारो भवति ।

उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे सङ्क्रमाऽधिकारे--

जाण न बंधो जायइ आसज्ज गुणं भवं व पगईणं ।
विज्झाओ ताणंगुलअसंखभागेण अण्णत्थ ॥६॥

इदन्तु विध्यातसङ्क्रमस्य मन्दतां प्रदर्शयितुमुक्तम् । वस्तुतस्तु शेषसर्वदलिकं कदाऽपि विध्यातसङ्क्रमेणाऽन्यत्र न संक्रम्यत इति ध्येयम् ।

गुणसङ्क्रमकालमभिधाय संप्रति गुणसंकमक्रमनिवर्तनकाले ये पदार्था अपूर्वकरणे स्थितिघातादय आरब्धाः, तेषां निवृत्तिकालमभिधित्सुराह—

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिइरसघाओ गुणसेढी विय तावं पि आउवज्जाणं ।
पढमठिइए एगदुगावलि सेसम्मि मिच्छत्ते ॥२१॥

स्थितिरसघातौ गुणश्रेणिरपि च तावदप्यायुर्वर्जानाम् ।
प्रथमस्थितावेकद्वयावलिकाशेषे मिथ्यात्वे ॥२१॥ इति पदसंस्कारः

"**ठिइरसघाओ**" इत्यादि, यावद् गुणसङ्क्रमस्तावदेव मिथ्यात्वाऽऽयुर्वर्जानां शेषाणां सप्तकर्मणां स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिरपि च प्रवर्तन्ते । गुणसंक्रमे च निवर्तमाने स्थितिघातरसघातगुणश्रेणयोऽपि निवर्तन्ते । अत्र यद्यपि शेषकर्मणामपूर्वस्थितिबन्धस्य निवर्तनं नोक्तम्, तथाऽपि यः ✱ पूर्वपूर्वस्थितिबन्धत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पल्योपमसंख्येयभागेन हीयमानः प्रवर्तमान आसीत् । सोऽप्यनन्तगुणवृद्ध्या प्रवर्धमानपरिणामाऽभावेन गुणसंक्रमणनिवृत्त्या सह निवर्तते ।

मिथ्यात्वस्य यावत्प्रथमस्थितेरेकाऽऽवलिका शेषा भवति तावन्मिथ्यात्वस्य स्थितिघातरसघातौ च भवतः । ततः परं न भवतः । तथा च यावन्मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितेर्द्वे आवलिके शेषे भवतस्तावन्मिथ्यात्वस्य गुणश्रेणिर्भवति, ततः परं न भवति, मिथ्यात्वस्याऽपूर्वस्थितिबन्धश्च यावत्प्रथमस्थितेश्चरमसमयं तावद् मिथ्यात्वस्य ध्रुवबन्धित्वेनोदयबन्धित्वेन चाऽवश्यं भवति, मिथ्यात्वस्योदयविच्छेदे मिथ्यात्वस्य स्थितिबन्धोऽपि व्यवच्छिद्यते, ततः परं न भवति, अयं भावः—मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेषे मिथ्यात्वस्य गुणश्रेणिर्व्यवच्छिद्यते, मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितेरावलिकायां शेषायां मिथ्यात्वस्य स्थितिघातरसघातौ व्यवच्छिद्येते, । मिथ्यात्वस्योदयविच्छेदे सति स्थितिबन्धोऽपि व्यवच्छिद्यते । एतत्सर्वं यथास्थानं प्राग् भावितम् ।

गुणसङ्क्रमेऽनिवृत्तेऽन्तरकरणस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्विध्यातसङ्क्रमेण सम्यक्त्वमोहनीये मिश्रपुञ्ज मिथ्यात्वं च, तथा मिश्रमोहनीये मिथ्यात्वमोहनीयं सङ्क्रमयन्नुपशान्ताद्धायाः किञ्चिदधिकाऽऽवलीकां शेषामधिगम्य यत्करोति तदाह—

उवसंतद्धा अंते विहिणा ओकड्डियस्स दलियस्स ।
अज्झवसाणाणुरूवस्सुदओ तिसु एक्कयरस्स ॥२२॥

✱ उक्तं च लब्धिसारस्य चतुःपञ्चाशत्तमगाथायाष्टीकायाम् ... —
ठिदिबंधोसरणं पुण अद्धापवत्तादुपूरणो त्ति हवे ।
ठिदिबंध ठदिखंडुक्कीरणकाला समाहोंति ॥१॥
टीका -- स्थितिबन्धाऽपसरणं पुनरधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य आगुणसङ्क्रमपूरणचरमसमयं प्रवर्तते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशान्ताद्धाया अन्ते विधिनाऽकर्षितस्य दलिकस्य ।
अध्यवसानुरूपस्योदयस्त्रयाणामेकतरस्य　　॥२२॥ इति पदसंस्कारः

"उवसंतद्धा" इत्यादी. उपशान्ताद्धाया औपशमिकसम्यक्त्वाऽद्धाया अन्ते किञ्चिदधिकावलिकाशेषे वर्तमानो द्वितीयस्थितिगतस्य सम्यक्त्वादिपुञ्जत्रयस्य दलिकमध्यवसायविशेषेणाऽऽकृष्याऽन्तरकरणस्याऽन्तिमाऽऽवलिकायां प्रक्षिपति, तत्र प्रक्षेपविधिश्चायम्— उपशान्ताद्धासत्कचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये प्रभूतं दलिकम्, ततो द्वितीयसमये स्तोकम्, ततस्तृतीये समये स्तोकमेवं तावद्वाच्यं यावदावलिकाचरमसमयः, तानि चेत्थं निक्षिप्यमाणानि दलिकानि गोपुच्छाकारं क्षेत्रमास्तृणन्ति । तत उपशान्ताद्धाया आवलिकामात्रे काले शेषे "विहिणा" इत्यादि विधिनाऽवतारितस्य गोपुच्छाकारेण स्थापितस्येति यावत्, सम्यक्त्वादिपुञ्जत्रयस्यैकतरस्याऽध्यवसायाऽनुरूपस्य पुञ्जस्योदयो भवति । अयं भावः--उपशान्ताद्धायाः किञ्चिदधिकाऽऽवलिकायां शेषायामपवर्तनया गोपुच्छाकारेणाऽऽवलिकायां सम्यक्त्वादिमोहनीयत्रयस्य दलानि स्थापयति । किञ्चिदधिके काले गते सति यदोपशान्ताद्धायाः पर्यन्ताऽऽवलिकां प्रविशति, तदा शुभपरिणामस्य जन्तोः सम्यक्त्वमोहनीयस्योदयो भवति । मध्यमपरिणामस्यजन्तोर्मिश्रमोहनीयस्योदयः, तथाऽशुभपरिणामस्य जन्तोर्मिथ्यात्वस्योदयो भवति ।

उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहेऽपि—

卐 उवसंतद्धा अंते विहिए ओकड्डियस्स दलियस्स ।
अज्झवसाणविसेसा एक्कस्सुदओ भवे तिण्हं ॥१॥

पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्...५

यस्य जन्तोर्मिथ्यात्वस्योदयो भवति, स मिथ्यात्वगुणस्थानकं प्राप्नोति । तत्र च अन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं नानाजीवाऽपेक्षया तीर्थकृत्कर्माऽऽहारकद्विकं विना सप्तदशाऽधिकशतप्रकृतीनां बन्धकः सञ्जायते, द्वाविंशत्युत्तरशतोदययोग्यप्रकृतीनां मध्याद् मिश्रसम्यक्त्वाऽऽहारकद्विकतीर्थकृत्कर्मरूपपञ्चप्रकृतीस्त्यक्त्वा सप्तदशोत्तरशतप्रकृतिषु यथायोग्यप्रकृतीनां वेदको भवति, आहारकचतुष्कजिननामं विना चत्वारिंशदुत्तरशतसत्ताको भवति ।

यस्य जन्तोर्मिश्रस्योदयो भवति, स मिश्रगुणस्थानकं प्राप्नोति । तत्र स्थितो न परभवयोग्याऽऽयुर्बध्नाति, न च तत्र म्रियते । ततश्च्युत्वा मिथ्यादृष्टिः सन् यद्वा सम्यक्त्वमासाद्य सम्यग्दृष्टिः सन् समाप्त आयुष्के म्रियते, नानाजीवाऽपेक्षया मिश्रगुणस्थानकवर्ती तिर्यक्त्रिकस्त्यानर्द्धित्रिकदुर्भगदुःस्वराऽनादेयाऽनन्तानुबन्धिमध्यमसंस्थानचतुष्कमध्यमसंहननचतुष्कनीचैर्गोत्रोद्योताऽप्रशस्तखगतिस्त्रीवेदरूपपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धाऽपगमात् मनुष्यदेवायुराहारक-

卐 उपशान्ताद्धाऽन्ते द्वितीयाया अपकर्षितस्य दलिकस्य ।
अध्यवसायविशेषादेकस्योदयो भवेत् त्रयाणाम् ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

द्विकजिननामरूपप्रकृतीनामबन्धात् सास्वादनगुणस्थाने बन्धविच्छेदयोग्यमिथ्यात्वनरकत्रिकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरचतुष्काऽऽतपहुण्डकसेवार्तनपुंसकवेदरूपषोडशप्रकृतीर्वर्जयित्वा शेषाणां चतुःसप्ततिप्रकृतीनां बन्धको भवति, वेदकः पुनरेकेन्द्रियविकलेन्द्रियरूपजातिचतुष्काऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्थावररुपनवप्रकृतीनां विच्छेदात् देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्व्यनुदयान्नरकानुपूर्वीसूक्ष्मत्रिकाऽऽतपमिथ्यात्वोदयस्य सास्वादनगुणस्थानक एव व्यवच्छेदात्, आहारकद्विकजिननामसम्यक्त्वमोहनीयमिश्रमोहनीयरूपपञ्चप्रकृतीनां मिथ्यात्वगुणस्थानकेऽनुदयानां मध्याद् मिश्रस्य चोदयमानत्वात् शतप्रकृतीनां भवति। तथा यद्यपि मिश्रदृष्टिर्जिननामवर्जसप्तचत्वारिंशदधिकशतसत्ताको भवति तथापि प्रथमोपशमसम्यक्त्वाऽनन्तरं मिश्रदृष्टिराहारकचतुष्कजिननामं विना त्रिचत्वारिंशदधिकशतप्रकृतिसत्ताको भवति।

यस्य सम्यक्त्वमोहनीयस्योदयो भवति, स क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः सन् यदा चतुर्थगुणस्थानकं प्राप्नोति, तदा तत्र च व्रतरहितस्सन् कालं गमयति। यद्यप्ययं जन्तुः सावद्यव्यापारं कुत्सितकर्मत्वेन जानीते, तथाऽप्यप्रत्याख्यानावरणलक्षणद्वितीयकषायोदयप्रतिबन्धकस्य सत्त्वाद् व्रतं न गृह्णाति, प्रतिबन्धकाऽभावस्य कार्यजनकत्वनियमात्। अविरतोऽप्येवं सद्देवगुरुसङ्घानां पूजाप्रणतिवात्सल्यादिरूपभक्तिं शासनोन्नतिं च कर्तुं समुद्यतते। उक्तं चाऽन्यत्राऽपि—

卐 जो अविरओऽवि संघे भत्तिं तित्थुण्णइं सदा कुणइ।
अविरयसम्मदिट्ठो पभावगो सावगो सो वि ॥१॥

नानाजीवाऽपेक्षया चतुर्थगुणस्थानवर्तिनः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टेर्मिश्रगुणस्थानके बध्यमानचतुःसप्ततिप्रकृतीनां तीर्थकृन्मनुष्यदेवायुरूपप्रकृतित्रयस्य च बन्धो भवति, तथा मिश्रं वर्जयित्वा मिश्रगुणस्थानकवन्नवनवतिप्रकृतय आनुपूर्वीचतुष्कसम्यक्त्वरूपपञ्चप्रकृतयश्चेति चतुरधिकशतप्रकृतीनामुदयो भवति, अष्टचत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतीनां सत्ता भवति।

सामान्यतश्चतुर्थगुणस्थानके बन्धे सत्तायां चोपर्युक्तप्रकृतयो भवन्ति तथापि प्रथमसम्यक्त्वाऽनन्तरं क्षयोपशमसम्यग्दृष्टेर्बन्धे जिननाम तथा सत्तायां जिनाहारकचतुष्कं न भवति।

अथ सास्वादनस्य प्रतिपत्तिं दर्शयितुकाम आह—

सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमा तहा विगिट्ठो य
छालिग सेसा परं आसाणं कोइ गच्छेज्जा ॥२३॥

卐 योऽविरतोऽपि संघे भक्तिं तीर्थोन्नतिं सदा करोति।
अविरतसम्यग्दृष्टिः प्रभावकः श्रावकः सोऽपि ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वप्रथमलाभः सर्वोपशमात् तथा विप्रकर्षश्च ।
षडावलिकाशेषायां परमासादनं कश्चिद् गच्छेत् ॥ ॥२३॥ इति पदसंस्कारः

प्रथमोपशमसम्यक्त्वलाभो मिथ्यात्वस्य सर्वोपशमनाद् भवति, नाऽन्यथा । तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य कालः प्रथमस्थित्यपेक्षया विप्रकृष्टः, बृहत्तराऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः ।

अस्मिन् सम्यक्त्वे प्रतिपद्यमाने कश्चिज्जन्तुः प्रथमसम्यक्त्वेन सह देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते +। उक्तं च **शतकबृहच्चूर्णौ**—

● **"उवसमसम्मदिट्ठी अन्तरकरणे ठिओ कोइ देसविरइं पि लभेइ ।**
कोइ पमत्तापत्तभावं पि, सासायणो पुण न किंपि लभे इति ॥१॥" इति ।

तथैव पञ्चसङ्ग्रहेऽपि—

सम्मत्तेण समगं सव्वं देसं च कोइ पडिवज्जे ।" इति ।
ततो देसविरतिप्रमत्ताप्रमत्तसंयतेषु मिथ्यात्वमुपशान्तं प्राप्यते ।

"**छालिगसेसा**" इत्यादि, जघन्यत औपशमिकसम्यक्त्वकाले समयमात्रशेष उत्कर्षत आवलिकाषट्कशेषे कश्चिज्जन्तुरनन्तानुबन्धिकषायोदयादासादनं सास्वादनत्वं प्रतिपद्यते, सास्वादनगुणस्थानकं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

तथा चोक्तं **गुणस्थानक्रमारोहे**—

"एकस्मिन्नुदिते मध्याच्छान्तानन्तानुबन्धीनाम् ।
आद्यौपशमिकसम्यक्त्वशैलमौलेः परिच्युतः ॥१॥
समयादावलिषट्कं यावन्मिथ्यात्वभूतलम् ।
नासादयति जीवोऽयं तावत्सास्वादनो भवेत् ॥२॥" इति ।

इदं सास्वादनगुणस्थानकं सम्यक्त्वतः पततैव जन्तुना प्राप्यते, अतोऽस्य स्वामी भव्यजन्तुरेव । भव्येष्वप्यस्योत्कृष्टतः किञ्चिदूनपुद्गलावर्तार्द्धकालप्रमाणसंसारः स एव नाऽन्यः । उक्तं चाऽन्यत्र--

---

+ सिद्धान्तमते स्थितिसत्कर्मतः पल्योपमपृथक्त्वे क्षपिते जन्तुर्देशविरतिं सागरोपमपृथक्त्वे च क्षपिते सर्वविरतिं प्रतिपद्यते, तथा च समरादित्यकथायां भणितम् ....—

सम्मत्तम्मि उलद्धे पलियपुहुत्तेण सावगो होज्जा ।
चरणोवसम खयाणं सागरसखंतरा होन्ति ॥१॥
श्रावकप्रज्ञप्त्यामपि तथैवोक्तम् ।

● उपशमसम्यग्दृष्टिरन्तरकरणे स्थितो कोऽपि देशविरतिमपि लभेत् । कोऽपि प्रमत्ताप्रमत्तभावमपि, सास्वादनं पुनः न कोपि लभेदिति ॥१ ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

"अंतोमुहुत्तमित्तं पि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल परिअट्टो चेव संसारो ॥१॥" इति

अथ सास्वादनगुणस्थानकाऽन्तरं भण्यते- अन्तरं नाम विवक्षितगुणस्थानाऽवस्थितेः प्रच्युतानां पुनस्तत्प्राप्तेर्व्यवधानम्। तच्च सास्वादनगुणस्थानकस्य जघन्यतः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणम्। यतः करणत्रयपूर्वकमन्तरकरणं कृत्वौपशमिकसम्यक्त्वमासादयति, ततोऽनन्तानुबन्ध्युदयात् सास्वादनभावमासाद्य तत्काले व्यतीतेऽवश्यं मिथ्यात्वं गच्छति। तत्र पल्योपमाऽसंख्येयभागेन कालेन मिश्रसम्यक्त्वे उद्वल्य षड्विंशतिसत्कर्मा सन् कश्चिज्जन्तुर्भूय औपशमिकसम्यक्त्वमासाद्य सास्वादनत्वं प्रतिपद्यते, अतो जघन्येन पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणमन्तरमुपपद्यते। उत्कृष्टमन्तरं च देशोनार्धपुद्गलपरावर्तमानम्। तथाहि—सम्यक्त्वतः परिभ्रष्टो जीव उत्कृष्टतः किञ्चिदूनपुद्गलपरावर्तार्द्धं यावत्संसारपारावारमध्यमवगाह्य सम्यक्त्वं लभते, ततो देशोनार्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणमुत्कृष्टाऽन्तरमटते।

यावदन्तरकरणे तिष्ठति तावदौपशमिकसम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः।

उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे—"उवसंतदंसणी सो अन्तरकरणे ठिओ जाव।" इति। किन्त्वनन्तानुबन्ध्युदयादधः पतति, तदाऽन्तरकरणे स्थितोऽपि सम्यक्त्वस्याऽऽस्वादनमात्रं करोति। उक्तं च—

"उवसमअद्धाइठिओ मिच्छमपत्तं तमेव गन्तुमणो ।
सम्मं आसायन्तो सासायणमो मुणेयव्वो ॥१॥" इति

नानाजीवाऽपेक्षया सास्वादनगुणस्थानकवर्ती एकोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धक, यतो मिथ्यात्वनरकत्रिकैकेन्द्रियादिजातिचतुष्कस्थावरचतुष्काऽऽतपहुण्डसेवार्तनपुंसकवेदरूपषोडशप्रकृतीर्न बध्नाति, तासां मिथ्यात्वप्रत्ययत्वात् तथा चाऽऽहारकद्विकजिननामलक्षणत्रिप्रकृतीनामबन्धकस्तद्-बन्धयोग्यगुणाऽभावात्। सूक्ष्मत्रिकाऽऽतपमिथ्यात्वरूपपञ्चानामुदयव्यवच्छेदाद् नरकानुपूर्व्यनुदयाच्चैकादशोत्तरशतप्रकृतीनां वेदको नरकानुपूर्व्यनुदय इदं कारणम् सास्वादनस्थो जीवो नरकं न याति, नानाजीवमाश्रित्यसास्वादनस्थस्तीर्थकृत्सत्ताऽसंभवेति सप्तचत्वारिंशदधिकशतसत्ताको भवति।

अथ सम्यग्दृष्टेः स्वरूपमाविश्चिकीर्षुराह—

सम्मद्दिट्ठीजीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ ।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुनियोगा ॥२४॥

सम्यग्दृष्टिर्जीव उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्धत्ते ।
श्रद्धत्तेऽसद्भावमजानन् गुरुनियोगात् ॥२४॥ इति पदसंस्कारः

सम्यग्दृष्टिर्जन्तुर्गुरुभिरर्थतः परमगुरुभिस्तीर्थकरैः सूत्रतो गणधरादिभिश्चोपदिष्टं प्रज्ञप्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचनं नियमाच्छ्रद्दधात्येव, तुशब्दोऽत्रैवकारार्थो भिन्नक्रमश्च । तेन यः पुनः सम्यग्दृष्टिरप्य-सद्भावं न विद्यते सद्भावो जीवाजीवानामनुपहतं स्वरूपं यस्मिन् प्रवचने, तद् , असद्-भूतमित्यर्थो मिथ्यात्वमदवाभितधाप्रणीतमिति यावत् प्रवचनं श्रद्धत्ते, सोऽजानन् यथार्थ-ज्ञानविकलः सन् । अत्राऽज्ञानं ज्ञानावरणकर्मविपाकोदयादुत्पन्नं न सम्यक्त्वप्रतिबन्धकम् , यद्वा गुरोः सम्यग्ज्ञानरहितस्य जमाल्यादिप्रमुखस्य मिथ्यादृष्टेर्नियोगात् , नियोजनं नियोगः "**भावाऽकर्त्रोः**" (सिद्धहेम० ५ । ३ । १८) । इत्यनेन भावे घञ् "**आज्ञाशिष्टिर्निरा-कृनिम्यदेशो नियोगशासने**' (अभिधान०) आज्ञापारतन्त्र्यादिति यावत् , असद्भूतं प्रवचनं श्रद्धाति, न स्वेच्छया । यद्यपि ज्ञानावरणोदयमात्रेण जनितं यदज्ञानं तेन शास्त्रादीना-मर्थः संशयात्मको भवति, यथा कोऽपि सम्मतितर्कादीन् ग्रन्थान् पठति , तेषामर्थे कस्यचित् संशयो जायते, अनुक्तानामक्षराणामयमर्थो जायते, तदितरो वा जायते, स संशयः, श्रद्धाभ-क्त्यादिजनितसंशयश्च सम्यक्त्वं प्रतिबद्धुं न शक्यते, यथा सौधर्मेन्द्रस्य मेरुगिरा अभिषेकाऽव-सरं संशयो जातः, किं बालोऽयमेतेषां कलशानां जलं सोढुं समर्थो भविष्यत्युत न ? तादृशाः संशयाः सम्यक्त्वं प्रतिबद्धुं न शक्नुवन्ति , किन्तु गुरुनियोगजनितं नानामताऽभ्युपगन्तुरज्ञानं मिथ्यात्वप्रदेशोदयमाहात्म्यात् सद्भूतप्रवचनार्थसंशयरूपः सम्यक्त्वप्रतिबन्धको भवितुमर्हति , तथाऽपि '**तमेव सच्चं**' इति, उत्तेजकसत्त्वात् सम्यक्त्वं प्रतिबद्धुं नाऽलम् । उत्तेजकाऽभाववि-शिष्टप्रतिबन्धकः सम्यक्त्वं प्रतिबद्धुं समर्थो भवतिनाऽन्यथा । तथाचाऽऽहुः उपाध्यायप्रवराः-**"गुरुनियोगजनितं तु मध्यस्थस्य विनेयस्य नानामतदर्शिनो मिथ्यात्वप्रदेशो-दयमहिम्ना विप्रतिपत्त्युपनीतप्रवचनार्थसंशयरूपं सम्यक्त्वप्रतिबन्धाऽभिमुखमपि 'तमेव सच्चं' इत्याद्यालम्बनरूपोत्तेजकप्रभावान्न सम्यक्त्वं प्रतिबद्धुमलमित्य-ज्ञानाद् गुरुनियोगाद् वाऽसद्भूतार्थश्रद्धानेऽपि भावतो जिनाज्ञाप्रामाण्याऽभ्यु-गन्तुर्न शुभात्मपरिणामरूपसम्यक्त्वोपघात इति भावनीयम् । एतेन यदुच्यते केनचित् परपक्षस्य निश्रितस्य सर्वथा सम्यक्त्वं न भवत्येवेति तदपास्तं द्रष्टव्यम् । अनभिनिविष्टमिथ्यादृष्टिनिश्रयाऽपि तदुपनीताऽसद्भूतार्थश्रद्धान-स्याऽस्वारसिकत्वेन स्वारसिकजिनवचनश्रद्धानाऽविरोधित्वात् । अभिनिविष्टस्य तु स्वपक्षपतितस्य परपक्षपतितस्य वा मिथ्यादृष्टित्वानपायादलं प्रपञ्चेन"** इति।

अथ मिथ्यादृष्टेः स्वरूपं व्याजिहीर्षुराह-

मिच्छद्दिट्ठी नियमा उवइट्ठं पवयणं न सद्दहइ ।
सद्दहइ असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिर्नियमादुपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्धत्ते ।

श्रद्धत्तेऽसद्भावमुपदिष्टं वाऽनुपदिष्टम् ॥ २५ ॥ इति पदसंस्कारः

मिथ्यादृष्टिजीवस्तीर्थंकरादिभिरुपदिष्टं प्रज्ञप्तं प्रवचनं नियमान्न श्रद्धत्ते, जिनेन्द्रप्रणीततत्त्वमात्मनि न सम्यक्परिणमयतीत्यर्थः। किन्तु गुरुभिरुपदिष्टमनुपदिष्टं वा प्रवचनमसद्भूतं मिथ्यात्वरूपं विपरीतार्थं श्रद्धत्ते, न सम्यग्यथावत् । न च यो जिनेन्द्रादिभिर्गुरुभिरुपदिष्टमपि प्रवचनं कथञ्चिच्छ्रद्धत्ते स कथं सर्वथामिथ्यादृष्टिरिति वाच्यम् , एकस्मिन् प्रवचनाऽर्थेऽभिनिवेशेनाऽसद्भूतश्रद्धानेऽपि तदितरसकलसद्भूतार्थश्रद्धानस्याऽप्यश्रद्धानकल्पत्वात् विषकणमिश्रितमोदकवत् । मिथ्यात्वमोहितो जीवो हिताऽहिततत्त्वाऽतत्त्वप्रभृतिं न जानाति ।

उक्तं चाऽन्यत्र—"मिथ्यात्वेनाऽऽलीढचित्तानितान्त तत्त्वाऽतत्त्वं जानते नैव जीवाः ।

किं जात्यन्धाः कुत्रचिद्वस्तुजाते रम्याऽरम्य व्यक्तिमासादयेयुः॥१॥" इति ।

उक्तं च गुणस्थानकक्रमारोहे—"मद्यमोहाद्यथा जीवो न जानाति हिताऽहितम् ।

धर्माऽधर्मौ न जानाति तथा मिथ्यात्वमोहितः॥१॥" इति ।

संप्रति मिश्रदृष्टिस्वरूपमभिधित्सुराह—

सम्मामिच्छद्दिट्ठी सागारे वा तहा अणागारे ।

अह वंजणोग्गहम्मि य सागारे होइ नायव्वो ॥२६॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः साकारे वा तथानाकारे वा ।

अथ व्यञ्जनावग्रहे च साकारे भवति ज्ञातव्यः ॥२६॥ इति पदसंस्कारः

सम्यग्मिथ्यादृष्टिश्चिन्त्यमानः साकारोपयोगे भवति अनाकारोपयोगे वा । अथशब्दो यद्यर्थः । तेन यदि साकारोपयोगे भवति तर्हि व्यञ्जनावग्रह एव व्यवहारिकेऽव्यक्तज्ञानरूपे भवति, नाऽर्थावग्रहे यत्संशयज्ञानी अन्नविषये नालिकेरदेशोद्भवमनुजवत् , जिनप्रवचनाऽनुरागद्वेषरहितो मिश्रदृष्टिर्भवति, न सम्यग्निश्चयज्ञानी । संशयज्ञानत्वञ्च व्यञ्जनावग्रह एव नाऽर्थावग्रहे ।

प्रथमसम्यक्त्वप्राप्त्यधिकारे नानावस्तूनां कालमाश्रित्याऽल्पबहुत्वं यत् कुमतसर्पदर्पसोपर्णेयैः कषायप्राभृतचूर्णिकृद्भिरभिहितं तदत्राऽभिधीयते । इदमल्पबहुत्वमपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्योपशान्ताद्धायां प्रवर्तमानमिथ्यात्वगुणसङ्क्रमं यावत्पञ्चविंशतिपदानां कालतो ज्ञातव्यम् । तथाहि—"एदिस्से परूवणाए णिद्दिदाए इमो दंडओ पणवीसपडिगो ॥११३॥

(१) सव्वथोवा उवसामगस्स ज चरिम अणुभागखडयं तस्स उक्कीरणाद्धा ॥११५॥

(२) अपुव्वकरणस्स पढमस्स अणुभागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ॥११४॥

(३-४) चरिमट्ठिदिखडय उक्कीरणकालो तम्हि चेव ट्ठिदिबंधकालो य दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५-६) अंतरकणाद्धा तम्हि चेव ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।
(७-८) अपुव्वकरणे ट्ठिदिखंडय यउक्कीरद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दोवि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।
(९) उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो।
(१०) पढमसमय उवसामगस्स गुणसेढिसीसयं संखेज्जगुणं।
(११-१२) पढमट्ठिदिसंखेज्जगुणा। उवसामगद्धा विसेसाहिया (विसेसो पुण) बे आवलिओ समयूणाओ।

(१३) अणियट्टि-अद्धा संखेज्जगुणा।
(१४) अपुव्वकरणाद्धा संखेज्जगुणा।
(१५) गुणसेढिनिक्खेवो विसाहियाओ।
(१६) उवसंताद्धा संखेज्जगुणा।
(१७) अंतरं संखेज्जगुणं।
(१८) जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा।
(१९) उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा।
(२०) जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं।
(२१) उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडय संखेज्जगुणं।
(२२) जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।
(२३) उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।
(२४) जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।
(२५) उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

एवं पणुवीसपडिगो दंडगो सम्मत्तो" इति।

भावार्थः पुनरयम्—

१ उपशामकस्य यच्चरमाऽनुभागखण्डं तस्योत्कीर्णाद्धा सर्वस्तोका। मिथ्यात्वसत्कप्रथमस्थितेरावलिकायां शेषायां समाप्यमानो यो मिथ्यात्वसत्कस्थातस्तस्यकालस्सर्वस्तोकोऽथवा मिथ्यात्वस्य गुणसङ्क्रमणनिवर्तनकाले समाप्यमानो यः शेषकर्मणां रसघातस्तस्य कालस्सर्वस्तोकः।

२ ततोऽपूर्वकरणस्य प्रथमाऽनुभागखण्डस्योत्कीर्णाद्धा विशेषाऽधिका। अपूर्वकरणस्य यः प्रथमाऽनुभागखण्डस्योत्कीर्णाकालतः उत्तरोत्तराऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषहीनो विशेषहीनो भवति । तेन चरमाऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालतः प्रथमाऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालो विशेषाऽधिकः ।

(३-४) प्रथमस्थितेरावलिकामात्रे शेषे समाप्यमानो यश्चरमखण्डोत्कीर्णकालः स तथा तस्मिन् चरमस्थितिखण्डोत्कीर्णकाले स्थितिबन्धकाल इमौ उभौ पूर्वतः संख्यातगुणौ परस्परं च तुल्यौ ।

एकस्मिन् स्थितिघातेऽनेकसहस्राणि रसघाता भवन्ति, इति कृत्वा चरमरसघातकालतश्चरमस्थितिघातकालः संख्यातगुणो भवति । तथा चरमरसघातकालतः प्रथमरसघातकालः केवलं विशेषाऽधिकः । अतः प्रथमरसघातकालतश्चरमस्थितिघातकालः संख्यातगुणः, स्थितिघातकालेन समकालीनः स्थितिबन्धकालस्तुल्यः, तेनाऽत्राऽपि चरमखण्डोत्कीर्णकालेन तत्कालीनस्थितिबन्धकालस्तुल्यः ।

(५-६) ततोऽन्तरकरणस्य क्रियाकालः तस्मिन्नेवाऽन्तरकरणक्रियाकाल एव स्थितिबन्धकालश्च विशेषाऽधिकौ परस्परं च तुल्यौ, उपलक्षणत्वात् तत्कालीनस्थितिघातकालोऽपि पूर्वतो विशेषाऽधिकः परस्परं च तुल्यः, अन्तरकरणक्रियाकालो नूतनस्थितिबन्धश्च स्थितिघातश्च युगपदारभ्यन्ते, तथैकेन स्थितिबन्धकालेनाऽन्तरकरणक्रियाकालः स्थितिघातकालश्च युगपद् निष्ठां यातः । तेनाऽन्तरकरणक्रियाकालेन तत्कालीनस्थितिबन्धकालो वा स्थितिघातकालो वा तुल्यो भवति, यतस्तत्स्थितिघाततोऽनेकस्थितिघातेषु व्यतिक्रान्तेष्वनिवृत्तिकरणस्य चरमस्थितिघातः प्राप्यते तथोत्तरोत्तरस्थितिघातकालस्य हीनत्वेन चरमस्थितिघातकालो विशेषहीनो भवति, अर्थाच्चरमस्थितिघातकालतोऽन्तरकरणक्रियाकालीनस्थितिघातकालो विशेषाहीनो भवति, अतः पूर्वतोऽन्तरकरणक्रियाकालस्तत्कालीनस्थितिघातकालस्तत्कालीनश्चस्थितिबन्धकालो विशेषाऽधिकाः परस्परं च तुल्या भवन्ति ।

(७-८) ततोऽपूर्वकरणे प्रथमस्थितिघातोत्कीर्णाद्धा स्थितिबन्धाऽद्धा च विशेषाऽधिके परस्पर च तुल्ये भवतः ।

अपूर्वकरणस्य प्रथमस्थितिघातादारभ्य पूर्वपूर्वतः किञ्चिद्धीयमानैः सहस्रैरुत्तरोत्तरस्थितिघातकालैरन्तरकरणक्रियाकालस्तत्कालीनश्च स्थितिबन्धकालः स्थितिघातकालो वा प्राप्यते, अतोऽन्तरकरणक्रियाकालतस्तत्कालीनस्थितिबन्धकालतश्चाऽपूर्वकरणस्य प्रथमस्थितिघातकालो विशेषाधिकः, तथा स्थितिघातकालेन स्थितिबन्धकालस्तुल्य इति कृत्वाऽपूर्वकरणस्य प्रथमस्थितिघातकाल स्थितिबन्धकालश्च परस्परं तुल्यौ भवतः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) उपशमकस्य यावद्गुणसङ्क्रमेण सम्यक्त्वमोहनीयं सम्यक्त्वमिथ्यात्वमोहनीयं च पूरयति, स पूर्वतः संख्यातगुणः, गुणसंक्रमकालः पूर्वतः संख्यातगुण इति यावत् ।

औपशमिकसम्यक्त्वस्य प्रथमसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं मिथ्यात्वमोहनीयस्य गुणसङ्क्रमो भवति, गुणसङ्क्रमसत्काऽन्तर्मुहूर्तकालस्याऽनेकसहस्रस्थितिघाताद्धाप्रमाणत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणः, यतो गुणसंक्रमकालेऽनेकसहस्राणि स्थितिघातादयो भवन्ति ।

(१०) तत उपशमकस्य प्रथमसमयसत्कगुणश्रेणिशिरः संख्यातगुणम् । अत्र गुणश्रेणिशीर्षं नामाऽन्तरकरणस्य यावति काले गुणश्रेणिरचना भवति, तावत्कालो गुणश्रेणिशिरो ज्ञातव्यम् । इदमुक्तं भवति–अन्तरकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेणिचरमनिक्षेपस्थानपर्यन्तमुपशमकस्य गुणश्रेणिशिर उच्यते, तच्चाऽत्र मिथ्यात्ववर्जशेषकर्मणां संभवति, यतोऽन्तरकरणक्रियाकाले पूर्णे सति यदा प्रथमसमय उपशामको भवति, तदा मिथ्यात्वमोहनीयस्य गुणश्रेणिरचनाऽन्तरकरणे न संभाव्यते । मिथ्यात्ववर्जशेषकर्मणां गुणश्रेणिरचनाऽन्तरकरणेऽपि भवति, यत उपशमकस्य प्रथमसमयादारभ्य गुणसङ्क्रमनिवर्तनसमयपर्यन्तं मिथ्यात्ववर्जशेषकर्मणां गुणश्रेणिः प्रवर्तते । गुणसंक्रमनिवर्तनकालीनगुणश्रेणिरचनाऽप्युपरितनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितिषु भवतीत्यन्तरकरणप्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेणिचरमनिक्षेपस्थानपर्यन्तमुपशमकगुणश्रेणिशिर उच्यते, तच्च पूर्वतः संख्यातगुणम् ।

(११) ततः प्रथमस्थितिः संख्यातगुणा ।

अनिवृत्तिकरणस्य संख्यातभागेऽवशिष्टेऽन्तरकरणक्रियाऽऽरभ्यते, एकया स्थितिबन्धाद्धया पूर्णायां तस्यामनिवृत्तिकरणस्य शेषकालः प्रथमस्थितिरुच्यते । 卐 सा च पूर्वतः संख्यातगुणा । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते–यदाऽन्तरकरणक्रियासमाप्तिकालेऽन्तरकरणगतं तत्कालीनगुणश्रेणिसत्कं यं संख्येयभागं खण्डयति, ततः संख्यातगुणाऽवशिष्टगुणश्रेणिः विद्यते, एवं प्रथमस्थितेरपि तावत्त्वेन गुणश्रेणिसत्कखण्ड्यमानसंख्येयभागतः संख्येयगुणत्वं भवति, गुणश्रेणिसत्कखण्ड्यमानसंख्येयभाग उपशमकस्य गुणश्रेणिशिरश्च इत्युभयोस्तुल्यत्वसंभवात् , उपशमकस्य गुणश्रेणिशिरस्तः प्रथमस्थितिः संख्यातगुणा सिध्यति ।

卐 तथैवोक्तं जयधवलायामपि-सयलस्सगुणसेढिआयामस्स तक्कालं दीसमाणस्स संखेज्जदिभागजुत्तो जो अणियट्टिअद्धादो उवरिमो विसेसाहियणिक्खेवो तं सव्वमंतरट्ठमागएदि त्ति भणियं होदि (१७२०)

अथवा पढमट्ठिदीए संखेज्जदिभागमंतरस्सेव गुणसेढिसीसयस्स अंतर दुगागाइवत्ताबो (१७२५)

नन्वल्पबहुत्वाऽनुसारेणाऽन्तरकरणक्रियाकालतः प्रथमस्थितिः संख्यातगुणा भवति, यतः प्रथमस्थितिबन्धाद्धाऽन्तरकरणक्रियाकालतः विशेषाधिका, ततः संख्यातगुण उपशमकस्य गुणसंक्रमकालः, ततः संख्यातगुणमुपशमकस्य गुणश्रेणिशिरः, ततः संख्यातगुणा प्रथमस्थितिरिति ।

तथा चाऽभिनवस्थितिबन्धकालतः किञ्चिदधिका प्रथमस्थितिर्भवतीति **मलयगिरिसूरीश्वराणामभिप्रायः। उक्तं च तैः कर्मप्रकृत्यादौ ग्रन्थे–"अन्तरकरणक्रियाकालश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्रथमस्थितेः किञ्चिन्न्यूनोऽभिनवस्थितिबन्धाद्धया समः ।"** इत्युभयोः परस्परं विरोध उद्भवतीति चेद् ? न, वादिमृगमृगपतीनां श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वराणामक्षराणामयमर्थः कर्तव्यः । अन्तरकरणक्रियाकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्रथमस्थितिकरणकालाच्च किञ्चिन्न्यूनोऽभिनवस्थितिबन्धाद्धया समः । अन्यथा विरोधापत्तेरिति वयं संभावयामहे । तथाहि–यद्यन्तरकरणक्रियाकालः प्रथमस्थितितः किञ्चिन्न्यून उच्यते, तर्हि प्रथमस्थितिरभिनवबन्धकालेन तुल्यभूताऽन्तरकरणक्रियाकालतः किञ्चिदधिका वाच्या, अभिनवस्थितिबन्धकालाऽन्तरकरणक्रियाकालयोस्तुल्यत्वात् । अत्राऽन्तरकरणक्रियाकाले समाप्तेऽग्रे प्रथमस्थितेरावलिकाद्वयशेषे गुणश्रेणिर्व्यवच्छिद्यत इत्युक्तम् । तत्र प्रथमस्थितिसत्कैकावलिकायां संख्येया अभिनवबन्धाद्धा भवन्ति, प्रत्येकस्थितिबन्धाद्धाया आवलिकायाः संख्येयभागप्रमाणत्वात् । स्थितिबन्धाद्धाया आवलिकासत्कसंख्येयभागमात्रत्वं स्थितिबन्धाद्धाप्ररूपणाऽवसरे प्राग् विस्तरशो दर्शितमिति । पूर्वोक्तप्रकारेण प्रथमस्थितिरभिनवस्थितिबन्धकालतः केवलं किञ्चिदधिकोच्यते, तर्हि संख्येया अभिनवस्थितिबन्धाद्धाः कथं भवेयुः ? तस्या (प्रथमस्थितेः) अभिनवस्थितिबन्धाद्धाद्वयादपि न्यूनत्वात् । अतः प्रथमस्थितिशब्दस्य प्रथमस्थितिकरणकाले लक्षणा कर्तव्या ।

न च शक्यार्थं परित्यज्य लक्ष्यार्थः कथं गृह्यते यथा "पिको रौति" इत्यादौ पिकशब्दस्य शक्यार्थ एव कोकिलात्मको गृह्यते, न लक्ष्यार्थ इति वाच्यम्, यतो यत्राऽन्वयाऽनुपपत्तिस्तात्पर्याऽनुपपत्तिर्वा भवति । तत्र शक्यार्थं परित्यज्य लक्ष्यार्थः स्वीक्रियते । **उक्तं च "लक्षणाशक्यसम्बन्धस्तात्पर्यानुपपत्तितः"** इति । यथाऽन्वयाऽनुपपत्तितः '**गङ्गायां घोषः**' इत्यादौ गङ्गाप्रवाहरूपशक्यार्थं परित्यज्य गङ्गातीररूपलक्ष्यार्थो गृह्यते । तथैव तात्पर्यानुपपत्तितः "**यष्टीः प्रवेशय**" इत्यादौ यष्टिधरेषु लक्षणा, तथैवाऽत्र तात्पर्याऽनुपपत्तितः प्रथमस्थितिशब्दस्य प्रथमस्थितिकरणकाले लक्षणा कर्तव्या । नन्वत्र प्रथमस्थितिकरणकालेनाऽन्तरकरणक्रियाकालस्तुल्यो भवितुमर्हति, न किञ्चिन्न्यूनः, यतोऽन्तकरणक्रिया प्रथमस्थितिकरणं च युगपदारभ्येते युगपच्च समाप्येते इति चेद् ? उच्यते, तत्समीचीनम्, किन्तु व्यवहारनयेन मिथ्यात्वाऽभाववत्यन्तरकरणे कृते सत्येव प्रथमस्थितिरिति व्यपदिश्यत इति कृत्वाऽन्तरकरण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियाकालसमाप्त्यनन्तरं प्रथमस्थितित्वेन व्यपदेशो भवति। अतः प्रथमस्थितिकरणकालत एवाऽन्तरकरणक्रियाकालस्य किञ्चिन्न्यूनत्वे सिद्धेऽन्तरकरणक्रियाकालतः प्रथमस्थितेः संख्यातगुणत्वे न कश्चिद् दोषः समुपजायते।

(१२) तत उपशमकाद्धा विशेषाऽधिका। आधिक्यं च समयोनाऽऽवलिकाद्विकेन ज्ञातव्यम्। प्रथमस्थितेः प्रथमसमयादारभ्योपशमनक्रियाऽऽरभ्यते, सा च प्रथमस्थितितोऽग्रेतनेषु समयेष्वप्यन्तरकरणाद्धायां समयोनाऽऽवलिकाद्वयपर्यन्तं भवति, यतः प्रथमस्थितेश्चरम समये समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति। तच्च तावता कालेनाऽन्तरकरण उपशमयतीति प्रथमस्थितेः प्रथमसमयादारभ्याऽन्तरकरणाद्धायाः समयोनाऽऽवलिकाद्वयपर्यन्तं सन् कालः उपशमकाद्धोच्यते, अत उपशमकाद्धा प्रथमस्थितितः समयोनाऽऽवलिकाद्वयेनाऽधिका भवति, अतः पूर्वतो विशेषाऽधिका भवति।

(१३) ततोऽनिवृत्तिकरणाद्धा संख्यातगुणा।

प्रथमस्थितितोऽनिवृत्तिकरणकालः संख्यातगुणः, यतोऽन्तरकरणक्रियाकालन्यूनाऽनिवृत्तिकरणसत्कसंख्येयतमभागमात्रैव प्रथमस्थितिर्भवति, उपशमकाद्धा च प्रथमस्थितेः समयोनाऽऽवलिकाद्वयेनैवाऽधिका भवति, अतः पूर्वतोऽनिवृत्तिकरणकालः संख्यातगुणः।

(१४) ततोऽपूर्वकरणाद्धा संख्यातगुणा।

अनिवृत्तिकरणकालस्याऽन्तर्मुहूर्तकालतोऽपूर्वकरणसत्काऽन्तर्मुहूर्तकालस्य संख्यातगुणेन बृहत्तरत्वात्।

(१५) ततो गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः।

गुणश्रेणिनिक्षेपोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणरूपकरणद्वयकालात्किञ्चिदधिको भवति। तत्राऽनिवृत्तिकरणकालोऽपूर्वकरणकालतः संख्येयभागमात्र एव भवति, तस्मादपूर्वकरणकालतोऽपूर्वकरणकालसत्कसंख्यातभागतुल्याऽनिवृत्तिकरणकालेन गुणश्रेणिशिरोरूपकिञ्चिदधिककालेन च गुणश्रेणिनिक्षेपस्याऽऽधिक्यम्, ततः पूर्वतो गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिको द्रष्टव्यः।

(१६) तत उपशान्ताद्धा संख्यातगुणा।

उपशान्ताद्धा नाम उपशमसम्यक्त्वकालः, स चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्तथा पूर्वतः संख्यातगुणोबृहत्तरः।

(१७) ततोऽन्तरं संख्यातगुणम्।

अन्तरं नाम मिथ्यात्वदलिकरहिताऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा स्थितिः।

न चोपशान्ताद्धातोऽन्तरं संख्यातगुणं कथमुच्यते, यतोऽन्तरकरणस्याऽऽवलिकायां शेषायामौपशमिकसम्यक्त्वकालः पूर्णो भवति, तत आवलिकयाऽधिकोपशान्ताद्धाऽन्तरं भवति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्वा सास्वादनमधिकृत्योत्कर्षतोऽन्तरकरणस्य षडावलिकासु शेषासूपशमसम्यक्त्वकालः पूर्णो भवति, अतोऽन्तरमुपशान्ताद्धातः षडावलिकाभिरधिकं भवतीति वाच्यम् । यत इदमल्पबहुत्वं कषायप्राभृतचूर्णिकारमताऽनुरोधेनोक्तमतोऽन्तरकरणं पूर्वतः संख्यातगुणमिति मताऽन्तरं प्रतिभाति । तेषां मतेऽन्तरकरणस्य समधिकायामावलिकायां शेषायां त्रयः पुञ्जा आकृष्यन्त इति कुत्रचिदपि न निर्दिष्टम् , अतस्तेषामभिप्रायेणाऽन्तरस्य संख्येयतमे भागे व्यतिक्रान्ते द्वितीयस्थितितस्त्रीन् पुञ्जानाकृष्य वेदयतीति प्रतिभासते, तत्त्वं तु कलहंसा विदन्ति ।

अत्र प्रथमस्थितितोऽन्तरायामः किञ्चिदधिको भवतीति मन्यन्त **आराध्यपादमलयगिरिसूरीश्वरादयः, तथाहि–पञ्चसङ्ग्रहस्याऽष्टादशगाथासूत्रस्य टीकायाम्–"इत्थं चाऽनिवृत्तिकरणाऽद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वेकस्मिंश्च संख्येयतमे भागे शेषे तिष्ठति, अन्तमुहूर्तमात्रमधो मुक्त्वा मिथ्यात्वस्याऽन्तरकरणमन्तमुहूर्तप्रमाणं प्रथमस्थितेः किञ्चित्समधिकं भवति"** इति तथा च **नव्यशतकवृत्तावपि मिथ्यात्वस्याऽन्तरकरणमन्तमुहूर्तप्रमाणंप्रथमस्थितेः किञ्चित्समधिकं न्यून वाऽभिनवस्थितिबन्धाद्धासमेनाऽन्तमुहूर्तकालेन करोतीति ।"**

तथैव सप्ततिकावृत्तावप्युक्तम् । अत्र **कषायप्राभृतचूर्णिकारैः** प्रथमस्थितितो विशेषाऽधिकोपशामकाद्धा, ततोऽनिवृत्तिकरणकालः संख्यातगुणः, ततोऽपूर्वकरणकालः संख्यातगुणः, ततो गुणश्रेणिनिक्षेपः विशेषाधिकः, तत उपशान्ताद्धा संख्यातगुणा, ततोऽन्तरं संख्यातगुणमितन्युक्तम् । अतोऽन्तरं प्रथमस्थितितः सुतरां संख्यातगुणं भवति । **मलयगिरिसूरीश्वरप्रभृतिमतेन** प्रथमस्थितितोऽन्तरकरणं किञ्चिदधिकं भवतीत्युभे मताऽन्तरे प्रतिभासेते, प्रकारान्तरेण वा भाव्यम् ।

पश्यन्तु पाठका यन्त्रकम्—(६)

(१८) ततो जघन्याबाधा संख्यातगुणा ।

मिथ्यात्वस्य जघन्याऽबाधाऽनिवृत्तिकरणस्य चरमसमये तथा मिथ्यात्ववर्जशेषकर्मणां जघन्याऽबाधा गुणसङ्क्रमनिर्वर्तनकाले प्राप्यते, सा च पूर्वतः संख्यातगुणेन बृहत्तराऽन्तमुहूर्तप्रमाणा यदि पूर्वतो न्यूना मन्येत, तर्हि मिथ्यात्वसत्कप्रथमस्थितेश्चरमसमये यानि दलानि बध्यन्ते निषेकरचनायां तेषां निक्षेपोऽन्तरकरणेऽपि स्यात् । तेनाऽन्तरकरणदलिकोत्कीर्णं निष्फलं स्यात् , बन्धद्वारेण निषेकरचनाया मिथ्यात्वदलिकानां निक्षेपणात् ।

(१९) तत उत्कृष्टाऽबाधा संख्यातगुणा ।

जघन्यस्थितिबन्धत उत्कृष्टस्थितिबन्धोऽपूर्वकरणप्रथमसमयभावी संख्येयगुणः, तेन जघन्याऽबाधात उत्कृष्टाऽबाधा संख्येयगुणा, अबाधायाः प्रायः स्थितिबन्धसापेक्षत्वात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२०) ततो जघन्यस्थितिखण्डमसंख्येयगुणम् ।

जघन्यतः स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं भवति, उत्कृष्टाऽबाधा च स्थितिबन्धस्याऽन्तःसागरोपमकोटिकोटित्वेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणैव भवति, तथाऽन्तर्मुहूर्ततः पल्योपमसंख्येयभागो संख्यातगुणो भवतीति हेतोरुत्कृष्टाऽबाधातो जघन्यस्थितिखण्डमसंख्येयगुणम् ।

(२१) तत उत्कृष्टस्थितिखण्डं संख्यातगुणम् ।

जघन्यस्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं भवति, उत्कृष्टस्थितिखण्डं तु सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणमिति पूर्वतः संख्यातगुणं भवति ।

(२२) ततो जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः ।

जघन्यस्थितिबन्धस्याऽन्तःसागरोपमकोटाकोटित्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वम् ।

(२३) तत उत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुणः ।

यद्यप्युत्कृष्टस्थितिबन्धोऽप्यन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणस्तथाऽपि स पूर्वतः संख्यातगुणो भवति, यत उत्कृष्टस्थितिबन्धस्याऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयभावित्वेनाऽनिवृत्तिकरणचरमसमयभावी मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणहीनो भवति । कथमिति चेद् ? उच्यते—अपूर्वकरणस्य प्रथमस्थितिबन्धतोऽपि तच्चरमस्थितिबन्धः संख्यातगुणहीनो भवतीत्युक्तः, ततोऽपूर्वकरणस्य प्रथमस्थितिबन्धतोऽनिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितिबन्धः सुतरां संख्यातगुहीनो भवति, अतोऽनिवृत्तिकरणचरमसमयभाविजघन्यस्थितिबन्धतोऽपूर्वकरणस्यप्रथमसमयभाव्युत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुणो वक्तव्यः । एवं शेषकर्मणामुत्कृष्टस्थितिबन्धोऽपूर्वकरणप्रथमसमये भवति, जघन्यस्थितिबन्धश्च मिथ्यात्वसत्कगुणसङ्क्रमनिवर्तनकाले भवति । अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयभाविस्थितिबन्धतस्तच्चरिमसमयभाविस्थितिबन्धः संख्यातगुणहीनो भवति, ततोऽप्यग्रेतनस्य स्थितिबन्धस्य प्रत्यन्तर्मुहूर्तं हीयमानत्वेन मिथ्यात्वस्य सङ्क्रमनिवर्तनकालीनजघन्यस्थितिबन्धस्य सुतरां संख्यातगुणहीनत्वं सिध्यति । इत्थं शेषकर्मणामपि मिथ्यात्वसत्कगुणङ्क्रमनिवर्तनकालीनजघन्यस्थितिबन्धतोऽपूर्वकरणप्रथमसमयभाव्युत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुणो भवति ।

(२४) ततो जघन्यस्थितिसत्ता संख्यातगुणा ।

अप्रमत्ताऽभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेर्जन्तोर्मिथ्यात्वस्योदयचरमसमये मिथ्यात्वस्य सत्कर्म शेषकर्मणां च सत्कर्म मिथ्यात्वगुणसङ्क्रमनिवर्तनकाले जघन्यं भवति, तस्य चाऽन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणत्वेऽप्युत्कृष्टस्थितिबन्धतः संख्यातगुणत्वं भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२५) ततो उत्कृष्टस्थितिसत्ता सङ्ख्यातगुणा।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत्स्थितिसत्कर्म, तदुत्कृष्टस्थितिसत्कर्म ज्ञेयम्। तच्च पूर्वतः संख्येयगुणम्, तत्कारणमुत्कृष्टबन्धवज्ज्ञेयम्।

इति समाप्तः प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकारः।

सम्यक्त्वोत्पादप्ररूपणा विस्तरशःकृता। अथ चारित्रमोहनीयस्योपशमनाऽभिधीयते, तत्र चारित्रमोहनीयस्य प्रस्थापकं व्याजिहीर्षुराह—

वेयगसम्मद्दिट्ठी चरित्तमोहुव समाए चिट्ठंतो।
अजओ देसजई वा विरतो व विसोहिअद्धाए ॥२७॥

वेदकसम्यग्दृष्टिश्चारित्रमोहोपशमाय चेष्टते।
अयतिर्देशयतिर्वा विरतो वा विशोध्यद्धायाम् ॥२७॥ इति पदसंस्कारः।

"वेयग" इत्यादि, वेदकसम्यग्दृष्टिः क्रोधादिचारित्रमोहनीयस्योपशमनाय चेष्टते=यतते। तत्र सम्यक्त्वमोहनीयं विपाकोदयतो मिश्रमोहनीयमिथ्यात्वमोहनीये च प्रदेशोदयतो वेदयति, स वेदकसम्यग्दृष्टिरुच्यते क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिरिति यावत्। सूत्रस्य निर्देशमात्रत्वाद् "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः" इति न्यायेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिश्चाऽपि ज्ञातव्यः, प्रथमौपशमिकसम्यग्दृष्टिस्तु चारित्रमोहनीयमुपशमयितुं न यतते। तत्राऽन्यतरसम्यग्दृष्टिरविरतो वा देशविरतो वा सर्वविरतो वा सम्यग्दृष्टिर्विशोध्यद्धायां वर्तमानश्चारित्रमोहनीयोपशमनाय यतते। अविरतो नाम न व्यरमत् न्यवर्तत सावद्यव्यापारात्सोऽविरत उच्यते "गत्यर्थाऽकर्मकपिबभुजेः" स (सिद्धहेम ५।१।१३) कर्तरि 'क्त' प्रत्ययः, एवं देशतः सावद्यव्यापारात्=पापव्यापाराद् व्यरमत्=देशविरतः, सर्वतः पापव्यापाराद् व्यरमत्=स सर्वविरतः। अविरतानां प्रत्येकं द्वे द्वे अद्धे भवतः, संक्लेशाद्धा विशोध्याद्धा च। यस्यामद्धायामविरतो देशविरतः सर्वविरतो वा हीयमानपरिणामी भवति, सा संक्लेशाद्धा इत्यर्थः। यस्यामद्धायामविरतो देशविरतः सर्वविरतो वा प्रवर्धमानपरिणामी भवति सा विशोध्यद्धा इत्यर्थः। अविरतो देशविरतः सर्वविरतो वा कदाचित्संक्लेशाद्धायां वर्तते कदाचिद् विशोध्यद्धायाम्, तत्र विशोध्यद्धायां वर्तमानो मोहनीयस्योपशमनाय यतते, न संक्लेशाऽद्धायाम्। चेष्टत इत्यनेनाऽविरतादयः चारित्रमोहनीयोपशमनाय पूर्वभूमिकायां वर्तन्त इति ज्ञाप्यते।

चारित्रमोहनीयोपशनाय यथाप्रवृत्तादिकरणानि तु सप्तमगुणस्थानकप्रभृतिवर्तिभिःक्रियन्ते। तत्र क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः षष्ठगुणस्थानवर्ती सप्तमगुणस्थानकवर्ती वा प्रथमं दर्शनत्रिकस्योपशमनां करोति, ततो यथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणैश्चारित्रमोहनीयमुपशमयितुं प्रवर्तते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ त्रयाणामप्यविरतादीनां स्वरूपमाविश्चिकीर्षुराह—

अन्नाणाणब्भुवगमजयणाहिजओ अवज्जविरईए।
एगव्वयाइ चरिमो अणुमइमित्तो त्ति देसजई ॥२८॥
अणुमइ विरओ अ जई.......................

अज्ञानाभ्युपगमयतनाभिरयतोऽवद्य विरतेः ।
एकव्रतादिचरमोऽनुमतिमात्र इति देशयतिः ॥
अनुमतिविरतश्च यतिः.......................

स्वरूपम्—"अन्नाण" इत्यादि, तत्र यो व्रतानि सम्यग् न जानाति, न चाऽभ्युपगच्छति, न च तत्पालनाय यतते, सोऽज्ञानाऽनभ्युपगमायतनाभिरविरतः । अत्र च त्रिभिः पदैरष्टौ भङ्गाः प्राप्यन्ते । तद्यथा—

(१) कश्चिज्जन्तुरज्ञानाऽनभ्युपगमायतनाभियुक्तः, यथा सर्वलोक इति प्रथमो भङ्गः ।
(२) कश्चिज्जन्तुरज्ञानाऽनभ्युपगमयतनाभियुक्तः, यथाऽज्ञानतपस्वीति द्वितीयो भङ्गः ।
(३) कश्चिज्जन्तुरज्ञानाभ्युपगमायतनाभियुक्तः, यथा पार्श्वस्थ इति तृतीयो भङ्गः ।
(४) कश्चिज्जन्तुरज्ञानाऽभ्युपगमयतनाभियुक्तः, यथाऽगीतार्थ इति चतुर्थो भङ्गः ।
(५) कश्चिज्जन्तुर्ज्ञानाऽनभ्युपगमायतनाभियुक्तः, यथा श्रेणिकादयोऽविरता इति पञ्चमो भङ्गः ।
(६) कश्चिज्जन्तुर्ज्ञानाऽनभ्युपगमयतनाभियुक्तः, यथाऽनुत्तरदेव इति षष्ठो भङ्गः ।
(७) कश्चिज्जन्तुर्ज्ञानाऽभ्युपगमाऽयतनाभियुक्तः, यथा संविग्नपाक्षिक इति सप्तमो भङ्गः ।
(८) कश्चिज्जन्तुर्ज्ञानाभ्युपगमयतनाभियुक्तः, यथा देशविरतः सर्वविरतो वेत्यष्टमो भङ्गः ।

अत्र चाऽज्ञानशब्देन सम्यग्ज्ञानाऽभावो ग्राह्यः, न तु ज्ञानावरणकर्मविपाकोदयजनितमज्ञानम् । आद्येषु चतुर्षु भङ्गेषु मिथ्यादृष्टयो भवन्ति, त्रिषु भङ्गेषु च सम्यग्दृष्टयोऽविरताः, एवं सप्तभङ्गेष्वविरता एव भवन्ति, यतो व्रतानि घुणाऽक्षरन्यायेन पालितान्यपि न यथावत् फलवन्ति, किन्तु सम्यग्ज्ञानसम्यग्ग्रहणपुरस्सरं पालितानि यथावत् फलवन्ति भवन्ति । चतुर्ष्वाद्येषु भङ्गेषु सम्यग्ज्ञानाऽभावः, उत्तरेषु त्रिषु च सम्यग्ज्ञानसद्भावेऽपि सम्यग्ग्रहणसम्यग्पालनाऽभाव इति प्रथमेषु सप्तसु भङ्गेषु वर्तमानो नियमतोऽविरतः । चरमे भङ्गे तु वर्तमानोऽवद्यस्य पापस्य देशतो विरतेर्देशविरतो भवति । देशविरतस्य द्वादश व्रतानि । तद्यथा—"पाणिवहमुसावाए अदत्तमेहुणपरिग्गहे चेव । दिसिभोगदंडसमईअं देसे पोसह तह विभागं ।"

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तत्रैकव्रतादिग्राही देशविरतो भवतीत्याह—"एगव्वयाइ" इत्यादि, एकव्रतादिः, एकव्रतगाही, द्विव्रतग्राही, त्रिव्रतग्राहीत्येवं तावद्वाच्यः, यावच्चरमोऽनुमतिमात्रः परिपूर्णद्वादशव्रतधार्युत्कृष्टः श्रावकः प्रत्याख्यातसकलसावद्यव्यापारः केवलमनुमतिमात्रप्रतिसेवकः। तत्राऽनुमतिस्त्रिधा, प्रतिसेवनाऽनुमतिः प्रतिश्रवणाऽनुमतिः संवासाऽनुमतिश्च।

(१) **प्रतिसेवनाऽनुमतिः** तत्र यः स्वयं परैर्वा कृतं पापं श्लाघते सावद्याऽऽरम्भोपपन्नं वाऽशनाद्युपभुङ्क्ते, तस्य प्रतिसेवनाऽनुमतिः।

(२) **प्रतिश्रवणाऽनुमतिः**—यदा तु पुत्रादिभिः कृतं पापं शृणोति, श्रुत्वा चाऽनुमन्यते न च प्रतिषेधयति, तदा प्रतिश्रवणाऽनुमतिः।

(३) **संवासाऽनुमतिः**—यः सावद्याऽऽरम्भप्रवृत्तेषु पुत्रादिषु केवलं ममत्वयुक्तो भवति, नाऽन्यत्किञ्चिच्छृणोति श्लाघते वा, तस्य संवासाऽनुमतिः।

तत्र यः संवासाऽनुमतिभागमेव सेवते, स चरमभङ्ग उत्कृष्टदेशविरतः। सर्वश्रावकाणां गुणोत्तमो भवति। देशविरतस्याऽनिष्टयोगार्तमिष्टवियोगार्तं रोगार्तं निदानार्तमिति चतुर्विधमार्तध्यानं तथा हिंसानन्दरौद्रं मृषावादानन्दरौद्रं चौर्यानन्दरौद्रं संरक्षणानन्दरौद्रमिति चतुर्धा रौद्रध्यानं मन्दं भवति धर्मध्यानं च मध्यमं भवति, न तूत्कृष्टम्, यत उत्कृष्टधर्मध्यानं सर्वविरतस्यैव भवति, उक्तं च-"**आर्तं रौद्रं भवदेत्र मन्दं धर्म्यं तु मध्यम्।**

षट्कर्मप्रतिमाश्राद्धव्रतपालनसंभवम् ॥१॥" इति

"**अणुमइविरओ**" त्ति, यः पुनः संवासाऽनुमतेरपि विरतः, स सर्वविरत उच्यते। तत्र सर्वविरतिस्त्रिधा (१) औपशमिकचारित्रम् (२) क्षायिकचारित्रम् (३) क्षायोपशमिकचारित्रम्।

(१) चारित्रमोहनीयोपशमनादुद्भुतं चारित्रमौपशमिकचारित्रम्।

(२) चारित्रमोहनीयस्य क्षयादभिव्यक्तं चारित्रं क्षायिकचारित्रम्।

(३) चारित्रमोहनीयस्य सर्वघातिप्रकृतीनां विपाकेनोदयाऽभावात्सञ्ज्वलनचतुष्कनवनोकषायरूपाणां च त्रयोदशप्रकृतीनां सर्वघातिरसस्पर्धकानामुदयाऽभावात्। तथा केवलं देशघातिरसस्पर्द्धकानामुदयाज्जायमानं चारित्रं क्षायोपशमिकचारित्रमुच्यते।

अत्राऽयं विशेषः—चारित्रलब्धिरात्मनो गुणोऽस्ति, स च कर्मोदयान्नाविर्भवति, अपि त्वाव्रियते, अत एव यावत्सर्वघातिप्रकृतयोऽनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादशोदये वर्तन्ते, तावच्चारित्रलाभः कस्यचिज्जीवस्य न भवति, किन्तु यदाऽनन्तानुबन्ध्यादीनां द्वादशानां प्रकृतीनामुदयाऽभावे सति शेषसञ्ज्वलनादीनामपि च सर्वघातिरसस्पर्द्धकानामुदयाऽभावः प्राप्यते, तदा जन्तोश्चारित्रं संभवति। सञ्ज्वलनचतुष्कनवनोकषायरूपत्रयोदशप्रकृतीनां सर्वघातिरसस्पर्द्धकानां

संयमविरोधकत्वेऽप्यनन्तानुबन्ध्यादिकषायाणामनुदये सञ्ज्वलनादीनां रसस्पर्द्धकानि देशघातिन्युदयन्ति, अतस्तानि चारित्रेऽतिचारानेवोत्पादयितुं समर्थानि, न पुनरुपहन्तुं समर्थानि । अतः सञ्ज्वलनादीनां देशघातिस्पर्द्धकानामुदयेऽपि क्षायोपशमिकं चारित्रं प्राप्यते ।

ननु सञ्ज्वलनचतुष्कनवनोकषायरूपासु प्रकृतिषूदयमानासु चारित्रलब्धिरूपः क्षायोपशमिकभावः कथमिति चेद् ? उच्यते, सर्वघातिप्रकृतीनां रसस्पर्द्धकानि सत्तायां सर्वघातिन्येव भवन्ति, सम्यक्त्वमोहनीयवर्जदेशघातिप्रकृतीनां देशघातीनि सर्वघातीनि चोभयानि रसस्पर्द्धकानि सत्तायां विद्यन्ते तथा देशघातिप्रकृतीनां सर्वघातिरसस्पर्द्धकानामुदये सर्वघातिप्रकृतीनां विपाकत उदये स्वस्वावार्यगुणो नाऽभिव्यनक्ति, सर्वघातिप्रकृतीनां केवलं प्रदेशोदये, देशघातिप्रकृतीनां च सर्वघातिरसस्पर्द्धकानि देशघातिरूपेण परिणम्योद्यन्ति, तदा क्षयोपशमभावः प्राप्यते, यतो देशघातिरसस्पर्द्धकानि लब्धिमवरोद्धुं न समर्थानि, अत एव सञ्ज्वलनचतुष्कनवनोकषायाणामुदयेऽप्यत्र क्षायोपशमिकं चारित्रमुच्यते । क्षयोपशमो नामाऽत्र देशघातिप्रकृतीनां स्वरूपतः सर्वघातिरसस्पर्द्धकान्युदयाऽभाववन्ति तेषामनुभागस्याऽनन्तगुणहीनभवनाद् देशघातिरूपेण च परिणम्य तान्युदयन्ति, तदेव क्षयोपशमः, सम्यक्त्वमोहनीयस्य सर्वघातिस्पर्द्धकाऽभावेन सत्तायां देशघातिरसस्पर्द्धकान्येव भवन्ति, ततस्तस्या उदयेऽपि क्षयोपशमभावो न विरुध्यते अयं शब्दाऽर्थः 'क्षि क्षये' इति भ्वादिः 'क्षयणं क्षयः' "युवर्णवृदृवशरणगमृद्ग्रहः" सिद्धहेम० (५।३।२८) इति भावेऽल् क्षयः, सर्वघातिरसस्पर्द्धकानामनुभागस्याऽनन्तगुणहीनकरणमिति यावत् , देशघातिरसस्पर्द्धकानां च स्वरूपेणाऽवस्थानमुपशम इति क्षयोपशमः ।

यद्वा स्वस्वावारकसर्वघातीनां प्रकृतीनां विपाकोदयाऽभावलक्षणे प्रदेशोदये सति देशघातिप्रकृतीनां सर्वघातिस्पर्द्धकेषु विशुद्धाऽध्यवसायतो देशघातिरूपतया परिणमनेन निहतेषु देशघातिरसस्पर्द्धकेषु चाऽतिस्निग्धेष्वल्परसीकृतेषु तदन्तर्गतं कतिपयरसस्पर्द्धकभागस्योदयावलिकां प्रविष्टस्य क्षये शेषस्य च विपाकोदयविष्कम्भलक्षण उपशमे क्षायोपशमिको गुणो प्रादुर्भवति ।

न च सर्वघातीरसस्पर्द्धकप्रदेशा अपि सर्वस्वघात्यगुणघातनस्वभावा इति तत्प्रदेशोदयेऽपि कथं क्षायोपशमिकभावसंभव इति वाच्यम् , तेषां सर्वघातिरसस्पर्द्धकप्रदेशानामध्यवसायविशेषेण मनाग् मन्दानुभावीकृतविरलवेद्यमानदेशघातिरसस्पर्द्धकेष्वन्तःप्रवेशितानां यथास्थितस्वबलप्रकटनाऽसमर्थत्वात् ।

संक्षेपतो यस्याः प्रकृतेरुदय आत्मगुणो नाऽवरुध्यते, तस्या उदयेऽपि क्षयोपशमभाव उच्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रौपशमिकचारित्रस्य तथा क्षायिकचारित्रस्याऽधिकारो यथाक्रममुपशमश्रेण्यधिकारे क्षपकश्रेण्यधिकारे च वक्ष्यते । देशविरतेः सर्वविरतेश्च प्राप्तिं व्याख्यातुकाम आह–

·········दोराह वि करणाणि दोरिगा न उ तइयं ।
पच्छा गुणसेढी सिं तावइया आलिगा उप्पिं ॥२१॥

––––––द्वयोरपि करणे द्वे न तु तृतीयम् ।
पश्चाद्गुणश्रेणिस्तयोस्तावत्यावलिकाया उपरि ॥२१॥ इति पदसंस्कारः

मिथ्यादृष्टिरविरतसम्यग्दृष्टिर्वा मनुष्यस्तिर्यङ् च देशविरतिं मनुष्यश्च सर्वविरतिमश्नुते । तत्राऽपि देशविरतः करणद्विकेन मनुष्यः सर्वविरतिमेव प्राप्नोति । तत्र कश्चिद् मिथ्यादृष्टिरौपशमिकसम्यक्त्वेन सार्धं देशविरतिं सर्वविरतिं वोत्पादयति, तयोश्च प्राप्तिक्रमः पूर्वं प्रथमोपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकार उक्तः । यदि मिथ्यादृष्टिरष्टाविंशतिसत्कर्मा क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्देशविरतिं सर्वविरतिं वाऽश्नुते, तर्हि करणद्वयं करोतीत्याह- "दोण्ह" इत्यादि, द्वयोरपि देशविरतिसर्वविरत्योर्लाभे सति द्वे करणे यथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्वकरणाख्ये भवतः, न तु तृतीयं करणम् ; यतो यत्र दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीययोरन्यतरस्य सर्वथा क्षयः सर्वोपशमो वा भवति, तत्रैवाऽनिवृत्तिकरणं जन्तुना क्रियते, नाऽन्यत्र क्षयोपशमादौ ।

अत्र करणकालात्पूर्वमन्तर्मुहूर्तं यावज्जन्तुः प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या प्रवर्धमानोऽशुभानां प्रकृतीनां द्विस्थानकं शुभानां प्रकृतीनां च चतुःस्थानकमनुभागं बध्नाति ; तमपि प्रतिसमयं शुभानामनन्तगुणवृद्धमशुभानां चाऽनन्तगुणहीनमित्यादि सर्ववक्तव्यतौपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकारवज्ज्ञातव्या । बन्धोदयसत्तादिषु यो विशेषः, स स्वयमेवोहनीयः, ग्रन्थगौरवभयादत्र न वितन्यते ।

अथादौ यथाप्रवृत्तकरणं प्रारभ्यते । यथाप्रवृत्तकरणेऽपि प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या शुद्धं चतुःस्थानकम्, अशुभानां च कर्मणां प्रतिसमयमनन्तगुणहीनं द्विस्थानकमनुभागं बध्नाति, पूर्वपूर्वतः प्रत्यन्तर्मुहूर्तमुत्तरोत्तरोत्तरस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागेन हीनो भवति स्थितिघातरसघातौ न भवतः । अध्यवसायस्थानानां संख्या तिर्यग्विशेषत्यादीनां स्वरूपं सम्यक्त्वाऽधिकारवज्ज्ञेयम् ।

यथाप्रवृत्तकरणं परिसमाप्याऽपूर्वकरणं प्रविशति । अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादेवाऽऽपूर्वज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषकर्मणां स्थितिघातोऽशुभानां च रसघातोऽभिनवस्थितिबन्धश्च युगपदारभ्यन्ते ● गुणश्रेणिस्तु नाऽऽरभ्यते । यतो यत्र क्षायिक औपशमिको वा गुणः प्राप्यते, तत्रैवाऽपूर्वकरणात्प्रभृति गुणश्रेणिरारभ्यते । तत्र स्थितिखण्डेषु जघन्यं स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणमुत्कर्षतः स्थितिखण्डं सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणं भवति । अन्तर्मुहूर्तेन कालेन प्रथमो रसघातः समाप्यते । एवमनेकसहस्रेषु रसघातेषु व्यतिक्रान्तेषु प्रथमस्थितिघातोऽभिनवस्थितिबन्धश्च परिसमाप्येते । द्वितीयः स्थितिघातः पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणः स्थितिबन्धश्च पूर्वतः पल्योपमसंख्येयभागहीनोऽभिनवो रसघातश्च प्रारभ्यन्ते, एवमनेकसहस्रेषु स्थितिघातादिषु व्यतिक्रान्तेष्वपूर्वकरणं परिसमाप्यते । अपूर्वकरणे समाप्तेऽनन्तरसमये नियमादप्रत्याख्यानावरणकर्मक्षयोपशम जनितां संयमाऽसंयमलब्ध्याख्यां देशविरतिं प्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमजनितां संयमलब्ध्याख्यां सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते, अत्र देशविरतेः सर्वविरतेर्वा क्षायोपशमिकगुणत्वेन "न उ तइयं" त्ति, तृतीयमनिवृत्तिकरणं न करोति । "पच्छा" त्ति, द्वयोः करणयोर्निष्ठितयोः सतोः पश्चादन्तर्मुहूर्तं यावन्नियमतोऽनन्तगुणवृद्धया विशुद्धया जन्तुर्वर्तते ।

एकान्तवृद्धिदेशसंयतैकान्तवृद्धिसर्वसंयतो वा–देशविरतेः सर्वविरतेः प्राप्तिसमयादन्तर्मुहूर्तं यावत्प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया प्रवर्धमानायां विशुद्धयां वर्तमानो देशसंयतः सर्वसंयतोऽनुक्रममेकान्तवृद्धिदेशसंयत 卐 एकान्तवृद्धिसर्वसंयत उच्यते ।

देशविरतेः सर्वविरतेर्वा प्राप्तिसमयादभिनवः स्थितिबन्धः स्थितिघातो रसघातश्चाऽऽरभ्यन्ते, तथोपरितनस्थितितो दलिकान्युत्कीर्याऽप्रत्याख्यानावरणस्योदयाऽभावेनोदयावलिकावर्जोपरितनाऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं गुणश्रेणिं रचयति । ननु शेषकर्मणां कुतो गुणश्रेणिर्विरच्यते, इति चेद्? उच्यते, शेषोदयवतीनां प्रकृतीनामुदयसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं रचयति तथाऽनुदयवतीनां प्रकृतीनामुदयावलिकावर्जोपरितनस्थितावन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं विरचयतीति वयं ब्रूमः । अत्र देशविरतस्य यो गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपायामोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण उक्तः, स प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वगुणश्रेणिनिक्षेपात्संख्यातगुणहीनः ततोपि सर्वविरतस्य संख्यातगुणहीनः । दलिकनिक्षेपमाश्रित्य तु प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वगुणश्रेणितोऽसंख्येयगुणा देशविरतस्य गुणश्रेणिः, ततोऽसंख्येयगुणा सर्वविरत-

---

● अत्र लब्धिसारे गुणश्रेणिनिषेध इदं बीजमुक्तं तद्यथा–"अत्राऽपूर्वकरण कुतो गुणश्रेण्यभावः ? इति चेदुच्यते, उपशमसम्यक्त्वाऽभावात्तन्निबन्धनगुणश्रेण्यभावः देशसंयमस्याऽद्याप्यग्रहणात्तन्निमित्तकगुणश्रेणेरप्यभावो वेदकसम्यक्त्वस्य च गुणश्रेणिहेतुत्वाऽभावादिति ब्रूमहे ।" इति ।

卐 कषायप्राभृतचूर्णौ सर्वसंयतो यावदेकान्तविशुद्धया वर्धते तावदपूर्वकरणसंज्ञ इत्युक्तः, अक्षराणि त्वेवम् " जावचरित्तलद्धीए एगंताणुवुड्ढीए वड्ढदि ताव अपुव्वकरणसण्णिदो भवदि ।"

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

स्य । उक्तं च **नव्यशतकवृत्तौ वादिघूकमार्तण्डैः श्रीमद्देवेन्द्रसूरीश्वरैः–"सम्यक्त्वलाभकाले मन्दविशुद्धिकत्वात् जीवो दीर्घाऽन्तर्मुहूर्तवेद्यामल्पतरप्रदेशाऽग्रां च गुणश्रेणिमारचयति, ततो देशविरतिलाभे संख्येयगुणहीनाऽन्तर्मुहूर्तवेद्यामसंख्येयगुणप्रदेशाऽग्रां च तां करोति, ततः सर्वविरतिलाभे संख्येयगुणहीनाऽन्तर्मुहूर्तवेद्यामसंख्येयगुणप्रदेशाऽग्रां च तां करोति"** ॐ

देशविरतस्य सर्वविरतस्य च गुणश्रेणिनिक्षेपोऽवस्थित एव, न गलिताऽवशेषमात्रः, कोऽर्थः ? यथा प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकारेऽधस्तनाऽधस्तनोदयसमये वेदनतः क्षीणे सति शेषेषु समयेषु दलिकं विरचयति, न पुनरुपरि गुणश्रेणिं वर्धयति । अत्र त्वधस्तनाऽधस्तनोदयसमये वेदनतः क्षीणे सति एकैकसमयेन गुणश्रेणिं वर्धयति । इत्थं देशविरतेः सर्वविरतेर्वा प्राप्तिसमये यो गुणश्रेणिनिक्षेपः स एव द्वितीयसमयादिषु वेदितः समयप्रमाणनिक्षेपो न्यूनो न भवतीत्यर्थः । देशविरतेः सर्वविरतेश्च प्राप्तेः प्रथमसमयतो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणानि दलिकानि प्रथमसमयसत्कगुणश्रेणिनिक्षेपप्रमाणे निक्षेप एवाऽसंख्येयगुणकारेण विरचयति । अन्तर्मुहूर्तकालं यावदनेनैव क्रमेण गुणश्रेणिं रचयति । देशविरतेः सर्वविरतेर्वा प्रतिपत्त्यनन्तरं जन्तुरन्तर्मुहूर्तं यावदवश्यमनन्तगुणवृद्ध्यैकान्तविशुद्ध्या प्रवर्धमानपरिणामो भवति । उक्तश्च **कषायप्राभृतचूर्णौ—संयमाऽधिकारे–"तदो पढमसमयसंजमप्पहुडि अंतोमुहुत्तमणंतगुणाए चरित्तलद्धिए वड्ढदि"** इति । तावति कालेऽनेकसहस्राणि स्थितिघाता भवन्ति। ततो यथाप्रवृत्तदेशसंयतो यथाप्रवृत्तसर्वसंयतो वा भवति । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ संयमाऽसंयमाऽधिकारे–"एवं ठिदि खंडएसु बहुएसु गदेसु तदो अधापवत्तसंजदासंजदो जायदे ।"** इति ।

यथाप्रवृत्तदेशसंयतो यथाप्रवृत्तसर्वसंयतो वैकान्ताऽनन्तगुणवृद्धिकालात्परमनियतायां विशुद्ध्यामनियते सङ्क्लेशे वा वर्तमानो देशविरतः सर्वविरतो वा यथाप्रवृत्तदेशसंयतो यथाप्रवृत्तसर्वसंयतो वोच्यते । **यथाप्रवृत्तदेशसंयतस्य यथाप्रवृत्तसर्वसंयतस्य च** स्थितिघातरसघातौ न भवतः, अवस्थिता गुणश्रेणिस्तु प्रवर्तते कश्चिद्यथाप्रवृत्तदेशसंयतस्सर्वसंयतो वा प्रतिसमयं

ॐ कषायप्राभृतचूर्णौ तु गुणश्रेणिरित्थं प्रतिपादिता........"**असंखेज्जसमयपबद्धे ओकड्डियूण गुणसेढीए उदयावलिबाहिरे रचेदि**" भावार्थः पुनरयम्—आयुर्वर्जकर्मणां सत्तागतदलिकेभ्योऽसंख्यातैकभागमपकृष्य पल्योपमाऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागदलिकं गुणश्रेणीमुल्लङ्घ्य तदुपरितनस्थितिषु निक्षपेत्, पुनस्तदेकभागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभागमुदयावलिकायां विशेषहीनक्रमेण दत्त्वा तद्बहुभागमसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेण्यामेव प्रक्षिपति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वपूर्वसमयादुत्तरोत्तरसमये वर्धमानपरिणामी भवति, कश्चिद्धीयमानपरिणामी कश्चिच्चाऽवस्थितपरिणामी भवति ।

करणं विना ये देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यन्ते, तेषां प्राप्तिक्रमं व्याजिहीर्षुराह–

परिणामपच्चयाओ णाभोगगया गया अकरणाउ ।
गुणसेढी सिं निच्चं परिणामा हाणिवुड्ढिजुया ॥३०॥

परिणामप्रत्ययादनाभोगगता गता अकरणास्तु ।
गुणश्रेणिस्तयोर्नित्य परिणामहानिवृद्धियुताः ॥ इति पदसंस्कारः

"परिणामपच्चयाओ" त्ति, परिणामप्रत्ययात् परिणामह्रासलक्षणकरणात् 'अनाभोगेन' आभोगाऽभावेनाऽनन्तानुबन्धिकर्मोदयजनितसंक्लेशेन 'गता' देशविरतिपरिणामात्परिभ्रश्याऽविरतिं गताः, सर्वविरतिपरिणामाच्च च्युत्वा देशविरतिमविरतिं वा गता अन्तर्मुहूर्तं तत्र स्थित्वा स्थितिमन्कर्माऽवर्धमाना भूयोऽपि प्रागभ्युपगतां देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यमाना अकरणा अकृतयथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्वकरणाख्यकरणाः सन्तः प्रतिपद्यन्ते, यथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्वकरणे न कुर्वन्तीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"जदिसंजमासंजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो पुणो वि परिणामपच्चएण अंतोमुहुत्तेण आणीदो संजमासंजमं पडिवज्जइ तस्स वि णत्थि ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा इति" ।

संजमादो णिग्गदो असंजमं गंतूण जो ट्ठिदि संतकम्मेण अणवड्ढिदेण पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स संजमं पडिवज्जमाणस्स णत्थि अपुव्वकरणं णत्थि ट्ठिदिघादो, णत्थि अणुभागघादो ।" इति ।

तेषां स्थितिघातरसघातौ न भवतः, करणद्वयेन विना देशविरतिसर्वविरतिग्रहणात् । ये पुनराभोगेन देशविरतितः सर्वविरतितो वा प्रतिपतिता आभोगेनैव च मिथ्यात्वं गताः, ते तत्र जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वोत्कृष्टतः प्रभूतं कालं स्थित्वा भूयोऽपि देशविरतिं सर्वविरतिं वा करणपूर्विकामेव प्रतिपद्यन्ते । तथा चाऽऽहुर्देशविरतिं प्रतिपाद्यमानाः कषायप्राभृतचूर्णिकाराः– "यदि संजमासंजमादो पडिवदिदूण ✠ आगुंजाए मिच्छत्तं गंतूणं तदो संजमासंजमं पडिवज्जइ अंतोमुहुत्तेण वा विप्पकट्ठेण वा कालेण तस्स वि संजमासंजमपडिवज्जमाणस्स एदाणि चेव करणाणि कादव्वाणि ।" इत्यादि ।

"गुणसेढी सिं निच्चं" इत्यादि, तथा यावद्देशविरतिं सर्वविरतिं वा परिपालयति तावदेषां देशविरतानां सर्वविरतानां वा प्रतिसमयं गुणश्रेणिरपि भवति । नवरमत्र परिणामह्रा-

✠ आगुज्जनमागुज्जा संक्लेशभरेणाऽन्तराघूर्णनमित्यर्थः । (जयधवला)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवृद्धियुता भवन्ति, तथाहि—यथाप्रवृत्तदेशसंयतो यथाप्रवृत्तसर्वविरतो वा प्रवर्धमानो हीयमानः स्वभावस्थो वा भवतीत्युक्तं तत्र विशुद्ध्या वर्धमानः प्रतिसमयं पूर्वपूर्वतोऽसंख्येयगुणं संख्येयगुणं संख्यातभागाऽधिकमसंख्येयभागाऽधिकं वा परिणामाऽनुरूपं दलिकं गृहीत्वाऽसंख्येयगुणकारेण गुणश्रेणिमारचयति। यदि सङ्क्लेशेन हीयमानपरिणामी चेत्तर्हि प्रतिसमयं पूर्वतोऽसंख्येयगुणहीनं संख्येयगुणहीनं संख्यायातभागहीनमसंख्यातभागहीनं परिणाऽनुरूपं दलिकं गृहीत्माऽसंख्येयगुणकारेण गुणश्रेणिमारचयति यद्यवस्थितपरिणामी स्यात्तर्हि प्रतिसमयं तावदेव दलिकं गृहीत्वा गुणश्रेणिमारचयति, कालतश्च पुनः सर्वदा गुणश्रेणिस्तावन्मात्रैव गुणश्रेणिनिक्षेपोऽधोऽधश्च क्रमशोऽनुभवतः क्षीयमाणेषु समयेषूपर्युपरि वर्धत इत्यर्थः। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"**जाव देसविरतिं सव्वविरतिं वा धरति ताव गुणसेढिं समते समते करोति जावतियं खवेति, तावतियं उवरि रएति। 'परिणामवुड्ढिहाणिजुत्त' त्ति, विसुज्झंतो संखेज्जगुणं असंखेज्जगुणं वा संखेज्जभागुत्तरं वा असंखेज्जभागुत्तरं वा करेइ। संकिलिस्साणो एतेणेव कमेण परिहावेइ। अवट्ठियपरिणामस्स तत्तिया चेव गुणसेढी गहणं पडुच्च दलियनिक्खेवं पडुच्च पूर्ववत् कालं पडुच्च सव्वकालं तत्तिया चेव।**" इति।

तथैव पञ्चसङ्ग्रहोपशमनाऽधिकारेऽपि—

> **परिणामपच्चएणं चउव्विहं होइ वड्ढई वावि।**
> **परिणामवड्ढयाए गुणसेढिं तत्तियं रयइ ॥३३॥**

कालः—यथाप्रवृत्तदेशसंयतस्य यथाप्रवृत्तसर्वसंयतस्य वा कालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कर्षतस्तु देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणः। देशविरतसर्वविरतयोरुभययोर्वक्तव्यतां प्रदर्श्य संप्रति केवलं देशविरतौ चतुर्भिर्द्वारैः कषायाभृतचूर्णिकारनिर्दिष्टैर्विशेषोऽभिधीयते इमानि चत्वारि द्वाराणि (१) अल्पबहुत्वम् (२) स्वामित्वप्ररुपणा (३) स्थानप्ररूपणा (४) तीव्रतामन्दताप्ररूपणा च।

(१) अथ प्रथममल्पबहुत्वस्याऽवसरः।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्यैकान्तवृद्धिपर्यन्तं जघन्याऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालादीनामष्टादशपदानामल्पबहुत्वं विविच्यते।

(१) सर्वस्तोका जघन्याऽनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा।

एकान्तवृद्धिदेशसंयतस्य चरमसमये समाप्यमानाऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालः सर्वस्तोकः।

(२) ततः उत्कृष्टाऽनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा विशेषाऽधिका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्यमाणाऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालपूर्वतो विशेषाऽधिकः, कारणं तु प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकारगताऽल्पबहुत्ववज्ज्ञेयम् ।

(३) **ततो जघन्यस्थितिखण्डोत्कीर्णाद्धा जघन्यस्थितिबन्धाद्धा चोभावपि संख्येयगुणो परस्परं च तुल्ये ।**

एकान्तवृद्धिदेशसंयतस्य चरमसमये समाप्यमानस्थितिखण्डोत्कीर्णकालः समाप्यमानस्थितिबन्धकालश्च पूर्वतः संख्येयगुणौ परस्परं च तुल्यौ । कारणं तु प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाधिकारगताऽल्पबहुत्ववद् द्रष्टव्यम् ।

(४) **तत उत्कृष्टौ विशेषाऽधिकौ ।**

अपूर्वकरणप्रथमसमय आरभ्यमाणस्थितिखण्डोत्कीर्णकाल आरभ्यमाणस्थितिबन्धकालश्च विशेषाऽधिकौ तुल्यौ च भवतः । हेतुस्तु प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकारगताऽल्पबहुत्ववज्ज्ञेयः ।

(५) **ततः प्रथमसमयवर्तिसंयतासंयतस्य प्रथमसमयादारभ्य यस्मिन्काले एकान्तवृद्ध्या संयमाऽसंयमपर्याया वर्धन्ते, एष वृद्धिकालः संख्येयगुणः, एकान्तवृद्धिदेशसंयतकालः संख्येयगुण इति यावत् ।**

देशविरतेः प्रतिपत्तेरनन्तरसमयादन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं प्रवर्धमानपरिणामी भवति, तत्रैकस्मिन्नन्तर्मुहूर्तकाले सहस्रशः स्थितिघाता भवन्तीति पूर्वतः संख्यातगुणः ।

(६) **ततोऽपूर्वकरणाद्धा संख्येयगुणा ।**

देशसंयतस्याऽपूर्वकरणकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वेऽपि पूर्वतः संख्येयगुणेन बृहत्तरत्वम् ।

(७) **ततो जघन्यसंयमाऽसंयमाद्धा, सम्यक्त्वाद्धा, मिथ्यात्वाद्धा, संयमाद्धा असंयमाद्धा, सम्यक्त्वमिथ्यात्वाद्धा चैताः षडद्धाः पूर्वतः संख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः ।**

मिथ्यात्वगुणस्थानकस्य मिश्रगुणस्थानकस्य क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्य देशविरतस्याऽविरतस्य सर्वविरतस्य च जघन्यकालः पूर्वतः संख्येयगुणः परस्परं च तुल्यः । एतच्च निर्व्याघाताऽपेक्षया द्रष्टव्यं व्याघाते त्वेकसमयोऽन्तर्मुहूर्तो वा यथाश्रुतं परिभावनीयः ।

(८) **ततो गुणश्रेणिः संख्येयगुणा ।**

देशविरतस्य गुणश्रेणिनिक्षेपः पूर्वतः संख्येयगुणः ।

(९) **ततो जघन्याबाधा संख्येयगुणा ।**

एकान्तवृद्धिदेशसंयमस्य चरमस्थितिबन्धस्याऽबाधाकालः पूर्वतः संख्यातगुणः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) तत उत्कृष्टाबाधा संख्येयगुणा ।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयस्थितिबन्धस्याऽबाधाकालः पूर्वतः संख्यातगुणाः, कारणं तु प्रथमसमयवत्त्वाऽधिकारगताऽल्पबहुत्ववज्ज्ञेयम् ।

एतेऽनन्तरोक्ताः सर्वेऽपि काला अन्तर्मुहूर्तमात्राः ।

(११) ततो जघन्यं स्थितिखण्डमसंख्येयगुणम् ।

एकान्तवृद्धिदेशसंयतस्य चरमस्थितिखण्डं पूर्वतोऽसंख्येयगुणमित्यर्थः । अबाधाकालस्याऽन्तर्मुहूर्तमात्रत्वेन चरमस्थितिखण्डस्य च पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणत्वेन पूर्वतोऽसंख्येयगुणत्वम्, यतोऽन्तर्मुहूर्ततोऽसंख्येयगुणः पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणकालः ।

(१२) ततोऽपूर्वकरणस्य प्रथमं जघन्यस्थितिखण्डं संख्येयगुणम् ।

अपूर्वकरणस्य प्रथमजघन्यस्थितिखण्डमपि पल्योपमसंख्येयभागमात्रं किन्तु पूर्वतः संख्येयगुणं बृहत्तरम् ।

(१३) ततः पल्योपमं संख्येयगुणम् ।

पूर्वपदस्य पल्योपमसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

(१४) तत उत्कृष्टस्थितिखण्डं संख्येयगुणम् ।

उत्कृष्टस्थितिखण्डस्य सागरोपमपृथक्त्वमात्रत्वेन पूर्वतः संख्येयगुणत्वम् ।

(१५) ततो जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः ।

एकान्तवृद्धिदेशसंयतस्य चरमसमयभाविजघन्यस्थितिबन्धः पूर्वतः संख्येयगुणः

(१६) तत उत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुण ।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयभाव्युत्कृष्टस्थितिबन्धः पूर्वतः संख्येयगुणो भवति ।

(१७) ततो जघन्यं स्थितिसत्कर्म संख्येयगुणम् ।

एकान्तवृद्धिदेशसंयतस्य चरमसमये जघन्यस्थितिसत्कर्म प्राप्यते, तच्च पूर्वतः संख्येयगुणम् ।

(१८) तत उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म संख्येयगुणम्

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयवर्तिजन्तुनोत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म प्राप्यते, तच्च पूर्वतः संख्येयगुणम् ।

उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"एदो एदिस्से परूवणाए सम्मत्तस्स संजमासंजमपडिवज्जमाणगस्स पढमअपुव्वकरणादो जाव संजदासंजदो एयंताणुवड्ढीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्ढदि, एदम्हि काले ट्ठिदिबंधट्ठिदिसंतकम्मट्ठिदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सयाणमाबाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं अण्णेसि पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो त जहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सव्वथोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा ।
(२) उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया ।
(३) जहण्णिया ट्ठिदिखण्डयउक्कीरणद्धा जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा च दोवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ।
(४) उक्कस्सियाओ विसेसाहियाओ ।
(५) पढमसमयसंजदासंजदप्पहुडि जं एगंताणुवड्ढीए वड्ढदि चरित्ताचरित्तपज्जत्तएहिं एसो वड्ढिकालो संखेज्जगुणो ।
(६) अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा ।
(७) जहण्णिया संजमासंजमद्धा सम्मत्तद्धा मिच्छत्तद्धा संजमद्धा असंजमद्धा सम्मामिच्छत्तद्धा च एदाओ छप्पि अद्धाओ तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ।
(८) गुणसेढी संखेज्जगुणा ।
(९) जहण्णिया अबाहा संखेज्जगुणा ।
(१०) उक्कस्सिया अबाहा संखेज्जगुणा ।
(११) जहण्णगं ट्ठिदिखंडयं असंखेज्जगुणं ।
(१२) अपुव्वकरणस्स पढमं जहण्णगं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।
(१३) पलिदोवमं संखेज्जगुणं ।
(१४) उक्कस्सयं ट्ठिदिखण्डयं संखेज्जगुणं ।
(१५) जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।
(१६) उक्कोसओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।
(१७) जहण्णगं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।
(१८) उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।" इति ।

२ अथ स्वामित्वप्ररूपणा—

संयतासंयतलब्ध्याख्यदेशविरतेः स्वामी संज्ञी पञ्चेन्द्रियस्तिर्यङ् मनुष्यो वा भवति ।

तत्र जघन्यसंयतासंयतलब्धिरल्पा ।

तत उत्कृष्टसंयताऽसंयतलब्धिरनन्तगुणा । गुणकारश्च सर्वजीवगुणिताऽनन्तराशिप्रमाणः ।

संयमाऽसंयमयोग्योत्कृष्टसंक्लेशं प्राप्याऽनन्तरसमये मिथ्यात्वं गमिष्यतो मनुष्यस्य जघन्या संयताऽसंयतलब्धिर्भवति । तथाऽनन्तरसमये सर्वविरतिं प्रतिपत्स्यमानस्य देशविरतस्य मनुष्यस्योत्कृष्टा संयताऽसंयतलब्धिर्भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) **स्थानम्**—चारित्रमोहनीयक्षयोपशमजनितपरिणतिविशेषः संयमासंयमलब्धिरुच्यते। तस्याश्च जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेददर्शनात् स्थानानि प्राप्यन्ते। तत्र सर्वजघन्यसंयमासंयमलब्धिस्थानकेऽनन्तानि स्पर्द्धकानि, ● ततो द्वितीये संयमासंयमलब्धिस्थानकेऽनन्ततमभागेनाधिकानि स्पर्धकानि, ततस्तृतीयस्मिन् संयमासंयमलब्धिस्थानेऽनन्तभागेनाधिकानि स्पर्धकानि भवन्ति, ततश्चतुर्थे संयमासंयमलब्धिस्थानेऽनन्तभागेनाधिकानि स्पर्धकानि भवन्ति। एवमङ्गुलाऽसंख्येयभागमात्रेषु स्थानेषु गतेष्वसंख्येयभागाधिकैः स्पर्धकैरधिकं स्थानं भवति, ततः पुनरप्यनन्तभागोत्तरक्रमेण कण्डकस्थानानि वक्तव्यानि। कण्डकं चात्राऽङ्गुलाऽसंख्येयभागमात्रं बोद्धव्यम्।

● अत्रानन्तानि स्पर्धकानीत्युक्ते जघन्यसंयमासंयमलब्धिस्थानं सर्वजीवाऽनन्तगुणाविभागपरिच्छेदैर्निष्पन्नम्। एते चाऽनंताऽविभागपरिच्छेदा अनन्तानि स्पर्धकानीति व्यवह्रियते, स्पर्धकशब्दस्याऽविभागपरिच्छेदवाचकत्वेन विवक्षितत्वात्। प्रथमसंयमासंयमलब्धिस्थानतोऽनन्तभागाधिकैरविभागपरिच्छेदैर्द्वितीयं लब्धिस्थानं सम्पद्यते। एवंक्रमेण षट्स्थानपतितान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि संयमासंयमलब्धिस्थानानि वक्तव्यानि।

अथवा कार्ये कारणोपचार इति न्यायेन जघन्यसंयमासंयमलब्धिस्थानरूपे कार्ये कारणस्यानन्ताऽनुभागस्पर्धकोदयलक्षणस्योपचाराज्जघन्यलब्धिस्थानेऽनन्तस्पर्धकान्युच्यन्ते।

जघन्यसंयमासंयमलब्धिस्थानोत्पत्तिहेतुभूतकषायोदयस्थानकतो द्वितीयसंयमासंयमलब्धिस्थाननिमित्तं कषायोदयस्थानमनन्तस्पर्धकैर्हीनं भवति, तानि च सकलानुभागस्थानस्याऽनन्तभागमात्राणि भवन्ति। एवमनन्तस्पर्धकैर्हीनकषायोदयस्थानेनोत्पद्यमानं द्वितीयसंयमासंयमलब्धिस्थानं जघन्यसंयमासंयमलब्धिस्थानतः तदनन्तभागमात्रैरनन्तस्पर्धकैरधिकं भवति, अनुभागस्पर्धकहान्या समुत्पद्यमानकार्यस्याऽप्युपचारबलेनाऽधिकत्वव्यवहारात्। एवंक्रमेण षट्स्थानपतितान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि संयमाऽसंयमलब्धिस्थानानि भवन्ति; इति मन्यन्ते जयधवलाकाराः। अक्षराणित्वेवम्—

"एदेण सुत्तेण असंखेज्जलोगमेत्ताणं संजमासंजमलद्धिट्ठाणाणं जं जहण्णट्ठाणं तस्स सरूवणिद्देसो कओ त्ति दट्ठव्वो। तं कथं? एद जहण्णट्ठाणमणंतेहि अविभागपडिछेदेहि सव्वजीवेहिं अणंतगुणमेत्तेहिं णिप्फण्णं, एदे चेव अणंता अविभागपडिछेदा अणंताणि फड्डयाणि त्ति भणंते, फड्डयसद्दस्साविभागपलिच्छेदवाचित्तेण इह विवक्खियत्तादो। तदो अणंताणि फड्डयाणि। एवविहाविभागपलिच्छेदसरूवाणि घेत्तूणेदं जहण्णलद्धिट्ठाणं होदि त्ति भणिदं 'सुत्तयारेण'। अहवा एदं जहण्णयं लद्धिट्ठाणं मिच्छत्तं पडिवादाहिमुहसंजदासंजदचरिमसमए अणंताणं कसायाणुभागफड्डयाणमुदएण जणिदमिति कज्जे कारणोवयारेण अणंताणि फड्डयाणि त्ति भण्णदे अण्णहा तस्स सरूवणिरुवणोवायाभावादो। पुव्विल्लजहण्णलद्धिट्ठाणं सव्वजीवरासिमेत्तं (त्त) भागहारेण खंडिय तत्थेयखंडे तम्मि चेव पडिरासीकयम्मि पक्खित्ते विदिय लद्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं होदूण समुप्पज्जदि त्ति भणिद होइ। अथवा जहण्णलद्धिट्ठाणुप्पत्तिणिबंधणकसायुदयट्ठाणादो बिदियलद्धिट्ठाणुप्पत्ति निबंधणं कसायुदयट्ठाणमणंतेहि फड्डएहि हीणं होइ। एदाणि च हीणफड्डयाणि सयलाणुभागट्ठाणस्स अणंतभागमेत्ताणि सव्वजीवरासिणा जहण्णट्ठाणम्मि खंडिदे तत्थेयखंडपमाणत्तादो। एवं च अणंतेसु अणुभागफड्डएसु हीणेसु तत्तो समुप्पज्जमाणविदियलद्धिट्ठाणं वि जहण्णलद्धिट्ठाणादो अणंतेहिं फड्डएहि अब्भहियं होदूण समुप्पज्जदि होणाणुभागफड्डएहि तत्तो समुपज्जमाणकज्जस्स वि उवयारेण तव्ववएसाविरोहादो। एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ जोजेयव्वो"।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततोऽसंख्येयभागमात्रस्पर्धकैरधिकमेकं स्थानं वाच्यम् , एवमनन्तभागवृद्धकण्डकव्यवहितान्यसंख्येयभागाधिकानि स्थानानि तावद्वाच्यानि यावत्कण्डकमात्राणि स्थानानि गतानि भवन्ति, ततः परमनन्तभागकण्डकं व्यतीत्यैकं संख्येयभागाधिकं स्थानं द्रष्टव्यम् । ततः परतो मूलादारभ्य यावन्ति स्थानानि व्यतिक्रान्तानि तावन्त्यतिक्रम्य द्वितीयं संख्येयभागाधिकं स्थानं वक्तव्यम् । तान्यपि संख्येयभागाधिकानि स्थानान्युपदर्शितप्रकारेण तावद्वाच्यानि, यावत्कण्डकमात्रस्थानानि गतानि भवन्ति । एवं पूर्वपरिपाट्या संख्येयगुणाधिकान्यसंख्येयगुणवृद्धान्यनन्तगुणवृद्धानि स्थानानि कण्डकमात्रण्यभिधातव्यानि । इदं चैकं षट्स्थानम् , अनेन षट्स्थानक्रमेण पतितान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमात्राणि संयमासंयमलब्धिस्थानानि भवन्ति । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "एत्तो संजदासंजदस्स लद्धिट्ठाणाणि वत्तइस्सामो, तं जहा जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंताणि फड्डयाणि । तदो बिदियलब्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं । एवं छट्ठाणपदिदलद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा"** इति । एतानि संयमासंयमलब्धिस्थानानि त्रिविधानि ।

तद्यथा—

(१) कानिचित्प्रतिपातस्थानि

(२) कतिचित्प्रतिपद्यमानस्थानानि

(३) कियन्तिचिदप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानानि ।

तत्र प्रत्येकं मनुष्यतिर्यञ्चावधिकृत्य द्विधेति षड्विधानि, तत्राऽपि जघन्योत्कृष्टभेदाद् द्वादशविधानि संयतासंयतलब्धिस्थानानि प्राप्यन्ते ।

(१) प्रतिपातस्थानम्-अनन्तरसमये संयताऽसंयतलब्धितः प्रपतता जन्तुना देशविरतेश्चरमसमये प्राप्यमाणं लब्धिस्थानम् ।

(२) प्रतिपद्यमानस्थानम्-देशविरतिं प्रतिपद्यमानेन जन्तुना तत्प्रतिपत्तिप्रथमसमये प्राप्यमाणं संयताऽसंयतलब्धिस्थानम् ।

(३) अप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानम्-देशविरतेः प्रथमसमयं चरमसमयं च वर्जयित्वा शेषसमयेषु प्राप्यमाणानि संयमासंयमलब्धिस्थानान्यप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानान्युच्यन्ते, तथा चाऽनन्तरसमये सर्वविरतिं प्रतिपत्स्यमानस्य देशविरतस्य चरमसमये संयमाऽसंयमलब्धिस्थानमप्यप्रतिपाताऽप्रतिद्यमानस्थानमुच्यते ।

तत्राल्पबहुत्वम्—

(१) प्रतिपातस्थानानि सर्वतः स्तोकानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) ततः प्रतिपद्यमानस्थानान्यसंख्येयगुणानि ।

(३) ततोऽप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानान्यसंख्यातगुणानि ।

(४) तीव्रमन्दताप्ररूपणा—अथ तीव्रतामन्दतेऽधिकृत्याऽल्पबहुत्वमुच्यते—

(१) तत्र देशविरतस्य मनुष्यस्य जघन्य प्रतिपातस्थानमल्पम् ।

सर्वसंक्लिष्टस्य मनुष्यस्य देशविरतेश्चरमसमये तदनन्तरसमये मिथ्यात्वं प्रतिपत्स्यमानस्य संभवज्जघन्यप्रतिपातस्थानम् । तच्च सर्वमन्दलब्धिस्थानम् ।

(२ ततो देशविरतस्य तिरश्च जघन्यं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम् ।

मिथ्यात्वाऽभिमुखस्य संक्लिष्टस्य देशविरतस्य तिरश्चो देशविरतिचरमसमये घटमानं जघन्यं प्रतिपातस्थानं भवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणम् ।

(३) ततो देशविरतस्य तिरश्च उत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य मनुष्यस्य तत्प्रायोग्यसंक्लिष्टस्याऽनन्तरसमयेऽविरतसम्यक्त्वगुणस्थानकं गमिष्यतो देशविरतिकालचरमसमये संभवदुत्कृष्टं प्रतिपातस्थानं भवति. तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणम् ।

(५) ततो मनुष्यस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशसंयतस्य मनुष्यस्य मिथ्यात्वगुणस्थानकतः सम्यक्त्वेन सह देशविरतिं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये संभवज्जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं भवति ।

(६) ततस्तिरश्चो जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य तिरश्चो मिथ्यात्वतः सम्यक्त्वदेशसंयमौ युगपदभिगच्छतस्तत्प्रथमसमये घटमानं जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं वर्तते ।

(७) ततस्तिरश्च उत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य तिरश्चोऽविरतसम्यक्त्वगुणस्थानकतो देशविरतिं प्राप्नुवतस्तत्प्रथमसमये संभवदुत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं विद्यते ।

(८) ततो मनुष्यस्योत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य मनुष्यस्याऽविरतसम्यक्त्वतो देशविरतिं लभमानस्य तत्प्रथमसमये घटमानमुत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं संभवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं भवति ।

(९) ततो मनुष्यस्य जघन्यमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य मनुष्यस्य मिथ्यात्वतः सम्यक्त्वेन सह देशविरतिं प्रतिपन्नस्य तद्द्वितीयसमये घटमानं जघन्यमप्रतिपाताप्रतिपद्यमानस्थानं भवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणमस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) ततस्तिरश्चो जघन्यमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य तिर्यग्जीवस्य प्रथमगुणस्थानतः सम्यक्त्वदेशविरती युगपदधिगतस्य देशविरतिप्रतिपत्तेर्द्वितीयसमये घटमानं जघन्यमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं संभवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं वाच्यम् । यतो मनुष्यस्य जघन्याऽनुभागस्थानतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणषट्स्थानपतितानि स्थानान्युऽल्लङ्घ्य तिरश्चो जघन्यस्थानमायाति ।

(११) ततस्तिरश्च उत्कृष्टमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

देशविरतस्य तिर्यग्जीवस्याऽविरतसम्यक्त्वतो देशविरतिं प्रतिपन्नस्य स्वयोग्यसर्वोत्कृष्टविशुद्धिविशिष्टस्य या देशविरतिप्राप्तेः प्रभृत्यन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमय एकान्ताऽनन्तगुणा वृद्धिर्भवति, तच्चरमसमये घटमानमुत्कृष्टमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं संभवति, यद्वा स्वस्थानतीव्रविशुद्धस्यानन्तानुबन्धिवियोजकस्य करणत्रयादूर्ध्वं तीव्रविशुद्धौ वर्तमानस्य । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणम् , पूर्वतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणस्थानान्यतिक्रम्य प्राप्यमाणत्वात् ।

(१२) ततो मनुष्यस्योत्कृष्टाऽप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणम् ।

सर्वोत्कृष्टविशुद्धिविशिष्टस्य देशविरतस्य सर्वविरत्यभिमुखस्य चरमसमयेऽपूर्वकरणचरमसमये संभवदुत्कृष्टमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं भवति । तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणं भवति ।

उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ—

(१) "**सव्वमंदाणुभागं जहण्णं संजमासंजमस्स लद्धिट्ठाणं मणुसस्स पडिवदमाणस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणं तत्तियं चेव** ।

(२) **तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(३) **तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(४) **मणुससंजदासंजदस्स पडिवदमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(५) **मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(६) **तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(७) **तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(८) **मणुसस्स पडिवज्जमाणस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

(९) **मणुसस्स अपडिवज्जमाणअपडिवदमाणस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं** ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

(१०) तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाणअपडिवदमाणस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।

(११) तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाणअपडिवदमाणस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।

(१२) मणुसस्स अपडिवज्जमाणअपडिवदमाणस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।

स्थापना–उपर्युक्ततीव्रतामन्दतेऽवलम्ब्य संयताऽसंयतलब्धिस्थानानामत्र स्थापना प्रदर्श्यते ।

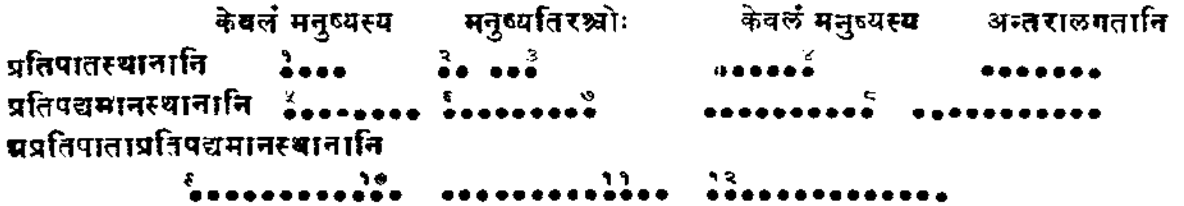

अथ विवर्ण्यते स्थापना–देशविरतिगुणस्थानकस्य जघन्यसंयताऽसंयतलब्धिस्थानादारभ्योत्कृष्टसंयतासंयतलब्धिस्थानपर्यन्तान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि लब्धिस्थानानि स्थापयितव्यानि । तत्र प्रथमलब्धिस्थानात्प्रभृति षट्स्थानपतितवृद्धिक्रमेणाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणलब्धिस्थानपर्यन्तविद्यमानानि लब्धिस्थानानि प्रतिपातस्थानानि भवन्ति । तेभ्यः किमपि लब्धिस्थानं देशविरतिं प्राप्नुवतो जन्तोर्न भवति, अपि तु देशविरतितः प्रतिपतता देशविरतेन जन्तुना देशविरतिचरमसमये तेष्वेकतमत्स्थानं प्राप्यते । तत ऊर्ध्वमसंख्येलोकाकाशप्रदेशप्रमाणमन्तरं भवति । अन्तरगतं किमपि स्थानं कस्यचिज्जीवस्य न भवति ।

टिप्पणम्–लब्धिसारे तु जघन्योत्कृष्टसंयताऽसंयतलब्धिस्थानेष्वयं विशेषो दर्शितः । तथा च तद्ग्रन्थः ।

"मनुष्यजघन्यप्रतिपातस्थानादारभ्य तिर्यग्जीवस्याऽनुत्कृष्टप्रतिपातस्थानपर्यन्तं संभवन्ति, प्रतिपातस्थानानि मिथ्यात्वाऽभिमुखस्यैव देशसंयतकालचरमसमये द्रष्टव्यानि, तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानपर्यन्तं सन्ति । प्रतिपातस्थानान्यसंयतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य स्वकालचरमसमये घटन्त इत्यर्थविशेषो ग्राह्यः । "

अयं प्रतिपातस्थानेषु विशेषो दर्शितः । संप्रति प्रतिपद्यस्थानेषु विशेषः समुद्धृत्यते ।

मनुष्यजघन्यप्रतिपद्यस्थानात्प्रभृति तिर्यगनुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानपर्यन्तं संभवन्ति, प्रतिपद्यमानस्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्येति ग्राह्यम् । तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानपर्यन्तं विद्यमानानि स्थानान्यसंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य भवन्तीति ज्ञातव्यम् ।

तथा चाऽप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानेष्वयं विशेषोऽभिहितः, तद्यथा—

"मनुष्यजघन्याऽनुभयस्थादारभ्य तिर्यगुत्कृष्टाऽनुभयस्थानपर्यन्तं संभवन्ति स्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्येति ग्राह्यम् । तिर्यगुत्कृष्टाऽनुभयस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टाऽनुभयस्थानपर्यन्तं दृश्यमानानि स्थानान्यसंयतसम्यग्दृष्टिचरस्येति संभावनीयम् ।" इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि प्रतिपद्यमानानि स्थानानि देशविरतिं च प्रतिपद्यमानस्यैतानि भवन्ति, देशसंयमप्रथमसमय एतेष्वन्यतमद्भवति ।

ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि लब्धिस्थानान्यन्तरयित्वाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानानि भवन्ति, एतानि च देशविरतिप्राप्तेर्द्वितीयसमयात् प्रभृति सर्वविरतिं प्रतिपत्स्यमानस्य देशविरतिचरमसमयं यावत् तथा देशविरतितो निवर्त्स्यतस्तु देशविरतस्याऽऽद्विचरमसमयं भवन्ति। तथैव सर्वविरतितः प्रच्युत्य देशविरतिं प्रतिपद्यमानस्याऽप्यप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं संभवति । एतेषु त्रिविधेषु लब्धिस्थानेषु जघन्यलब्धिस्थानादारभ्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि लब्धिस्थानानि मनुष्यस्यैव भवन्ति. ततस्तिरश्चो जघन्यं प्रतिपातलब्धिस्थानम् , ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रदेशप्रमाणानि नरतिर्यग्जीवसाधारणानि षट्स्थानपतितानि प्राप्यन्ते ।तत ऊर्ध्वं मनुष्यस्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानि गत्वा मनुष्यस्योत्कृष्टलब्धिस्थानं प्राप्यते ।

तथाहि—देशसंयमस्य सर्वजघन्यं प्रतिपातस्थानं मनुष्ये भवति । ततः परमसंख्येयलोकाकाशमात्राणि षट्स्थानपतितानि प्रतिपातस्थानानि केवलं मनुष्यस्य, तत ऊर्ध्वं तिरश्चो जघन्यं प्रतिपातस्थानम्, यतो मनुष्यस्य जघन्यप्रतिपातस्थानात् तिरश्चो जघन्यप्रतिपातस्थानमनन्तगुणवृद्धं प्राप्यते, एवं सर्वत्रोहनीयम् । तच्च मनुष्यस्य तु मध्यमं संभवति, ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि प्रतिपातस्थानानि नरतिर्यग्जीवयोरुभययोः संभवन्ति, तत ऊर्ध्वं तिरश्चोत्कृष्टलब्धिस्थानम् । तच्च मनुष्यस्य मध्यमं भवति । ततः परं मनुष्यस्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि प्रतिपातस्थानानि प्राप्यन्ते । ततो मनुष्यस्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानात्परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि लब्धिस्थानानि तत्परिणामयोग्यस्वाम्यभावेनाऽन्तरयित्वा मनुष्यस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते, यतो मनुष्यस्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानतो मनुष्यस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानमनन्तगुणवृद्धम् , एवं सर्वत्रोहनीयम् ।

ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि लब्धिस्थानानि मनुष्यस्यैव संभवन्ति । तत ऊर्ध्वं मनुष्यस्य मध्यमत्वेऽपि तिरश्चो जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते । ततः परं मनुष्यतिर्यग्जीवयोः साधारणान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि लब्धिस्थानानि वक्तव्यानि । ततः परं तिरश्च उत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते । तच्च मनुष्यस्य मध्यमं संभवति । तत ऊर्ध्वमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि मनुष्यस्यैव प्रतिपद्यमानस्थानानि नेतव्यानि, ततो मनुष्यस्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते, ततोऽसंख्येय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि तत्परिणामयोग्यस्वामीनामभावेनाऽन्तर्यित्वा मनुष्यस्य जघन्यमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते, यतो मनुष्यस्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानात् तज्जघन्यमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानमनन्तगुणवृद्धम् । ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि लब्धिस्थानान्यतिक्रम्य तिरश्चो जघन्यमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते। तच्च मनुष्यस्य मध्यमं संभवति। तत ऊर्ध्वं मनुष्यतिरश्चोः साधारणान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितान्यप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानान्युल्लङ्घ्य तिरश्च उत्कृष्टमप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानं प्राप्यते । तच्च मनुष्यस्य मध्यमं संभवति। ततः परं मनुष्यस्य सर्वाण्येवाऽप्रतिपाताऽप्रतिपद्यमानस्थानानि षट्स्थानपतितानि वक्तव्यानि।

संप्रति नवभिर्द्वारैर्देशविरतः प्ररूप्यते—

तद्यथा-(१) सत्पदम् (२) द्रव्यम् (३) क्षेत्रम् (४) स्पर्शना (५) कालः (६) अन्तरम् (७) भागः (८) भावः (९) अल्पबहुत्वम् ।

(१) सत्पदप्ररूपणा—ननु किं जगति देशविरतस्य सत्ताऽस्ति? अस्ति ।

(२) द्रव्यम्-विश्वे देशविरताः कतिपया जीवाः? देशविरता जीवभेदेन द्विधा (१) पर्याप्तगर्भजमनुष्याः (२) पर्याप्तगर्भजतिर्यञ्चः । तत्र देशविरता मनुष्याः संख्येयराशिप्रमाणाः, तिर्यग्जीवाश्च देशविरताः क्षेत्रपल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रदेशराशिप्रमाणा भवन्ति ।

(३) क्षेत्रम्-क्षेत्रतो देशविरता मनुष्याः स्वस्थानतः सार्धद्वयद्वीप एव भवन्ति, तिर्यञ्चश्च देशविरता स्वस्थानतः लोकत्रये सन्ति, तत्राप्यूर्ध्वदेशैकदेशे पाण्डकवनादौ, अधोलोकैकदेशभागे समुद्रादौ, अधोलौकिकग्रामे च ।

(४) स्पर्शना—देशविरतानां स्पर्शना षड्रज्जुप्रमाणा मरणसमुद्घाताऽपेक्षया तेषामच्युतपर्यन्तगमनात् ।

(५) कालः—एकजीवमनुलक्ष्य देशविरतेर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टतस्तु देशोनपूर्वकोटिवर्षप्रमाणः कालः । अनेकजीवमाश्रित्य देशविरता सर्वदा भवन्ति ।

(६) अन्तरम्—एकजीवमाश्रित्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतो देशोनार्धपुद्गलपरावर्तकालप्रमाणम् अनेकजीवमवलम्ब्याऽन्तरं न भवति ।

(७) भागः—देशविरता जीवाः सर्वजीवराशेरनन्ततमभागप्रमाणाः ।

(८) भावः—देशविरतेर्भावस्तुक्षायोपशमिकः ।

(९) अल्पबहुत्वम्—देशविरता मनुष्या अल्पाः, ततो देशविरतास्तिर्यञ्चोऽसंख्येयगुणाः ।

ननु देशविरतिलब्धिरौदयिकभाव उत क्षायोपशमिकभावे ? उच्यते—क्षायोपशमिकभावे, कथमिति चेद् ? उच्यते, देशविरतस्याऽप्रत्याख्यानावरणस्योदयो न भवतीति कृत्वौदयिकभावे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोच्यते, न च देशविरतस्य प्रत्याख्यानावरणस्योदयादौदयिकभाव इति वाच्यम्, यतः प्रत्याख्यानावरणमुदयमानमपि देशविरतिं किञ्चिदपि नाऽवष्टभ्नाति, तत्तु सर्वविरतिम्। ननु क्षायिकभावे कथं नोच्यते, यतोऽप्रत्याख्यानावरणस्योदयाऽभावः प्रत्याख्यानावारणस्योदयेऽपि तस्य देशविरतिघातित्वं नास्तीति चेद्? उच्यते, देशविरतिलब्धिर्न क्षायिकभावे, यतः प्रत्याख्यानावरणं वेदयन् संज्वलनचतुष्कनवनोकषायानपि वेदयति, प्रत्याख्यानावरणं देशविरतिं किञ्चिदावृणोति शेषाश्चोदयगताः संज्वलनचतुष्कनवनोकषायलक्षणत्रयोदशप्रकृतयो देशविरतिं देशघातिनीं कुर्वन्ति, क्षायोपशमिकां करोतीत्यर्थः, इति त्रयोदशप्रकृतीनां देशघातिस्पर्धकानां विपाकेन उदयादप्रत्याख्यानावरणस्य प्रदेशत उदयाच्च क्षायोपशमिकभावे देशविरतिलब्धिरुच्यते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–**संजदासंजदो अपच्चक्खाणकसाए ण वेदयदि पच्चक्खाणावरणीया वि संजमासंजमस्स किंचि आवरेंति। सेसा च दुकसायाणवणोकसायवेदणीयाणि च उदिण्णाणि देसघादिं करेंति संजमासंजमं। जइ पच्चक्खाणावरणीयं वेदेंतो सेसाणि चरित्तमोहणीयाणि ण वेदेज्ज, तदो संजमासंजमलद्धी खइया होज्जा? एक्केण वि उदिण्णेण खओवसमलद्धी भवदि।**

अथ सर्वविरतावमूभिः पञ्चभिर्द्वारैर्विशेषोऽभिधीयते। तद्यथा— (१) अल्पबहुत्वम्। (२) स्वामित्वप्ररूपणा (३) स्थानप्ररूपणा (४) तीव्रतामन्दताप्ररूपणा (५) स्थापना।

अल्पबहुत्वम्–अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्यैकान्तवृद्धसर्वसंयतस्य चरमसमयपर्यन्तं जघन्याऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालादीनामष्टादशपदानामल्पबहुत्वमत्राऽपि। देशसंयतवज्ज्ञातव्यम्। अयं तु विशेषः–देशसंयतस्थाने सर्वसंयत इति वक्तव्यम्, उक्तञ्च **कषायप्राभृतचूर्णौ–**

(१) **सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्किरणद्धा।**

(२) **सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया।**

(३) **जहण्णिया ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाओ।**

(४) **तेसिं चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया।**

(५) **पढमसमयसंजमादिं कादूण जं कालमेयंताणुवड्ढीए वड्ढदि। एसा अद्धा संखेज्जगुणा।**

(६) **अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा।**

(७) **जहण्णिया संजमद्धा संखेज्जगुणा।**

(८) **गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो।**

(९) **जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) उक्कसिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

(११) जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।

(१२) अपूव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

(१३) पलिदोवमं संखेज्जगुणं ।

(१४) पढमस्स ट्ठिदिखंडयस्स विसेसो सागरोवमपुधत्तं संखेज्जगुणं ।

(१५) जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।

(१६) उक्कसओ ट्ठिदिबधो संखेज्जगुणो ।

(१७) जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगणं ।

(१८) उक्कसयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

(२) **स्वामित्वप्ररूपणा**–संयतलब्धेः स्वामी संज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तः संख्यातवर्षायुष्को मनुष्यः ।

(२) **स्थानप्ररूपणा**-प्रत्याख्यानावरणीयादिक्षयोपशमजनितः परिणतिविशेषः संयमलब्धिरुच्यते, तस्या जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदात्संयमस्थानानि प्राप्यन्ते । तत सर्वजघन्यस्थानके सर्वाऽल्पलब्धिके संयमस्थानक इत्यर्थः, सर्वतः स्तोकानि स्पर्धकानि । ततः परं षट्स्थानवृद्धिक्रमेणाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि संयमस्थानानि भवन्ति ।

तत्र संयमस्थानानि त्रिधा–(१) प्रतिपातस्थानानि (२) उत्पादकस्थानानि (३) लब्धिस्थानानि ।

(१) प्रतिपातस्थानं नामाऽनन्तरसमये मिथ्यात्वं वाऽविरतसम्यक्त्वं वा देशविरतिं वा गमिष्यतः सर्वविरतिचरमसमये यत्संयमस्थानं भवति तत्प्रतिपातस्थानमुच्यते ।

(२) उत्पादकस्थानं नाम सर्वविरतिं प्रतिपद्यमानस्य जन्तोस्तत्प्रथमसमये भवति ।

(३) प्रतिपातस्थानानि, उत्पादकस्थानानि तथोभयव्यतिरिक्तानि सर्वाणि मिलित्वा संयमस्थानानि लब्धिस्थानान्युच्यन्ते । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–' एत्तो जाणि ट्ठाणाणि **ताणि तिविहाणि। तं जहा पडिवादट्ठाणाणि उप्पादट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि । पडिवादट्ठाणं णाम (जहा) जम्हि ट्ठाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छइ तं पडिवादट्ठाणं, उप्पादयट्ठाणं णाम जहा जम्हि** ट्ठाणे **संजमं पडिवज्जइ** तमुप्पादयट्ठाणं **णाम । सव्वाणि चेव** चरित्तट्ठाणाणि **लद्धिट्ठाणाणि**" इति ।

" संयमस्थानानामल्पबहुत्वम् "

(१) प्रतिपातस्थानानि षट्स्थानपतितान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि सर्वाऽल्पानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) तत उत्पादकस्थानानि षट्स्थानपतितान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राण्यसंख्येयगुणानि । (३) ततो लब्धिस्थानानि षट्स्थानपतितान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राण्यसंख्येयगुणानि । उक्तं च **कषायप्रभृतचूर्णौ**–"एदेसिं लद्धिट्ठाणाणं अप्पाबहुअं तं जहा–(१) सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि (२) उप्पादयट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि (३) लद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि"।

(४) **तीव्रतामन्दताप्ररूपणा**–(१) मिथ्यात्वाऽभिमुखस्य सर्वजघन्यं प्रतिपातस्थानमल्पं सर्वाऽल्पलब्धिकमित्यर्थः। तच्च तीव्रसंक्लिष्टस्य मिथ्यात्वाऽभिमुखस्य सर्वविरतिचरमसमये भवति। (२) ततो मिथ्यात्वाभिमुखस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणं तच्च मिथ्यात्वाऽभिमुखस्य तद्योग्यसंक्लिष्टस्य जीवस्य सर्वविरतिचरमसमये भवति। (३) ततोऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य तद्योग्योत्कृष्टसंक्लिष्टस्य जीवस्यसर्वविरतिचरमसमये भवति। (४) ततोऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य तद्योग्यसंक्लिष्टस्य जीवस्य सर्वविरतिचरमसमये भवति (५) ततो देशविरत्यभिमुखस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम्। तच्च देशविरत्यभिमुखस्य तद्योग्योत्कृष्टसंक्लिष्टस्य जीवस्य सर्वविरतिचरमसमये भवति। (६) ततो देशविरत्यभिमुखस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम्। तच्च देशविरत्यभिमुखस्य तद्योग्यसंक्लिष्टस्य जीवस्य सर्वविरतिचरमसमये भवति। (७) ततः कर्मभूमिजजन्तोर्जघन्यमुत्पादकस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽऽर्यदेशजस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सर्वविरतस्य मन्दविशुद्धस्य संयमग्रहणे प्रथमसमये संभवति। (८) ततोऽनार्यभूमिजजन्तोर्जघन्यमुत्पादकस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽनार्यदेशजस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सर्वविरतस्य मन्दविशुद्धस्य संयमग्रहणप्रथमसमये संभवति।

न चाऽनार्यदेशे धर्माऽभावेन संयमाऽभावः सिद्धः, संयमाऽभावेन चाऽनार्यदेश उत्पन्नस्योत्पादकस्थानं न संभवतीति वाच्यम्, अनार्यदेशे धर्माऽभावेऽप्यार्यदेश आगतस्याऽनार्यदेशोत्पन्नस्य संयमादिधर्मसंभवादार्द्रकुमारादिवत्।

(९) ततोऽनार्यभूमिजजन्तोरुत्कृष्टमुत्पादकस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽनार्यदेशजस्य सर्वविरतस्य तीव्रविशुद्धस्य देशविरतित आगतस्य संयमग्रहणप्रथमसमये संभवति। (१०) ततः कर्मभूमिजजन्तोरुत्कृष्टमुत्पादकस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽऽर्यदेशजस्य सर्वविरतस्य तीव्रविशुद्धस्य देशविरतित आगतस्य संयमग्रहणे प्रथमसमये संभवति। (११) ततः परिहारविशुद्धिजीवस्य जघन्यलब्धिस्थानमनन्तगुणम्। तच्चाऽनन्तरसमये परिहारविशुद्धितः प्रच्योष्यमाणस्य छेदोपस्थापनीयसंयमं गमिष्यतः परिहारविशुद्धिचरमसमये वर्तमानस्य भवति। (१२) ततः सर्वविशुद्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहारविशुद्धिजीवस्योत्कृष्टलब्धिस्थानमनन्तगुणम् । (१३) ततः सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोरुत्कृष्टं लब्धिस्थानमनन्तगुणम् , तच्चाऽनिवृत्तिकरणक्षपकस्य चरमसमये भवति ।

मिथ्यात्त्वाऽभिमुखस्य सर्वजघन्यस्थानादारभ्य सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोरुत्कृष्टसंयमस्थानपर्यन्तानि सर्वाणि सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमद्वयसम्बन्धीनीति ग्राह्यम् । अपि च प्रतिपातस्थानान्युत्पादकस्थानानि च सर्वाणि सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसम्बन्धीन्येव, यतः सर्वविरतिं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये सर्वविरतितश्च पततोजन्तोस्सर्वविरतिचरमसमये सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोरन्यतर एव भवति । तथाहि-परिहारविशुद्धितः परिभ्रश्यञ्जन्तुरादौ छेदोपस्थापनीयसंयमं स्पृशति, न त्वविरतिं देशविरतिं वा । एवं सूक्ष्मसंपरायतोऽवतरता जन्तुनाऽपि प्रथमं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमौ प्राप्येते, नाऽविरत्यादिकम् । तथा च यथाख्याततः परिभ्रश्यता जन्तुनाऽपि सूक्ष्मसंपरायस्थानं प्राप्यते, नाऽविरत्यादिकम्, अतः सर्वाणि प्रतिपातस्थानानि सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोर्भवन्ति । न च भवक्षयादुपशमश्रेण्यां मृतः सूक्ष्मसंपराययथाख्याताद्वाऽविरत्यादिकं स्पृशतीति कथं सूक्ष्मसंपराययथाख्यातचारित्रे प्रतिपातस्थानाऽभाव इति वाच्यम् , संयमघातिकषायोदयेन गुणस्थानक्षयादेवाऽत्र प्रतिपातस्थानस्य विवक्षितत्वात् । यत्र भवक्षयहेतुकः प्रतिपातः, तत्र यत्प्रतिपातस्थानम् , तदत्र विवक्षितम् , व्रतप्रतिज्ञाया पूर्णत्वेन तद्भङ्गनिमित्तकमंक्लेशाऽभावात् । एवं प्रतिपद्यमानस्थानमपि सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयतयोरेव भवति, यतः सर्वविरतिं प्रतिपद्यमानो जन्तुः पूर्वं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोरन्यतरं संयमं लभते ।

सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोः सर्वजघन्यं लब्धिस्थानं प्रतिपातस्थानं भवति । यदि संयमग्रहणाऽपेक्षया विचार्यते तर्ह्यार्यदेशोद्भवयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयतयोः प्रथमं लब्धिस्थानं जघन्यं प्राप्यते । (१४) ततः सूक्ष्मसंपरायस्य जघन्यसंयमस्थानमनन्तगुणम् । उपशमश्रेण्यवरोहणेऽनिवृत्तिकरणाऽभिमुखस्य सूक्ष्मसंपरायसंयमस्य जघन्यस्थानं सूक्ष्मसंपरायचरमसमये भवति ।

(१५) ततः सूक्ष्मसंपरायस्योत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणम् , सूक्ष्मसंपरायक्षपकचरमसमये प्राप्यते ।

(१६) ततो यथाख्यातस्याऽजघन्याऽनुत्कृष्टसंयमस्थानमनन्तगुणम् , तच्चोपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोगकेवलिस्वामिकं भवति, मोहनीयस्य सकलप्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपाणां सर्वोपशमात्सर्वक्षयाच्च समुद्भूतत्वात्तस्य जघन्यमध्यमोत्कृष्टलक्षणभेदा न सन्तीत्येकमेव लब्धिस्थानम् , तच्च पूर्वतोऽनन्तगुणवृद्धं भवति । उपशमश्रेणिक्षपक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेणिविषयकेऽपि सूक्ष्मसंपरायसंयमस्थानयथाख्यातसंयतस्थानेऽत्र प्रसंगतः प्ररूपिते । उक्तञ्च कषायप्राभृतचूर्णौ–(१) "तिव्वमंददाए सव्वमंदाणुभागं मिच्छत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं (२) तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं (३) असंजदसम्मत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं सजमट्ठाणमणंतगुणं (४) तस्सेवुक्कस्सयं सजमट्ठाणमणंतगुणं । (५) संजमासजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं सजमट्ठाणमणंतगुणं (६) तस्सेवुक्कस्सयं सजमट्ठाणमणंतगुणं (७) कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं (८) ※अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं (९) तस्सेवुक्कस्सयं पडिवज्जमाणयस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं (१०) कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं सजमट्ठाणमणंतगुणं (११) परिहारविशुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं (१२) तस्सेव उक्कस्सयं सजमट्ठाणमणंतगुणं (१३) सामाइयच्छेदोवट्ठावणियाणमुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं" इति । (१४) सूक्ष्मसपराइयसुद्धिसजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । (१५) तस्सेवुक्कस्सय चरित्तलद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।" इति ।

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रे च तथैव सप्तपदानामल्पबहुत्वमुक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः–"एएसिं णं भंते ! सामाइयछेदोवट्ठावणियपरिहारविसुद्धियसुहुमसंपरायअहक्खायसंजयाण जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरे जाव विसेसाहिया वा ? गोयमा ! (१) सामाइयसंजयस्स छेओवट्ठावणियसंजयस्स य एएसिं णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला सव्वथोवा (२) परिहारविसुद्धियसंजयस्स जहण्णगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा (३) तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा (४) सामाइयसंजयस्स छेओवट्ठावणियसजयस्स य एएसिं णं उक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा (५) सुहुमसपरायसंजयस्स जहन्नगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा (६) तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा (७) अहक्खायसंजयस्स अजहन्नमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा" इति ।

॥ स्थापना ॥

१ क २ अ ३ ख ४ अं ५ ग ६ अं ७ घ ८ ङ ९E च १०

••• • • ••••• • ••• • ••••• • •••• • ••••• ••• •• • ••• • •••• •

अं १०A छ ११ ज १२ झ १३ अं १४ ञ १५ अं ट १६

••••• ••• •• • ••• • ••• •• ••••• ••• • •• ••••• •

क=मिथ्यात्वाऽभिमुखस्य सर्वविरतस्य प्रतिपातस्थानानि । ख=अविरतसम्यक्त्वाऽभि-

※ अत्राकर्मजभूमिशब्देन म्लेच्छोऽनार्यभूमिजो ज्ञातव्यः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

मुखस्य सर्वविरतस्य प्रतिपातस्थानानि । ग=देशविरत्यभिमुखस्य सर्वविरतस्य प्रतिपातस्थानानि । घ=कर्मभूमिजसर्वविरतस्योत्पादकस्थानानि । ङ=अनार्यभूमिजसर्वविरतस्योत्पादकस्थानानि कर्मभूमिजस्यापि तान्यविरुद्धानि । च=केवलमार्यभूमिजस्योत्पादकस्थानानि । छ=सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोः प्रतिपातोत्पादकव्यतिरिक्तलब्धिस्थानानि । ज=परिहारविशुद्धसंयमस्य लब्धिस्थानानि, तानि सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोरपि व्यतिरिक्तलब्धिस्थानानि झ= सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोर्व्यतिरिक्तलब्धिस्थानानि ञ=सूक्ष्मसंपरायस्य लब्धिस्थानान्यन्तर्मुहूर्तसत्काऽसंख्येयसमयप्रमाणानि । ट=यथाख्यातस्याऽजघन्यमनुत्कृष्टमेकमेव स्थानम् १०= सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोर्जघन्यं व्यतिरिक्तस्थानम्, मिथ्यात्वाऽभिमुखादीनां प्रथमस्थानं जघन्यमन्त्यं चोत्कृष्टं भवति । अं=अन्तरगतानि स्थानानि तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि । प्रथमाङ्कादारभ्य षोडशतमाङ्कपर्यन्ता अङ्का अल्पबहुत्वगताऽङ्कान् ज्ञापयन्ति ।

अथ स्थापनाया विवेचनम्—अनन्तरसमये मिथ्यात्वं गमिष्यतो जन्तोः सर्वविरतिचरमसमये मनुष्यस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानं (१) स्थाप्यते । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितान्यतिक्रम्य तस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानं (२) प्राप्यते । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि स्थानान्यन्तरयित्वाऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य सर्वविरतस्य जघन्यप्रतिपातस्थानं (३) प्राप्यते, यतो मिथ्यात्वाऽभिमुखस्य सर्वविरतस्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानतोऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानमनन्तगुणम् । अत्र यद्यपि मिथ्यात्वाऽभिमुखस्योत्कृष्टस्थानं षट्स्थानकस्याऽनन्तगुणवृद्धितः पूर्ववर्तिस्थानं स्वीकृत्याऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य जघन्यस्थानकस्याऽनन्तगुणवृद्धस्थानत्वेन प्रतिपद्याऽन्तरेण विनाऽप्युपपत्तिर्भवति, तथाऽपि ग्रन्थाऽन्तरेष्वन्तरस्य प्रतिपादितत्वादत्राप्यन्तरमभिहितम् । एवं यथासंभवं सर्वत्रोहनीयम् ।

ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानान्यतिक्रम्याऽविरतसम्यक्त्वाऽभिमुखस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानं (४) प्राप्यते । ततः पूर्ववदसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानान्यन्तरयित्वादेशविरत्यभिमुखस्य संयतस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानं (५) लभ्यते । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि । षट्स्थानपतितानि स्थानान्यतिक्रम्य देशविरतस्याऽभिमुखस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानं (६) प्राप्यते । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा मिथ्यात्वत आगतस्य कर्मभूमिजस्य सर्वविरतस्य प्रथमसमये जघन्यमुत्पादकस्थानं (७) वक्तव्यम् । ततः प्रभृत्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि स्थानान्यतिक्रम्यऽनार्यभूमिजस्य 卐 मिथ्या-

卐 भूतपूर्वो मिथ्यादृष्टिः मिथ्यादृष्टिचरः 'भूतपूर्वे ष्चरट्' सिद्धहेम० (७ २।७८) इति ष्चरट् प्रत्ययः तस्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिचरस्य सर्वविरतस्य संयमग्रहणप्रथमसमये जघन्यमुत्पादकस्थानं (८) निश्चेतव्यम् । ततः प्रभृत्यसंख्येलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि स्थानानि गत्वा तस्यैव देशविरतिचरस्य संयमप्रथमसमय उत्कृष्टमुत्पादकस्थानं । (९) E लभ्यते ।

यद्वाऽनार्यभूमिजजन्तोर्जघन्योत्पादकस्थानतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि स्थानानि व्यतिक्रम्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सर्वविरतस्योत्कृष्टमुत्पादकस्थानम् 9A अवगन्तव्यम् । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि स्थानान्यन्तरयित्वाऽविरतसम्यक्त्वत आगतस्य सर्वविरतस्य जघन्यमुत्पादकस्थानं 9B संभवति । ततोऽसंख्येयलोकप्रमाणानि स्थानानि गत्वा तस्यैवोत्कृष्टमुत्पादकस्थानं 9C विवक्षणीयम् । ततोऽसंख्येयलोकप्रमाणानि स्थानान्यन्तरयित्वा देशविरतितः सर्वविरतिं प्रतिपद्यमानस्य जघन्यमुत्पादकस्थानं 9D संभवति । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि स्थानानि व्यतिक्रम्य देशविरतितः सर्वविरतिमधिगतस्याऽनार्यभूमिजस्योत्कृष्टमुत्पादकस्थानं 9E संभवति । एवमन्यानपि विशेषान् विबुधा स्वधिया प्रकटयन्तु, तथैव व्यतिरिक्तस्थानेष्वपि विशेषान् बहुश्रुताः कलयन्तु । तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति ।

तत आरभ्याऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि षट्स्थानानि गत्वाऽऽर्यभूमिजस्य देशविरतितः सर्वविरतिं प्रतिपन्नस्य सर्वविरतस्य तत्प्रथमसमये विद्यमानमुत्कृष्टमुत्पादकस्थानम् १० उच्यते । एतान्यार्यभूमिजस्य जघन्यस्थानात्परमुत्कृष्टस्थानपर्यन्तविद्यमानानि सर्वाण्यप्यार्यभूमिजस्य मध्यमोत्पादकस्थानान्युच्यन्ते, तानि च यथायोग्यमार्यऽनार्यदेशजस्य मिथ्यात्वत आगतस्य वाऽविरतसम्यक्त्वतः सर्वविरतिं प्रतिपन्नस्य वा देशविरतितः सर्वविरतिमधिगतस्य वा तदनुरूपविशुद्ध्या सर्वविरतिं प्रतिपद्यमानस्य संभवन्ति । आर्यखण्डमनुष्यस्योत्कृष्टोत्पादकस्थानादसंख्येयलोकमात्राणि स्थानान्यन्तरयित्वा सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोर्जघन्यव्यतिरिक्तस्थानं १० A मिथ्यात्वात आगतस्य जीवस्य संयमग्रहणाऽप्रथमसमये प्राप्यते । ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानानि गत्वा परिहारविशुद्धिसंयमस्य जघन्यं संयमलब्धिस्थानं (११) प्राप्यते । तच्च परिहारविशुद्धितोऽनन्तरसमये सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमौ प्राप्स्यतः परिहारविशुद्धिसंयमस्य चरमसमये वर्तमानस्य जन्तोर्भवति । न चेदं लब्धिस्थानं परिहारविशुद्धितः परिभ्रश्यता जन्तुना, तर्हि परिहारविशुद्धिसंयमस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानं कथं नोच्यत इति वाच्यम् , अत्राऽविरतिं देशविरतिं वा प्रतिपत्स्यमानस्यैव प्रतिपातस्थानत्वेनेष्टत्वाद् व्रतभङ्गनिमित्तकसंक्लेशे सति प्रतिपातस्थानस्य विवक्षणादिति फलितार्थः । परिहारविशुद्धिसंयमस्य जघन्यलब्धिस्थानतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानानि गत्वा परिहारविशुद्धिसंयमस्योत्कृष्टलब्धिस्थानं (१२) निश्चेतव्यम् । ततः परमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमा-

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

णानि षट्स्थानानि गत्वा 卐 सामायिकच्छेदोपस्थापनीययोः संयमयोरुत्कृष्ट व्यतिरिक्तलब्धिस्थानं (१३) प्राप्यते । तच्चाऽनिवृत्तिकरणक्षपकस्य चरमसमये भवति । अत्र सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमजघन्यव्यतिरिक्तलब्धिस्थानात्परतस्तस्याऽनुत्कृष्टलब्धिस्थानात्परतस्याऽनुत्कृष्टलब्धिस्थानपर्यन्तं संभवन्ति लब्धिस्थानानि सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमयोर्मध्यमव्यतिरिक्तलब्धिस्थानान्यपि भवन्ति, सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयोत्कृष्टलब्धिस्थानादसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमात्राणि लब्धिस्थानान्यन्तरयित्वोपशमश्रेण्यामवरोहणेऽनिवृत्तिकरणाऽभिमुखस्य सूक्ष्मसंपरायस्य जघन्यं स्थानं (१४) तच्चरमसमये भवति । ततः परमन्तमुर्हूतंगताऽसंख्यातसमयमात्रस्थानानि गत्वा सूक्ष्मसंपरायक्षपकस्य चरमसमये सूक्ष्मसंपरायस्योत्कृष्टं लब्धिस्थानं (१५) वक्तव्यम् । सूक्ष्मसंपरायलब्धिस्थानानि च न षट्स्थानक्रमेण पतितानि, यतस्तत्र प्रतिसमयमनन्तगुणहीनमनन्तगुणवृद्धं वा लब्धिस्थानं प्राप्यते । उक्तं च **पञ्चनिर्ग्रन्थप्रकरणे**–**"परिहारेवि य एवं सुहुमो तिण्हं अणंतगुण अहिओ । हीणा अहिओ व तुल्लो ॥१॥"** इति । अत्राऽनन्तभागादिना वृद्धं हीनं वा नोक्तम्, अतोऽत्र लब्धिस्थानानि षट्स्थानक्रमेण न भवन्ति । किञ्च सूक्ष्मसंपरायसंयमस्य प्रत्येकसमय एकमेव लब्धिस्थानं भवति, तेनाऽन्तर्मुहूर्तकालस्य यावन्तस्समयास्तावन्ति लब्धिस्थानानि । एवं सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसम्बन्धिन्यनिवृत्तिकरणगतलब्धिस्थानान्यपि न षट्स्थानपतितानि तथा चाऽन्तर्मुहूर्तमात्राणि नाऽधिकानि । सूक्ष्मसंपरायोत्कृष्टलब्धिस्थानतोऽसंख्येयलोकाकाशमितान्यन्तरयित्वा यथाख्यातचारित्रस्याऽजघन्याऽनुत्कृष्टं लब्धिस्थानं (१६) प्राप्यते ।

व्याख्याप्रज्ञप्त्येकनवत्यधिकसप्तशततमसूत्रे कालद्वारे संयमस्थानानां प्रमाणमल्पबहुत्वं चोक्तम् तद्यथा–सामाइयसंजयस्स णं भंते केवइया संजमट्ठाणा पन्नत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा संजमट्ठाणा पन्नत्ता एवं जाव परिहारविसुद्धियस्स सुहुमसंपरायसंजयस्स पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जा अंतमुहुत्तिया संजमट्ठाणा पन्नत्ता । अहक्खायसंजयस्स पुच्छा गोयमा ? एगे अजहन्नमणुक्कोसए संजमट्ठाणे

卐 अत्र धवलाग्रन्थे परिहारविशुद्धिसंयमस्योत्कृष्टलब्धिस्थानादसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितानि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा यत्स्थानं प्राप्यते ततः प्रभृत्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि स्थानानि गत्वा सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयमयोरुत्कृष्टलब्धिस्थानमवाप्यत इत्युक्तम् । तथा च तद्ग्रन्थ–"परिहारविशुद्धिसंजदस्स जहण्णय संजमट्ठाणं छेदोवट्ठाणं संजमाभिमुहस्स अणंतगुणं बहूणि छट्ठाणाणि अंतरिय समुब्भवादो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं कुदो? असंखेज्जलोकमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो उवरि सामाइयछेदोवट्ठावणियाण उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुण कुदो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिय तत्तियमेत्ताणि चेव ट्ठाणाणि णिरंतरमुवरि गंतुप्पुप्पत्तीदो ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एएसिं णं भंते सामाइयछेदोवट्ठावणियपरिहारविसुद्धियसुहुमसंपरायअहक्खाय-संजयाण संजमट्ठाणाणं कयरे कयरे जाव विसेस हिया वा ? गोयमा ! सव्वथोवे अहक्खायसंजमस्स एगे अजहन्नमणुक्कोसए संजमट्ठाणे सुहुमसंपरायसंजयस्स अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा परिहारविसुद्धियसंजयस्स संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसंजयस्स एएसिं णं संजमट्ठाणा दोण्ह वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ।

प्रतिपादितो देशविरतिसर्वविरतिलाभः ।

संप्रत्यनन्तानुबन्धिविसंयोजना प्ररूप्यते । तत्र विसंयोजना "णि वेत्यास" सिद्धहेम (५।३।१११) भावे 'अन्'प्रत्ययस्ततः "आत्" सिद्धहेम (२।४।१८) इति 'आप्' प्रत्ययः, आत्मनः कर्मणश्च सर्वथा संयोगविघटनम् , अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य परिशाटनमिति यावद्, न चाऽनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनाऽभिधानं चारित्रमोहनीयोपशमनाऽभिधानेऽधिकृतेऽसंगतमिति वाच्यम् , यतो वेदकसम्यग्दृष्टिर्जीवोऽवश्यमनन्तानुबन्धिनः कषायान् विसंयोज्यैव चारित्रमोहनीयमुपशमयितुमारभते, नाऽन्यथा । अत्र केचिदाचार्या अनन्तानुबन्धिनः कषायानुपशमय्याऽपि चारित्रमोहनीयमुपशमयितुमारभन्त इति वदन्ति तत्स्वरूपं त्वग्रे वक्ष्यते । मूलकारास्त्वनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनैव मन्यन्ते, न पुनरुपशमना । एवं कषायप्राभृतचूर्णिकारा अप्यनन्तानुबन्धिनो विसंयोजनां स्वीकुर्वन्ति । अतो मूलकारो विसंयोजनां निजिगदिषुराह—

चउगइया पज्जत्ता तिन्नि वि संयोजणा विजोयंति ।
करणेहिं तिहिं सहिया नंतरकरणं उवसमो वा ॥३१॥

चातुर्गतिका पर्याप्ताः त्रयोऽपि संयोजनान् विसंयोजयन्ति ।
करणैस्त्रिभिः सहिताः नांतरकरणमुपशमो वा ॥३१॥ इति पदसंस्कारः ।

अनन्तानुबन्धिविसंयोजनायाः क आरम्भक इति चेद् ? उच्यते "चउगइया" इत्यादि, चातुर्गतिका नैरयिकतिर्यग्मनुष्यदेवा अष्टाविंशतिसत्कर्माणो वियोजयन्तीत्यनेनाऽन्वयः। कथंभूता चातुर्गतिका इत्याह– 'पज्जत्ता" त्ति पर्याप्ताः सर्वाभिराहारादिलक्षणपर्याप्तिभिः पर्याप्ताः त्रयोऽप्यविरतदेशविरतसर्वविरताः "संजोयणा" त्ति, संयोजनानन्तानुबन्धिनो विसंयोजयन्ति=विनाशयन्ति । तत्राऽविरतसम्यग्दृष्टयश्चातुर्गतिका देशविरतास्तिर्यङ्मनुष्या एव, सर्वविरतास्तु मनुष्या एव चतुर्थगुणस्थानकप्रभृतिसप्तमगुणस्थानकपर्यन्तवर्तिनो जीवा विसंयोजयितुमारभन्त इत्यर्थः, पुनः कथं भूताश्चातुर्गतिका अनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयन्तीत्याह–"करणेहिं तिहिं सहिया" त्ति, त्रिभिः करणैर्यथाप्रवृत्तकरणाऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाख्यैः सहिताः संयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्ते स्म समपूर्वको'धा'धातुः, ततो भूते क्तः "समस्तत्तहिते वा" (३।२।१३९) इति मकारस्य लोपः, सहिताः=युक्ताश्चातुर्गतिका यथाप्रवृत्तादिकरणत्रयपूर्वकमेव विसंयोजयन्तीत्यर्थः करणस्य पूर्वभूमिका प्रथमसम्यक्त्वोत्पादवज्ज्ञेया । तथाहि—प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या प्रवर्धमानः शुभलेश्यायां वर्तमानः संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तः परावर्तमानासु प्रकृतिषु शुभानां प्रकृतीनां बन्धकः, अन्तःसागरोपमकोटीकोटिलक्षणां स्थितिं बध्नंस्तामपि प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पल्योपमसंख्येयभागहीनाम्, शुभानां प्रकृतीनां चतुःस्थानकमशुभानां च द्विस्थानकमनुभागं बध्नाति, तत्राऽपि प्रतिसमयं शुभानामनन्तगुणवृद्धमशुभानां चाऽनन्तगुणहीनं बध्नातीत्यादिप्राग्भूमिकाऽत्रापि ज्ञातव्या, नवरं प्रकृतिबन्धादिषु विशेषः स्वत एव विमर्शनीयः। पूर्वभूमिकां व्यतिक्रम्य यथाप्रवृत्तकरणमारभते। तत्करणस्य वक्तव्यता प्रथमौपशमिकसम्यक्त्ववज्ज्ञातव्या। ततोऽपूर्वकरणं प्रविशन्नेव 卐 तत्प्रथमसमयादेवाऽपूर्वस्थितिघातरसघातस्थितिबन्धान् गुणश्रेणिमनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य च गुणसङ्क्रममारभते। तत्र गुणश्रेणिनिक्षेपः सर्वविरतिगुणश्रेणिनिक्षेपतः सङ्ख्येयगुणहीनः। सर्वविरतिगुणश्रेणिसत्काकृष्यमाणदलिकतः प्रतिसमयमसंख्येयगुणानि दलिकान्याकर्षन्ति संयता अनन्तानुबन्धिनां विसंयोजकाः। तथा चोक्तं कर्मप्रकृतौ तच्चूर्णौ च—

सम्मत्तुप्पत्तिसावयविरए संजोयणा विणासे य ।
दंसणमोहक्खवगे कसायउवसामगुवसंते ॥ १ ॥
खवगे य खीणमोहे जिणे य दुविहे असंखगुणसेढी ।
उदओ तव्विवरीओ कालो संखेज्जगुणसेढी ॥२॥

चूर्णिः—"सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढी सावयगुणसेढी संजमगुणसेढी य अणंताणबंधिविसंजोयणागुणसेढी दंसणमोहक्खवगगुणसेढी चरित्तमोहउवसामगगुणसेढी खवगगुणसेढी खीणमोहस्स गुणसेढी, सजोगिकेवलीगुणसेढी, अजोगिकेवलीगुणसेढी । 'असंखगुणसेढी उदओ' त्ति, सव्वत्थोवं सम्मत्तुप्पायसेढीते दलियं सावगगुणसेढीते असंखेज्जगुणं जाव सजोगिकेवलीगुणसेढीतो अजोगिकेवलीगुणसेढीते दलियं असंखेज्जगुणं तम्हा उदयं पि पडुच्च असंखेज्जगुणा एव । 'तव्विवरीओ कालो संखेज्जगुणसेढी' त्ति-कालं पडुच्च विवरीयातो । सव्वत्थोवो अजोगिकेवलीगुणसेढीकालो, सजोगिकेवलीगुणसेढीकालो संखेज्जगुणो ।

टिप्पणी—卐 लब्धिसारे त्वत्र स्थितिखण्ड प्रथमौपशमिकसम्यक्त्ववत् संख्येयगुणं तथा रसघातश्चाऽनन्तगुण उक्तः, तद्यथा— अनुभागकण्डकायामः पूर्वस्मादनन्तगुणः । स्थितिकण्डकायामश्च पूर्वस्मात्संख्येयगुणः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एवं जाव सम्मत्तुप्पत्तिगुणसेढीकालो संखेज्जगुणो । ठवणा...एसा पढमा, सेसातो एत्तो उच्चत्तेण (उच्चत्वेन) संखेज्जगुणहीणातो संखेजगुणहीणातो उवरि पोहत्तेण (पृथुत्वेन) विसालातो विसालयराओ कायव्वाओ, जाव अजोगिस्स । ठवणा...। कहं असंखेज्जगुणं दलियं ? भण्णइ...समत्त उप्पाएतो मिच्छदिट्ठि सो कम्मदव्व थोव खवेति, संमत्तनिमित्तं (संमत्त) पडिवन्नस ततो असंखेज्जगुणा गुणसेढी भवति । ततो देसविरयस्स गुणसेढी असंखेज्जगुणा देसोवरमत्तातो, ततो संजयगुणसेढी असंखेज्जगुणा सव्वोवरमत्तातो, अणंताणुबंधिविसंजोयणागुणसेढि असंखेज्जगुणा, हेट्ठिल्लतिण्हं अणंताणुबंधिणो खवेंताणं तत्थ संजयपड्डुच्च तिकरणसहिओ अणंताणुबंधिणो खवेत्ति त्ति काउं" इति । गुणश्रेणिनिक्षेपश्चाऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धाद्वयात्किञ्चिदधिकस्तेन प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वस्याऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धाद्वयात्कालमधिकृत्याऽनन्तानुबन्धिविसंयोजनाया अपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणकालद्वयं संख्येयगुणहीनम् , सम्यक्त्वोत्पादगुणश्रेणिनिक्षेपतोऽनन्तानुबन्धिविसंयोजना गुणश्रेणेः संख्येयगुणहीनत्वात् , उक्तञ्च **कषायप्राभृतचूर्णौ स्थितिविभक्त्यल्पबहुत्वाऽधिकारे–"अणंताणुबंधिविसंजोए तस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा दंसणमोहणीयउवसामयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा ।"** इति ।

अत्र गुणश्रेणिनिक्षेपो वेदनतः क्षीणेषु समयेषु सत्सु शेष शेषसमयप्रमाणो भवति, प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वगुणश्रेणिनिक्षेपवत् न पुनरुपर्युपरि वर्धत इत्यर्थः । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ-"अणंताणुबंधीणं विणासणाए जहा पढमसंमत्तं उपादेंतस्स तिण्ह विकरणाण लक्खणं भणियं तहा अणंताणुबंधिविणासणे वि"** इति । **तथा** चाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादेव गुणसङ्क्रमोऽपि प्रारभ्यते 卐 स चाऽनन्तानुबन्धिनामेव भवति । तद्यथा अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽनन्तानुबन्धिनां दलिकं बध्यमानशेषकषायरूपपरप्रकृतौ स्तोकं संक्रमयति, उपलक्षणमेतत्कषायग्रहणेन नोकषायस्याऽपि ग्रहणं कर्तव्यम् । ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं सङ्क्रमयति, एवं तृतीयादिसमयेषु ज्ञातव्यम् । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"णवरि अपुव्वकरणस्स पढमसमते अणंतानुबंधीणं गुणसंकमो आढवेत्ति"** इति । एवं **कषायप्राभृतचूर्णावपि–"अपुव्वकरणेऽत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी**

टि० 卐 उक्तञ्च जयधवलाकारैः "गुणसंकमो पुण अणंताणुबंधीणमेव णाण्णेसिं कम्माणमिदि वत्तव्वं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य गुणसंकमो वि" इति । तथैव पञ्चसङ्ग्रहोपशमनाऽधिकारे–"उवरिमगे करणदुगे दलिय गुणसंकमेण तेसिं तु नासेइ" इत्यादि, एवमेव मूलटीकायामपि केवलगुणसङ्क्रमः प्ररूपितस्तद्यथा–"उपरिमे करणद्विके निवृत्त्यनिवृत्तिकरणाख्ये दलिकं कर्मपरमाण्वात्मकं गुणसङ्क्रमेण प्रागभिहितेन तेषामनन्तानुबन्धिनां नाशयति शेषकषायत्वेन स्थापयति ।"इति । श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वरैस्तु पञ्चसङ्ग्रहस्य टीकायामुद्वलनाऽनुविद्धगुणसङ्क्रम उक्तः, तथा च तद्ग्रन्थः "उपरितने करणद्विकेऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाख्ये तेषामनन्तानुबन्धिनां दलिकं परमाण्वात्मकं गुणसङ्क्रमेणोद्वलनासङ्क्रमानुविद्धेन नाशयति शेषकषायत्वेन स्थापयति" इति । किञ्च कर्मप्रकृतावपि यासु प्रकृतिषूद्वलनासङ्क्रमः प्रवर्तते, तास्वनन्तानुबन्धिचतुष्कमपि प्ररूयातम्, तथा च तद्ग्रन्थः- छत्तीसाए णियगे संजोयणदिट्ठिजुअले य ॥६७॥ इति एवं पञ्चसङ्ग्रहेऽपि अक्षराणि त्वेवम्–सम्माऽणमिच्छमीसे छत्तीसऽनियट्टि जा माया ।७४।" इति ।

अतो विसंयोजनायामुद्वलनासङ्क्रमेणाऽपि भाव्यमेवाऽन्यत्राऽनन्तानुबन्धिनामुद्वलनाऽसंभवात् । अत एव श्रीमन्मलयगिरिपादैरुद्वलनानुविद्धगुणसङ्क्रम उक्तः । केवलमुद्वलनासङ्क्रमेण ह्याहारकसप्तकादीनां निर्मूलीकरणवत्पल्योपमाऽसंख्येयतमभागरूपकालो न गच्छेत्, किन्त्वनन्तानुबन्धिनोऽन्तर्मुहूर्तकालेन सर्वथा विसंयोजयन्त इत्येतद् विशेषतोऽवसेयम्, किञ्चोद्वलनासङ्क्रमेण तत्तत्खण्डाऽपेक्षया प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण दलिकान्युत्कीर्य प्रथमसमये परस्थाने स्तोकं स्वस्थाने च ततोऽसंख्येयगुणम्, द्वितीयादिसमयेषु स्वस्थानेऽसंख्येयगुणं परस्थाने च विशेषहीनक्रमेण दलं प्रक्षिपति, अत्र तु गुणसङ्क्रमस्याऽपि प्रवर्तमानत्वात्परस्थानेऽपि प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण दलनिक्षेपो भवति, इति युक्तियुक्त उद्वलनाऽनुविद्धगुणसङ्क्रमः । यद् वा प्रथमस्थितिखण्डाद् द्वितीयस्थितिखण्डं विशेषहीनमेवमुत्तरोत्तरखण्डानि विशेषहीनक्रमेण नेतव्यानि यावत्पल्योपमप्रमाणं स्थितिसत्कर्म भवतीति विशेषहीनक्रमेण स्थित्यपेक्षयोद्वलनासङ्क्रमस्तथा प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण परप्रकृतौ दलिकनिक्षेपमाश्रित्य गुणसङ्क्रम इत्युद्वलनानुविद्धगुणसङ्क्रम उच्यते ।

उक्तश्च मिथ्यात्वादिकौशिकभास्करैरुपाध्यायप्रवरैः–"नवरमिहाऽपूर्वकरणे प्रथमसमयादेवारभ्य गुणसङ्क्रमोऽपि वक्तव्यः तथाहि–अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽनन्तानुबन्धिनां दलिकं शेषकषायरूपपरप्रकृतौ स्तोकं संक्रमयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, एवं तावद्वाच्यं यावदपूर्वकरणचरमसमयः । एष च गुणसंक्रमः, एष च प्रथमस्थितिखण्डस्य स्थि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यपेक्षया बृहत्तरस्य द्वितीयादिस्थितिखण्डानां च विशेषविशेषहीनानां (स्थिति-खण्डानां) यद्घातनं तेन निष्पन्नो य उद्वलनासंक्रमस्तदनुविद्धो द्रष्टव्यः।" इत्येवमपूर्वकरणे सहस्रैः स्थितिघातैः स्थितिमपचित्याऽनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयेऽनन्तानुबन्धि-चतुष्कस्य स्थितिरन्तःसागरोपमकोटिप्रमाणा भवति, सागरोपमलक्षणपृथक्त्वप्रमाणा भवतीति यावत्, शेपकर्मणां चाऽन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणा स्थितिर्भवति। अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयादेवाऽनन्तानुबन्धिनो देशोपशमनानिद्धत्तिनिकाचनाकरणानि व्यवच्छिद्यन्ते।

इदानीमनन्तानुबन्धिनां देशोपशमितं निधत्तं निकाचितं च दलं सत्कर्मतः सर्वात्मनाऽपगच्छति, सत्तायामनन्तानुबन्धिनां सर्वदलिकमदेशोपशमितमनिद्धत्तमनिकाचितं विद्यते तथाऽतः प्रभृत्यनन्तानुबन्धिनां दलिकेषु देशोपशमनानिद्धत्तिनिकाचनाकरणानि न प्रवर्तन्त इत्यर्थः। अत्राऽपि स्थितिघातस्थितिबन्धरसघातगुणश्रेण्युद्वलनानुविद्धगुणसङ्क्रमाः पूर्ववत्प्रवर्तन्ते। "नंतरकरणं उवसमो वा" इत्यादिनाऽन्तरकरणमुपशमो वा, अत्राऽनिवृत्तिकरणेऽन्तरकरणं न भवति नवाऽनन्तानुबन्धिन उपशमो भवति, कुत इति चेद्? उच्यते, नाऽत्राऽनन्तानुबन्धिनामुपशमनाऽधिक्रियतेऽत उपशमनाऽनुभावाऽक्षयस्य वाऽधिकृतत्वाच्चाऽन्तरकरणं न क्रियते, ● यत्रोपशमनाया अनधिकारः क्षपकश्रेणिवर्जक्षयस्य चाऽधिकारः, तत्राऽन्तरकरणं न क्रियते। क्षपकश्रेण्यां त्वन्तरकरणस्य प्रवचने प्रतिपादितत्वेन तत्राऽन्तरकरणेऽविरोधः। ततः सहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेष्वनिवृत्तिकरणस्यैकसंख्येयतमभागेऽवशिष्टेऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्योत्कृष्टस्थितिबन्धेन तुल्यं सागरोपमसहस्रप्रमाणमनन्तानुबन्धिनः स्थितिसत्कर्म भवति। असंज्ञिपञ्चेन्द्रियसमस्थितिसत्कर्मतः स्थितिखण्डसहस्रपृथक्त्वे गते सति चतुरिन्द्रियाणां स्थितिबन्धेन तुल्यं स्थितिसत्कर्म भवति। ततः स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु त्रीन्द्रियस्थितिबन्धेन तुल्यं स्थितिसत्कर्म भवति। ततः स्थिति-खण्डसहस्रेषु गतेषु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धेन समाना स्थितिसत्ता भवति। ततः स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वेकेन्द्रियस्थितिबन्धेन तुल्यं स्थितिसत्कर्म भवति। ततः स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वनन्तानुबन्धिनः स्थितिसत्ता पल्योपमप्रमाणा भवति।

अतः परं प्रतिस्थितिघातं सत्तागतस्थितेः संख्येयभागान् कृत्वैकसंख्येयतमभागं मुक्त्वा शेषान् सर्वान् संख्येयान् भागान् विनाशयति। प्राक्तु पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणां स्थितिं घातयति स्म। ततो भूयोऽन्यस्थितिघाते प्राङ्मुक्तस्यैकसंख्येयभागं मुक्त्वा शेषान् संख्येयान्

टिप्पणी ● उक्तं च जयधवलाकारैः-"दंसणचरित्तमोहोवसमणाए चरित्तमोहक्खवणाए च अंतरकरणस्स संभवो णाण्णत्थेति णियमदंसणादो।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागान् विनाशयति, एवं स्थितिघाताः सहस्रशो व्रजन्ति । ततो 卐 दूरापकृष्टिसंज्ञं सत्तास्थानं विसंयोजकेन प्राप्यते । इतः प्रभृति प्रत्येकस्थितिघातेन स्थितिसत्कर्मणोऽसंख्येया बहुभागा नाश्यन्ते, एकभागश्च सत्तायामवतिष्ठते । एवमनेकसहस्रस्थितिघातेषु गतेष्वेकाऽऽवलिकामात्रा स्थितिरवशिष्यते, यत उदयावलिका सकलकरणाऽयोग्या । शेषाऽनन्तानुबन्धिनः सर्वाऽपि स्थितिर्विनाश्यते, अवशिष्टाऽऽवलिकामपि स्तिबुकसङ्क्रमेण वेद्यमानकषाये सङ्क्रमय्य सत्कर्मतोऽनन्तानुबन्धिनः सर्वथा विनाशयति, प्रदेशोदयेनाऽनुभूय सर्वथा निर्लेपो भवतीत्यर्थः, ततो विसंयोजकेन मोहनीयस्य चतुर्विंशतिप्रकृत्यात्मकसत्तास्थानं प्राप्यते ; ततोऽनन्तरमन्तर्मुहूर्तं यावच्छेषकर्मणां स्थितिघातादयो भवन्ति । ततः स्वभावस्थो भवति, स्वभावस्थे वर्तमानस्य स्थितिघातादयो न सन्ति । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**—**"ततो अणंताणुबंधिविसंजोतितो अन्तोमुहुत्तेण ठितिघातरसघायगुणसेढी एतेहि रहितो सभावत्थो होति"** इति । एवं **पञ्चसङ्ग्रहोपशमना**ऽधिकारेऽपि प्रतिपादितम्—**"नासेई तओ पच्छा अंतमुहुत्ता सभावत्थो"** (गाथा ३५) इति । नन्वत्राऽनिवृत्तिकरणं कदा समाप्तिमेतीति चेद् ? उच्यते, **कर्मप्रकृतिटीकायाम्**—**"अनिवृत्तिकरणे च प्रविष्टः सन् प्रागुक्तरूपेणोद्वलनासङ्क्रमेन निरवशेषान्विनाशयति, किन्त्वधस्तादावलिकामात्रं मुञ्चति । तदपि च स्तिबुकसङ्क्रमेण वेद्यमानासु प्रकृतिषु संक्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तात्परतोऽनिवृत्तिकरणपर्यवसाने शेषकर्मणां स्थितिघातरसघातगुणश्रेणयो न भवन्ति किन्तु स्वभावस्थ एव भवति"** इत्याहुर्वृत्तिकाराः **श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वरादयः** ।

अत्र वयं ब्रूमहे—उपर्युक्तस्य शब्दार्थौ द्वौ भवितुमर्हतः । अनिवृत्तिकरणाऽन्ते शेषकर्मणां स्थितिघातादीनां विच्छेदस्तत्स्थितिघातादयश्चाऽनन्तानुबन्धिन आवलिकानिःशेषतोऽन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते व्यवच्छिद्यन्ते, तच्छब्देन सङ्क्रमणाऽऽवलिकानिशेषस्य परामर्शात्, इत्येकोऽर्थः, द्वितीयस्तु यदि तच्छब्देनाऽऽवलिकाशेषः परामृश्येत, तह्यनन्तानुबन्धिचतुष्कस्याऽऽवलिकाशेषतः प्रभृत्यन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते स्थितिघातादयो व्यवच्छिद्यन्त इति भावार्थो लभ्यत इति । नन्वर्थद्वयेऽपि प्रश्न उत्तिष्ठति, यदुपरिव्याख्यातः शेषकर्मणां स्थितिघातादीनां विच्छेदकालोऽनिवृत्तिकरणस्य पर्यवसानं कथं भवितुमर्हतीति । तथाहि—अनन्तानुबन्धिनः सर्वस्थितिसत्कर्मोद्वलनाऽनुविद्धगुणसङ्क्रमेण व्यनाङ्क्षीत्, नवरमावलिकामात्रा स्थितिरवशिष्टा

टि० 卐 यस्मिन्स्थितिस्थानभवनात् स्थितिघातेन सत्तागतस्थित्यसंख्येयबहुभागा घात्यन्ते तत्सत्तास्थानं दूरापकृष्टिसंज्ञमिति विशेषस्तु दर्शनत्रिकक्षपणाऽधिकारे व्याख्यास्यामः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवति, यद्वाऽऽवलिका प्रमाणस्थितिरपि स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमय्य निःसत्ताका क्रियते। ततः परमन्तर्मुहूर्तं यावदनिवृत्तिकरणं कथमवशिष्यते? एवं स्वीक्रियमाणे ह्यनिवृत्तिकरण एव गुणप्राप्तिरभ्युपगमः स्यात्, न चैतादृग् गुणप्राप्तिरन्यत्र प्रतिपादिता दृष्टा, तद्यत्र कथं स्वीक्रियते? तथा चाऽनन्तानुबन्धिविनाशतोऽन्तर्मुहूर्ते गते शेषकर्मणां स्थितिघातादयो निवर्तन्त इति चूर्णिकाराणामभिप्रायः, न हि तैरुक्ताऽनिवृत्तिकरणपर्यवसाने शेषकर्मणां स्थितिघातादीनां निवृत्तिरिति चेद्? उच्यते–श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वराणामक्षराणि सङ्गमयितुकामैः सति शब्दोऽध्याहार्यते तच्छब्देनाऽऽवलिकाशेषः परामृश्यते। तेनाऽयमर्थः–तत आवलिकाशेषतोऽनन्तरमनिवृत्तिकरणपर्यवसाने सत्यन्तर्मुहूर्तान्तरतः शेषकर्मणां स्थितिघातादयो व्यवच्छिद्यन्ते। ननु स्थितिघातादीनां निश्चयो जातः, तथाऽपि विमुच्यमानोदयाऽऽवलिकाऽनिवृत्तिकरणसम्बन्धिनी भवत्याहोस्विन्नेतिचेद्? अत्रोच्यते, अनिवृत्तिकरणे च वर्तमानः सन् गुणसङ्क्रमानुविद्धेनोद्वलनासङ्क्रमेण निरवशेषान्विनाशयति, किन्त्वधस्तादावलिकामात्रव्यतिक्रान्ते स्थितिघातादयो व्यवच्छिद्यन्त इत्यर्थः, अनिवृत्तिकरणस्य चरमसमये चाऽऽवलिकावर्जं सर्वमनन्तानुबन्धिनां सत्कर्म विनाशयति, प्रतिपादितश्चाऽनन्तानुबन्धिनामावलिकावर्जसर्वस्थितिविनाश उपाध्यायपादैरपि, तथा च तद्ग्रन्थः–**अनिवृत्तिकरणे च वर्तमानः सन् गुणसङ्क्रमानुविद्धेनोद्वलनासङ्क्रमेण निरवशेषान् विनाशयति किन्त्वधस्तादावलिकामात्रं मुञ्चति**" इति 卐 एतैरक्षरैरपि ज्ञायते आवलिकामात्रस्थितिरनिवृत्तिकरणे न विनाश्यते, चरमसमय आवलिकामात्रवर्जं सर्वस्थितौ घातितायामनन्तरसमयेऽनिवृत्तिकरणं व्यवच्छिन्नं भातीत्यर्थः। अनिवृत्तिकरणतः परमावलिकामात्रस्थितिं स्तिबुकसङ्क्रमेण निःसत्त्वां करोति। तत्त्व पुनरत्रस्थानद्वयेऽपि बहुश्रुता विदन्ति।

तदेवमुक्ताऽनन्तानुबन्धिनां विसंयोजना।

अत्र केचिदाचार्या अनन्तानुबन्धिनामुपशमनामप्यभ्युपगच्छन्ति तन्मतेनोपशमनाविधिरुच्यते। अविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताऽप्रमत्तेष्वन्यतमोऽमनुष्योऽन्यतमयोगे वर्तमानस्तेजःपद्मशुक्ललेश्यास्वन्यतमलेश्यया युक्तः साकारोपयोगेनोपयुक्तोऽन्तःसागरोपमकोटाकोटीस्थितिसत्कर्मा करणकालात्पूर्वमन्तर्मुहूर्तं यावत्पूर्ववत्परावर्तमानाः प्रकृतीः शुभा एव बध्नाति, तथा

卐 उक्तञ्च धवलाटीकायामपि–"तदो चरिमट्ठिदिखंडयचलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागायामं अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कीरणकालेन अदिक्कंतो अणियट्टिकरणचरिमसमए उदयावलिबाहिरसव्वट्ठिदिसंतकम्मं परसरूवेण संकामिय अंतोमुहुत्तकाले अदिक्कंते दंसणमोहणीयक्खवणं पट्ठवेदि।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषामनुभागं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्याचतुःस्थानकं बध्नाति, अशुभानां च प्रकृतीनां द्विस्थानकं प्रतिसमयमनन्तगुणहीनं बध्नाति। स्थितिबन्धश्च पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तराऽन्तमुहूर्तकालेन पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति, एवमन्तमुहूर्ते गते यथाप्रवृत्तकरणं करोति तत्स्वरूपं च पूर्ववज्ज्ञातव्यम्। तद्यथा–अनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या प्रवर्धमानो भवति। अध्यवसायस्थानानि च नानाजीवाऽपेक्षया प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि षट्स्थानपतितानि भवन्ति। पूर्वपूर्वसमयतश्चोत्तरोत्तरसमये विशेषाऽधिकानि। एवं विशोध्यादिसर्वं प्रथमसम्यक्त्वोपादवज्ज्ञेयम्। यथाप्रवृत्तकरणं समाप्याऽपूर्वकरणं प्रविशति। अपूर्वकरणं च प्रविशन् पञ्चाऽपूर्वपदार्थाः प्रारभ्यन्ते तद्यथा–स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिगु णसङ्क्रमोऽभिनवस्थितिबन्धश्च। तत्र स्थितिघातादीनां स्वरूपं पूर्ववज्ज्ञेयम्। स्थितिघातसहस्रैरपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत्स्थितिसत्कर्माऽऽसीत्तस्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं जातम्। अनेकसहस्रै रसघातैश्चाऽनुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनं कृतम्।

तत्र गुणश्रेणिर्नामाऽन्तमुहूर्तप्रमाणानां स्थितिस्थानकानामुपरि याः स्थितयो वर्तन्ते, तन्मध्याद्दलिकं गृहीत्वाऽनन्तानुबन्ध्याद्यनुदयवत्प्रकृतीनामुदयावलिकाया उपरितनीष्वन्तमुहूर्तप्रमाणासु स्थितिषु प्रतिसमयमसंख्येयगुणनया निक्षिपति, उदयवत्प्रकृतीनां चोदयसमयादारभ्याऽन्तमुहूर्तप्रमाणस्थितिषु निक्षेपः संभवति। तथा च दलिकग्रहणमपि पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणं भवति, गुणश्रेणिनिक्षेपोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणकालाभ्यां मनागतिरिक्तस्तथा करणद्वयसमयेष्वनुभवतः क्रमशः क्षीणेषु समयेषु गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपः शेषे शेषे भवति. न चोपर्युपरि वर्धेत इत्यादिसर्वस्य प्रागभिहितात्वन्न पुनर्विस्तरतोऽभिधीयते।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य गुणसङ्क्रमेणाऽनन्तानुबन्धिनां दलानि परप्रकृतिषु सङ्क्रमयति। तत्राऽयं क्रमो वाच्यः, प्रथमसमये स्तोकं दलं संक्रमयति, द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्। एवं तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमसमयः। अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽभिनवस्थितिबन्धः प्रारभ्यते स च पूर्वपूर्वतः पल्योपमसंख्येयभागहीनो भवति। स्थितिघातरसघातौ च युगपदारभ्येते युगपदेव निष्ठां यातः। एवमेते पञ्च पदार्था अपूर्वकरणे प्रवर्तन्ते।

अपूर्वकरणकालमतिक्रम्याऽनिवृत्तिकरणं करोति, तस्याऽध्यवसायविशोध्यादीनां सर्ववक्तव्यता प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वोत्पादवज्ज्ञेया। अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य पूर्वोक्ताः पञ्च पदार्था अत्राऽपि प्रवर्तन्ते, तथाऽनिवृत्तिकरणस्य संख्येयेषु बहुभागेषु गतेष्वेकस्मिंश्च संख्येयतमे भागेऽवतिष्ठमानेऽनन्तानुबन्धिनामधस्तादावलिकामात्रं मुक्त्वाऽन्तमुहूर्तमात्रमन्तरकरणं करोति, कर्तुमारभत इत्यर्थः। आवलिकाया उपरितनाऽन्तमुहूर्तप्रमाणस्थितेर्दलान्युत्कीर्य परप्रकृतिषु बध्यमानासु प्रक्षिपति। आवलिकायाः समये वेदिते स्थितिबन्धाद्धा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणाऽन्तर्मुहूर्तं यावदावलिकोपर्युपरि वर्धते, उपरितना निषेकाः क्रमेणोदयावलिकायां प्रविशन्तीत्यर्थः। स्थितिबन्धाद्धारूपाऽन्तर्मुहूर्तकालेनाऽन्तरकरणं भवति, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणा स्थितिरनन्तानुबन्धिदलिकाऽभाववती जायत इत्यर्थः। प्रथमस्थितिश्चावलिकाप्रमाणा भवति, अन्तरकरणे कृते सत्यनन्तरसमयादनन्तानुबन्धिनामुपरितनलक्षणद्वितीयस्थितिगतं दलिकमुपशमयितुमारभते तथाऽऽवलिकां स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमयति।

उपशमक्रमश्चाऽयम्–प्रथमसमये स्तोकमुपशमयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्। ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, एवं यावदन्तर्मुहूर्तम्, एतावता च कालेन साकल्येनाऽनन्तानुबन्धिनः सर्वथोपशमिता भवन्ति। नन्वन्तरकरणक्रियासमाप्तिकालेऽवशिष्यमाणाऽनन्तानुबन्धिन आवलिकाप्रमाणा प्रथमस्थितिर्भवति, उपशमना त्वन्तर्मुहूर्तं यावत् प्रवर्तते, तर्ह्यनिवृत्तिकरणं कदा पर्यवसितं भवतीति चेद्? उच्यते, अनन्तानुबन्धिनामुपशमनक्रियायां पूर्णायामनिवृत्तिकरणं परिसमाप्तं भवतीति संभाव्यते। न च स्तिबुकसङ्क्रमेण प्रथमस्थित्यां क्रमश आवलिकायां सङ्क्रमितायामनन्तानुबन्धिप्रथमस्थित्यभावादन्तरकरणे कृतेऽनन्तरसमयादन्तर्मुहूर्तं यावदनन्तानुबन्धिनामुपशमना कथं भवेदिति वाच्यम्, प्रथमस्थित्यभावेऽपि तदुपशमनाविरोधाभावात् पुरुषवेदोदयारूढस्य नपुंसकवेदोपशमनावद्। उपशमिता नाम यथा रेणुनिकरः सलिलबिन्दुनिवहैरभिषिच्याऽभिषिच्य द्रुघणादिभिर्निष्कुट्टितो निस्पन्दो भवति, तथा कर्मरेणुनिकरोऽपि विशोधिसलिलप्रवाहेण परिषिच्य परिषिच्याऽनिवृत्तिकरणरूपद्रुघणनिष्कुट्टितः सङ्क्रमणोदीरणानिद्धत्तनिकाचनाकरणानामयोग्यो भवति।

इति भणिताऽनन्तानुबन्धिनामुपशमना।

॥ क्षायिकसम्यक्त्वप्रतिपत्तिः ॥

अनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनां विस्तरतोऽभिधाय संप्रति क्षायिकसम्यक्त्वप्रतिपत्तिं प्रतिपिपादयिषुराह–

दंसणमोहे वि तहा कयकरणद्धाइ पच्छिमे होइ ।
जिणकालगो मणुस्सो पट्ठवगो अट्ठवासुप्पिं ॥३२॥

दर्शनमोहेऽपि तथा कृतकरणाद्धायां पश्चिमे भवति ।
जिनकालको मनुष्यः प्रस्थापको वर्षाष्टकस्योपरि ॥३२॥ इति पदसंस्कारः ।

ननु कः क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्तये प्रभवतीति चेद् ? उच्यते, इह दर्शनत्रिकस्य क्षपणाय **'पट्ठवगे'** त्ति प्रस्थापकः, प्रस्थापयतीति प्रस्थापकः **"णकतृचौ"** सिद्धहेम (५।१।४८) कर्तरि 'णक' प्रत्ययः, आरम्भक इत्यर्थः **"जिणकालगो"** त्ति, जिनकालको=जिनानां तीर्थकृतां कालः जिनकालः; यस्मिन्काले जिना उत्पद्यन्ते, स जिनकाल इत्यर्थः, स चाऽवसर्पिण्यास्तृतीयारकपर्यन्तभागश्चतुर्थारकश्चोत्सर्पिण्याः पुनः प्रथमभागः, तत्र काले य उत्पद्यते, स जिनकालको जिनकालसंभवीत्यर्थः, जिनकालसंभवी मनुष्योऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतसर्वविरतेष्वन्यतमोऽष्टवर्षाणामुपरि वर्तमानो वज्रर्षभनाराचसंहननश्च भवति, स क्षपयति । तथा चोक्तं श्री **पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकयाम्–"जिणकालोअं त्ति, जिनविहरेणकालसंभवः" अष्टवर्षाणामुपरि वर्तमानो वज्रर्षभनाराचसंहननश्च भवति** । इति ।

卐 इदमत्रावधेयम्–देवसंहृतो देवकुर्वादौ सुषमसुषमादिकालप्रतिभागे जिनकालोत्पन्नो दर्शनत्रिकं क्षपयति। **कषायप्राभृतचूर्णौ** प्रस्थापकस्य शुभलेश्यात्रिकेऽन्यतरा लेश्या प्रोक्ता तथा च तद्ग्रन्थः–**"खवणाए पट्ठवगो जहण्णगो तेउलेस्साए"**। **कर्मप्रकृतिचूर्णौ** तु कृतकरणवेदनाद्धायां लेश्यापरावृत्तिं दर्शयद्भिः **श्रीमच्चूर्णिकारैरिदमुक्तम्–"पुव्वं सुक्कलेसा आसि संपयं अन्नयराए वि होज्जा"** । अत्र यदि पूर्वशब्देनाऽव्यवहितपूर्वं गृह्येत, तर्हि निवृत्तिकरणाद्धायां शुक्ललेश्या संभवेत् ततोऽर्वाग् पूर्वभूमिकायां यथाप्रवृत्तकरणादौ च प्रस्थापकस्य लेश्यात्रयमपि संभवेत् । यदि पुनः पूर्वशब्दस्य व्यवहितपूर्वं गृह्येत, तर्हि यथाप्रवृत्तकरणतोऽर्वागपि प्रस्थापकस्य शुक्ललेश्यैव स्यात् । तत्त्वं त्वतिशयज्ञानिनो विदन्ति ।

टि० 卐 जयधवलाकारास्तीर्थकरगणधरश्रुतकेवलिनां पादमूले दर्शनत्रिकक्षपणायाः प्रस्थापको भवतीत्याहुः तथा च तद्ग्रन्थः "कम्मभूमिजादो वि तित्थयरकेवलिसुदकेवलीणं पादमूले दंसणमोहणीयं खवेदुमाढवेइ णाण्णत्थ ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"दंसणमोहेऽपि" इत्यादि, दर्शनमोहेऽपि मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वमोहनीयलक्षणेऽपि क्षपणा तथा यथा प्रागनन्तानुबन्धिनां विसंयोजना प्रोक्ता, तथैवेत्यर्थः। सामान्येनाऽतिदिष्टे विशेष इहाऽभिधीयते। इह दर्शनत्रिकं चिक्षिपयिषुः प्रथमं वेदकसम्यग्दृष्टिरनन्तानुबन्धिचतुष्कं पूर्ववद् विनाशयति। ततोऽन्तमुहूर्ते गते कश्चिज्जन्तुर्दर्शनत्रिकक्षपणार्थमुद्यतः सन्नन्तमुहूर्तं यावदनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्यां प्रवर्धमानः करणत्रयं कर्तुमारमते, न सर्वेऽनन्तानुबन्धिनां विसंयोजकाः, यतः कतिचिज्जीवा अनन्तानुबन्धिचतुष्कं विसंयोज्य तत्रैव चतुर्थप्रभृतिगुणस्थानकेऽवतिष्ठन्ते, केचिद् मिश्रगुणस्थानकं प्राप्नोति, कियन्तश्चिज्जीवा मिथ्यात्वोदयाद् भूयोऽप्यनन्तानुबन्धिचतुष्कं बन्धद्वारेण प्राप्नुवन्ति तद्बीजस्य मिथ्यात्वस्याऽविनाशात्। केचिल्लब्धपराक्रमा अनन्तानुबन्धिचतुष्कं विसंयोज्याऽन्तमुहूर्तमवस्थाय दर्शनत्रिकं क्षपयितुमारमन्ते, तत्र दर्शनत्रिकक्षपणार्थं कश्चिदन्तमुहूर्तं यावत्पूर्वभूमिकायामनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्धिमनुभवन् करणत्रयं कर्तुं प्रवर्तते। तत्र प्रथमं यथाप्रवृत्तकरणम्, ततोऽपूर्वकरणम्, ततोऽनिवृत्तिकरणम्। तथाहि—यथाप्रवृत्तकरणे स्थितिघातं रसघातं गुणश्रेणिं गुणसंक्रमं च न करोति। केवलं पूर्वपूर्वेन उत्तरोत्तराऽन्तमुहूर्ते पल्योपमसंख्येयभागेन हीनं हीनतरमायुवर्जकर्मणां स्थितिबन्धं करोति। तथा प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या प्रवर्धमानो भवति, अध्यवसायस्थानविशोधीत्यादिकं सर्वं पूर्ववन्निश्चेतव्यं। ततोऽपूर्वकरणं प्रविशति। तत्राऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमये नानाजीवाऽपेक्षयैकजीवतोऽपरजीवस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं तुल्यं विशेषाऽधिकं वा भवति। विशेषाऽधिकं चाऽत्र द्विविधम्–(१) संख्यातभागाऽधिकम्, (२) असंख्यातभागाधिकं च।

स्थितिसत्त्वतारतम्यादेकजीवस्य स्थितिखण्डतोऽपरस्य स्थितिखण्डं संख्येयगुणं विशेषाऽधिकं तुल्यं वा भवति। करणसत्कविशुद्धौ स्थितिखण्डस्य प्रायशः स्थितिसत्त्वाऽनुसारित्वात्। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–**"अपुव्वकरणस्स पढमसमए दोण्हं जीवाणं ट्ठिदिसंतकम्मादो ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं वा विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा। ट्ठिदिखंडयादो वि ट्ठिदिखंडयं दोण्हं जीवाणं तुल्लं वा विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा"** इति। भावना त्वित्थं कार्या–द्वौ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टी जन्तू युगपदुपशमश्रेणिं प्रतिपद्येते, ततश्च्युत्वा भूयः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टी भूत्वा दर्शनत्रिकं क्षपयितुमुपक्रमेते, तदपूर्वकरणप्रथमसमये तयोः स्थितिसत्त्वं सदृशं भवति, कथमेतदवसीयत इति चेद्? उच्यते, प्रथमत उपशमश्रेणिप्रतिपन्नानामनिवृत्तिकरणे प्रथमस्थितिखण्डेऽपगते सर्वेषां जीवानां स्थितिसत्त्वं समानं भवतीति नियमो वक्ष्यते, एवं स्थितिसत्त्वस्य समानत्वादुभयोः स्थितिखण्डमपि समानं भवति।

अथ तयोर्दर्शनत्रिकक्षपणाऽपूर्वकरणे स्थितिसत्त्वं विशेषाऽधिकं स्थितिखण्डं च भाव्यते–

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उपशमश्रेणौ जातसमानस्थितिसत्त्वकयोरेकतरो जन्तुः पुनरुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, ततः पतित्वा क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिस्सन् तत्रैव तिष्ठति, ततोऽपरो जन्तुरन्तमुहूर्तात्परमुपशमश्रेणिमारुह्य ततश्च परिभ्रश्य क्षायोपशमिकदृष्टिर्भवति। ततः परमन्तमुहूर्ते व्यतीते द्वावपि जन्तू युगपद् दर्शनत्रिकस्य क्षपणाय यतेते, तद्यपूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिसत्त्वं प्रथमतोऽपरस्य जन्तोर्विशेषाऽधिकं भवति, यतः श्रेणितः पतित्वा प्रथमपुरुषेणोपशमश्रेणेरनन्तरं द्वावन्तमुहूर्तकालौ व्यतिक्रान्तौ द्वितीयेन त्वेक एवऽन्तमुहूर्तकाल इति द्वितीयपुरुषस्य स्थितिसत्त्वं प्रथमपुरुषस्य स्थितिसत्त्वतोऽन्तमुहूर्तकालेनाऽधिकं भवति, एवं यावदप्राप्तमिथ्यात्वयोस्तयोरुपशमश्रेणेरुत्कृष्टाऽन्तरं साधिकद्विषष्टिसागरोपममात्रं संभवति, तेनोत्कृष्टत एकजन्तुतोऽपरस्य द्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमैरप्यधिकं स्थितिसत्त्वं घटते। इदन्तु दिग्दर्शनमात्रम्, प्रकाराऽन्तरेणाऽपि निसर्गतो विशेषाऽधिकं समानं वा स्थितिसत्त्वं प्राप्यत इति कृतं प्रपञ्चेन ।

दर्शनत्रिकक्षपणाऽपूर्वकरण एकजीवतोऽपरस्य संख्येयगुणं स्थितिसत्त्वं भवति, तद्भावना त्वित्थं कर्तव्या । अपूर्वकरणस्य प्रथमसमय उपशमश्रेणितः पतित्वाऽऽगतस्य क्षायिकसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य स्थितिसत्त्वतश्चारित्रमोहनीयस्याऽनुपशमकस्य क्षायिकसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणम्, चारित्रमोहनीयोपशमनायां प्रभूतस्य स्थितिसत्कर्मणो विशुद्धया नष्टत्वात् । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ–"दोण्हं जीवाणमेक्को कसाए उवसामेयूण खीणदंसणमोहणीयो जादो । एक्को कसाए अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीयो जादो । जो अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं"** इति । अत्र खीणदंसणमोहणीयो जादो, इत्यनेनाऽपूर्वकरणे वर्तमानः दर्शनत्रिकं क्षपयन्नित्यर्थः कर्तव्यः, कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते, **"क्षि क्षये"** ज्ञानेच्छार्चार्थञीच्छीलादिभ्यः (सिद्धहेम. ५।२।९३) इत्यनेन वर्तमाने 'क्त' प्रत्ययः क्षीणं क्षीयमाणं दर्शनमोहनीयं येनाऽपूर्वकरणस्थितेन क्षीणदर्शनमोहनीय इति व्युत्पत्त्याश्रयणात् ।

अथ प्रकाराऽन्तरेण विवक्षितजन्तुतोऽन्यस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं प्रदर्श्यते, तुल्यस्थितिसत्कर्मणोः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टयोर्जन्त्वोरेकः करणद्वयेन देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्राप्नोति, स चाऽपूर्वकरणे स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणहीनं कुर्यात्, अन्यः पुनः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्जन्तुरविरत एव तिष्ठेत् । यद्युभौ तौ युगपद्दर्शनत्रिकं क्षपयितुमुपक्रमेते, तर्हि देशविरतस्य सर्वविरतस्य वा क्षायिकसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य स्थितिसत्कर्मतोऽविरतस्य क्षायिकसम्यक्त्वाऽभिमुखस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं भवेत् । एवमनेकधा संख्यातगुणं स्थितिसत्त्वं भावनीयम् । तथैव स्थितिखण्डमपि । अथ **कषायप्राभृतचूर्णौ**–स्थानद्वयस्याऽपि जीवभेदेनाऽल्पबहुत्वं

निर्दिष्टम् । तथा च तद्ग्रन्थः—"(१) जो अपुव्वं दंसणमोहणीयं खवेदूण पच्छा कसाए उवसामेदि जो वा दंसणमोहणीयमक्खेदूण कसाए उवसामेइ, तेसिं दोण्ह पि जीवाणं कसायेसु उवसंतेसु तुल्लकाले समधिच्छिदे तुल्लं ठिदिसंतकम्मं (२) जो पुव्वं कसाए उवसामेयूण पच्छा दंसणमोहणीयं खवेइ,अण्णो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाए उवसामेइ, एदेसिं दोण्हं पि खीणदंसणमोहणीयाणं खवणकरणेसु उवसमकरणेसु च णिट्ठिदेसु तुल्ले काले विदिक्कंते जेण पच्छा दंसणमोहणीयं खविदं तस्स ठिदिसंतकम्म थोवं जेण पुव्व दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाया उवसामिदा तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।" इति ।

अक्षरार्थस्त्वेवम्-(१) एको जीवो दर्शनत्रिकं क्षपयित्वोपशमश्रेणिमारोहति, अन्यश्च दर्शनत्रिकमक्षपयित्वोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, उभयोर्जन्त्वोः कषायोपशान्तितस्तुल्ये काले गते स्थितसत्कर्म समानं भवति । (२) एको जीवः कषायोपशान्तलक्षणोपशमश्रेणितोऽवरुह्य दर्शनत्रिकं क्षपयितुमारभते, इतरो जीवो दर्शनत्रिकं क्षपयित्वा कषायानुपशमयितुमारभते, द्वयोर्जीवयोः क्षपणक्रियाया उपशमनक्रियायाश्च परिसमाप्तितस्तुल्ये काले व्यतिक्रान्ते सति श्रेणितः पतित्वा दर्शनत्रिकक्षपणारम्भकस्य स्थितिसत्त्वमल्पम् , ततो दर्शनत्रिकं परिक्षपय्य कषायाणामुपशमकस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणम् ।

अथाऽऽद्यस्थाने विशेषोऽभिधीयते—यथा चारित्रमोहनीयक्षपणाऽधिकारेऽनिवृत्तिकरणे प्रथमखण्डे व्यतीते सर्वेषां जीवानां स्थितिसत्त्वं समानं तिष्ठति, तथैवोपशमश्रेणावप्यनिवृत्तिकरणे प्रथमे खण्डे व्यतीते सर्वेषां जीवानां स्थितिसत्त्वं तुल्यं भवेत् , तेन दर्शनत्रिकं परिक्षपय्योपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिसत्कर्मतो दर्शनत्रिकमक्षपयित्वोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्याऽनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयपर्यन्तं स्थितिसत्त्वं प्रभूतं संभवति, पूर्वोक्तपुरुषस्य प्रभूतस्य स्थितिसत्त्वस्य दर्शनत्रिकक्षपणायां नाशो जातः, तथाऽपि चारित्रमोहनीयोपशमनासत्काऽनिवृत्तिकरणे प्रथमस्थितिघाते व्रजिते स्थितिसत्त्वं समानं जायते । तेनोभयोर्जन्त्वोः कषायोपशान्तितस्तुल्ये काले गते स्थितिसत्त्वस्य सदृक्त्वोपलम्भे न कश्चिद् बाधः । ननूपशमश्रेणौ सर्वेषां जीवानां स्थितिसत्त्वं समानं कथं संभवति, संख्येयगुणत्वसंभवात्? तथाहि—एकजन्तुः सकृदुपशमश्रेणिं प्रतिपद्य ततश्च च्युत्वा मिथ्यात्वमगत्वा भूयो द्वितीयवारमुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, अन्यो जन्तुःपुनः प्रथमत उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, तत्र प्रथमपुरुषतो द्वितीयस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं प्राप्यते, यतः प्रथमवारं श्रेणिं प्रतिपन्नेन प्रथमपुरुषेणाऽपूर्वकरणे स्वस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणहीनं कृतं श्रेणितश्च्युत्वा मिथ्यात्वं न गतः, तेन बन्धद्वारेणाऽपि श्रेणिगतस्थितिसत्त्वतो नाऽभिवर्धितम् , अविरतसम्यग्दृष्टि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानक उत्कृष्टस्थितिबन्धस्याऽपि श्रेणिगतजघन्यस्थितिसत्त्वतः संख्यातगुणहीनत्वात् । स यदि द्वितीयवारमुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, तर्हि पुनः स्वस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणहीनं कुर्यात्, अन्यो जन्तुः प्रथमवारमेव श्रेणिं प्रतिपद्यते, तेन पूर्वपुरुषतोऽस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं संभवति, प्रागुपशमकाऽनिवृत्तिकरणे स्थितेरघातित्वादिति कृत्वा तुल्यं कथं घटत इति चेद् ? उच्यते-एतत्समीचीनम्, किन्त्वत्र तौ द्वौ जन्तू ग्राह्यौ, याभ्यां प्रथमवारमुपशमश्रेणिरारूढा, तेन तयोः समानास्थितिः संभवति, न संख्येयगुणा ।

संप्रति द्वितीयस्थाने विशेषोऽभिधीयते-एको जीवो दर्शनत्रिकमक्षपयित्वोपशमश्रेणिं समारोहति, अन्यः पुनर्दर्शनत्रिकं परिक्षपय्योपशमश्रेणिमारोहति तत्र दर्शनत्रिकमक्षपयित्वोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य प्रभूतं भवति, द्वितीयपुरुषेण दर्शनत्रिकक्षपणाऽपूर्वकरणे प्रभूतस्थितेर्घातितत्वात् । अथोपशमश्रेणौ तेन क्रमेण प्रथमपुरुषः स्थितिं घातयति, येनाऽनिवृत्तिकरणे प्रथमस्थितिखण्डे, घातित उभयोःपुरुषयोः स्थितिसत्त्वं तुल्यं जायते, श्रेण्यनिवृत्तिकरणे सर्वेषां जीवानां स्थितिसत्त्वसमानत्वसंभवात् । क्षायिकसम्यग्दृष्टिनोपशमश्रेणौ स्तोका स्थितिर्घातिता, इतरेण पुनः प्रभूता घातिता इति फलितार्थः । ततः परं श्रेणितोऽवरुह्याऽक्षीणदर्शनमोहनीयो दर्शनत्रिकक्षपणार्थं पुनः करणत्रयं करोति, तत्र चाऽपूर्वकरणे स्वस्थितिं संख्येयगुणहीनां करोति, तेनोपशमनाक्रियातोऽन्यस्य पुनः क्षपणाक्रियातत्तुल्ये विश्रान्तिकाले व्यतिक्रान्ते श्रेणितः पतित्वा दर्शनत्रिकं क्षपयतो जन्तोः स्थितिसत्त्वतो दर्शनत्रिकं क्षपयित्वा कषायोपशमकस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं भवति ।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयतः प्रभृत्यायुर्वर्जशेषकर्मणां स्थितिघातरसघातगुणश्रेणिगुणसङ्क्रमस्थितिबन्धाः प्रारभ्यन्ते नवरं दर्शनत्रिकस्योद्वलनानुविद्धगुणसङ्क्रमः प्रवर्तते । अत्र पूर्वपूर्वतः स्थित्यपेक्षयोत्कीर्यमाणखण्डानां विशेषहीनत्वेनोद्वलना, दलिकापेक्षया सङ्क्रमस्याऽसंख्येयगुणकारत्वेन गुणसङ्क्रम इत्युद्वलनानुविद्धगुणसङ्क्रमः, ज्ञातव्यः । उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे श्रीमन्मलयगिरिपादैः "**नवरमपूर्वकरणस्य प्रथमसमय एव गुणसङ्क्रमेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्दलिकं सम्यक्त्वे प्रक्षिपति, उद्वलनासङ्क्रमोऽपि तयोरेवमारभ्येते । तद्यथा-प्रथमं स्थितिखण्डं बृहत्तरं घातयति, ततो द्वितीयं विशेषहीनम्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदपूर्वकरणचरमसमयः ।**" इति । जघन्यस्थितिसत्कर्मणो जन्तोः स्थितिखण्डमपूर्वकरणस्य प्रथमसमये पल्योपमसंख्येयभागमात्रं भवति, तथोत्कृष्टस्थितिसत्कर्मणो जीवस्य सागरोपमपृथक्त्वमात्रं भवति । पूर्वपूर्वोत्कीर्यमाणस्थितिखण्डत उत्तरोत्तरोत्कीर्यमाणस्थितिखण्डं विशेषहीनं तावद्वक्तव्यम्, यावदपूर्वकरणस्य चरमस्थितिखण्डम् । अत्र प्रथमस्थितिखण्डतः परम्परोप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निधया कानिचित्स्थितिखण्डानि संख्येयगुणहीनान्यपि भवन्ति, किन्त्वनन्तरोपनिधया पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्थितिखण्डानि विशेषहीनान्येव भवन्ति। न चाऽपूर्वकरणे प्रतिसमयं पूर्वपूर्वतो विशुद्धेरनन्तगुणत्वेन स्थितिखण्डानां विशेषहीनत्वं कथमुच्यते, अधिकं वक्तव्यमिति वाच्यम्, स्थितिखण्डस्य सत्तागतस्थित्यनुसारित्वेन केवलं विशुद्ध्यनाश्रयणात्।

अत्रोद्वलनानुविद्धगुणसङ्क्रमस्य प्रवर्तमानत्वाद् घात्यमानखण्डानां मिथ्यात्वमोहनीयस्य दलिकं स्वस्थानेऽधो तथा मिश्रमोहनीये सम्यक्त्वे च निक्षिप्यते, मिश्रमोहनीयस्य च दलिकमधः स्वस्थाने तथा सम्यक्त्वमोहनीये च प्रक्षिप्यते, तथा व्याघातभाव्यपवर्तनया सम्यक्त्वमोहनीयस्य दलिकं स्वस्थानेऽधो प्रक्षिप्यते। स्थितिघातरसघातगुणश्रेणीनां स्वरूपं पूर्ववज्ज्ञेयम्। गुणश्रेणिनिक्षेपस्त्वपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धाद्वयादधिको द्रष्टव्यः, स च गलिताऽवशेषमात्रः, उदयेन पूर्वपूर्वसमये क्षीणे हीनो हीनतरो भवति, एवं संख्यातसहस्रैः स्थितिघातैरपूर्वकरणं परिसमापयति। तथाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत्स्थितिसत्कर्माऽऽसीत्, तस्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं भवति। उक्तं च **पञ्चसङ्ग्रहोपशमनाकरणस्य मूले**–

अपुव्वकरणसमगं गुण उव्वलणं करेइ दोण्हं पि।
तक्करणाइं जं तं ठिइसतं संखभागन्ते ॥ ३७ ॥ " इति।

तथैव मूलटीकायामप्युक्तम्–' तं च गुणसङ्क्रमपूर्वकरणेन "समं" समकालमुद्वलनविधिना करोति, द्वयोरप्यनुदितपुञ्जयोर्मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वाख्ययोस्तत्करणादौ बहुस्थितिखण्डं (ततो द्वितीयं विशेषहीनं) एवं यावत्करणसमाप्तिरिति यत्करणादौ स्थितिसत्कर्म तस्य करणाऽन्ते संख्येयभागो भवतीति" गाथार्थः। इति।

तथैव मलयगिरिटीकायामपि निगदितम्– अपूर्वकरणसमकमपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्येत्यर्थः, गुणसङ्क्रममुद्वलनं च द्वयोरनुदितयोर्मिथ्यात्वयोः करोति। तत्करणादावपूर्वकरणादौ यत्स्थितिसत्कर्माऽऽसीत्, तत्तस्यैव करणस्यान्ते चरमसमये संख्येयभागमात्रं भवति प्रथमसमयाऽपेक्षया संख्येयगुणहीनं भवतीत्यर्थः" इति।

तथाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यः स्थितिबन्ध आसीत्, स करणाऽन्ते संख्येयगुणहीनो भवति। उक्तं च **पञ्चसङ्ग्रहोपशमनाऽधिकारे–"एव ठिइबंधो वि हु, पविसइ अणियट्टिकरणसमयंमि।"** इति। तथैव टीकायामपि **"एवमनेनैव सत्कर्मन्यायेन स्थितिबन्धोऽपि योऽपूर्वकरणादासीत्, तस्मादन्तसमये संख्येयगुणहीनो भवति।"** इति।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ततस्तृतीयमनिवृत्तिकरणं प्रविशति । अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयतो दर्शनत्रिकं देशोपशमनानिकाचनानिद्धत्तिकरणरहितं भवति । अतः प्रभृति सत्कर्मणि दर्शनत्रिकस्य दलिकमदेशोपशमितमनिकाचितमनिद्धत्तं भवति, तथा सत्कर्मणि विद्यमानेषु दलिकेषु देशोपशमनानिद्धत्तिनिकाचनाकरणानि न प्रवर्तन्ते ।

उक्तं च पञ्चसङ्ग्रह उपशमनाऽधिकारे–**"देसुवसमणानिकायणनिहत्तिरहियं च । होइ दिट्ठितिगं"** तथैव तट्टीकायां **"अनिवृत्तिकरणे प्रवर्त्तमानदेशोपशमनानिकाचनानिधत्तिकरणरहितं–वियुक्तं दर्शनत्रिकं भवति ।"** इति । अनिवृत्तिकरणेऽपि पूर्ववत्स्थितिघातादयः पञ्च पदार्थाः प्रवर्तन्ते, तत्प्रथमसमय एवाऽपूर्वस्थितिघातोऽपूर्वरसघातोऽपूर्वस्थितिबन्धश्च भूयो युगपदारभ्यन्ते ।

卐 अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये दर्शनमोहनीयस्य स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षपृथक्त्वप्रमाणं भवति, अन्तःसागरोपमकोटीप्रमाणं भवतीति यावत् , शेषकर्मणां स्थितिसत्त्वं सागरोपमकोटीप्रमाणं भवतीति यावत् , शेषकर्मणां स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षकोटीपृथक्त्वप्रमाणं भवति, अन्तः सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं भवतीति यावत् , उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ–अणियट्टिकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतकोडीए । सेसाणं कम्माण कोडीसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडाकोडीए ।"** इति । सहस्रैः स्थितिघातैरनिवृत्तिकरणस्य संख्यातबहुभागेषु गतेष्वेकसंख्येयभागोऽवतिष्ठते तदा दर्शनमोहत्रिकस्य स्थितिसत्कर्माऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं भवति, ततः सहस्रैः स्थितिघातैर्घात्यमानं दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म चतुरिन्द्रियस्थितिसत्कर्मसदृशं भवति, ततोऽपि स्थितिखण्डसहस्रपृथक्त्वे गते सति दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं त्रीन्द्रियस्थितिसत्कर्म सदृग्भवति ।

अत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्ववाची ज्ञातव्यः, तेनाऽनेकसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेषु दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म त्रीन्द्रियस्थितिसत्कर्मसदृग्भवतीत्यर्थो लभ्यते, ततोऽप्यनेकसहस्रेषु

卐 लब्धिसारेऽनिवृत्तिकरणस्थानां सर्वजीवानां दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्म समानं भवतीत्युक्तम् . तथा च तद्ग्रन्थः "अत्र सर्वेषां जीवानां विशुद्धिपरिणामसादृश्येन जघन्योत्कृष्टविकल्पं विना स्थितिसत्त्वमेकादृशमेव भवति" अनिवृत्तिकरणे जीवानां स्थितिसत्त्वं प्रथमस्थितिखण्डे घातिते सदृशं संभवति, कथमेतदवसीयत इति चेद् ? शृणुत चारित्रमोहनीयक्षपणाऽधिकारे द्वितीयादिस्थितिसत्त्वं समानं दर्शितं तथैवाऽत्रापि संभवति । जयधवलाकारैरनिवृत्तिकरणे प्रथमखण्डस्य नानाजीवाऽपेक्षया वैषम्यं दर्शयित्वा द्वितीयादिखण्डानां समानत्वं दर्शितम्. अक्षराणि त्वेवम्–"बिदियादिखंडयाणि पुण सव्वेसिं जीवाणं सरसाणि चेव तत्थ विसरीसत्ते कारणाणुवलद्धीदो ।" तेन स्थितिसत्त्वस्याऽपि तदानीमेव सदृक्षत्वं संभवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिखण्डेषु गतेषु दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं द्वीन्द्रियस्थितिसत्कर्मतुल्यं भवति, ततः सहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेषु दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वमेकेन्द्रियस्थितिसत्त्वतुल्यं भवति, ततो भूयः संख्यातेषु सहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेषु दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं पल्योपमप्रमाणं भवति, यदुक्तं **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**–**"ततो ठिदिखंडगपुहुत्तेणं जायं पलिओवमट्ठितियं दंसणमोहणिज्जट्ठितिसंतकम्मं"** एवं **कषायप्राभृतचूर्णावपि**–**"तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण पलिओवमट्ठिदिगं जादं दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं"** इति पञ्चसङ्ग्रहे तु दर्शनत्रिकक्षपणाऽधिकारे दर्शनत्रिकस्यैकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मतुल्यसत्कर्मतः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते पल्योपमसंख्येयतमभागमात्रं स्थितिसत्त्वमुक्तम्–**"एक्केक्के अंतरंमि गच्छंति पलिओवमसंखंसे दंसणसंते तओ जाए॥२॥"** इति। तथैव पञ्चसङ्ग्रहस्य श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वरप्रणीतटीकायामप्येकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मतः संख्येयेषु स्थितिघातसहस्रेषु गतेषु पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं स्थितिसत्त्वं भवतीत्युक्तम्। तथा च तद्ग्रन्थः **"ततोऽपि तावन्मात्रेषु खण्डेषु गतेष्वेकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं ततोऽपि तावन्मात्रेषु गतेषु पल्योपमसंख्येयभागमात्रप्रमाणं भवति।"** इति।

चूर्णिकारमतेन पल्योपमप्रमाणस्थितौ जातायां पञ्चसङ्ग्रहमतेन पुनः पल्योपमसंख्येयतमभागमात्रस्थितौ सत्यां ततः परं सत्तागतदर्शनत्रिकस्थितेः संख्येयान् भागान् कृत्वैकं संख्येयं भागं मुक्त्वा दर्शनत्रिकस्य शेषान् सर्वान्संख्येयान् भागान् विनाशयति, भूयोऽपि द्वितीयस्थितिघाताद्वारा प्रागुक्तस्य संख्येयतमभागस्यैकसंख्येयतमभागं विमुच्य शेषान्संख्येयान् भागान् विनाशयति। एवं प्रतिस्थितिघाताद्धं स्थितिसत्कर्म संख्येयगुणहीनं करोतीति यावत्। एवं तावद्वक्तव्यम्, यावत्सहस्राणि स्थितिघाता व्रजन्ति। तदनन्तरं मिथ्यात्वस्य सत्तागतस्थितेरसंख्येयान्भागान् कृत्वैकमसंख्येयभागं मुक्त्वा शेषानसंख्येयान् बहुभागान् खण्डयति। सम्यक्त्वमिश्रयोस्तु पूर्ववत् संख्येयान् भागान् खण्डयति, एवमनेकसहस्रेषु स्थितिघातेषु व्रजितेषु मिथ्यात्वस्याऽऽवलिकाप्रमाणं विमुच्य सर्वस्थितिसत्त्वं विनाश्यते, तेन तदानीं मिथ्यात्वस्याऽऽवलिकाप्रमाणं स्थितिसत्त्वं भवति, सम्यक्त्वमिश्रयोस्तु स्थितिसत्त्वं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणं भवति। ततः प्रभृति सम्यक्त्वमिश्रयोः स्थितेरसंख्येयान्भागान्खण्डयति, एकभागश्चाऽवतिष्ठते। उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ** **'तंमि कए ठिदिसंतकम्मस्स संखेज्जभागा आघाइज्जंति, आघाइज्जंति णाम खंडिज्जंति अहवा छिज्जंति एगो सेसो भागो ततो दंसणमोहणिज्जस्स। ततो ठितिखंडगसहस्साणि गयाणि ततो पलिओवमस्स संखेज्जतिभागे संतकम्मस्स सेसे ततो बहुसु ठितिखंडगसु गयेसु ठिइसंतकम्मस्स असंखेज्जभागा मिच्छत्तस्स आघाइज्जंति। संतकम्मस्स सम्मत्तमीसाणं संखेज्जाभागा चेव आघाइज्जंति, ततो बहुसु ठिदिखडगेसु गतेसु मिच्छत्तस्स आवलियाबाहिर दलियं आघातियं**

भवति-सम्मत्तसम्मामिच्छत्ते संछुद्धमित्यर्थः । सम्मत्तसम्ममिच्छत्ताणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो सेसो मिच्छत्ते पढमसमयसंकंते णिट्ठिए संमत्ते सम्मामिच्छत्ताणं असंखेज्जाभागा आघाइता भवन्ति, संकामिता भवंति जं वुत्तं होति ।। " इति ।

पूज्यमलयगिरिपादैर्मिथ्यात्वसत्काऽऽवलिकामात्रे शेषे सम्यक्त्वमिश्रयोः स्थितिसत्त्वं पल्योपमाऽसंख्येयभागं दर्शितम् । तथा च तद्ग्रन्थः-'**तदानीं च सम्यक्त्वसम्यक्त्वमिथ्यात्वयोर्दलिकं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रमवतिष्ठते**" इति । कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन पुनर्दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्मणः संख्येयगुणहानिप्रारम्भतः संख्येयेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु दूरापकृष्टिसंज्ञं ❖ दर्शनत्रिकस्य सत्कर्मस्थानं प्राप्यते । ननु किन्नाम दूरापकृष्टिसंज्ञं सत्तास्थानमिति

❖ टिप्पणी- उक्तं च "जयधवलायामपि-का दूरापकिट्टी णाम वुच्चदे । जत्तो ठिदिसंतकम्मावसेसादो संखेज्जे भागे घेत्तूण ट्ठिदिखंडए घादिज्जमाणे घादिदसेसं णियमा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणं होदूण चिट्ठदि तं सव्वपच्छिमं पलिदो० संखे० भागपमाणं ठिदिसंतकम्मं दूरावकिट्टि त्ति भण्णदे । किं कारणमेदस्स ठिदिविसेसस्स दूरावकिट्टिसण्णा जादा त्ति चे ? पलिदोवमठिदिसंतकम्मादो सुट्ठुदूरयरमोसरिय सव्वजहण्णपलिदोवमसंखेज्जभागसरूवेणवट्ठाणादो" इति । पल्योपमस्थितिकर्मणोऽधस्ताद्दूरतमप्रकृष्टत्वादतिकृशत्वाच्च दूराप्रकृष्टिरेषा स्थितिरित्युक्तं भवति अथवा दूरतरमपकृष्यतेऽस्याः स्थितिकण्डकमिति दूरापकृष्टिः । इतः प्रभृत्यसंख्येयान्भागान्गृहीत्वा स्थितिकण्डकघातमाचरतीत्यतो दूरापकृष्टिरिति यावत् ।

ननु दूरापकृष्टिस्थानमेकमनेकं वा भवतीति चेद् ? उच्यते, असंख्यातगुणितपल्योपमवर्गमूलमात्राणि दूरापकृष्टिस्थानानि भवन्ति, तेभ्यः किमप्येकमेव सर्वजीवानामेकाकारं स्थानं भवति, अनिवृत्तिकरणे युगपत्प्रविष्टानां नानाजीवानां प्रथमखण्डेऽपगते स्थितिसत्कर्मणः समानत्वसंभवात् ।

पल्योपमं जघन्यपरित्ताऽसंख्येयरूपभागहारेण भक्त्वैकं तत्र प्रक्षिप्यते, तत्स्थानं दूराप्रकृष्टित्वेन व्यपदिश्यते, इति केचित् । उक्तं च जयधवलायाम् "**किमेसा दूरावकिट्टी एगवियप्पा आहो अणेगवियप्पा त्ति ? के वि भणंति एयवियप्पा एसा, णिवियप्पपलिदोवमस्स संखेज्जदि भागवियप्पपडिबद्धत्तादो । सो च णिव्वियप्पो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो पलिदोवम जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडिय तत्थ रूवाहिय एयखंडमेत्तो, एत्तो एक्कस्स वि ट्ठिदिविसेसस्स परिहाणीए पलिदोवमासंखेज्जभागवियप्पुप्पुत्तीओ त्ति**" इति ।

जयधवलाकारास्त्वाहुः-पल्योपममुत्कृष्टसंख्यातेन विभज्य लब्धित एकैकरूपं न्यूनं न्यूनं तावद्वक्तव्यं यावत्पल्योपमं जघन्यपरित्ताऽसंख्यातेन खण्डयित्वा लब्धिर्न प्राप्यते पल्योपमं सर्वोत्कृष्टसंख्यातेन सर्वजघन्याऽसंख्यातेन च भक्त्वा द्वयोर्लब्ध्योरन्तरालगतानि स्थानानि दूरापकृष्टसंज्ञितानि भवन्तीति यावत् । तानि चान्तरालगतस्थानानि सर्वोत्कृष्टसंख्यातगुणितजघन्याऽसंख्यातभक्तपल्योपममात्राणि भवन्त्यध्यसंख्यातगुणितपल्योपमप्रथमवर्गमूलप्रमितानि भवन्ति, असत्कल्पनया पल्योपममेकादशसहस्रसमयमात्रम् ११०००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेद् ? उच्यते-संख्येयबहुभागघातैः प्राप्यमाणचरमपल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिस्थानं दूरापकृष्टिस्थानमुच्यते, तत एकस्मिन् स्थितिघाते पूर्णे स्थितिसत्त्वं पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रं भवति, यत्स्थितिस्थानभवनात्स्थितिघातेन सत्तागतस्थितेऽसंख्येयबहुभागा नाशाय प्रयतन्ते तत् सत्तास्थानं दूरापकृष्टिसंज्ञमिति फलितार्थः । अयं शब्दार्थः-अपकृष्यते तनुक्रियते स्मेत्यपकृष्टिः कर्मणि "स्त्रियां क्तिः" (सिद्धहेम ५।३।९१) इत्यनेन 'क्तिः,' दूरमतिशयेनाऽपकृष्टिः दुरापकृष्टिः पल्योपममात्रस्थितिसत्त्वभवनात्संख्यातसहस्रेषु गतेषु सत्सु प्राप्यमाण स्थितिसत्त्वस्य पल्योपमतोऽत्यन्तहीनत्वेन दूरापकृष्टिरिति व्यपदेशो भवति । यद्वा अप पूर्वकः कृष् धातुः । दूरमपकृष्यतेऽपनीयते स्मेति दूरापकृष्टिः, पल्योपमस्थितिसत्कर्मत इदं सत्तास्थानमतिशयेन दूरमपनीयते तेनेदं सत्तास्थानं दूरापकृष्टिरिति व्यवह्रियते । यद्वा दूरमपकृष्यते दूरमपनीयते सत्तागतस्थिति

असत्कल्पनयोत्कृष्टसंख्यातम् = १०

असत्कल्पनया जघन्यपरित्तासंख्यातम् = ११

पल्योपम ÷ उत्कृष्टसंख्यातः = ११००० ÷ १० = ११००

पल्योपम ÷ जघन्यपरित्तऽसंख्यातम् = ११००० ÷ ११ = १०००

शताऽधिकसहस्रसंख्याकस्थानादेकोनहान्या सहस्रसंख्याकस्थानं यावद्वक्तव्यम् । एतेन शतं दूरापकृष्टिस्थानानि (११०० - १००० = १००) यद्वा पल्योपमम् ÷ उत्कृष्टसंख्यातम् × जघन्यपरित्ताऽसंख्यातम् ।

$$\frac{\text{प}}{\text{उ. स.}\times\text{ज.प.अ.सं}} = \frac{११०००}{१०\times ११} = १००$$

इदं च दिग्दर्शनमात्रमेवमेवमन्येषामपि दूरापकृष्टिस्थानानां संभवात्, तथाहि-पल्योपमे जघन्यपरित्ताऽसंख्याताऽर्धेन जघन्यपरित्तस्य चतुर्भागेन वाऽपि भक्ते दूरापकृष्टिस्थानं प्राप्यते, एतेषु स्थानेषु केवलिदृष्टैकतमदेव स्थानं दूरापकृष्टित्वेन दर्शनत्रिकस्य क्षपको लभते । उक्तं च जयधवलायाम्-"वयं तु भणामो, अणेयवियप्पा एसा त्ति । किं कारणं पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तट्ठिदिसंतुप्पदित्तणिबंधणाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागट्ठिदिवियप्पाणमसंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्ताणमुवलंभादो । तं जहा-उक्कस्ससंखेज्जं विरलेयूण पलिदोवमं समखंडं करिय दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि पावेंति । तत्थेयरूवधरिदपमाणं सव्वजहण्णयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो त्ति भण्णदे । संपहि एदस्सब्भंतरे जइ एगरूवं परिहायदि तो वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । दोसु रूवेसु परिहीणेसु वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । एवमेगुत्तरवड्ढीए रूवेसु परिहीयमाणेसु जदि सुट्ठु बहुगं परिहायदि तो एदमेगरूवधरिदं पुणो जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडेयूणेयखंडमेत्तं जाव ण परिहीणं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तमेदस्स ण फिट्टदि । सपुण्णेगखंडपरिहीणो वि (णा) जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडिदपलिदोवममेत्तट्ठिदिसंतवियप्पाणुप्पत्तीदो । तम्हा दूरावकिट्टी असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तवियप्पसहिदा त्ति सिद्धं । णिदरिसणमेत्तं चेदं परूविदं एदीए दिसाए अण्णे वि दूरावकिट्टीवियप्पा समुप्पाएयव्वा, जहण्णपरित्ताऽसंखेज्जस्स अद्धचउभागादिरूवेहिम्मि (हिं पि) पलिदोवमे खंडिदे दूरावकिट्टि वियप्पुप्पत्तीए पडिसेहाभावादो । एदेसु वियप्पेसु जिणदिट्ठभावण्णदरवियप्पपडिबद्धा दूरावकिट्टि एयवियप्पा इह गहेयव्वा, अणियट्टिकरणपरिणामेहिं घादिदावसिट्ठाए तिस्से अणेयवियप्पत्तविरोहादो ।" इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिघातैर्यतः, तत् स्थानं दूरापकृष्टिरिति व्यवह्रियते ।

इतः प्राक् सत्तास्थितेः संख्येयभागान् घातयति स्म, अतः प्रभृति सत्तास्थितेरसंख्येयान् भागान् घातयतीतिकृत्वा स्थितिघातेन सत्तागतस्थितिरतिद्रुतमपनीयते । ततः परं दर्शनत्रिकस्य स्थितेरसंख्येयबहुभागा घात्यन्त एकश्च सत्कर्मण्यवशिष्यते । संख्येयेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु● सम्यक्त्वस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा जायते । इदमुक्तं भवति—कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन गुणश्रेणिरुदयावलिकाया उपरितननिषेकात्प्रभृति भवति, अतः प्राग्गुणश्रेण्यर्थं गृहीतदलिकमसंख्येयलोकभागहारेण भक्त्वैकभागमुदयावलिकायां विशेषहीनक्रमेण ददाति स्म, बहुभागांस्तूदयावलिकाया उपरितनेषु निषेकेषु गुणश्रेणिशिरःपर्यन्तमसंख्येयगुणक्रमेण ददाति स्म, तेनोदयावलिकायामेकसमयप्रबद्धस्याऽसंख्येयभागमात्रमागच्छति स्म । इदानीं तु गुणश्रेण्यर्थं गृहीतदलं पल्योपमाऽसंख्येयभागेन विभज्यैकभागप्रमाणं दलमुदयावलिकायां कषायप्राभृतमतेन विशेषहीनक्रमेण कर्मप्रकृतिमतेन त्वसंख्येयगुणक्रमेण प्रक्षिपति, तेनोदयावलिकायां दलिकं पूर्वतोऽसंख्येयगुणं भवदसंख्येयसमयप्रबद्धदलं बध्यते तावद्भवति । अतः प्रभृति सर्वत्र सम्यक्त्वस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा वक्तव्या । असंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणातः संख्येयेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु मिथ्यात्वस्योदयावलिकां वर्जयित्वा सर्वमिथ्यात्वस्थितिसत्कर्म घातयति तदानीं च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः स्थितिसत्कर्म पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रमवशिष्यते न ततो हीनम् , उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ —"**तदो सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा । एवं ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु दूरावकिट्टी पलिदोवमस्स संखेज्जे भागे ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तदो सेसस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा । एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागिगेसु बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा । तदो बहुसु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तस्स आवलिय बाहिरं सव्वमागाइदं, सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो सेसो**" इति ।

● टिप्पणी० उक्तं च जयधवलायामपि दुरावकिट्टीदो हेट्ठा संखेज्जसहस्समेत्ताणि असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणि ओसरियूण मिच्छत्तचरिमट्ठिदिखंडयं च संखेज्जसहस्सट्ठिदिखंडएहिं (एण्हिं)ण पावदित्ति । एदम्मि अतराले सम्मत्तस्स असंखेज्जाण समयपबद्धाणमुदीरणा पारद्धा त्ति सुत्तत्थणिच्छओ । एत्तो पुव्वं च सव्वत्थेव असंखेज्जलोगपडिभागेण सव्वकम्माणमुदीरणा एण्हिं पुण सम्मत्तस्स पलिदोवमस्साऽसंखेज्जदिभागपडिभागेणुदीरणा पयट्टा त्ति ज वुत्तं होइ-ओकट्टिदिसयलदव्वस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेपडिभागियं दव्वमुदयवलियबाहिरे गुणसेढीए णिक्खिवदि । गुणसेढिदव्वस्स वि असंखेज्जभागमेत्तं दव्वमसंखेज्जसमयपबद्धपमाणपडिबद्धमेण्हिमुदीरेदि त्ति एदेण सुत्तेण जाणाविदं । एत्तोप्पहुडि सव्वत्थेव उदीरणा कमो एसो चेव सम्मत्तस्स दट्ठव्वो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वस्य चरमस्थितिखण्डे घात्यमाने घातिते मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिसङ्क्रमो भवति, गुणितकर्मांशस्य जीवस्य चोत्कृष्टप्रदेशसङ्क्रमो भवति, यो जीवो मिथ्यात्वस्योत्कृष्टप्रदेशाग्रं सङ्क्रमयति तस्य जीवस्य मिश्रस्योत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म भवति। उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो ट्ठिदिखंडये णिट्ठायमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो उक्कोसओ पदेससंकमो ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सगं पदेससंतकम्मं"। इति। एवं कमप्रकृतिचूर्णावपि-"मिच्छत्तसम्मामिच्छत्ताणं अप्पप्पणो खवणचरिमखंडगे वट्टमाणो मणुस्सो अविरतसम्मदिट्ठी देसविरतो वा विरतो वा जहण्णठितिसंकामगो लब्भति...(स्थितिसंक्रमे) अप्पप्पणो खवगस्स चरिमसंछोभणातो–दोण्हं मोहाणं ति मिच्छत्तसम्मामिच्छत्ताणं उक्कोसपदेससंकमो सव्वसंकमेण लब्भति...(संक्रमकरणे प्रदेशसंक्रमे)। ततो लहुमेव खवणाए अब्भुट्ठिओ जंमि समते मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्ते सव्वसंकमेण संकंतं भवति तंमि समते सम्मामिच्छत्तस्स उक्कोसपदेससंतं भवति (उत्कृष्टप्रदेशसत्तास्वामित्वे) इति"।**

ननु मिथ्यात्वस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रं चरमस्थितिखण्डं स्थितिघाताद्धायाः प्रथमसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तं यावद् घात्यते, तर्हि मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिसङ्क्रमोऽन्तर्मुहूर्तं यावत्कुतो नोच्यते, स्थितिघाताद्धायाश्चरमसमय एव कथमिति चेद्? उच्यते चरमस्थितिखण्डं घातयन् स्थितिघाताद्धायाः प्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमुदयावलिकाया उपरितनीः सर्वस्थितीर्घातयति। तथा वेदनत उदयसमयेषु क्षीणेषु सत्सु स्थितिखण्डस्याऽधस्तनसमयाः क्रमश्च उदयावलिकायां प्रविशन्ति। उदयावलिकागतं सकलकरणाऽयोग्यमितिकृत्वा स्थितिघाताद्धायाः प्रथमसमयत उत्तरोत्तरसमये वेदिते स्थितिसत्त्वे स्थितिखण्डस्य न्यूनत्वं भवति। अतः स्थितिघाताद्धायाः प्रथमसमये यत्स्थितिखण्डमासीत्, तत्स्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये समयोनस्थितिघाताद्धाप्रमाणाऽन्तर्मुहूर्तकालेन न्यूनं भवति। अतो जघन्यस्थितिसङ्क्रमः स्थितिघाताद्धायाश्चरमसमय एव प्राप्यते, इयांस्त्वत्र विशेषः-इतरस्थितिखण्डानामेतादृशक्रमेण न्यूनत्वं न भवति, यतस्तत्रोदयावलिकाया अनन्तरस्थितिस्थानात्स्थितिघातो नाऽऽरभ्यते, अपि तु स्थितेरग्रिमभागतः स्थितिखण्डं घात्यते. अतो वेदनत उदयसमयेषु क्षीणेषु यद्यप्युदयावलिकोपर्युपरि वर्धते, तथाऽपि ये समया उदयावलिकायां प्रविशन्ति, ते स्थितिखण्डतो न्यूना न भवन्ति।

मिथ्यात्वस्य चरमस्थितिखण्डे घातिते मिथ्यात्वस्याऽऽवलिकामात्रं स्थितिसत्कर्माऽवतिष्ठते। ततो मिथ्यात्वस्याऽऽवलिकामात्रां स्थितिं प्रतिसमयं सम्यक्त्वे स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमयन् द्विसमयोनावलिकायां गतायां मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिसत्कर्म प्राप्यते, मिथ्यात्वस्याऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नुदयवत्त्वादनन्तरसमये स्तिबुकसङ्क्रमेणोदयवतीषु प्रकृतिषु मध्ये प्रक्षिपति तत्स्वरूपेण चाऽनुभवति, तेन तदानीं तस्य दलिकं स्वरूपेण न प्राप्यते, किन्तु पररूपेण । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "तदो आवलियाए दुसमयूणाए गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंतकम्मं"** इति। मिथ्यात्वस्य चरमस्थितिघाततः प्रभृत्येषां कषायप्राभृतचूर्णिकाराणां कर्मप्रकृतिचूर्णिकाराणां च मतेन सम्यक्त्वमिश्रयोः स्थितेरसंख्येयभागाः प्रतिस्थितिखण्डेन घात्यन्ते, एकभागश्च सत्कर्मणि मुच्यते ।

इदमुक्तं भवति—सम्यक्त्वमिश्रयोः स्थितेरसंख्येयबहुभागान् घातयति, एकासंख्येयभागं च मुञ्चति, स्थितिघाताद्धाप्रमाणोऽन्तर्मुहूर्ते गते प्राग् मुक्तस्याऽसंख्येयभागान् खण्डयति, एकमसंख्येयभागं च सत्कर्मणि परित्यजति, एवं क्रमेण तावद्वक्तव्यं यावदनेकसहस्राणि स्थितिघाता व्रजन्ति, ततो मिश्रस्याऽऽवलिकामात्रां स्थितिं मुक्त्वा शेषां सर्वां स्थितिं घातयति, सम्यक्त्वस्य त्वष्टवर्षमात्रां स्थितिं मुक्त्वा शेषां सर्वां घातयति उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"एवं संखेज्जेहिं सम्मामिच्छत्तठिनिखंडगेहिं गएहिं सम्मामिच्छत्त आवलियाबाहिरं सव्व आघातियं भवति । ताहे चेव समत्तसंतकम्मं अट्ठवासठिइयं होति"** इति । एव **कषायप्राभृतचूर्णावपि—**

"सम्मामिच्छत्तं पि खवेंतस्स सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव ।

सम्मामिच्छत्तं पि खविज्जमाणं खविदं, संछुब्भमाणं संछुद्धं" इति । मिश्रमोहनीयस्य चरमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये मिश्रस्य जघन्यस्थितिसङ्क्रमस्तदानीमेव च गुणितकर्मांशजन्तोरुत्कृष्टप्रदेशसङ्क्रमो भवति । तथा तस्यैव गुणितकर्मांशजन्तोः सम्यक्त्वमोहनीयस्योत्कृष्टप्रदेशसत्त्वमपि भवति ।"तथा चोक्तं **कषायप्राभृतचूर्णौ—"एदम्मि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे ताधे जहण्णगो सम्मामिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंकमो, उक्कसओ पदेससंकमो, सम्मतस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं ।"** इति ।

अष्टवार्षिकसम्यक्त्वसत्कर्मा च निश्चयनयमतेन सम्यग्दर्शनं प्रति मिथ्यात्वमिश्रमोहनीययोः सत्त्वस्यापि प्रत्यूहरूपत्वेन क्षयात् सकलप्रत्यूहापगमाद्दर्शनमोहनीयक्षपक उच्यते, उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ " ताहे चेव सम्मत्तसंतकम्मं अट्ठवासट्ठिइयं होति । ताहे दंसणमोहणिज्जस्स खवगो त्ति भन्नति"** । इति । एवं **कषायप्राभृतचूर्णावपि—"ताधे चेव सम्मत्तस्स संतकम्ममट्ठवस्सट्ठिदिगं जादं । ताधे चेव दंसणमोहणीयक्खवगो त्ति भण्णइ ।"** इति। केचिद् भणन्ति—मिश्रस्य प्रक्षेपे सम्यक्त्वस्य स्थितिसत्त्वं संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणं भवतीति । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ—"ताधे सम्मत्तस्स दोण्णि उवदेसा । केवि**

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

भण्णंति संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदाणि त्ति । पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्ठवस्साणि सम्मत्तस्स सेसाणि, सेसाओ ट्ठिदीओ आगाइओ" त्ति ।"

अथ कषायप्राभृतचूर्णिकारमतानुसारेणाऽपूर्वकरणादारभ्य दलिकनिक्षेपो भण्यते—अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य मिश्रमोहनीयस्य पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिखण्डाद्धाया द्विचरमसमयपर्यन्तमुत्कीर्यमाणदलिकमधस्तनोदयावलिकायां विशेषहीनं विशेषहीनं विरचयति । ततः परं गुणश्रेणिशिरःपर्यन्तमसंख्येयगुणकारेणोत्तरोत्तरस्थितिस्थानके निक्षिपति, गुणश्रेणिशिरस उपरितेन प्रथमस्थितिस्थानकेऽसंख्येयगुणहीनं दलं निक्षिपति । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते—卐 सत्तागतदलमपकर्षणोत्कर्षणभागहारेण पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणेन विभज्यैकभागमुत्किरति । उत्कीर्णदलं पुनः पल्योपमाऽसंख्येयभागेन खण्डयित्वैकभागं गुणश्रेण्यर्थं गृह्णाति बहुभागांस्तु गुणश्रेणेरुपरितनेषु निषेकस्थानेषु प्रक्षिपति । तत्र गुणश्रेण्यर्थं गृहीतदलस्याऽसंख्येयभागमात्रं दलमुदयावलिकायां ददाति, बहुभागांस्तु गुणश्रेणौ प्रथमनिषेकतोऽसंख्येयगुणक्रमेण ददाति । तत्र प्रथमनिषेकेऽपि दीयमानं दलमसंख्येयसमयप्रबद्धमात्रं भवति । तत उत्कीर्णदलस्य बहूनसंख्येयभागान् सार्धद्विगुणहान्या पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्र्या विभज्यैकभागं गुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रथमस्थितिस्थानके प्रक्षिपति तेन तत्र दीयमानं दलमेकसमयप्रबद्धस्याऽसंख्येयभागमात्रं भवति गुणश्रेणिशीर्षे त्वसंख्येयसमयप्रबद्धदलस्य प्रक्षिप्तत्वाद् गुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रथमस्थितिस्थानके दीयमानदलस्याऽसंख्येयगुणहीनत्वं सूपपद्यते ।

तत उत्तरोत्तरस्थितिस्थानके विशेषहीनक्रमेण दलिकं निक्षिपति, यावदतिस्थापनाऽप्राप्ता भवति, उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ—"अपुव्वकरणस्स पढमसमयादो पाए जाव चरिमं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागट्ठिदिखंडय त्ति एदम्मि काले जं पदेसग्गमोकड्डमाणो सव्वरहस्साए आवलियबाहिरट्ठिदिए पदेसग्गं देदि, तं थोवं । समयुत्तराए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं देदि तमसंखेज्जगुणं । एवं जाव गुणसेढीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं तदो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीनं, तदो विसेसहीणं । सेसासु वि ट्ठिदीसु विसेसहीणं चेव, णत्थि गुणगारपरावत्ती ।"** इति । यद्यप्यत्रोदयावलिकायां निक्षेपो नोक्तस्तथापीयान् विशेषोऽत्र सम्भवति, यदुदयवतीनां प्रकृतीनां

卐 टिप्पणी—लब्धिसारटीकायामुक्तम्-अस्मिन् सत्त्वद्रव्ये तत्कालापकृष्टद्रव्यमिदं—पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमुपरितनस्थितौ "दिवड्ढगुणहाणि भाजिदे" इत्यादिविधानेनाऽपकृष्टस्याऽधोऽतिस्थापनावलिं मुक्त्वा विशेषहीनक्रमेण दद्यात् । पुनस्तदेकभागं...... पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं ...... गुणश्रेण्यां दद्यात् । अवशिष्टैकभागं ....उदयावल्यां दद्यात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निक्षेप उदयावलिकायां विशेषहीनक्रमेण भवति, अनुदयवतीनां तूदयवलिकायां दलिकं न निक्षिपति।

उपर्युक्तदलनिक्षेपक्रमो यद्यपि चूर्णिसूत्रे ऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणं चरमस्थितिखण्डं यावत्खण्डयति, तावदुक्तस्तथाऽप्युत्कीर्यमाणपल्योपमाऽसंख्येयभागरूपचरमस्थितिखण्डाद्धाया द्विचरमसमयपर्यन्तमेव क्रमो वाच्यः,यत उत्कीर्यमाणपल्योपमाऽसंख्येयभागरूपचरमस्थितिखण्डाद्धायाश्चरमसमय एव दलिकमष्टवर्षप्रमाणस्थितौ प्रक्षिपतोऽन्तोभिन्नक्रमश्च चूर्णौ दर्शितः तथा चाऽत्र **कषायप्राभृतचूर्णि—पलिदोवमस्स असंखेज्जभागियमपच्छिमं ट्ठिदिखंडयं तस्स ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमये गुणगारपरावत्तो** "इति। उपर्युक्तानामक्षराणामयं भावः-सम्यक्त्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्य चोत्कीर्यमाणपल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिखण्डाद्धायाश्चरमसमये तत्खण्डगतं सर्वदलिकमुत्कीर्याऽधः प्रक्षिपति, तत्प्रक्षेपक्रमो न पूर्ववत्, किन्तु परावर्तते, तत्प्रक्षेपोऽन्यक्रमेण भवतीत्यर्थः। गुणकारपरावृत्तिर्नाम क्रियाभेदः, स तु पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिघाताद्धाचरमसमये भवति, नाऽर्वाग्। तेनेदं ज्ञापितं भवति–यत्पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयं यावत्प्रागुक्तक्रमेण दलिकनिक्षेपो भवति।

अथाऽपूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रभृति मिश्रमोहनीयस्य द्विचरमस्थितिखण्डं यावद् दृश्यमानदलस्य दीयमानदलस्य च प्ररूपणा क्रियते–यद्दलं निक्षिप्यते तद्दीयमानं दलमुच्यते, तेन सहितं पुरातनसत्तागतदलं दृश्यमानदलत्वेन व्यवह्रियते। तत्रादावेकैकनिषेकमाश्रित्य दृश्यमानदलस्य दीयमानदलस्य चाऽल्पबहुत्वमभिधीयते卐 उदयावलिकायाः प्रत्येकस्मिन्निषेके पुरातनसत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागमात्रमेव दीयते, तेनोदयावलिकाया एकैकस्मिन्निषेके पुरातनसत्तागतदलिकतो दृश्यमानदलिकं विशेषाऽधिकं भवति। विशेषाधिक्यं च दीयमानदलेन ज्ञातव्यम्। गुणश्रेण्या एकैकस्मिन्निषेके पुरातनसत्तागतदलिकतो दीयमानं दलिकमसंख्येयगुणं भवति। न च गुणश्रेण्यां दीयमानं दलिकं सर्वसत्कर्मदलिकस्याऽसंख्यातभागमात्रं भवति, यतः सर्वसत्त्वदलिकमप्रकृष्टभागहारेण भक्त्वा तदेकभागं पुनः पल्योपमाऽसंख्यातभागेन विभज्यैकभागगतदलं गुणश्रेण्या दीयते, तर्हि गुणश्रेणिसत्कनिषेकगत पूर्वसत्वदलिकतो दीयमानदलिकमसंख्येयगुणं कथं भवतीति वाच्यम्, यतो गुणश्रेण्यां निक्षिप्यमाणदलिकस्य सर्वसत्वदलिकसत्काऽसंख्यातभागमात्रत्वेऽपि गुणश्रेण्यां निषेकाणामल्पत्वेन प्रतिनिषेकण प्राप्यमाणदलिकस्य तत्र पूर्वसत्त्वदलिकतोऽसंख्यातगुणत्वे न

卐 टीप्पणी—उदयावल्यां दत्तद्रव्यं प्राक्तनसत्त्वद्रव्यस्याऽसंख्यातैकभागमात्रमिति तेन सत्त्वद्रव्यं साधिकं भवति।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कश्चिद्दोषः । अतो गुणश्रेण्या एकैकनिषेके दीयमानदलिकतो दृश्यमानदलिकं विशेषाऽधिकं भवति विशेषाधिक्यं च पुरातनसत्तागतदलेन बोध्यम् । गुणश्रेण्युपरितने एकैकनिषेके पुरातनसत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागमात्रं दलं प्रक्षिप्यते तेन तत्र पुरातनसत्तागतदलिकतो दृश्यमानं दलं विशेषाऽधिकं भवति, विशेषाधिक्यं च दीयमानदलेनाऽवगन्तव्यम् । तथा गुणश्रेणिप्रथमनिषेकाच्चरमनिषेकं यावद् दृश्यमानदलमसंख्येयगुणं भवति, गुणश्रेणिचरमनिषेकादनन्तरोपरितननिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं भवति, तत ऊर्ध्वं विशेषहीनम् ।

अथोत्कीर्यमाणपल्योपमाऽसंख्येयभागरूपचरमस्थितिखण्डाद्धायाश्चरमसमये दलनिक्षेपक्रम उच्यते—पल्योपमाऽसंख्येयभागरूपचरमस्थितिखण्डगतान्यसंख्येयबहुभागप्रमाणदलिकानि तत्स्थितिघाताद्धायाश्चरमसमय उत्किरति, उत्कीर्यचोदयसमयादारभ्य गुणश्रेणिशिरःपर्यन्तमसंख्येयगुणकारेण विरचयति । अयं गुणश्रेणिनिक्षेपोऽवस्थितो भणितव्यः, वेदनतः समये क्षीण उपर्युपरि वर्धत इत्यर्थः । ततो गुणश्रेणिशिरस उपरितनैकस्थितिस्थानके गुणश्रेणिचरमस्थानकतोऽसंख्येयगुणं विरचयति । अतः प्रभृति वेदनत उदयसमयेषु क्षीयमाणेषु वेदितसमयप्रमाणनिक्षेपः पूर्वपूर्वनिक्षेपतः प्रतिसमयं न्यूनो न्यूनतरो न भवति, किन्तु गुणश्रेणिनिक्षेप उपर्युपरि वर्धते, पूर्वं त्वनुभवतः क्षीणेषु समयेषु शेषशेषसमयप्रमाणनिक्षेप आसीत्, न च गुणश्रेणिनिक्षेप उपर्युपरि वर्धते स्मेत्यर्थः । गुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रत्येकस्थितिस्थानके विशेषहीनक्रमेण गुणश्रेणिनिक्षेपन्यूनाऽष्टवर्षप्रमाणस्थितौ निक्षिपति ।

★ उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"ताधे पाए ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदिसु उदये थोवं पदेसग्गं दिज्जदे । से काले असंखेज्जगुणं जाव गुणसेढीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं तदो उवरिमाणंतरट्ठिदिए वि असंखेज्जगुणं देदि । तदो विसेसहीणं । एवं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयं ति "इति । भावार्थः पुनरयम्—सम्यक्त्वमोहनीयमिश्रमोहनीययोः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रचरमस्थितिखण्डस्य दलिकं किञ्चिन्न्यूनसार्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणं भवति, यतः सत्तागतसर्वदलिकमपि किञ्चिन्न्यूनसार्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणं भवति, अत्र च मिश्रमोहनीयस्योदयावलिकामात्रवर्ज-

★ उक्तं च धवलाटीकायामपि "पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागियं चरमट्ठिदिखंडयं चरिमफालिपदेसग्गमट्ठवस्सम्मि णिक्खिवमाणो उदयादिअवट्ठिदगुणसेढी करेहि । तं जहा—उदए थोवं पदेसग्गं देदि से काले असंखेज्जगुणं देदि । एवं जाव गुणसेढीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं तदो उवरिमणतरट्ठिदिए वि असंखेज्जगुणं देदि । तदो विसेसहीणं देदि । पुणो अणेण विधिणा सेसअट्ठमस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मम्मि विसेसहीण चेव देदि त्ति ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तागतसर्वदलिकं तथा सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽष्टवर्षमात्रस्थितिवर्जसर्वसत्तागतदलिकं पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धाश्चरमसमय उत्कीर्यते, अतश्चरमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये मिश्रसम्यक्त्वयोः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रचरमस्थितिखण्डे दलिकं किञ्चिन्न्यूनसार्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणं भवति । 卐 तद्दलिकं पल्योपमाऽसंख्येयतमभागलक्षणभागहारेण भक्त्वा तदेकमसंख्येयतमभागमुदयसमयादारभ्य प्रागारब्धगलितावशेषगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तं पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणकारेण विरच्य शेषान् बहुभागान् गुणश्रेणिनिक्षेपन्यूनाष्टवर्षप्रमाणस्थितौ प्रक्षिपति, एवं गुणश्रेणौ निक्षिप्तदलिकतोऽसंख्येयगुणं दलिकं गुणश्रेण्यायामतः संख्येयगुणायामे गुणश्रेण्यायामन्यून वर्षाष्टकलक्षणे प्रक्षेपणीयम् । अतो गुणश्रेणिचरमनिषेके प्रक्षिप्तदलिकतस्तदुपरितनाऽनन्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणे दलिके प्रक्षिप्त एवाऽसंख्येयबहुभागमात्रं दलं गुणश्रेणितः संख्यातगुण आयामे विशेषहीनक्रमेण विभक्तं स्यात् , असंख्येयगुणहीने प्रक्षिप्ते त्वसंख्येयबहुभागदलस्य निक्षेपो न स्यात्, तेन गुणश्रेणिचरमनिषेकतस्तदुपरितननिषेकेऽसंख्येयगुणं दलिकं प्रक्षिपति । तत उपरि विशेषहीनक्रमेण तावत्प्रक्षिपति यावदष्टवर्षप्रमाणस्थितेश्चरमनिषेकः, अनेन क्रमेण दलिके प्रक्षिप्ते गुणश्रेणेरुपरितनप्रथमनिषेकात्प्रभृत्यष्टवर्षप्रमाणस्थितेश्चरमनिषेकं यावत्प्रत्येकस्मिन् निषेके प्रक्षिप्तं दलिकं गुणश्रेणिचरमनिषेके निक्षिप्तदलिकतोऽसंख्येयगुणं भवति । इत्थमसंख्येयबहुभागमात्रं दलं गुणश्रेणेरुपरितननिषेकेषु प्रक्षिप्तं भवति, तेनाऽसंख्येयबहुभागमात्रदलस्य निक्षेपः सूपपद्यते, अयं तु गुणश्रेणेः शिर इत्युच्यते, गुणस्य—असंख्येयगुणकारेण श्रेणिस्तस्य शिरः=अवसानमिति व्युत्पत्तेः । अग्रे दृश्यमानप्ररूपणायां गुणश्रेणिशिरःपदेनाऽयमेव निषेको बोध्यः । अतः परं गुणश्रेणिहृदयाद्यवस्थिता भवति, सा च प्राग्व्याख्याता । तत उपरि विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति, यावदतीत्थापनाऽप्राप्ता भवति । एवं क्रमेण

卐 टिप्पणी–उक्तं च जयधवलायाम्—एत्थ ताव सम्मामिच्छत्तस्स चरिमफालीए सह सम्मत्तस्स अपच्छिमं पलिदो० असंखे० भागिगं ट्ठिदिखंडयमोवट्टियूण अट्ठवस्समेत्त सम्मत्तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं ट्ठवेमाणस्स गुणगारपरावत्ति वत्तइस्सामो तं जहा....तक्कालभाविसगचरिमफालिदव्वेण सह सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं घेत्तूण अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मस्सुवरि णिसिंचमाणो उदए थोवं पदेसग्गं देदि । से काले असंखेज्जगुणं देदि एवं जाव गुणसेढिसीसयं पुव्विल्लं ताव असंखे० गुणं देदि । तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखे० गुणं चेव देदि । किं कारणं? सम्मामिच्छत्तचरिमफालिदव्वं किंचूणदिवड्ढगुणहाणिगुणिदसमयपबद्धमेत्तमोकड्डुणभागहारादो असंखेज्जगुणेण पलिदो० असंखे० भागेण खंडेयूण तत्थेयखंडमेत्तमेव दव्वं गुणसेढीए णिक्खविय पुणो सेसबहुभागदव्वमंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहि खंडिदेयखंडस्स णिरुद्धगोवुच्छायारेण णिक्खेव दंसणादो । तम्हा एत्तोप्पहुडि सम्मत्तस्स उदयादिअवट्ठिदिगुणसेढीणिक्खेवो होइ त्ति घेत्तव्वो । एवं गुणसेढीसीसयादो अणंतरोवरिमाए वि एक्किस्से ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं पदेसग्गं णिक्खिवियूण तदो उवरि सव्वत्थ अणंतरोवणिधाए विसेसहीणं चेव देदि जाव अट्ठवासाण चरिमणिसेओ त्ति ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिके प्रक्षिप्ते प्रत्येकस्मिन्निषेके दीयमानदलं पुरातनसत्तागतदलतोऽसंख्येयगुणं भवति । उपर्युक्तो दलिकनिक्षेपक्रमः सम्यक्त्वमोहनीयस्यैव ज्ञातव्यः, कुत इति चेद् ? उच्यते–मिश्रमोहनीयस्य चरमपल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रे खण्डे घातित आवलिकामात्रस्थितिरवशिष्यते, पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमय आवलिकामात्रस्थितिवर्जसर्वमिश्रमोहनीयस्य सम्यक्त्वमोहनीयरूपेण परिणमनात्, सम्यक्त्वमोहनीयस्य तु पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रे चरमस्थितिखण्डे घातितेऽष्टवर्षप्रमाणस्थितिरवशिष्यत इतिकृत्वा पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमये घातितस्थितेर्दलिकान्यष्टवर्षप्रमाणस्थिता उपर्युक्तक्रमेण निक्षिप्यन्ते । वर्षाऽष्टकस्थितिसत्कर्मणि जाते स्थितिखण्डान्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणानि भवन्ति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "अपत्तापाओ सम्मत्तस्स अंतोमुहुत्तियं ट्ठितिखंडगं करोति इति ।" एवं कषायप्राभृतचूर्णावपि ।

दृश्यमानं दलमुदयसमयादरभ्य गुणश्रेणिशीर्षं यावद्दलिकमसंख्येयगुणक्रमेण वक्तव्यम्, गुणश्रेणिचरमनिषेकतोऽनन्तरोपरितननिषेकश्च गुणश्रेणिशीर्षम् तस्योपरि विशेषहीनक्रमेण वक्तव्यम् ।

पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमय उत्कीर्णदलिकतस्तत्परेषामन्तर्मुहूर्तप्रमाणानां स्थितिखण्डानां प्रत्येकस्थितिखण्डोत्कीर्णाद्धायाः प्रथमसमयात्प्रभृतिद्विचरमसमयपर्यन्तदलिकमसंख्येयगुणहीनमुत्कीर्यते, चरमसमये तु संख्येयगुणहीनमुत्कीर्यते । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते–पल्योपमाऽसंख्येयभागलक्षणचरमखण्डोत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमये पल्योपमाऽसंख्येयभागलक्षणचरमस्थितिगतानि शेषाणि सर्वाणि दलिकान्युत्कीर्याऽधस्तनऽष्टवर्षप्रमाणस्थितौ प्रक्षिपति । अथाऽष्टवर्षप्रमाणस्थितेरन्तर्मुहूर्तप्रमाणानि संख्यातानि खण्डानि क्रियन्ते, अतः पल्योपमाऽसंख्येययभागप्रमाणचरमखण्डोत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमये पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमखण्डगतशेषदलिकस्य संख्येयतमभागः प्रत्येकखण्डे प्राप्तः, पल्योपमाऽसंख्येयभागचरमस्थितिखण्डगतात्रशेषदलिकस्यासंख्येयखण्डेषु विभजनात् । अन्तर्मुहूर्तप्रमाणखण्डस्य च प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण तदुत्कीर्णाद्धाचरमसमयपर्यन्तमुत्किरति, अतस्तत्खण्डगतदलिकस्याऽसंख्येयतमभागस्तत्स्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयपर्यन्तमुत्कीर्यते, शेषानसंख्येयभागांश्च चरमसमय उत्किरति । एतेनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणखण्डे यावन्ति दलिकानि सन्ति, तेषामसंख्येयतमभागं मुक्त्वा शेषाऽसंख्येयबहुभागमात्रं दलिकं तत्खण्डसत्कस्थितिघाताद्धायाश्चरमसमय उत्किरति । एवं स्थितिघाताद्धाया द्विचरमसमयपर्यन्तं केवलमेकाऽसंख्येयभागमात्रं दलिकमुत्कीर्यते । सत्तागतदलिकतो यद्वा पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धायाश्चरमस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मय उत्कीर्यमाणदलिकतः संख्येयतमभागप्रमाणं दलिकमन्तर्मुहूर्तप्रमाणखण्डे तिष्ठति, पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रचरमखण्डदलिकस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणेषु संख्येयखण्डेषु विभजनात्। तेनोत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमयेऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितिखण्डगतदलिकस्याऽसंख्येयभागमात्रदलिकस्य प्रागुत्कीर्णत्वेन शेषसर्वदलिकस्योत्कीर्यमाणत्वात् पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिखण्ड-चरमसमयतः संख्येयगुणहीनमन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितिखण्डगतदलिकमुत्कीर्यमाणं भवति।

अथाष्टवर्षप्रमाणस्थितिमत्कर्मणि जातेऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणां स्थितिमुत्किरतो जीवस्य दलिक-निक्षेपो भण्यते—अन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितिखण्डतो दलिकमुत्कीर्योदयसमयादारभ्य गुणश्रेणिशिरः-पर्यन्तमसंख्येयगुणकारेण निक्षिपति। तदुपरितनस्थितौ विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति। तथाहि—● उदयसमये सर्वस्तोकं दलिकं निक्षिप्यते, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि तृतीयसमये-ऽसंख्येयगुणमेवं तावद्वक्तव्यम्, यावद्गुणश्रेणिशिरः. तत ऊर्ध्वं विशेषहीनक्रमेण तावन्निक्षिपति, यावच्चरमनिक्षेपस्थानम्। अयं क्रमस्तावद् वक्तव्यः, यावद् द्विचरमस्थितिखण्डम्। कर्मप्रकृति-चूर्णौ तु यावच्चरमनिक्षेपस्थानमित्यनुक्त्वा यावदुत्कृष्टस्थितिरित्युक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः—"ततो पभिति उवट्टिज्जमाणासु ठितीसु जं पदेसग्गं तं उदते सव्वथोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं एवं जाव गुणसेढीसीसगं त्ति ताव असंखेज्जगुणं असंखेज्ज-गुणं, एत्तो-उवरिल्लाते ठितीते पएसा विसेसहीणा जाव उक्कोसिया ठिति त्ति, एवं जाव दुचरिमखंडग त्ति "इति। अत्र उक्कोसिया ठिति इत्यस्य द्वा अर्थौ भवितुमर्हतः। तद्यथा—घात्यमानखण्डवर्जशेषस्थितेश्चरमस्थितिस्थानकमिति प्रथमोऽर्थः, सत्तागतस्थितेः समया-धिकाऽऽवलिकावर्जशेषसत्तागतस्थितेश्चरमसमयस्थितिस्थानकमित्यपरोऽर्थः। आवलिकाया अति-स्थापनात्वेन तद्वर्जनम्। आद्यपक्षे स्वीक्रियमाणमुत्कीर्णाद्धायाः प्रथमसमयादुत्कीर्णाद्धाया द्विचरमसमयं यावद् घात्यमानस्थितौ दलिकनिक्षेपो न भवेत्, अपि तु घात्यमानस्थितेरधस्ताद्

● टिप्पणी-इदमेवोक्तं भङ्ग्यन्तरेण जयधवलाकारैः, तथा च तद्ग्रन्थः-"पुणो से काले सम्मत्तस्स अंतोमुहुत्तमेत्तायामेण ट्ठिदिखंडयं घेत्तूण गुणसेढि करेमाणस्स गुणगारपरावत्ति वत्तइस्सामो। तं जहा.... ताधे पाए अंतोमुहुत्तट्ठिदिखंडयघादेणोवट्टिज्जमाणासु सम्मत्तट्ठिदिसु जं पदेसग्गं ओकड्डुणभागहारपडि-भागेण घेत्तूणुदयादिगुणसेढिणिक्खेवं करेमाणो उदये थोवं पदेसग्गं देदि, से काले असंखेज्जगुणं देदि। एवमणेण कमेण असंखेज्जगुणं णिसिंचमाणो गच्छइ जाव हेट्ठिमसमयगुणसेढिसीसयं पत्तो त्ति। पुणो एदम्हादो उवरिमाणंतराए वि एक्किस्से ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं णिसिंचदि; किं कारणं? अव-ट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवे कयपइण्णत्तादो। एण्हिमोकड्डिददव्वस्स बहुभागे अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहि समए खंडिय-तत्थेयखंडमेत्तदव्वं विसेसाहियं कादूण संपहियगुणसेढिसीसये णिक्खिवदि त्ति वुत्तं होइ। एत्तो उवरि-मसव्वत्थ विसेसहीणं चेव णिसिंचदि जाव चरिमट्ठिदिमइच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति। एवमट्ठवस्स-ट्ठिदिसंतकम्मियस्स पढमसमए दिज्जमाणस्स परूवणा कया।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिकप्रक्षेपः स्यादिति । द्वितीयपक्षे स्वीक्रियमाणे तूत्कीर्णाद्धाया द्विचरमसमयं यावद् घात्यमानस्थितावपि दलिकनिक्षेपः स्वीक्रियेत । तेनाऽनयोरन्यतरो बहुश्रुतेभ्योऽवगन्तव्यः । श्रीमन्मलयगिरिपादादिभिर्वृत्तिकारैश्चरमस्थितिरित्युक्तम्, न कश्चिद्विशेषो दर्शितः ।

अथ दृश्यमानदलप्ररूपणा क्रियते—पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमये गुणश्रेणिशीर्षसत्कदृश्यमानं दलिकं तु विशेषाऽधिकं भवति, इतः प्रभृति पौर्वसमयिकगुणश्रेणिशीर्षसत्कदृश्यमानदलिकत औत्तरसमयिकगुणश्रेणिशीर्षसत्कदृश्यमानं दलिकं विशेषाऽधिकं वक्तव्यम् । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते— 卐 अष्टवर्षप्रमाणस्थितौ जातायां प्रतिसमयं सत्तागतदलिकस्याऽसंख्यातभागमात्रं दलिकमुत्कीर्यमाणं भवति, तेन प्रत्येकस्मिन् स्थितिस्थानके पुरातनगतदलिकतोऽसंख्येयभागमात्रं दलिकं प्राप्यते । अष्टवर्षस्थितिकरणसमये गुणश्रेणिशीर्षे यावद् दृश्यमानं दलिकमासीत्, ततस्तस्मिन्नेव काले दृश्यमानदलिकं विशेषहीनं तदनन्तरोपरितनस्थितिस्थानके भवति, गुणश्रेणिचरमनिषेकोपरितननिषेकादुपरि विशेषहीनक्रमेण दलिकदर्शनात्, यत्प्रमाणेन हीनम्, ततोऽसंख्येयगुणं दलिकमनन्तरसमये तस्मिन्

卐 टिप्पणी० उक्तं च जयधवलायाम्—संपहि तत्थेव दिस्समाणदव्वं कधमवचिट्ठदि त्ति एदस्स णिण्णयं वत्तइस्सामो । तं जहा पुव्विल्लगुणसेढिसीसयादो संपहियगुणसेढिसीसयमसंखे० गुणं ण होइ । किं कारणमिदि भणिदे संपहि ओकड्डियूण गहिदसव्वदलं पि मिलियूण अट्ठवस्सेगट्ठिदिदव्वं पलिदोवमस्स असंखे०-भागेण खंडेयूणिय खंडमेत्तं चेव होइ, अट्ठवस्समेत्तणिसेगाणमोकड्डणभागहारपडिभागियत्तादो । पुणो तस्स वि असंखे० भागमेत्तं चेव हेट्ठा गुणसेढिम्हि णिसिंचदि सेसमसंखेज्जे भागे संपहिय गुणसेढिसीसयप्पहुडि उवरिमगोवुच्छेसु समयाविरोहेण णिसिंचदि त्ति एदेण कारणेणासंखेज्जगुणं ण जादं, किंतु विसेसाहियमेव दिस्समाणदव्वं होइ त्ति णिच्छेयव्वं । होंत पि असंखेज्जभागुत्तरं चेव णत्थि अण्णो वियप्पो ।

संपहि एदस्सेवासंखेज्जभागाहियत्तस्स फुडीकरणट्ठमेसा परुवणा कीरदे । तं जहा—हेट्ठिमगुणसेढिसीसयदव्वमिच्छामो त्ति दिवड्ढगुणहाणिगुणिदमेगं समयपबद्धं ठुविय तस्स अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्समेत्तो भागहारो ठवेयव्वो । एवं ठुविदे पुव्विल्लसमयगुणसेढिसीसयदव्वमागच्छइ । संपहियगुणसेढिसीसयदव्वे इच्छिज्जमाणे एदं चेव दव्वमेयगोवुच्छ विसेसहीणं ठुविय पुणो एण्हिमोक्कड्डिददव्वस्स बहुभागे अट्ठवस्सेहिं अंतोमुहुत्तूणेहिं खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेणेदं दव्वमब्भहियं कादव्वं । एदं च अहियदव्वं पुव्विल्लगुणसेढिसीसयम्मि समहियगोवुच्छविसेसादो तत्थेव एण्हिं पदिदासंखेज्जसमयपबद्धमेत्तगुणसेढिदव्वादो च असंखेज्जगुणं, तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तरूवाणमेत्थ गुणगारभावेण समुवलंभादो । तत्थतणसव्वदव्वं पेक्खियूण पुण असंखेज्जगुणहीणं, तम्मि सादीरेग ओकड्डुक्कड्डणभागहारेण खंडिदे तत्थेयखंडपमाणत्तादो । तदो एत्तियमेत्तमहियदव्वमवणिय पुध ठुवेयूण तत्थ हेट्ठिमगुणसेढिसीसयम्मि समहियदव्वे एयगोवुच्छविसेसाहियतक्कालपदिदासंखेज्जसमयपबद्धमेत्ते अवणिदे अवणिदसेसमेत्तेण पुव्विल्लगुणसेढिसीसयादो संपहियगुणसेढिसीसयदव्वमहियं होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो । एवमुवरि वि समयं पडि असंखे०गुणं दव्वमोकड्डियूण उदयादिअवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवं० कुणमाणस्स एसा चेव दिज्जमाणदिस्समाणपरुवणा णिरवसेसमणुगंतव्वा' ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिस्थानके निक्षिप्यते तस्य स्थितिस्थानकस्येदानीं गुणश्रेणिशीर्षत्वेनाऽसंख्येयगुणक्रमेण दलिकप्रक्षेपेणाऽसंख्येयसमयप्रबद्धदलिकनिक्षेपात्तथा साम्प्रतगुणश्रेणिशीर्षे निक्षिप्तदलतस्तत्पूर्ववर्तिस्थितिस्थानकेऽसंख्यातभागमात्रं दलिकं प्रक्षिप्यते, साम्प्रतिकगुणश्रेणिशीर्षतः पूर्ववर्तिनिदेकत्वात्तस्य। अतः पूर्वसमयगुणश्रेणिशीर्षसत्कदृश्यमानदलिकतोऽस्मिन्समये गुणश्रेणिशीर्षसत्कदृश्यमानदलिकं विशेषाधिकं भवति, सत्तागतदलस्याऽसंख्येयभागमात्रदलस्योत्कीर्णत्वेन तत्स्थितिस्थानके दीयमानदलस्य पुरातनसत्तागतदलसत्काऽसंख्येयभागमात्रत्वात्। यद्यपीदानीं यद्गुणश्रेणिशीर्षमस्ति, तस्मिन् किञ्चिद्धीनं दलिकं पूर्वसमय आसीत्, किन्तु तस्य नूतननिक्षिप्यमाणदलिकसत्काऽसंख्यातभागमात्रत्वेनाऽविवक्षितत्वात्। एवं शेषसमयेष्वपि भाव्यम्, नवरं स्थितिखण्डाद्धायाश्चरमसमये सर्वत्र (स्थितिखण्डाद्धायाश्चरमसमये) तत्तत्स्थितिस्थानके पुरातनसत्तागतदलिकतोसंख्येयभागमात्रं दलं प्रक्षिप्यते, सत्तागतस्थितिसत्कसंख्येयभागमात्रस्थितेर्घात्यमानत्वात्। तेन तदानीं पौर्वसामयिकगुणश्रेणिशीर्षत औत्तरसामयिकगुणश्रेणिशीर्षे दलं ✽ संख्येयभागेनाऽधिकं भवति। एवं तावद्वक्तव्यं यावद् द्विचरमस्थितिखण्डम्।

यदा सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽष्टवर्षप्रमाणं स्थितिसत्कर्म भवति, ततः प्रभृति प्रतिसमयमनुभागाऽपवर्तनया सत्कर्मणोऽनन्तगुणहीनमनुभागं करोति, प्राक्तु प्रत्यन्तर्मुहूर्तं रसघातेना-

---

✽ (टिप्पणी) णवरि अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मयस्स पढमट्ठिदिखंडयप्पहुडि जाव दुचरिमखंडयं ति ताव एदेसिं संखेज्जसहस्समेत्ताणं ट्ठिदिखंडयाण चरिमफालियासु णिवदमाणियासु भेदो अत्थि, तत्थ दूसे गुणसेढिसीसयम्मि णिवदमाणदव्वस्स पुव्विल्लतत्थतण संचयगोवुच्छ पेक्खियूण संखेज्जदिभागब्भहियत्तदंसणादो। तस्सोवट्टणामुहेण णिण्णयं वत्तइस्सामो। तं जहा....पुव्विल्लसंचयं तत्थतणमिच्छामो त्ति दिवड्ढगुणहाणिगुणिदमेगं समयपबद्धं ट्ठविय पुणो एदस्स भागहारो अट्ठवस्सायामो अंतोमुहुत्तूणो ट्ठवेयव्वो। संपहि पढमट्ठिदिखडयचरिमफालीए पडमाणाए खंडयदव्वमिच्छामो त्ति दिवड्ढगुणहाणिगुणिदसमयपबद्धस्स अंतोमुहुत्तोवट्टिदअट्ठवस्सायामो भागहारत्तेण ट्ठवेयव्वो। एवं ट्ठविदे पढमट्ठिदिखंडयचरिमफालिदव्वमागच्छइ। पुणो एदस्सासंखेज्जभागमेत्तमेव हेट्ठा गुणसेढीए णिक्खिविय सेसबहुभागे अवट्ठिदगुणसेढिसीसयप्पहुडि अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेसु गोवुच्छायारेण णिसिंचदि त्ति अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहि एदम्मि खंडयदव्वे ओवट्टिदे णिरुद्धसमयम्मि अवट्ठिदगुणसेडिसीसयम्मि णिवदमाणदव्वं पुव्विल्लतत्थतणसंचयस्स समणंतरगुणसेढिसीसयस्स च हेट्ठिमसंखेज्जभागमेत्तमा (मा) गच्छदि। तदो सिद्धं तदवत्थाए दुचरिमगुणसेडिसीसयादो चरिमगुणसेडिसीसयदव्वं संखेज्जभागुत्तरं होऊण दीसइ त्ति। एवमुवरि विसव्वत्थ णेयव्वं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालित्ति, रूवूणट्ठिदिखंडमुक्कीरणद्धामेत्तकालमसंखे० भागुत्तरं खंडयचरिमसमए च संखे०भागुत्तरं गुणसेढिसीसयम्मि दीसमाणदव्वं होइ त्ति एदेण भेदाणुवलंभादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽनन्तगुणहीनं करोति स्म। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-* "जाधे अट्ठवासट्ठिदिगं संतकम्मं सम्मत्तस्स ताधे पाए सम्मत्तस्स अणुभागस्स अणुसमयं ओवट्टणा। एसो ताव एक्को किरियापरिवत्तो" इति। सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽष्टवर्षप्रमाणस्थितिसत्कर्मणि जाते यान्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणानि खण्डानि भवन्ति, तत्र पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरखण्डमसंख्येयगुणं भवत्येवं तावद्वक्तव्यम्, यावद् द्विचरमसमयखण्डम्, चरमखण्डं तु पूर्वतः संख्यातगुणं बृहत्तरमिति पञ्चसङ्ग्रहकारादीनामभिप्रायः, अक्षराणि त्वेवम्—

"उक्किरइ असंखगुणं जावदुचरिमंति अंतिमे खंडे।
संखेज्जंसो खंडइ गुणसेढीए तहा देइ ॥१॥" इति।

तन्मूलटीका-स्थित्यग्रादुत्किरति खण्डयत्यन्तर्मुहूर्तम्, भूयोऽसंख्येयगुणतया यावद् द्विचरमखण्डम्, अन्तिमखण्डस्य संख्येयभागं खडयति, गुणश्रेण्यां तथा तेनैव प्रकारेण ददाति, तद्दलमिति गाथार्थः।" इति।

तथैव तद्गाथायाष्टीकायां श्रीमन्मलयगिरिसूरीश्वरैरप्युक्तम्—"ततो द्वितीयस्थितिखण्डमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं पूर्वस्मादसंख्येयगुणमुत्किरति-खण्डयति, प्रागुक्तप्रकारेण चोदयसमयादारभ्य निक्षिपति। एवं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादसंख्येयगुणं स्थितिखण्डकमुत्किरंस्तावद्वक्तव्यो यावद् द्विचरमस्थितिखण्डम्, द्विचरमाच्च स्थितिखण्डादन्तिमं स्थितिखण्डं संख्येयगुणम्।"

तथैव चोक्तं कर्मप्रकृतिटीकायामुपाध्यायप्रवरैरपि—"ततो द्वितीयं स्थितिखण्डमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं पूर्वस्मादसंख्येयगुणमुत्किरति, उत्कीर्य च प्रागुक्तप्रकारेणोदयसमयादारभ्य निक्षिपति, एव पूर्वस्मात्पूर्वस्मादसंख्येयगुणान्यन्तर्मौहूर्त्तिकान्यनेकानि स्थितिखण्डान्युत्किरति निक्षिपति च तावद्यावद् द्विचरमस्थितिखण्डम्, द्विचरमाच्च स्थितिखण्डादन्तिमं स्थितिखण्डं संख्येयगुणम्।" इति।

---

* टिप्पणी-जं सम्मत्ताणुभागस्स पुव्वं विट्ठाणियसरुवस्स एण्हिमेगट्ठाणियसरुवेणाणुसमयोवट्टणा पारद्धा त्ति। पुव्वमंतोमुहुत्तेण कालेणाणुभागखडयं णिव्वत्तेदि। इदाणिं पुण खंडयघादमुवसंहरियूण समए समए सम्मत्तस्स अणुभागमणंतगुणहाणीए ओवट्टेदि त्ति वुत्तं होइ। तं पुण अणुसमयोवट्टणमेवमणुगंतव्वं—अणंतरहेट्ठिमसमयाणुभागसंतकम्मादो सपहियसमये अणुभागसंतकम्ममुदयावलियबाहिरमणंतगुणहीणं एण्हिमुदयावलियबाहिराणुभागसंतकम्मादो उदयावलियब्भंतरमणुपविसमाणमणंतगुणहीणं एव समये समये जाव समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहो त्ति। तत्तो परमावलियमेत्तकालमुदयं पविसमाणाणुभागस्स अणुसमयोवट्टणा त्ति। (भाग-१३ पृ. सं. ६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मप्रकृतिचूर्णौ तथा श्रीमन्मलयगिरिपादानां कर्मप्रकृतिटीकायां पूर्वपूर्वखण्डत उत्तरोत्तरखण्डं कियद्गुणं तत्र निर्दिष्टम्, अपि तु द्विचरमखण्डाच्चरमखण्डं संख्येयगुणमित्येवोक्तम् । अक्षराणित्वेवम्–"**सम्मंतदुचरिमखंडगातो चरिमखंडगं संखेज्जगुणम्**" इति कर्मप्रकृतिचूर्णि । तथा च—

"**एवमान्तर्मौहूर्तिकान्यनेकानि स्थितिखण्डान्युत्किरति निक्षिपति च तावद् यावद् द्विचरमं स्थितिखण्डम् । द्विचरमात्तु खण्डाच्चरमखण्डं संख्येयगुणम् ।**" इति **मलयगिरीया टीका** । उपर्युक्तैरक्षरैरिदं ज्ञापितं भवति–यत्पञ्चसङ्ग्रहकारमतेनाऽष्टवर्षप्रमाणस्थितिसत्कर्मणि जाते पूर्वपूर्वखण्डतो द्विचरमखण्डपर्यन्तमसंख्येयगुणानि खण्डानि भवन्ति, किन्तु कर्मप्रकृतिकारैस्तच्चूर्णिकारैश्च पूर्वपूर्वखण्डतः कियद्गुणं स्थितिखण्डं भवति यावद् द्विचरमखण्डमिति तत्र निर्दिष्टम्, पञ्चसङ्ग्रहमूलकारानुसृत्य श्रीमन्मलयगिरिपादैः पञ्चसङ्ग्रहटीकायां पूर्वपूर्वखण्डतो द्विचरमखण्डं यावदसंख्येयगुणमुक्तम् । किन्तु कर्मप्रकृतिटीकायां नोक्तं तैः । उपाध्यायप्रवरैस्तु पञ्चसङ्ग्रहकाराणामभिप्रायेण पूर्वपूर्वतो द्विचरमखण्डं यावदसंख्येयगुणमभिहितमित्यस्माकं मतिः । कषायप्राभृतचूर्णिकारैरपि द्विचरमखण्डाच्चरमखण्डं संख्येयगुणमित्युक्तं न तु द्विचरमात्पूर्वेषां खण्डानां पूर्वपूर्वतोऽसंख्येयगुणत्वम् । किञ्चाऽल्पबहुत्वाऽधिकारे चरमखण्डतोऽष्टवर्षप्रमाणस्थितौ सत्यां प्रथमखण्डं संख्यातगुणमिति कषायप्राभृतचूर्णिकारैर्निगदितम्, तथा चाऽत्र **कषायपाभृतचूर्णिः**–"**सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं तस्सेव चरमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं अट्ठवस्सस्स ट्ठिदिगे संतकम्मे सेसे जं पढम ट्ठिदिखंडयं तं संखेज्जगुणं**" इति पूर्वपूर्वतोऽसंख्येयगुण उत्तरोत्तरखण्डे स्वीक्रियमाण इदमल्पबहुत्वं न संगच्छेत्, प्रथमखण्डस्याऽसंख्येयगुणहीनत्वप्रसंगात्, अतः पञ्चसङ्ग्रहकारादिभिर्यदसंख्येयगुणमुक्तं तन्मतान्तरं प्रतिभाति, द्विचरमखण्डात्तु चरमखण्डं संख्येयगुणमित्यत्र न कश्चिद्विसंवादः । यद्यष्टवर्षप्रमाणस्थितिसत्कर्मणि जाते पूर्वपूर्वखण्डत उत्तरोत्तरखण्डमसंख्येयगुणं स्वीक्रियेत, तर्हि प्रथमखण्डप्रभृतित्रिचरमखण्डपर्यवसानानि समुदितान्यपि खण्डान्यावलिकाया असंख्येयभागमात्राणि भवेयुः, तथा द्विचरमखण्डं वर्षाष्टकस्यैकसंख्येयभागमात्रं स्वीकर्तव्यं चरमखण्डं चाऽष्टवर्षस्य संख्येयबहुभागमात्रं मन्तव्यम् । कुत इति चेद् ? उच्यते–आत्रिचरमखण्डं कस्यचिदपि खण्डस्याऽऽवलिकायाः संख्येयतमभागमात्रत्वे स्वीक्रियमाणे तदुत्तरवर्तिखण्डस्याऽसंख्येयाऽऽवलिकाप्रमाणत्वं स्यात्, तच्च नेष्टं स्थितिसत्कर्मणोऽष्टवर्षप्रमाणत्वेन संख्येयाऽऽवलिकाप्रमाणत्वात् । इत्थं पूर्वोक्तक्रमेण चरमखण्डं वर्जयित्वा सम्यक्त्वस्य सर्वस्थितिसत्त्वं विनाशयति ।

संप्रति चरमखण्डस्य प्ररूपणा क्रियते । चरमखण्डं द्विचरमखण्डतः संख्येयगुणं चरमसि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थितिखण्डं घातयंस्तदन्तर्गतगुणश्रेण्याः संख्येयतमभागमप्युत्किरति, तथा चाऽभिनवगुणश्रेणिशिरः करोति गुणश्रेण्यायामश्च पूर्वतस्तत्संख्येयभागमात्रेण हीनो जायते, चरमखण्डेन सह गुणश्रेणि-सत्कर्मसंख्येयभागस्य खण्डयमानत्वात् । अतो गुणश्रेण्याः संख्येयतमभागोऽन्याश्च तदुपरितन्या घात्यमानगुणश्रेण्यायामतः संख्येयगुणाः स्थितयश्चरमखण्डेन घात्यन्ते । चरमखण्डमुत्कीर्य तद्दलिकमुदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणक्रमेण प्रक्षिपति, । तद्यथा-उदयसमये सर्वस्तोकम्, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणमेवं क्रमेण तावद् वक्तव्यम्, यावद् गुणश्रेणेरभिनवशिरः।एवं क्रमेण-चरमखण्डे विनष्टे गुणश्रेण्यायाममात्रे च स्थितिसत्कर्मणि जाते आत्मा कृतकरण इत्युच्यते । तथा चाऽऽह मूलकारः-' कयकरणद्धाए पच्छिमे होइ'' त्ति पश्चिमे' चरमखण्ड उत्कीर्णे कृतकरणाद्धायां 'भवति' वर्तते कृतकरणो भवतीत्यर्थः । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ- "सम्मत्तदुचरिमखंडगातो चरिमखंडगं संखेज्जगुणं चरिमखंडगं आघातिज्जमाणं गुणसेढीए संखेज्जतिभागो अन्नाओ य उवरि संखेज्जगुणाओ ठितीओ आघातिज्जंति सम्मत्तस्स चरिमे ठितिखंडगे पढमसमये आघातिए ओवट्टिज्जमाणीसु ठितीसु जं पदेसग्गं उदये दिज्जति तं थोवं से काले असंखेज्जगुणं असंखेज्जगुणं जाव ट्ठितीखंड-गस्स पढमसमयं पत्तो त्ति । सा चेव ट्ठितीगुणसेढीसीसयं जात। एवं समए समए उक्किरिज्जमाणं दलियं चरमसमए उक्कडमाणो उदए पदेसग्गं थोवं देति । से काले असंखेज्जगुणं जाव गुणसेढीसीसयं चरमट्ठितिखंडगे निट्ठिए कयकरणिज्जो त्ति भण्णत्ति '' इति ।

तथैव मलयगिरीयटीकायामपि-द्विचरमात्त् खण्डाच्चरमखण्डं संख्येयगुणं तदपि च गुणश्रेण्याः संख्येयतमो भागः।अन्याश्च तदुपरि संख्येयगुणस्थितयः । उत्कीर्य च तद्दलिकमुदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणतया प्रक्षिपति । तद्यथा-उदयसमये स्तोकं ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, एवं तावद्वाच्यं यावद् गुणश्रेणिशिरः । अत ऊर्ध्वमुत्कीर्यमाणमेव चरमस्थितिखण्डं ततो न तत्र प्रक्षिपति । चरमे च स्थितिखण्ड उत्कीर्णे सत्यसौ क्षपकः कृतकरण इत्युच्यते ।''इति । तथैव चोक्तं कर्मप्रकृतिटीकायामुपाध्यायप्रवरैः-''द्विचरमाच्च स्थि-तिखण्डादन्तिमं स्थितिखण्डं संख्येयगुणं तस्मिंश्चाऽन्तिमे स्थितिखण्डे खण्ड्यमाने संख्येयभागं गुणश्रेण्याः खण्डयति, अन्याश्च तदुपरितनीः संख्येयगुणा स्थितीस्ता-वन्मात्रत्वादेव चरमखण्डस्य, उत्कीर्य च तद्दलिकमुदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुण-तया प्रक्षिपति । तद्यथा-उदयसमये स्तोकं ततो द्वितीयसमये संख्येयगुणं ततो-ऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणमेवं तावद् वाच्यं यावद् गुणश्रेणिशिरः । अत ऊर्ध्वं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तूत्कीर्यमाणमेव दलिकं प्राप्यते न तत्प्रक्षेपाधारभूतमिति न तत्काऽपि प्रक्षिपति चरमे च स्थितिखण्ड उत्कीर्णे सत्यसौ क्षपकः कृतकरण इति परिभाष्यते"। इति।

ननु चरमखण्डमुत्किरन्नुत्कीर्यमाणदलिकं प्रक्षिपत्युत नेति चेद् ? उच्यते-उपर्युक्तैष्टीकाकारादीनामक्षरैरिदं ज्ञायते, चरमखण्डमुत्किरन् घात्यमानस्थितौ प्रक्षिपतीति। कर्मप्रकृतिचूर्णिकाराणां मतेन चरमखण्डस्य प्ररूपणा परिसमाप्ता।

अथ **कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन** चरमखण्डस्योत्कीर्णविधिः प्रदश्यते-सम्यक्त्वमोहनीयस्य द्विचरमखण्डाच्चरमखण्डं संख्येयगुणम्। चरमखण्डं च घातयन् गुणश्रेणेः संख्येयतमभागमप्युत्किरति। तद् घात्यमानगुणश्रेणिसत्कबहुसंख्येयभागमात्रस्थितयस्तथा ततः संख्यातगुणा अन्या गुणश्रेणिसंख्येयभागोपरितनस्थितयश्चरमखण्डे घात्यन्ते। उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ**– **"सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे जाओ ट्ठिदिओ सम्मत्तस्स सेसाओ ताओ ट्ठिदिओ थोवाओ। दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो गुणसेढीए संखेज्जे भागे आगाएदि अण्णाओ च उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ।"** इति। इदमुक्तं भवति–सम्यक्त्वमोहनीयस्य चरमखण्डं द्विचरमखण्डतः संख्येयगुणम्, चरमखण्डेन सहावस्थितगुणश्रेणेः संख्येयबहुभागा घात्यन्ते। अतश्चरमखण्डमुत्किरंस्तद्गताऽवस्थितगुणश्रेणेः संख्येयबहुभागानुत्किरति। खंडयमानाऽवस्थितगुणश्रेण्यायामतः संख्येयगुणाः स्थितीर्गुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनीश्चरमखण्डेनोत्किरति, अवस्थितगुणश्रेणिसंख्येयभागमुक्त्वा शेषसर्वस्थितिसत्त्वं चरमखण्डे घात्यत इत्यर्थः। चरमखण्ड उत्कीर्णे सम्यक्त्वमोहनीयस्थितिसत्त्वमवस्थितगुणश्रेणिसंख्येयभागप्रमाणमन्तर्मुहूर्तं भवति।

अथ चरमखण्डस्य दलिकनिक्षेपः–चरमखण्डं घातयंस्तदुत्कीर्णाद्धाया प्रथमसमये दलिकान्युत्कीर्योदयसमयादारभ्याऽसंख्येयगुणकारेण तावत्प्रक्षिपति, यावदुत्कीर्यमाणखण्डस्य प्रथमस्थितिस्थानकमप्राप्तं भवति। उदयसमयादारभ्य घात्यमानखण्डवर्जसर्वस्थितिस्थानकेऽसंख्येयगुणकारेण प्रक्षिपतीति यावत्। असंख्येयगुणकारेण प्राप्तं चरमस्थितिस्थानं गुणश्रेणिनूतनशीर्षमुच्यते। गुणश्रेणिशीर्षतस्तदुपरितनप्रथमस्थितिस्थानकेऽसंख्येयगुणहीनं दलिकं प्रक्षिपति, ततःपरं विशेषहीनक्रमेण तावन्निक्षिपति यावत्पुरातनगुणश्रेणिशिरः, गुणश्रेणिनिक्षेपश्च गलितऽवशेषमात्रो बोध्यः,वेदनतः समयेषु शेषेसु दलप्रक्षेपो भवति पुनरुपरि न वर्धत इत्यर्थः। गुणश्रेणिशिरसोऽनन्तरस्थानकेऽसख्यातगुणहीनं तत उपरितनस्थानकेषु विशेषहीनक्रमेण तावत्प्रक्षिपति,यावदतीत्थापनारूपसमयाधिकावलिकां वर्जयित्वा शेषसर्वस्थितिः। अयं निक्षेपक्रमस्तावद् वक्तव्य, यावदुत्कीर्णाद्धाया द्विचरमसमयः, यदुक्तं **कषायप्राभृतचूर्णौ**–**"सम्मत्तस्स चरिट्ठिदिखंडए**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसमयमागाइदे ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं। से काले संखेज्जगुणं ताव जाव ट्ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए चरिमसमयअपत्तो त्ति सा चेव ट्ठिदी गुणसेढीसीसयं जादं। जमिदाणिं गुणसेढिसीसयं तदो उवरिमाणंतरए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं जाव पोराणगुणसेढीसीसयं ताव। तदो उवरिमाणंतरट्ठिदिए असंखेज्जगुणहीनं तदो विसेसहीणं। सेसासु वि विसेसहीणं। विदियसमये जमुक्कीरदि पदेसग्गं तं पि एदेणेव कमेण दिज्जदि। एवं ताव जाव ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाए दुचरिमसमयो त्ति" इति।

इदमत्र हृदयम्–सम्यक्त्वमोहनीयस्य चरमखण्डे दलिकं किञ्चिन्न्यूनसार्धद्विगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणं भवति तदपकृष्टभागहरेण भक्त्वैकभागमुत्किरति। उत्कीर्णं दलिकं च पल्योपमाऽसंख्यातभागेन भक्त्वाऽसंख्येयबहुभागानुदयसमयादारभ्य गुणश्रेणिसत्काऽभिनवशीर्षं यावदसंख्येयगुणक्रमेण निक्षिपति, शेषैकभागं भूयः पल्योपमाऽसंख्येयभागेन भक्त्वा बहुभागगतदलं गृहीत्वा गुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रथमे निषेकेऽसंख्येयगुणहीनं प्रक्षिप्योत्तरोत्तरनिषेके विशेषहीनक्रमेण तावत्प्रक्षिपति यावत्पुरातनगुणश्रेणिशिरः। ततः शेषैकभागगतदलमादाय पुरातनगुणश्रेणिशिरस उपरितने प्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं दलिकं प्रक्षिप्योत्तरोत्तरनिषेके विशेषहीनक्रमेण तावत्प्रक्षिपति यावदतीत्थापनावर्जस्थितेश्चरमनिषेकः। उपर्युक्त दलनिक्षेपक्रमश्चरमस्थितिखण्डस्योत्कीरणाद्धाया द्विचरमसमयपर्यन्तं ज्ञातव्यम्।

अथ चरमस्थितिखण्डस्य प्ररूपणाप्रस्तावे दृश्यमानं दलं निरूप्यते–उदयसमयादारभ्य गुणश्रेणिसत्कनूतनशीर्षं यावदसंख्येयगुणकारेण दृश्यमानं दलं भवति। तदनन्तरोपरितननिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं भवति, ततः परमसंख्येयगुणक्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत्पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमस्थितिखण्डाद्धाचरमसमयकृताऽवस्थितगुणश्रेणिशिरः। ततः परमन्तर्मुहूर्तप्रमाणचरमस्थितिखण्डाद्धाप्रथमसमयतः प्राक्तनसमयकृताऽवस्थितगुणश्रेणिशीर्षं यावद्दलं विशेषाऽधिकक्रमेण दृश्यते, तदुपरितनसर्वनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण दलं दृश्यते, एवं तावद्वक्तव्यम्, यावच्चरमखण्डोत्कीरणाद्धाया द्विचरमसमयः।

अथ चरमखण्डस्योत्कीरणाद्धायाश्चरमसमये दलनिक्षेप उच्यते–चरमखण्डस्योत्कीरणाद्धायाश्चरमसमये चरमखण्डगतशेषसर्वदलिकमुत्कीर्योदयसमयादारभ्य गलिताऽवशेषगुणश्रेणिसत्कनूतनशीर्षपर्यन्तमसंख्येयगुणकारेण निक्षिपति, तत ऊर्ध्वं चरमखण्डे न प्रक्षिपति। तत्राऽप्ययं विशेषः– उत्कीर्णदलिकमसंख्यातगुणितपल्योपमप्रथमवर्गमूलरूपाऽसंख्यातभागहारेण विभज्य तदेकाऽसंख्यातभागमुदयसमयादारभ्य गुणश्रेण्यायामस्य द्विचरमस्थानपर्यन्तमसंख्येयगुणकारेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रक्षिपति । शेषबहुभागांश्च गुणश्रेण्यायामस्य चरमस्थाने प्रक्षिपति । अतो द्विचरमनिक्षेपस्थानगत-दलिकतश्चरमनिक्षेपस्थानके दलिकमसंख्यातगुणितपल्योपमप्रथममूलरूपाऽसंख्यातगुणं भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ —"ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमए ओकड्डमाणो उदये पदेसग्गं थोव देदि, से काले असंखेज्जगुणं देदि एव जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं । गुणगारो वि दुचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गादो चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।"इति 卐 तथोदयसमयलक्षणप्रथमनिक्षेपस्थानके यद् दलिकं क्षिपति, ततोऽसंख्येयगुणं द्वितीयस्थितिस्थाने प्रक्षिपति । अस्माद् गुणकाराद् द्वितीयस्थानके निक्षिप्तदलिकाऽपेक्षया तृतीयनिक्षेपस्थानके निक्षिप्यमाण-दलिकस्य गुणकारोऽसंख्यातगुणः । एवं तावद् वक्तव्यं यावद् द्विचरमसमयः । उदाहरणार्थं प्रथमनिक्षेपस्थानके पञ्चकोटीकोटीप्रमाणं दलिकं निक्षिपति, द्वितीयनिक्षेपस्थानके पञ्चाशत्कोटीकोटीप्रमाणं दलिकं प्रक्षिपति, तृतीयनिक्षेपस्थानके पञ्चसहस्रकोटीकोटीप्रमाणं दलिकं निक्षिपति । चतुर्थनिक्षेपस्थानके पञ्चाशच्छतसहस्रकोटीकोटीप्रमाणं दलिकं प्रक्षिपति ।

क्षायिकसम्यक्त्वाधिकारे निक्षेपभेदेन गुणश्रेणिस्त्रिधा भवति, सा पुनः समासतः स्मृतिविषयीक्रियते, तद्यथा—

(१) अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य सम्यक्त्वमोहनीयमिश्रमोहनीययोः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धाया द्विचरमसमयपर्यन्तं गलिताऽवशेषा गुणश्रेणिः, इति प्रथमा ।

(२) सम्यक्त्वमोहनीयमिश्रमोहनीययोः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमयात्प्रभृति सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽन्तमुहूर्तप्रमाणद्विचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धायाश्चरमसमयपर्यन्तमवस्थिता गुणश्रेणिः, इति द्वितीया ।

(३) सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽन्तमुहूर्तप्रमाणचरमखण्डस्योत्कीर्णाद्धायाः प्रथमसमयात्प्रभृतिगलिताऽवशेषगुणश्रेणिः, इति तृतीया ।

कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन दलिकनिक्षेपविवरणं समाप्तम् ।

अथ कृतकरणस्याऽन्यतरगतावुत्पत्तिः क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्तिश्च निरूप्यते एवं सम्यक्त्वमोहनीयस्य चरमस्थितिखण्डे घातिते गुणश्रेणेः संख्येयभागस्य घातितत्वाद् गलिताऽवशेषगुणश्रेणिसत्कसंख्येयबहुभागमात्रस्थितिसत्कर्मा कृतकरणः, कृतं=निष्पादितं करणं=यथाप्रवृत्ताऽपूर्वकरणाऽ

卐 टिप्पणी-उक्तं च जयधवलायामपि "एदं घेत्तूण कदकरणिज्जद्धामेत्तहेट्ठिमणिसेगेसु पदेसविण्णासं कुणमाणो उदए थोवं पदेसग्गं देदि, असंखेज्जसमयपबद्धपमाणत्ते वि तस्स उवरिमणिसेगेसु णिसिंचमाणदव्वावेक्खाए थोवभावाविरोहादो ।से काले असंखेज्जगुणं देदि । को गुणगारो ? तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तरूवाणि एवं जावदुचरिमणिसेगो त्ति । णवरि हेट्ठिमाणंतरणिसेगगुणगारादो उवरिमाणंतरणिसेगगुणगारो असंखेज्जगुणवड्ढीए सव्वत्थ णेयव्वो ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवृत्तिकरणलक्षणं येन स इति व्युत्पत्तिः ।

卐 तदानीं तस्याऽनिवृत्तिकरणं समाप्तं भवति, क्षीणायुष्ककृतकरणश्चतुर्गतिष्वन्यतमायामुत्पद्यते कृतकरणे जाते लेश्याऽपि परावर्तते, पूर्वं शुक्ललेश्याऽऽसीत्, सम्प्रत्यन्यतमा लेश्या भवति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"कयकरणो तंमि काले कालं पि करेज्जा तेण चउगति लब्भति । लेस्सा परिणामं विपरिणामेज्जा पुव्वं सुक्कलेसा आसि संपयं अन्नयरीए वि होज्जा इति । क्षीणायुष्को गतिचतुष्टयेऽक्षीणायुष्को मनुष्यगतावेवाऽवशिष्टाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणसम्यक्त्व-मोहनीयस्थितिसत्त्वमुदयोदीरणाभ्यामनुभवति । सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽऽवलिकामात्रे शेषे स्थितिसत्त्वे उदीरणाऽपि व्यवच्छिद्यते । शेषाऽऽवलिकामात्रं स्थितिसत्त्वं केवलं शुद्धेनोदयेनाऽनुभूय निर्लेपी भवति । सम्यक्त्वमोहनीये नाशितेऽनन्तरसमये जन्तुः क्षायिकसम्यक्त्वमश्नुत इत्यर्थः ।

ननु मिथ्यात्वादिदर्शनत्रिकस्य क्षये किमसौ जन्तुरदर्शनो जायते उत नेति चेद् ? उच्यते—सम्यग्दृष्टिरेवाऽसौ । ननु सम्यग्दर्शनपरिक्षये कुतः सम्यग्दृष्टित्वम् ? उच्यते, निर्मदनीकृतकोद्रवकल्पा अपनीतमिथ्यात्वभावा मिथ्यात्वपुद्गला एव सम्यग्दर्शनम्, सम्यक्त्वमोहनीय-पुद्गला इत्यर्थः । तत्परिक्षये च तत्त्वश्रद्धानलक्षणपरिणामाप्रतिपातः, सूक्ष्माभ्रपटलापगमे चक्षुर्दर्शनमिव विशुद्धतरापत्तेः यदाह—भाष्यसुधाम्भोनिधिः—

खीणम्मि दंसणतिए किं होइ तओ तिदंसणाईओ ।
भन्नइ सम्मदिट्ठि सम्मत्तखए कओ सम्मं ? ॥१॥
निव्वलियमयणकुद्दवरूवं मिच्छत्तमेव सम्मत्तं ।
खीणं न उ जो भावो सद्दहणा लक्खणो तस्स ॥२॥
सो तस्स विसुद्धयरो जायइ सम्मत्तपुग्गलक्खयओ ।
दिट्ठिव्व सण्हसुद्धब्भपडल विगमे मणुसस्स ॥३॥
यदि वा

जह सुद्ध जलाणुगयं, दुद्धं सुद्धं जलक्खए सुतरं ।
सम्मत्तसुद्धपुग्गलपरिक्खए दंसणं एवं ॥
(विशेषा० भा० गा० १३१८-२१)

卐 टिप्पणि० उक्तं च जयधवलायां स्थितिविभक्त्यधिकारे-"तदो तेसु गदेसु सम्मत्तचरिमफालिमागाएंतो कदकरणिज्जकालमेत्ताओ ट्ठिदीओ मोत्तूण आगाएदि । पुणो तं घेत्तूण गुणसेढिणिक्खेवेण णिक्खिवते अणियट्टिकरणं समप्पदि ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं क्षायिकसम्यक्त्वप्रस्थापको मनुष्यो भवति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"**जिणकाले वट्टमाणो मणुस्सो अट्ठवासाउओ उप्परिं वट्टमाणो मणुस्सो पट्ठवेंतो, निट्ठवगो चउसु वि गतीसु भवति।**" इति। क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्तेरनन्तरं बद्धवैमानिकसुरायुष्केषु जन्तुषु कश्चिल्लब्धवराक्रम उपशमश्रेणिमपि समारोहति, नाऽन्यगतिबद्धायुष्कः, अबद्धायुष्कस्तु क्षपकश्रेणिमारभते, उक्तं च **पञ्चसङ्ग्रहे उपशमनाऽधिकारे**–

कयकरणो तक्काले कालंपि करेई चउसु वि गईसु।
वेइयसेसो सेढीअण्णयरं वा समारुहइ ।४६।। इति ।

तथैव चोक्तमुपाध्यायप्रवरैः–"**तत्र यो वैमानिकेष्वेव बद्धायुष्कः क्षीणसप्तकः स उपशमश्रेणिमारोहति, अबद्धायुष्कस्तु क्षपकश्रेणिम्, अन्यगतिबद्धायुष्कस्तु न कामपि श्रेणिमारभते श्रेणिकादिवदिति ज्ञेयम्** इति ।

नन्वबद्धायुष्कः कश्चिन्मनुष्यः साम्प्रतभवे तीर्थकृन्नामकर्मनिकाच्याऽऽयुश्चाऽबद्ध्वा क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयेत्, तर्हि स क्षपकश्रेणिमारोहेत् ? उत न ? इति चेद् ! उच्यते, तद्भवे निकाचितजिननामकर्माऽबद्धायुष्कः क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्तेरनन्तरं तद्भवे क्षपकश्रेणिं नाऽऽरोहति । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**–"**अह न बद्धाउओ तो खवगसेढिमेव पडिवज्जति, जत्ति ण तित्थयरसंतकंमिगो ।**"

अथ कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन कृतकृत्यवेदको निवर्ण्यते-कृतं निष्पादितं कार्यं स्थितिघातादिलक्षणं येन, स कृतकृत्यः, तस्य हि स्थितिघातादयो न भवन्ति । 卐 कृतकृत्ये जाते तत्प्रथमसमयात्प्रभृत्यन्तर्मुहूर्तं यावद् म्रियेत, तर्हि नियमतः सुरगतावुत्पद्यते । शेषगतिषूत्पद्यमानः

卐 टिप्पणि० कृतकृत्याद्धायां वर्तमानः कश्चित्कालमपि कृत्वा चतसृणां गतीनामन्यतमायां गतावुत्पद्यते, लब्धिसारे कृतकृत्याद्धायाश्चत्वारो विभागाः कृताः, यदि प्रथमविभागे कालं करोति तर्हि देवगतावेवोत्पद्यते । द्वितीयविभागे कालं करोति तर्हि देवगतौ मनुष्यगतौ वोत्पद्यते, तृतीयविभागे म्रियते, तर्हि देवनरतिर्यक्ष्वन्यतमायां गतावुपजायते, चतुर्थविभागे कालं कृत्वा देवनरतिर्यग्नरकेष्वन्यतमायां गतावुत्पद्यते । इति लब्धिसारकाराऽऽह ! तट्टीका—तस्मिन्नेवकृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकाले चतुर्भागो कृते प्रथमसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तमात्रे प्रथमे चतुर्थभागे मृतो देवेष्वेवोत्पद्यते, नाऽन्यगतिषु तत्काल इतरगतित्रयगमनकारणसंक्लेशपरिणामाऽभावात्तदनन्तरं द्वितीयचतुर्थभागेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे मृतो देवमनुष्यगत्योरेवोत्पद्यते। नाऽन्यगतिद्वये,तत्काले तद्गतिद्वयगमननिबन्धनसंक्लेशपरिणामाऽनुपपत्ते। तदनन्तरं तृतीये चतुर्थभागेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे मृतो देवमनुष्यतिर्यग्गतिष्वेवोत्पद्यते, न नरकगतौ तत्काले नरकगतिगमनहेतुसंक्लेशपरिणामाऽसम्भवात् । तदनन्तरं चरमचतुर्थभागे मृतः कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि चतसृष्वपि देवमनुष्यतिर्यग्नरकगतिषूत्पद्यते, तत्काले तद्गतिगमननिबन्धनसंक्लेशपरिणामोपलम्भात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतकृत्याऽद्धाया अन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्त एव म्रियते लेश्यापरावृत्तिश्चाऽपि भवति। इदमुक्तं भवति,★ यथाप्रवृत्तकरणप्रारब्धा तेजःपद्मशुक्ललेश्यास्वन्यतमा लेश्या, कृतकृत्याद्धायामन्तर्मुहूर्तं यावद् वर्तते, ततो लेश्या परावर्तते, यद्वा यथाप्रवृत्तकरणे प्रारब्धाऽन्यतरा या शुभालेश्याऽऽसीत् सा कृतकृत्याद्धायां शुक्लेश्या भवति। ततः कृतकृत्यवेदकाद्धायामन्तर्मुहूर्तं गत्वैवाऽन्यतरा लेश्या भवति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"ताधे मरणं पि होज्ज लेस्सापरिणामं पि परिणामेज्ज काउतेउपम्मसुक्कलेस्साणामण्णतरो। ......पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि देवेसु उववज्जदि णियमा। जइ णेरइएसु वा तिरिक्खजोणिएसु वा मणुसेसु वा उववज्जदि णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो।"इति।

कृतकृत्यवेदकाद्धां वर्तमानो जन्तुर्विशुद्धयां संक्लेशे वा भवन्नपि प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण दलिकमुदीरयति. एवं 卐 क्रमेणोदीरयतस्तस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा भवति।

★ टिप्पणी० लब्धिसारे लेश्यापरावृत्तिरित्थं दर्शिता-तद्यथा-प्रथमभागे म्रियमाणस्य लेश्यापरावृत्तिर्न भवति, तस्य जन्तोर्देवगतावेवोत्पत्तेः। द्वितीये तृतीये चतुर्थे वा भागे यो म्रियते, स शुभलेश्याया हान्या क्रमशो जघन्यकापोतलेश्यां प्राप्नोति। तत्राऽपिदेवगतावुत्पद्यमानस्य जीवस्य लेश्यापरावृत्तिर्न भवति, इदं सर्वं कृतकृत्याद्धायां म्रियमाणाऽपेक्षया प्रोक्तम्। यः पुनर्बद्धायुष्कः कृतकृत्याद्धामक्षीणाऽऽयुष्को भवति, तस्य क्षायिकसम्यक्त्वप्राप्तितो मृत्युकालेऽनुगति लेश्या परावर्तते।

卐 टिप्पणी० प्रतिसमयं सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽनुभागोऽनन्तगुणहीनो भवति एवं क्रमेण हीयमानाऽनुभागस्तावद्वक्तव्यो यावत्कृतकृत्याद्धायाश्चरमसमयः। यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमये दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भकस्य तेजःपद्मशुक्लेश्यानां शुभानां मध्ये यया लेश्यया क्षपणा प्रारब्धा तल्लेश्योत्कृष्टांशः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिक्रमेणाऽनिवृत्तिकरणचरमसमये परिपूर्णो भवति। पुनस्तदनन्तरं कृतकृत्यवेदककालस्याऽभ्यन्तरे प्रथमे भागे यदि म्रियते तदा तत्राऽपि तल्लेश्यापरावृत्तिर्नाऽस्ति तस्य देवेष्वेवोत्पादात्। यदि द्वितीयभागे म्रियते तदा तस्य भोगभूमिजमनुष्यगतावुत्पत्तिसंभवात्प्रागारब्धशुभलेश्याया उत्कृष्टमध्यमजघन्यांशानां संक्रमक्रमेण हान्या मरणकाले कापोतलेश्या जघन्यांशो भवति। अथ पुनस्तृतीयभागे यदि म्रियते तदा तस्याऽपि भोगभूमिजमनुष्यतिर्यग्गतिष्वेव जन्मसंभवात्। प्रागुक्तप्रकारेण कापोतलेश्याजघन्यांशो भवति, तद्भागमृतमनुष्यतिरश्चोः पूर्ववद्देवगत्यामुत्पद्यमानस्य सर्वेषु भागेषु मृतस्य लेश्यापरावृत्तिर्नाऽस्ति। इदं कृतकृत्यवेदककाले मरणाऽपेक्षया भणितम्. तत्काले मरणरहितस्य पुनः प्रादुर्भूतक्षायिकसम्यक्त्वस्य पूर्वंचतुर्गतिषु बद्धायुष्को मरणकाले गत्यनुसारेण लेश्यापरावृत्तिरुक्तप्रकारेण ज्ञातव्या।

कृतकृत्यवेदककाले संभवत्क्रियाविशेषप्रतिपादनार्थमाह—दर्शनमोहनीयस्याऽनुभागस्याऽनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागे यथा काण्डकघातं संहृत्याऽनन्तगुणहान्या प्रतिसमयमपवर्तनं प्रारब्धं तथाऽत्रापि कृतकृत्यवेदककालचरमसमयपर्यन्तमप्रतिघातं वर्तते एवाऽपूर्वकरणपरिणामविशुद्धिविशेषस्य संस्कारशेषसंभवात्। तथाऽत्रैव कृतकृत्यवेदककालोऽसंख्यातसमयप्रबद्धानामुदीरणाऽपि तत्काले यावत्समयाऽधिकोच्छिष्टावलिरवशिष्यते तावत्प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण वर्तते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतकृत्यवेदकाद्धायां दलनिक्षेपविधिः उदयावलिकाया उपरितननिषेकेभ्यः सत्तागतसम्यक्त्वमोहनीयदलिकमपकृष्टभागहारेण खण्डयित्वा भूयस्तदेकाऽसंख्येयभागं पल्योपमाऽसंख्येयभागरूपभागहारेण विभज्यते विभक्तादेकभागमुदयावलिकायामुदयसमयात्प्रभृत्यसंख्येयगुणकारेणोदयावलिकायाश्चरमनिषेकपर्यन्तं प्रक्षिपति शेषबहुभागांस्तदुपरितनस्थितिषु विशेषहीनक्रमेण समयाऽधिकाऽतिस्थापनाऽऽवलिकावर्जसर्वासु प्रक्षिपति। कृतकृत्याद्धायां लेश्यापरावर्तनात्संक्लेशयुक्तो यद्वा विशुद्धः सन् भूतपूर्वकरणपरिणामविशोधेः संस्कारात्प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण दलिकमपकृष्योदीरयति। अत्र यद्यपि पूर्ववद्गुणश्रेणिर्न भवति किन्तु दलिकानामसंख्यातसमयप्रबद्धप्रमाणोदीरणा प्रवर्तत एव, न व्यवच्छिद्यते, तथा पूर्ववदुत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणं दलिकमुदीरयति किन्तूदयगतदलिकतोऽसंख्येयभागमात्रं दलिकमुदीरयति, यतोऽसंख्यातगुणितपल्योपमप्रथमवर्गमूलरूपभागहारेण सर्वसत्तागतं दलिकं विभज्य तदेकभागमात्रमुदयसमयगतदलिकं भवति। उदीरणागतं दलिकं तु सत्तागतदलिकमपकृष्टभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागं भूयः पल्योपमाऽसंख्येयभागरूपभागहारेण विभज्य तदेकभागप्रमाणं भवति।

कृतकृत्याद्धायाः समयाऽधिकाऽऽवलिकायां शेषायामुदयावलिकायामुपरितनस्थितिस्थानकाद् दलिकमपकृष्योदयसमयात्समयाऽधिकाऽऽवलिकात्रिभागे रचयति, समयोनाऽऽवलिकाद्वित्रिभागे न प्रक्षिपति तस्याऽतिस्थापनात्वात्। अपवर्त्यमानदलिकं पल्योपमाऽसंख्येयतमभागेन विभज्य तदेकभागमुदयसमयादसंख्येयगुणकारेण यथायोगमसंख्येयसमयप्रमाणस्थितिस्थानकेषु प्रक्षिपति तद्बहुभागमतीत्थापनावर्जशेषसमयाऽधिकाऽऽवलिकात्रिभागे विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति। इयमेव सम्यक्त्वमोहनीयस्योत्कृष्टप्रदेशोदीरणा। अवशिष्टाऽऽवलिकां केवलेन विशुद्धोदययेनाऽनुभवति तथा पूर्ववत्प्रतिसमयमनन्तगुणहीनोऽनुभागोदयः प्रवर्तते।

तथा चाऽत्र लब्धिसाराऽक्षराणि—

> उदयबहिं उक्कट्टिय असंखगुणमुदयावलिम्हि खिवे।
> उवरिं विसेसहीणं कदकिज्जो जाव अइत्थवणं ॥१४९॥
> जदि संकिलेस जुत्तो विसुद्धिसहिदो वतोऽपि पडिसमयं।
> दव्वमसंखेज्जगुणं उक्कट्टदि णत्थि गुणसेढी ॥१५०॥
> जदि वि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तो वि।
> उदयगुणसेढिट्ठिदीए असंखभागो हु पडिसमयं ॥१५१॥

तट्टीका—अत्र कृतकृत्यवेदककालमात्रस्थितिषु पविष्टस्य किञ्चिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रस्याऽपकर्षणभागहारेण खण्डितस्यैकभागमुदयावलिबाह्यनिषेकेभ्यो गृहीत्वा पुनः पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयावल्यामुदयप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण 'प्रक्षेपयोगे' त्यादिना विधिना निक्षेपेत्। पुनस्तद्बहुभागद्रव्यमुदयावलिन्यूनोपरितनस्थितावन्तर्मुहूर्तप्रमाणायामुपरि समयाऽधिकमतिस्थापनावलिवर्जयित्वा 'अद्धाणेण सव्वधण' इत्यादिविधिना विशेषहीनक्रमेण निक्षेपेत्। एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि। यद्यपि विशुद्धिसंक्लेशपरावृत्तिवशेन कृतकृत्यवेदकस्य शुभाऽशुभलेश्यापरिणामसङ्क्रमो भवति तथाऽपि प्राक्तनकरणत्रयविशुद्धिसंस्कारवशात् प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्योदीरणां कुरुते कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिः। गुणश्रेण्यायामं विना केवलमुदयावल्यामेव किञ्चिद् द्रव्यं प्रवेश्याऽवशिष्टस्योपरितनस्थितौ निक्षेपणमुदीरणा, इदमेव मनस्यवधार्याऽऽचार्यैः 'णत्थिगुणसेढी' इत्युदीरणालक्षणमुदीरितम्। एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोदीरणाकरणेनाऽऽगतदलिकमुदयगतदलिकस्याऽसंख्येयभागमात्रम् । यत उदये गुणश्रेण्या प्राक्प्रभूतं दलिकं रचितम् । एवं रीत्योदीरणा तावद्वक्तव्या, यावत्सम्यक्त्वमोहनीयस्य समयाऽधिकाऽऽवलिका सत्तायामवतिष्ठते । तत उदीरणा व्यवच्छिद्यते, चरमाऽऽवलिका केवलेन शुद्धेनोदयेनाऽनुभूय सम्यक्त्वमोहनीयं निःसत्ताकं करोति क्षायिकसम्यक्त्वं च लभते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ– "उदीरणा पुण संकलिट्ठस्सदु वा विसुज्झदु वा तो वि असंखेज्जसमयपबद्धा असंखेज्जगुणाए सेढीए जाव समहिया आवलिया सेसा त्ति । उदयस्स पुण असंखेज्जदिभागो उक्कसिया वि उदीरणा ।" इति ।

ननु क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जन्तुः कतिषु भवेषु मोक्षमुपयातीति चेद् ? उच्यते–अबद्धायुष्कः क्षीणसप्तकस्तद्भवोपार्जिततीर्थकृन्नामानं वर्जयित्वा तद्भवे मोक्षमभिगच्छति इत्येको भवः । बद्धसुरायुष्को बद्धनरकायुष्को वा स्वर्गं नरकं वा गत्वा स्वर्गभवाऽन्तरितो नरकभवाऽन्तरितो वा तृतीयभवे मोक्षं याति, इति त्रयो भवाः । ननु कतितमं नरकं यावत्क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्यातीति चेद् ? उच्यते,क्षायिकसम्यग्दृष्टिः प्रथमनरकं यावद् गच्छति । उक्तं च **पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकायाम्**– **"यतो यस्माद् बद्धायुष्को वैमानिकदेवेषु रत्नप्रभानारकेषु वा क्षपितसप्तका गच्छन्ति, ते तु तद्भवानुभवनात्तृतीये भवे सेत्स्यन्ति"** इति । तथैवोक्तं च **जीवसमासे**-

द्रव्यमपकृष्य निक्षेपे समयाधिकावल्युपरितननिषेकादिपकृष्टद्रव्यस्य बहुवारमसंख्यातगुणितस्य तदानींतनोदयनिषेकादीनामधिकभावशङ्कायां परिहार उच्यते, यद्यप्यसंख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणाचरमपूर्वपूर्वोदीरणाद्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्यं तथाऽपि चरमकालिकगुणश्रेण्यायामोदयनिषेकद्रव्यादसंख्यातैकभागमात्रमेवोदीरणाद्रव्यमुदयनिषेके दीयमानमपकर्षणभागहारेण खण्डितसर्वद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागेन भक्तस्यैकभागमात्रत्वादुदयनिषेकस्य सर्वद्रव्यस्याऽसंख्यातपल्यप्रथमवर्गमूलभक्तस्यैकभागमात्रत्वाद् । किं पुनः कृतकृत्यवेदकप्रथमादिसमयेषूदीरणाद्रव्यं तत्र तत्रोदयावलिनिषेकेषु दीयमानं तत्तदुदयावलिनिषेकसत्त्वद्रव्यादसंख्यातगुणहीनमित्युच्यते । कृतकृत्यवेदककालस्य समयाऽधिकावलिमात्रेऽवशिष्टे सर्वाग्रनिषेकात्पूर्वपूर्वाऽपकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्यमपकृष्य समयोनाऽऽवल्या द्विस्त्रिभागमपि संस्थाप्य तदधस्तने तत्त्रिभागे समयाऽधिक उदयसमयात्प्रभृति इदानीमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागभक्तस्यैकभागं तद्योग्याऽसंख्यातसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण दत्वाऽवशिष्टबहुभागद्रव्यं तथाऽऽवलित्रिभागसमयेऽवतिस्थापनाऽधस्तनसमयं मुक्त्वा सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण निक्षेपेत् । एषैवोत्कृष्टोदीरणा । एवमनुभागस्याऽनुसमयमनन्तगुणिताऽपवर्तनेन कर्मप्रदेशानां प्रतिसमयमसंख्यातगुणितोदीरणया च कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितिमन्तर्मुहूर्तायाममुच्छिष्टावलिं मुक्त्वा सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविनाशपूर्वकमुदयमुखेन गालयित्वा तदनन्तरसमय उदीरणारहितं केवलमनुभागसमयापवर्तनेनैव प्राक्तनाऽपवर्तनक्रमविलक्षणेनोदयसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमनन्तगुणितक्रमेण प्रवर्तमानेन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविनाशपूर्वकं प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गालयित्वा तदनन्तरसमये क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते जीवः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेमाणिया य मणुया रयणाए असंखवासतिरिया य।
निविहा सम्मदिट्ठी वेयगउवसामगा सेसा ॥१॥

इति।

ननु ग्रन्थाऽन्तरेषु कृष्णस्य तृतीयनरकगमनं श्रूयते तत्कथं संगच्छेत ? इति न वाच्यम्, उपात्तवचनस्य प्रायिकत्वात् कुतश्चित्कारणाऽन्तर द्वा। यदुक्तं जीवसमासवृत्तौ' ननु वासुदेवादीनां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां तृतीयनरकपृथ्वीं यावदुत्पत्तिरागमे श्रूयते तत्किमिति शर्कराप्रभावालुकाप्रभानारकाणामपि क्षायिकसम्यक्त्वं निषिध्यते ? सत्यम्, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टयः प्रायो रत्नप्रभामेव यावद् गच्छन्ति, परतस्तु स्वल्पा एव केचिद् गच्छन्तीति स्वल्पत्वात् इह ग्रन्थे न विवक्षिताः, अन्यतः कुतश्चित् कारणादीनि केवलिनो बहुश्रुता वा विदन्ति।'' इति।

यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टिः पल्योपमाऽऽद्यसंख्यातवर्षायुष्केषु तिर्यक्षु मनुष्येषु वा समुत्पद्यते ते चाऽसंख्येयवर्षायुष्कास्तिर्यञ्चो मनुष्या वा मोक्षं नाऽधिगच्छन्ति तस्तद्भवाऽनन्तरे देवभवेऽसा उत्पद्यते, यतोऽसंख्येयवर्षायुष्कास्तिर्यञ्चो मनुष्या वा नियमतो देवेष्वेवोत्पद्यन्ते। ततो देवभवाच्च्युत्वा मनुष्यभवे समुत्पद्य मोक्षं यातीति चत्वारो भवाः। उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहे—

तइय चउत्थे तम्मि व भवम्मि सिज्झन्ति दंसणे खीणे।
ज देवनिरयऽसंखाउचरमदेहेसु ते हुंति ॥१॥

तट्टीका—''तृतीये चतुर्थे तस्मिन्वा भवे सिद्ध्यन्ति सप्तके क्षीणे जीवा गम्यते यतो यस्माद् बद्धायुष्का वैमानिकदेवेषु रत्नप्रभानारकेषु वा क्षपितसप्तका गच्छन्ति, ते तु तद् भवानुभवनात्तृतीयभवे सेत्स्यन्ति, असंख्येयवर्षायुस्तिर्यग्मनुष्येषु ये बद्धायुष्काः सप्तकं क्षपयन्ति तेऽपि द्विभवानुभवनाच्चतुर्थभवे सेत्स्यन्ति ये त्वबद्धायुष्काः सप्तकं क्षपयन्ति ते चरमदेहाः स्वस्मिन्नेव भवे सिद्ध्यन्तीति गाथार्थः।''

तथैव कषायप्राभृतचूर्णिकारैर्गाथायामुक्तम्—

खवणाए पट्ठवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णे।
णाधिच्छदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥

अक्षरगमनिकास्त्वेवम्—यस्मिन्भवे दर्शनत्रिकस्य प्रस्थापको भवति, तदितरांस्त्रीन्भवान् नाऽतिक्रामति, प्रारम्भकस्य मनुष्यस्योत्कृष्टतश्चत्वारो भवा एव भवन्तीति वाच्यम्। तथैवोक्तं

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

चाऽन्यत्र-"तम्मि य तइयचउत्थे भवम्मि सिज्झंति खइअसम्मत्ते सुरनरपज्जुगलिगइ इमं तु जिणकालियनराणं ।" इति । नन्विह क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां कृष्णादीनां पञ्चमभवेऽपि मोक्षगमनं शास्त्रे श्रूयत इति पञ्च भवा अपि क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां भवन्तीति कृत्वा यावच्चतुर्षु भवेषु मुक्तिः प्रायिकी संभाव्यते । उक्तं चोपाध्यायप्रवरैः श्रीयशोविजयैः- "इदं च प्रायोवृत्त्योक्तमिति संभाव्यते, यत क्षीणसप्तकस्य कृष्णस्य पञ्चमभवेऽपि मोक्षगमनं श्रूयते, उक्तं च—

"नरयाउ नरभवम्मि देवो होऊण पंचमे कप्पे ।
तत्तो चुओ समाणो बारसमो अममतित्थयरो ॥१॥इति ।"

इत्थमेव दुःप्रसहादीनामपि क्षायिकसम्यक्त्वमागमोक्तं युज्यत इति यथागमं विभावनीयम् ।"

अत्र कषायप्राभृतचूर्णिकारमताऽनुसारेणाऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदकाऽद्धाप्रथमसमयपर्यन्तं विद्यमानानामनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धादीनां कालतोऽल्पबहुत्वमभिधीयते । तथा च तद्ग्रन्थः—दंसणमोहणीयक्खवगस्स पढमसमए अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकदकरणिज्जो त्ति एदम्हि अंतरे अनुभागखंडयट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं ट्ठिदिखंडयट्ठिदिबंधट्ठिदिसंतकम्माणं जहण्णुक्कस्सयाणं आबाहाणं च जहण्णुक्कस्सियाणमण्णेसिं च पदाणमप्पबहुअं वन्नइस्सामो तं जहा (१)सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा । (२)उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिआ । (३)ट्ठिदिखंडय उक्कीरणद्धा ट्ठिदिबन्धगद्धा च जहण्णियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ।(४) ताओ उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ।(५) कदकरणिज्जस्स अद्धा संखेज्जगुणा ।(६) सम्मत्तक्खवणद्धा संखेज्जगुणा । (७)अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा(८)अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा ।(९)गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । (१०)सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं (११)तस्सेव चरिम ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । (१२)पट्ठवगस्स अट्ठवरिसगे संतकम्मे सेसे जं पढमं ट्ठिदिखंडयं तं संखेज्जगुणं । (१३)जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा।(१४)उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा ।(१५)पढमसमयअणुभागं अणुसमयो वट्टमाणगस्स अट्ठवस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । (१६)सम्मत्तस्स असंखेज्जवरिसयं चरमट्ठिदिखंडयं असंखेज्जगुणं(१७)सम्मामिच्छत्तस्स चरिममसंखेज्जवरिसयं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहिअं । (१८)मिच्छत्ते खविदे सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणं पढमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।(१९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणं चरमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। (२०)मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं (२१)असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं पढमट्ठिदिखंडयं मिच्छत्तसम्मत्तसम्ममिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणं (२२)संखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं चरिमट्ठिदिखंडयं जं तं संखेज्जगुणं। (२३)पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो बिदियं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुण।(२४)जम्हि ट्ठिदिखंडए अवगदे दंसणमोहणीयस्स पलिदोवममेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं होइ तं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं।(२५) अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। (२६) पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। (२७) पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं।(२८)अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सगट्ठिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो।(२९) दसणमोहणीयस्स अणियट्टिपढमसमयं पविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।(३०) दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। (३१)तेसिं चेव उक्कसओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।(३२)दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। (३३) तेसिं चेव उक्कसयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।"इति।

भावार्थः पुनरयम्–(१)卐सर्वस्तोका जघन्यतोऽनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा, वर्षाऽष्टकसत्कर्मभवनादनन्तरपूर्वो योऽनुभागघातस्तस्य कालोऽत्र दर्शनमोहनीयस्य जघन्याऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालत्वेन ग्राह्यः,ज्ञानावरणादीनां पुनः कृतकृत्यकरणाद्धाप्रथमसमयात्पूर्वं समाप्यमानाऽनुभागघातकालो ग्राह्यः, स स्तोको भवति, विशुद्धेः प्रभूतत्वात्

(२)तत उत्कृष्टाऽनुभागखण्डोत्कीर्णाऽद्धा विशेषाऽधिका, कुत इति चेद् ? उच्यते–उत्कृष्टाऽनुभागखण्डोत्कीर्णकालेऽपूर्वकरणस्य प्रथमसमय आरभ्यमाणाऽनुभागखण्डस्योत्कीर्णकालो भवति। स च पूर्वतो विशेषाऽधिको भवति, विशुद्धेरल्पत्वात्।

(३)ततो जघन्यतः स्थितिखण्डोत्कीर्णकालः स्थितिबन्धकालश्च संख्येयगुणौ परस्परं च तुल्यौ। अनिवृत्तिकरणे सम्यक्त्वमोहनीयस्य यच्चरमखण्डमुत्किरति तत्खण्डोत्कीर्णकालस्तात्कालिकश्च-

---

卐 उक्तं च लब्धिसारे–"दर्शनमोहस्य जघन्यानुभागखण्डोत्करणकालसम्यक्त्वप्रकृत्यष्टवर्षस्थितिसमयात्प्राक्तनाऽनन्तराऽवस्थायां संभवन्वक्ष्यमाणद्वात्रिंशत्पदेभ्यः स्तोकोऽल्प इत्यर्थः। ज्ञानावरणाद्यायुर्वर्जितशेषकर्मणां जघन्याऽनुभागखण्डोत्करणकालोऽनिवृत्तिकरणचरमभागे संभवन् सर्वतः स्तोकमिति सामान्येन जघन्याऽनुभागखण्डोत्करणकालः संख्याताऽऽवलिमात्रोऽप्युत्तरपदाऽपेक्षयाऽल्प इत्युच्यते"। अत्र जघन्याऽनुभागखण्डोत्करणकालः संख्याताऽऽवलिकाप्रमाण उक्तः, स च चिन्त्यो रसघातस्याऽऽवलिकासत्कसंख्याततमभागमात्रत्वसिद्धेः तत्सिद्धिश्च रसघाते प्राग्दर्शिता प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वाऽधिकारे। तत्त्वं केवलिनो विदन्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिबन्धकालः पूर्वतः संख्येयगुणौ परस्परं च तुल्यौ भवतः, यतः समकालीनयोस्तयोस्तुल्यत्वं तथा चैकस्मिन्स्थितिघाते सहस्राणि रसघाता भवन्ति ।

(४) तत उत्कृष्टे द्वे(अद्धे)परस्परं तुल्ये पूर्वतश्च विशेषाऽधिके । अपूर्वकरणप्रथमसमय आरभ्यमाणस्थितिघातकालस्तात्कालिकश्च स्थितिबन्धकालःपरस्परं तुल्यौ पूर्वतश्च विशेषाऽधिकौ विशुद्धेरल्पत्वात् ।

(५)ततः कृतकृत्यस्यस्याऽद्धा संख्यातगुणा, कृतकरणाऽद्धायां संख्येयस्थितिबन्धगमनोपलम्भात्संख्यातगुणेन बृहत्तराऽन्तमुहूर्तप्रमाणत्वात् ।

(६) ततः सम्यक्त्वमोहनीयस्य क्षपणाद्धा संख्यातगुणा, अष्टवर्षप्रमाणे सम्यक्त्वमोहनीयस्थितिसत्कर्मणि जाते तद्वेदनाय यः कालो व्यतिक्रान्तो भवति, स पूर्वतः संख्यातगुणः ।

(७) ततोऽनिवृत्तिकरणाऽद्धा संख्यातगुणा । अनिवृत्तिकरणस्य संख्येयतमे भागे शेषे सम्यक्त्वमोहनीयक्षपणाकालः प्रारभ्यते, अतोऽनिवृत्तिकरणकालः पूर्वतः संख्यातगुणः ।

(८) ततोऽपूर्वकरणाद्धा संख्यातगुणा । सर्वत्राऽनिवृत्तिकरणतोऽपूर्वकरणस्य संख्येयगुणत्वात् ।

(९)ततो गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः, कुत इति चेद् ? उच्यते—गुणश्रेणिनिक्षेपस्याऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाद्धाद्वयात्किञ्चिदधिकत्वेन पूर्वतो विशेषाऽधिकत्वम् ।

(१०) ततः सम्यक्त्वमोहनीयस्य द्विचरमखण्डस्य पूर्वतः संख्यातगुणेन बृहत्तराऽन्तमुहूर्तप्रमाणत्वात्

(११)ततस्तस्यैव चरमखण्डं संख्यातगुणम्, द्विचरमखण्डतश्चरमखण्डस्य संख्येयगुणत्वस्य प्रागुक्तत्वात् ।

(१२) ततोऽष्टवर्षप्रमाणस्थितिसत्कर्मणि शेषे यदन्तमुहूर्तप्रमाणं स्थितिखण्डं तत्संख्यातगुणम्, प्रथमखण्डस्याऽन्मुहूर्तप्रमाणत्वेऽपि पूर्वतः संख्येयगुणेन बृहत्तराऽन्तमुहूर्तप्रमाणत्वात् ।

(१३) ततो जघन्याऽबाधा संख्यातगुणा, ज्ञानावरणादिकर्मणो जघन्यस्थितिबन्धस्याऽन्तःकोटाकोटीप्रमाणत्वेन जघन्याऽबाधाया अन्तमुहूर्तप्रमाणत्वेऽपि पूर्वतः संख्यातगुणेन बृहत्तराऽन्तमुहूर्तप्रमाणत्वात् ।

(१४) तत उत्कृष्टाऽबाधा संख्यातगुणा, अपूर्वकरणप्रथमसमये ज्ञानावरणादिकर्मस्थितिबन्धस्य जघन्यस्थितिबन्धतः संख्यातगुणत्वेन जघन्याऽबाधात उत्कृष्टाऽबाधायाः संख्यातगुणत्वं न विरुध्येत । एतावत्पर्यन्तमुपर्युक्ताः कालाः सर्वेऽन्तमुहूर्तप्रमाणाः ।

(१५) ततोऽनुसमयमनुभागमपवर्तयतोजन्तोः प्रथमसमयेऽष्टवार्षिकं सम्यक्त्वमोहनीयस्थितिसत्कर्म संख्यातगुणम् । पूर्वपदस्याऽन्तमुहूर्तत्वेनाऽस्याष्टवर्षप्रमाणत्वात्संख्यातगुणत्वं न्याय्यम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६)ततः सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽसंख्येयवर्षप्रमाणं चरमस्थितिखण्डमसंख्येयगुणम् । पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणचरमखण्डस्याऽसंख्यातवर्षप्रमाणत्वादसंख्येयगुणं सिद्ध्यति ।

(१७)ततः सम्यक्त्वमिथ्यात्वस्य चरममसंख्येयवर्षप्रमाणं स्थितिखण्डं विशेषाऽधिकम् कथम् ? इति चेत्, उच्यते—पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणद्विचरमखण्डं यावत् । सम्यक्त्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्य चोभययोः स्थितिसत्त्वं स्थितिखण्डं च समाने भवतः । पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणे चरमखण्डे घात्यमाने मिश्रस्याऽऽवलिकासत्कर्मणि मुच्यते, सम्यक्त्वमोहनीयस्य त्वष्टवर्षप्रमाणा स्थितिः परित्यज्यते, इति कृत्वा सम्यक्त्वमोहनीयस्य चरमखण्डतो मिश्रस्य चरमखण्डमावलिकान्यूनवर्षाऽष्टकेनाऽधिकं भवति ।

(१८) ततो मिथ्यात्वे क्षपिते सम्यक्त्वसम्यक्त्वमिथ्यात्वयोः प्रथमस्थितिखण्डमसंख्येयगुणम्। कुतः? इति चेद्, उच्यते— मिथ्यात्वक्षपणाऽनन्तरमनेकसहस्रेषु स्थितिघातेषु व्यतिक्रान्तेषु मिश्रस्य चरमखण्डं प्राप्यते, मिथ्यात्वक्षपणाऽनन्तरं च प्रतिस्थितिघाते सत्तागतस्थितिसत्त्वस्याऽसंख्येयबहुभागा घात्यन्ते, एकभागश्च सत्तायामवतिष्ठत इति कृत्वा मिश्रस्य द्विचरमखण्डतोऽपि चरमखण्डस्याऽसंख्यातभागमात्रत्वेन चरमखण्डतो द्विचरमखण्डस्याऽसंख्यातगुणत्वं सिध्यति, तर्हि मिथ्यात्वे क्षपिते सम्यक्त्वसम्यक्त्वमिथ्यात्वयोः प्रथमखण्डस्य सुतरामसंख्येयगुणत्वं सिध्यति ।

(१९) ततो मिथ्यात्वसत्कर्मणि सति सम्यक्त्वसम्यक्त्वमिथ्यात्वयोश्चरमस्थितिखण्डमसंख्येयगुणम् । कथमिति चेद्, उच्यते—मिथ्यात्वस्य चरमखण्डे घात्यमाने तात्कालिकसम्यक्त्वमिश्रखण्डमसंख्यातगुणं भवति, मिथ्यात्वे क्षपिते प्रथमखण्डतोऽस्य खण्डस्य पूर्ववर्तित्वात्, क्षीणमिथ्यात्वस्य च जीवस्य मिश्रस्य स्थितिखण्डस्य स्थितिसत्त्वसत्काऽसंख्येयबहुभागमात्रत्वात् ।

(२०) ततो मिथ्यात्वस्य चरमस्थितिखण्डं विशेषाऽधिकम् । कथमिति चेद, उच्यते—मिथ्यात्वस्य द्विचरमस्थितिखण्डं यावद्दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्त्वं समानं भवति । तस्मात्स्थितिसत्कर्मतो मिथ्यात्वस्याऽऽवलिकां मुक्त्वा शेषस्थितिसत्त्वं घात्यते, सम्यक्त्वमिश्रयोस्तु पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणं परित्यज्य शेषस्थितिसत्त्वं घात्यते, अतो मिथ्यात्वस्य चरमखण्डं तात्कालिकसम्यक्त्वमिश्रखण्डत आवलिकान्यूनपल्योपमाऽसंख्येयभागेनाऽधिकम् ।

(२१ ततोऽसंख्यातगुणहानिस्थितिखण्डेषु मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वानां प्रथमस्थितिखण्डमसंख्यातगुणम् कुतः? इति चेद्, उच्यते—दूरापकृष्टिमात्रस्थितिसत्कर्मणि जाते सत्तागतस्थितेरसंख्येयबहुभागप्रमाणं खण्डं भवति । तत्र मिथ्यात्वचरमखण्डमाश्रित्याऽनेकसहस्रस्थितिघातैः पूर्ववर्तित्वात्प्रथमखण्डस्य पूर्वपदतोऽतोऽस्य स्थितिखण्डस्याऽसंख्यातगुणत्वं सिध्यति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२२) ततः संख्यातगुणहानिस्थितिखण्डानां चरमखण्डं संख्यातगुणं, पल्योपमप्रमाणे स्थितिसत्कर्मणि जाते सत्तागतस्थितेः संख्यातबहुभागाः प्रतिस्थितिघाते घात्यन्ते, एवमनेकसहस्रेषु स्थितिघातेषु व्रजितेष्विदं चरमखण्डं प्राप्यते, परं सत्तागतस्थितेः संख्यातबहुभागा एव नाश्यन्ते इदं खण्डं घातयतां जन्तोः सत्तागतस्थितेः संख्येयभागमात्रस्थितिसत्त्वमवशिष्यते शेषसंख्येयबहुभागाश्च चरमखण्डेन विनाशिता भवन्ति, दूरापकृष्टिस्थानात् प्राक् सत्तागतस्थितेर्बहुभागविनाशात् पूर्वपदस्याऽवशिष्टसंख्यातभागगताऽसंख्येयबहुभागमात्रत्वात् पूर्वत इदं स्थितिखण्डं संख्यातगुणं विनिश्चीयते ।

(२३) ततः पल्योपमस्थितिसत्कर्मणि जाते द्वितीयस्थितिखण्डं संख्येयगुणम् । कथमिति चेत् ? उच्यते—अनन्तरोक्तखण्डतोऽनेकपदस्रस्थितिघातैः प्रागिदं स्थितिखण्डं प्राप्यते । पूर्वपूर्वस्थितिघाते च पूर्ण उत्तरोत्तरखण्डेन संख्येयबहुभागप्रमाणा स्थितिर्घात्यते, तेन पूर्वपदत इदं पदं संख्येयगुणं सुनिश्चितं भवति, न चात्र प्रथमस्थितिखण्डं विहाय द्वितीयस्थितिखण्डं कुतो गृह्यते इति वाच्यम्, प्रथमखण्डस्य संख्येयभागन्यूनपल्योपमप्रमाणत्वात्, अस्य पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणत्वात् ।

(२४) ततो यस्मिन् स्थितिखण्डेऽपगते दर्शनमोहनीयस्य पल्योपममितं स्थितिसत्कर्म भवति तत्स्थितिखण्डं संख्येयगुणं भवति । कुत इति चेत् ? उच्यते—इदमपि स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं भवति, यतः पल्योपमप्रमाणा स्थितिर्यावन्न भवति, तावत्स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागमात्रं भवति, तथाऽपि पूर्वतः संख्येयगुणम् ।

(२५) ततोऽपूर्वकरणे जघन्यस्थितिखण्डं संख्यातगुणम् । कुत इति चेत् ? उच्यते—इदमपि स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणं भवति तथा पूर्वपूर्वखण्डत उत्तरोत्तरखण्डस्य विशेषहीनत्वेनाऽपूर्वकरणस्य प्रथमस्थितिखण्डतः पल्योपमप्रमाणस्थितिकरणकाले समाप्यमानस्थितिखण्डं संख्यातगुणहीनं भवति, अपूर्वकरणस्य प्रथमखण्डतस्तच्चरमखण्डस्याऽपि संख्येयगुणहीनत्वात् उक्तञ्च **कषायप्राभृतचूर्णिसूत्रे—"पढमट्ठिदिखंडयं बहुअं बिदियं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं, तदीयं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं एवं पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अंतो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जगुणहीणं पि अत्थि ।"** इति । अत इदं खण्डं पूर्वतः संख्यातगुणम् ।

(२६) ततः पल्योपममात्रे स्थितिसत्कर्मणि जाते प्रथमस्थितिखण्डं संख्येयगुणम् । कुत इति चेत् ? उच्यते—पल्योपमप्रमाणे स्थितिसत्कर्मणि जाते सत्तागतस्थितिः संख्येयगुणहीना भवति। इत्थं पल्योपमप्रमाणे स्थितिसत्कर्मणि जाते प्रथमखण्डस्य पल्योपमसंख्यातबहुभागप्रमाणत्वेन पल्योपमसंख्याततमभागप्रमाणापूर्वकरणवर्तिप्रथमखण्डतः संख्यातगुणमेव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२७) ततः पल्योपममात्रं स्थितिसत्त्वं विशेषाऽधिकं पल्योपमप्रमाणस्थितिसत्त्वस्य पूर्वतः पल्योपमसंख्याततमभागेनाऽधिकत्वात्।

(२८) ततोऽपूर्वकरणे प्रथमस्योत्कृष्टस्थितिखण्डस्य विशेषः संख्यातगुणः, कथमिति चेद् ? उच्यते—अपूर्वकरणे जघन्यस्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागमात्रं तथोत्कृष्टस्थितिखण्डं सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणं भवति, जघन्यखण्डमुत्कृष्टखण्डतो विशोध्य शुद्धशेषं संख्येयभागोनसागरोपमपृथक्त्वप्रमाणं भवत्पूर्वपदतः संख्येयगुणं भवति।

(२९) ततो दर्शनमोहनीयस्याऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमयं प्रविष्टस्य स्थितिसत्कर्म संख्येयगुणम्, कुत इति चेद् ? उच्यते-अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये दर्शनत्रिकस्य स्थितिसत्कर्मणः सागरोपमलक्षपृथक्त्वप्रमाणत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वं सिध्यति।

(३०) ततो दर्शनमोहनीयवर्जानां कर्मणां जघन्यतः स्थितिबन्धः संख्यातगुणः। कथमिति चेद् ? उच्यते—शेषकर्मणां जघन्यस्थितिबन्धस्याऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वं भवति।

(३१) ततस्तस्यैवोत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुणः । अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये य उत्कृष्टस्थितिबन्धः प्राप्यते, स च पूर्वतः संख्यातगुणो भवतीत्यर्थः।

(३२) ततो दर्शनमोहनीयवर्जानां जघन्यं स्थितिसत्कर्म संख्येयगुणम्। स्थितिघाते व्यवच्छिन्ने शेषकर्मणः स्थितिसत्त्वं पूर्वतः संख्येयगुणं भवति।

(३३) ततस्तस्यैवोत्कृष्टस्थितिसत्कर्म संख्येयगुणम्, शेषकर्मणामपूर्वकरणस्य प्रथमसमये संभवदुत्कृष्टस्थितिसत्त्वं पूर्वतः संख्येयगुणं ज्ञातव्यम्। इति समाप्तमल्पबहुत्वम्।

चारित्रमोहनीयमुपशमयितुकाम आदावनन्ताऽनुबन्धिविसंयोजनां कृत्वा दर्शनत्रिकं च क्षपयित्वोपशमश्रेणिं समारोहतीति प्रकार उक्तः। सम्प्रति यो वेदकसम्यग्दृष्टिः सन्नुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, स बद्धायुष्कोऽबद्धायुष्को वा भवति, स च चतुर्थप्रभृतिसप्तमपर्यवसानगुणस्थानकेऽनन्तानुबन्धिनो विसंयोज्य ततोऽन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते यथाप्रवृत्तः सन् चतुर्विंशतिसत्कर्मा दर्शनत्रिकमुपशमयितुमुपक्रमते, उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-तदो अणंताणुबंधी विसंजोइदे अंतोमुहुत्तमधापवत्तो जादो असादअरदिसोगअजसगित्तियादिणि तावकम्माणि बंधादि तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयमुवसामेदि"इति। केषांचित्पुनर्मतेन मनुष्यगतावेवाऽनन्तानुबन्धिकषायानुपशमय्याऽष्टाविंशतिसत्कर्मा षष्ठप्रभृतिगुणस्थानके दर्शनत्रिकमुपशमयितुमारभत इति दर्शनत्रिकोपशमनामाविश्चिकीर्षुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहवा दंसणमोहं पुव्वं उवसामइत्तु सामन्ने ।
पढमठिइमावलियं करेइ दोराहं अणुदियाणं ॥३३॥

छाया–अथवा दर्शनमोहं पूर्वमुपशमय्य श्रामण्ये ।
प्रथमस्थितिमावलिकां करोति द्वयोरप्यनुदितयोः ॥३३॥

अथवा प्रकारान्तरे, आदौ दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, अथवा यद्वा दर्शनत्रिकं प्रथममुपशमय्याऽप्युपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते । कुत्र स्थितः ? इत्याह—श्रामण्ये, अयं शब्दार्थः-श्राम्यति=तपस्यति इति श्रमणः "नन्द्यादिभ्योऽनः" (५-१-५२) कर्तरि अनप्रत्ययः तस्य भावः कर्म वा श्रामण्यम् "पति–राजान्त–गुणाङ्ग–राजादिभ्यः कर्मणि च' (७-१-६०) इति सिद्धहेमसूत्रेण 'टयण' प्रत्ययः, तत्र स्थितः, षष्ठसप्तमयोरन्यतरगुणस्थानकवर्तीति यावत्, उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"विरतो वेयगसम्मदिट्ठि उवसमसेढिं पडिवज्जउकामो उवसमसम्मत्तं उप्पादेति" तथैव कर्मप्रकृतिचूर्णौ टीकायां चोक्तं तद्यथा–'अहवे त्ति' अन्नाहिगारे जई वेयगसम्मदिट्ठी सेढिं पडिवज्जति तो पुव्वं दंसणतिगं जुगवं उवसामेति, 'पुव्वंउवसामित्तु' जहा पुव्वं दंसणमोहस्स उवसामणा भणिया तहेवत्थवि सामन्ने त्ति ठिच्चा उवसामेइ । सामन्नमिच्छत्तमोवसमेइय" तथैव कर्मप्रकृतिटीकायामपि–"इह यदि वेदकसम्यग्दृष्टिः सन्नुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते ततो नियमाद् दर्शनमोहनीयत्रितयं पूर्वमुपशमयति तच्च श्रामण्ये स्थितः सन्नुपशमयति ।" इति तदुपशमनाविधिश्च सकलोऽपि प्रथमौपशमिकसम्यक्त्ववज्ज्ञातव्यः । तद्यथा यथाप्रवृत्तकरणे स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिश्च न भवन्ति । अपूर्वकरणे च स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिश्च भवन्ति । गुणश्रेणिनिक्षेपश्च अपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणाभ्यां किंचिदधिको गलिताऽवशेषश्च ।

卐 ननु दर्शनत्रिकस्योपशमनाऽधिकारे मिथ्यात्वस्य गुणसंक्रमो भवति, आहोस्विन्न ? इति चेद्, उच्यते-कर्मप्रकृतिचूर्णिकारैरेतदेव निर्दिष्टम् "उक्किरज्जमाणं दलिय

卐 धवलादौ दर्शनत्रिकोपशमनाऽधिकारे गुणसंक्रमः सर्वथा निषिद्धः । तथा चाहुर्धवलाकाराः । "सम्मत्तस्स पढमट्ठिदिए भीणाए मिच्छत्त पदेसग्गं सम्मत्त सम्ममिच्छत्तेसु गुणसंकमेण ण संकमदि इमस्स विज्झाद संकमो चेव ।" इति । तथा चोक्तं लब्धिसारेसप्ताधिकद्विशततमगाथायाम्—

दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु ।
गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झद वाधापवत्तं च ॥

तट्टीका-दर्शनमोहोपशमनविधाने गुणसंक्रमो नास्ति केवलं विध्यातसंक्रमो वा यथाप्रवृत्तसंक्रमो वा संभवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तस्स पढमट्ठितीते चेव छुभति सेसं जहा पुव्वं तहेव उवसमसम्मदिट्ठि जातो अंतोमुहुत्तो ता विज्झायसंकमो भवति" भावार्थ पुनरयम्—चूर्णिकारैः प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वस्याऽतिदेशः कृत, किन्तु यथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वाधिकारे सम्यक्त्वप्राप्तिसमयादन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं गुणसंक्रमो भवति तथाऽत्रोपशमसम्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमयाद् यद्वाऽपूर्वकरणप्रथमसमयाद् गुणसंक्रम आरभ्यत इति न स्पष्टीकृतम्, यद्यपि प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वप्राप्त्यधिकारेऽपूर्वकरणे मिथ्यात्वस्य बध्यमानत्वेन गुणसंक्रमो निषिध्यते, तर्ह्यपि अपूर्वकरणे मिथ्यात्वस्याऽबध्यमानत्वेन गुणसंक्रमः संशीयते, अयं भावः—यथा दर्शनत्रिकक्षपणाधिकारेऽनन्ताऽनुबन्धिविसंयोजनाऽधिकारे तदुपशमनाधिकारे च गुणसंक्रमोऽपूर्वकरणयुपदिष्टः, तथा दर्शनत्रिकोपशमनाऽधिकारे गुणसंक्रमो भवति आहोस्विन्न भवति ? इति शंका कैश्चिदपि ग्रन्थकारैर्न परिहृता। यद्यपि गुणसंक्रमपर्यवसानं टीकाकारैर्दर्शितम्, किन्तु तदारम्भो न दर्शितः तथाचाऽत्र पञ्चसंग्रहमूलम्—

"पढमुवसमं व सेस अंतमुहुत्ताउ तस्स विज्झाओ।"

तट्टीका-अन्तर्मुहूर्ताद् व्यतीताद् गुणसंक्रमाऽवसाने विध्यातसंक्रमः सम्यक्त्वस्य भवति। तथैवमलयगिरिसूरीश्वराणां पञ्चसंग्रहटीका अन्तरकरणप्रवेशसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तेऽतिक्रान्ते गुणसंक्रमाऽवसाने विध्यातसंक्रमस्तस्य सम्यक्त्वस्य भवति। किमुक्तं भवति ? विध्यातसंक्रमेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्दलिक सम्यक्त्वे प्रविशतीति एवमेवोपाध्यायप्रवरा अप्याहुः।

एवं प्रकारेण गुणसंक्रमारम्भकालोऽस्माभिर्न निर्णीयत इति बहुश्रुता निश्चिन्वन्तु। अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये यत् स्थितिसत्त्वमासीत्, तदेव तच्चरमसमये संख्येयगुणहीनं भवति। अपूर्वकरणानन्तरमनिवृत्तिकरणं प्रविशति। अनिवृत्तिकरणेऽपि पूर्ववत् स्थितिघातादयः प्रवर्तन्ते। अनिवृत्तिकरणस्य संख्येयबहुभागेषु गतेष्वसंख्येयसमयप्रबद्धप्रमाणा उदीरणा भवति।

उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ★ "दंसणमोहणीयउवसामणअणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयप्रबद्धाणमुदीरणा" ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वाऽन्तरकरणं कर्तुमारभते। **उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ卐 "तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयस्स**

टिप्पणी ★ तथैवलब्धिसारेऽष्टाधिकद्विशततमगाथायां तथा नवाऽधिकद्विशततमगाथायामुक्तम्

उवसामण अणियट्टिसंखाभागासु तीदासु ॥२०८॥
सम्मस्स असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा होदि।
ततो मुहुत्तअंते दंसणमोहंतरं कुणई ।२०९॥

卐 लब्धिसारस्यदशाधिकद्विशततमगाथायाष्टीकायामप्युक्तम्-उदयवत्या सम्यक्त्वप्रकृतेरन्तर्मुहूर्तमात्रीमनुदितयोरितरयो मिथ्यात्वमिश्रयोश्चावलीमात्रीं प्रथमस्थिति मुक्त्वोपर्यन्तर्मुहूर्तंनिषेकाणामन्तर—

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अंतरं करेदि'' इति। तत्र सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽन्तमुहूर्तप्रमाणां प्रथमस्थितिं 'अणुदयाण' इति। अनुदितयोर्मिथ्यात्वमिश्रयोरावलिकामात्रां प्रथमस्थितिं कृत्वाऽन्तमुहूर्तेन पूर्ववदेकस्थितिबन्धाद्धाप्रमाणेन कालेनाऽन्तरकरणं विधाय दर्शनत्रिकमुपशमयितुमारभते। दर्शनत्रयस्य द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेकाः समानाः तथाऽन्तकरणस्याऽधस्तनप्रथमस्थितिसत्कचरमनिषेका विषमा इति कृत्वाऽन्तरकरणमधस्ताद् विषममुपरि च सदृशम्।

अत्र मिथ्यात्वमिश्रपुञ्जयोः प्रथमस्थितिरावलिकाप्रमाणा मुच्यते, सा चाऽन्तरकरणक्रियाकाले चलनाऽऽवलिका संभाव्यते। किमुक्तं भवति? उच्यते—अन्तरकरणक्रियाकालस्य प्रथमसमये मिश्रमोहनीयस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्य चोदयाऽऽवलिकाया उपरितनप्रथमनिषेकादारभ्याऽऽद्वितीयस्थितिसत्कप्रथमनिषेकपर्यन्ते विद्यमाना ये निषेकाः, तेभ्यो दलिकान्युत्कीर्यन्ते। न चाऽन्तरकरणक्रियाकाले समाप्त एव द्वितीयस्थितिर्वक्तुं शक्यते, नार्वागिति वाच्यम्, भाविनि भूतवदुपचार इतिन्यायेनाऽन्तकरणक्रियायाः प्रथमसमयात्प्रभृत्यपि द्वितीयस्थितित्वेन व्यपदेशात् अन्तरकरणक्रियाया द्वितीयसमयेऽपि पूर्ववदावलिकां वर्जयित्वोपरितनस्थितिस्थानकेभ्यो दलिकान्युत्किरति (किन्तु पूर्वसमययुत्कीर्यमाणाऽन्तकरणगतस्थितितः समयेन न्यूना हीदानीमुत्कीर्यमाणाऽन्तरकरणगतस्थितिर्भवति, उदयेन प्राक्तनसमये वेदिते उपरितनसमयस्योदयावलिकायां प्रविष्टत्वात्) एवमन्तमुहूर्तं यावदुदयसमयेषु क्षीणेष्वावलिका प्रतिसमयमुपर्युपरि वर्धते, अन्तरकरणक्रियाया अन्तमुहूर्तसत्कचरमसमये मिथ्यात्वमिश्रयोरावलिकावर्जोपरितन्यऽप्राप्तद्वितीयस्थितिसत्कप्रथमनिषेकाऽन्तमुहूर्तप्रमाणास्थितिर्दलिकाभाववती क्रियते। अत्र चरमसमय एव सर्वथा दलिकाऽभाववती क्रियते, तत्प्राक्तनेषु समयेषु तु सर्वथा दलिकाऽभाववती न क्रियत, अपि तु प्रतिसमयं कानिचिद् कानिचिद् दलिकान्यपनयति। इत्थं मिथ्यात्वमिश्रयोरन्तरकरणक्रियाप्रथमसमये यथाऽऽवलिकाप्रमाणा प्रथमस्थितिर्भवति तथैवाऽन्तरकरणक्रियाचरमसमयेऽप्यावलिकाप्रमाणा प्रथमस्थितिर्भवति। सम्यक्त्वमोहनीयस्य त्वधस्तादन्तमुहूर्तमात्रां स्थितिमुक्त्वोपरितनस्थितिं च विष्कम्भयित्वाऽन्तरालगतस्थितेरन्तमुहूर्तमात्रमन्तरकरणं करोति। (अत्राऽधस्तनमुच्यमानाऽन्तमुहूर्तप्रमाणा स्थितिर्नोपर्युपरि वर्धतेऽपितूदयेन क्षीणेषु समयेषु सत्स्वन्तरकरणक्रियायाः समाप्तिं यावदधस्तन विमुच्यमाणास्थितिर्न्यूना न्यूनतरा भवति। अन्तरकरणगतस्थितिस्तु तावत्येव, न्यूना न भवतीत्यर्थः]

एकस्थितिबन्धाद्धाप्रमाणाऽन्तमुहूर्तेन सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽधस्तनाऽन्तमुहूर्तप्रमा-

---

भावन्तमुहूर्तेन कालेन करोति उपरि तिसृणां प्रकृतीनां द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकाः सदृशा एव, अधः प्रथमस्थित्यग्रनिषेकाः विसदृशा इति ग्राह्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र्णां स्थितिं मुक्त्वोपरितनाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्थितिं तद्दलिकाऽभाववतीं करोति । एवमन्यत्राऽप्यन्तरकरणाऽवसर उदयवत्प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणा प्रथमस्थितिरनुदयवतीनां च प्रकृतीनां-चलनावलिका प्रथमस्थितिर्ज्ञातव्या ।

अन्तरकरणाऽऽयामः—अपूर्वकरणप्रथमसमयाद् गुणश्रेणिनिक्षेपोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरण-द्वयात् किञ्चिदधिके काले भवति स्म, अत्राऽनिवृत्तिकरणस्योपरितननिक्षेपो गुणश्रेणिशीर्षमुच्यते । 卐 गुणश्रेणिशीर्षं तथा ततः संख्यातगुणा या तदुपरितनस्थितिः सा सर्वाऽप्यन्तरकरणे भवति, तावन्त्यः स्थितयः सम्यक्त्वस्य दलिकाऽभाववत्यः क्रियन्त इत्यर्थः । मिथ्यात्वमिश्रयोरुदयाऽऽवलिकोपरितनसम्पूर्णगुणश्रेणिस्तथा ततः संख्यातगुणास्तदुपरितनास्थितयोऽन्तरकरणे भवन्ति, तावन्त्यः स्थितयः दलिकाऽभाववत्यः क्रियन्त इति यावदन्तरकरणदलप्रक्षेपविधिः—★दर्शनत्रिकस्याऽन्तरकरणत उत्कीर्यमाणानि दलानि सम्यक्त्वमोहनीयस्य प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति । न चात्र मिथ्यात्व-मिश्रयोः प्रथमस्थितावन्तकरणत उत्कीर्यमाणदलिकं कथं न प्रक्षिप्यत इति वाच्यम् , उदयावलिकायां दलिकनिक्षेपस्य निषिद्धत्वेनोदयरहितयोस्तयोर्दलिकस्य सम्यक्त्वमोहनीयस्य प्रथमस्थितौ प्रक्षेपात् । ननूत्कीर्यमाणदलिकानि मिथ्यात्वमिश्रयोर्द्वितीयस्थितौ कुतो न प्रक्षिप्यन्ते ? इति चेद्, उच्यते—बध्यमानप्रकृतेरेव दलानि द्वितीयस्थितावपि प्रक्षिप्यन्ते, अत्र तु दर्शनत्रिकस्य बध्यमानत्वाऽभावेन द्वितीयस्थितौ तद्दलिकनिक्षेपाभावः सिद्धः । एवं सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽप्यन्तरकरणत उत्कीर्यमाणदलं द्वितीयस्थितौ न प्रक्षिपतीति संभाव्यते ।

卐 उक्तं च दशाऽधिकद्विशततमगाथायाम्—सम्यक्त्वप्रकृतेर्गुणश्रेणिशीर्षं ततः संख्यातगुणितानुपरितनस्थितिनिषेकांश्च गृहीत्वान्तरं करोति. मिथ्यात्वमिश्रयो: गलितावशेषगुणश्रेण्यायामं सर्वम्, ततः संख्यातगुणितानुपरितनस्थितिनिषेकांश्च गृहीत्वान्तरं करोतीत्यर्थः ।

★ उक्तं च लब्धिसारे "दर्शनमोहत्रयस्याऽन्तरे उत्कीर्णद्रव्यमुदयवत्याः सम्यक्त्वप्रकृतेः प्रथमस्थितावेव निक्षिपति, न द्वितीयस्थितौ यत्र नूतनबन्धोऽस्ति तत्रोत्कृष्य द्वितीयस्थितावपि निक्षिपति । अत्र-पुनरप्रमत्तगुणस्थाने दर्शनमोहस्य बन्धाऽभावात् द्वितीयस्थितौ न निक्षिपतीत्यर्थः" (लब्धि २११) । द्वितीयस्थितित उत्कीर्यमाणदलिकानि तथोदयावलिकावर्जंप्रथमस्थितित उत्कीर्यमाणदलिकानां निक्षेप विधिः विशेषतः लब्धिसार उक्तः तद्यथा—

"गुणश्रेणिनिर्जरार्थमुदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य सर्वत्रापकृष्टद्रव्यं पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागमन्तरऽऽयामं मुक्त्वा स्वस्वोपरितनद्वितीयस्थितौ निक्षिप्य शेषैकभागं पल्याऽसंख्यातैकभागेन खण्डयित्वा बहुभागं सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिपति । एवमन्तरस्य द्वितीयादिफालिद्रव्यं दर्शनमोहसम्बन्धि प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितावेव निक्षिपति । अंते(तर) उपरि चाऽपकृष्टद्रव्यमपि प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थिता अन्तरस्योपरि स्वस्वद्वितीयस्थितौ चाऽग्रेऽतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपति ।" इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरकरणक्रियाकाले पूर्णे प्रथमौपशमिकसम्यक्त्ववदत्राऽप्यनन्तरसमयात्प्रभृति द्वितीयस्थितिगतदर्शनत्रिकदलिकं प्रतिसमयमसंख्यगुणकारेणानिवृत्तिकरणचरमसमयं यावदुपशमयति चरमसमये च सत्तागतदर्शनत्रिकसर्वदलिकं सर्वथोपशमितं संभवति । सम्यक्त्वमोहनीयस्य प्रथमस्थितेरावलिकाद्वये शेषे सम्यक्त्वस्य आगालो गुणश्रेणिश्च व्यवच्छिद्येते । सम्यक्त्वमोहनीयस्य प्रथमस्थितेरावलिकायां शेषायां दर्शनमोहस्य स्थितिघातो रसघातो सम्यक्त्वमोहनीयस्य चोदीरणा विच्छिद्यन्ते । ततः सम्यक्त्वमोहनीयस्याऽऽवलिकाप्रमाणां स्थितिं केवलेन शुद्धेनोदयेनाऽनुभूयाऽन्तरकरणं प्रविशन्नेव श्रेणिगतौपशमिकसम्यक्त्वं लभते । अन्तरकरणे औपशमिकसम्यग्दृष्टिः प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धयाऽन्तर्मुहूर्तं यावत् प्रवर्धमानो भवति । औपशमिकसम्यक्त्वप्राप्तितोऽन्तर्मुहूर्तेऽतीते गुणसंक्रमा-

---

लब्धिसारस्य त्रयोदशाऽधिकद्विशततमगाथायामेतदुक्तम् मिथ्यात्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्य चोदयावलिकाया उपरितनान्तरकरणगता या स्थितयः सम्यक्त्वमोहनीयस्य प्रथमस्थिति पर्यन्तं विद्यन्ते तत्स्थितिगतदलिकानि सम्यक्त्वमोहनीयस्य ताभिः(मिथ्यात्वमिश्रसत्कस्थितिभिः) सदृक्षासु स्थितिषु प्रक्षिप्यन्ते । अक्षराणित्वेवम्-मिथ्यात्वमिश्रयोरुदयावलिबाह्यान्तरायामे सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिसदृशस्थितः ये निषेकास्ताननुत्कीर्य स्वसमानस्थितिषु सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिनिषेकेष्वेव निक्षिपति, न तेषां निक्षेपविभागोऽस्ति यदुपरिस्थितान्तराऽऽयामनिषेकाः फालिगताःसर्वेऽपि पूर्वोक्तविधानेनैव सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ गुणश्रेण्यामुदयावल्यां च विभज्य निक्षिपतीत्यर्थः ।। (लब्धि. २१३)

भावार्थः पुनरयम्-मिश्रमोहनीयस्य मिथ्यात्वमोहनीयस्य च प्रथमस्थितिरावलिकाप्रमाणा, सम्यक्त्वमोहनीयस्य च प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा । मिथ्यात्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्यच प्रथमस्थितेरुपरितनप्रथमनिषेकगतद्रव्यं सम्यक्त्वमोहनीयस्य प्रथमस्थितेरावलिकाया उपरितनप्रथमनिषेके प्रक्षिपति । एवं मिथ्यात्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्य च प्रथमस्थितेरुपरितन द्वितीयनिषेकगतदलं सम्यक्त्वमोहनीयस्य च प्रथमस्थितेरावलिकाया उपरितनद्वितीयनिषेके निक्षिपति एवं तावद्वक्तव्यम्, यावद् सम्यक्त्वमोहनीयप्रथमस्थितेश्चरमनिषेकेण सदृशः मिथ्यात्वमोहनीयस्य मिश्रमोहनीयस्य च निषेकः । ततः परं दर्शनत्रिकस्यान्तरकरणायामत उत्कीर्यमाणदलिकं सम्यक्त्वप्रथमस्थितौ कोऽर्थः? गुणश्रेण्यामुदयावल्यां च विभज्य निक्षिपति । फालिद्रव्यं प्रथमस्थितावपकृष्टद्रव्यं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ यथायोगं प्रक्षिपति, तच्चाऽन्तरकरणक्रियाकालस्य द्विचरमसमयपर्यन्तं ज्ञातव्यम् । अन्तरकरणक्रियाकालचरमसमये फालिद्रव्यमपकृष्टद्रव्यं च सम्यक्त्वमोहनीयप्रथमस्थितौ निक्षिपति ।

उक्तं च लब्धिसारे "जावंतरस्स दुचरिमफालि पावे इमो कमो ताव ।
चरिमतिदंसणदव्वं छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि ।।२१४ ।

एव फालिद्रव्यस्याऽपकृष्टद्रव्यस्य च यावदन्तरद्विचरमफालि प्राप्नोति तावदयमेवनिक्षेपक्रमः । पुनर्दर्शनमोहत्रयस्य चरमफालिद्रव्यं तत्राऽपकृष्टद्रव्यं च सर्वं सम्यक्त्वप्रकृति प्रथमस्थितावेव निक्षिपति न पूर्ववदन्तरापकृष्टबहुभागस्य द्वितीयस्थितौ निक्षेप कर्तव्य इति भावः" । चरम समयेऽस्यनिक्षेपक्रमस्य कारणं न विद्मः । तत्त्वं तु तद्विदो विदन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽवसाने मिथ्यात्वस्य मिश्रस्य च विध्यातसंक्रमो भवति । इदमुक्तं भवति–विध्यातसंक्रमेण मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोर्दलिकं सम्यक्त्वे प्रक्षिपति । उक्तं च **पञ्चसंग्रहे–"पढमुवसमं व सेस अंतमुहुत्ताउ तस्स विज्झाओ त्ति ।"**

यथा प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वप्राप्तिसमयात् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धिरन्तर्मुहूर्तकालं यावत् प्रवर्धते स्म, तथैवोपशमश्रेणिगतौपशमिकसम्यक्त्वलाभसमयात् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशोधिः संख्यातगुणेन बृहत्तराऽन्तर्मुहूर्तकालं यावत् प्रवर्धते । उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ "पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालमिमां उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि,,** । औपशमिकसम्यक्त्वलाभादन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते कश्चिज्जन्तुर्हीयमानपरिणामः कश्चित्प्रवर्धमानः कश्चिदवस्थितपरिणामो वा भवति ।

दर्शनत्रिकमुपशमय्य किं करतीत्याह–

अद्धा परिवित्तीओ पमत्तइयरे सहस्ससो किच्चा ।
करणानि तिन्नि कुणए तइयविसेसे इमे सुणसु ॥३४॥

अद्धापरिवृत्तिः प्रमत्त-इतरे सहस्रशः कृत्वा ।
करणानि त्रीणि करोति तृतीयविशेषानिमान् शृणुत ॥३४॥ इति पदसंस्कारः

'अद्धा' इत्यादि, संक्लेशविशोधिवशात्प्रमत्तभाव इतरे चाऽप्रमत्तभावे कालपरावृत्तिः सहस्रशः कृत्वा चारित्रमोहनीयोपशमनाय त्रीणि करणानि यथाप्रवृत्तादीनि करोति । तथा चोक्तं **कषायप्राभृतचूर्णौ–"तहा चेव ताव उवसंतदंसमोहणिज्जो असादअरदिसोगअजसागित्तिआदीसु बंधपरावत्तसहस्साणि कादूण तदो कसाए उवसामेदुं कच्चे अधापवत्तकरणस्स परिणाम परिणमइ ।"** इति । एवं दर्शनत्रिकमुपशमय्य वा क्षपयित्वा जीवः षष्ठगुणस्थानकं सप्तमगुणस्थानकं च सहस्रशः स्पृष्ट्वा चारित्रमोहनीयोपशमनार्थं करणत्रयं करोति। तत्राऽप्रमत्तगुणस्थानके यथाप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणगुणस्थानकेऽपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणगुणस्थानके चानिवृत्तिकरणं क्रमशो भवति ।तानि करणानि प्रागिव वक्तव्यानि । तद्यथा — यथाप्रवृत्तकरणे स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिश्च न भवन्ति, केवलमनन्तगुणवृद्धया विशुद्ध्यां प्रवर्धमानो भवति । नानाजीवाऽपेक्षयाऽध्यवसायस्थानानि विशोधिश्च सर्वं पूर्ववज्ज्ञातव्यम् । उक्तं च **कषायप्रभृतचूर्णौ-"तं चेव इमस्स वि अद्धापवत्तकरणलक्खणं जं पुव्व परुविद"** इति।यथाप्रवृत्तकरणकालात्पूर्वाऽवस्थायां पूर्ववदत्राऽपि योग्यता वक्तव्या, नवरं बन्ध उदये च संयमयोग्याः प्रकृतयो ज्ञातव्याः ।सत्तायां चाऽयं विशेषो ज्ञातव्यः । नरकतिर्यगायुरनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाः षट् प्रकृती-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त्वा द्वाचत्वारिंशदधिकशतं प्रकृतयः सत्तायां विद्यन्ते, अबद्धायुष्कस्त्वेकचत्वारिंशदधिकशतं-प्रकृतयः विद्यन्ते, अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्योपशमनामभ्युपगन्तृणामाचार्याणां मतेन पूर्वतश्चतस्रः प्रकृतयोऽधिकाः सत्तायां वाच्याः । क्षीणसप्तकस्य तु पूर्वतस्तिस्रः प्रकृतयो न्यूना वक्तव्याः ।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिरपूर्वस्थितिबन्धश्चाऽऽरभ्यन्ते तेषां स्वरूपं पूर्ववदवगन्तव्यम् । तथापि स्थानाशून्यार्थमत्र किञ्चिदभिधीयते—अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये औपशमिकसम्यग्दृष्टेर्जघन्यस्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागमात्रमुत्कृष्टतस्तु सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणं भवति । क्षायिकसम्यग्दृष्टेस्तु घात्यमानं ❖ स्थितिखण्डमुत्कृष्टतोऽपि पल्योपमसंख्येयतमभागमात्रं भवति, न तु सागरोपमपृथक्त्वमात्रम् । उक्तं च कषायप्राभृत-चूर्णौ—"**जो खीणदंसणमोहणिज्जो कसायउवसामगो तस्स खीणदंसणमोहणिज्जस्स कसायउवसामणाए अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडय णियमा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो** ।" इति । अत्र कारणमिदं संभाव्यते—स्थितिखण्डस्य स्थितिसत्कर्माऽनुसारित्वाद् दर्शनमोहनीयक्षपणायां स्थितिघातैः प्रभूतानां स्थितीनां विनष्टत्वादुत्कृष्टतोऽपि स्थितिखण्डं पल्योपमसंख्येयभागमात्रं भवति । अभिनवस्थितिबन्धश्च प्रत्यन्तमुहूर्तं पल्योपम-संख्येयभागेन हीनो भवति । एकस्मिन् स्थितिघातेऽभिनवस्थितिबन्धे वाऽनेकसहस्राणि रसघाता व्रजन्ति । स्थितिघातोऽभिनवस्थितिबन्धश्च युगपदारभ्येते युगपन्निष्ठां च यातः ।

सप्तकर्मणां गुणश्रेणिः पूर्ववद् गलितावशेषमात्री भवति तदायामश्च पूर्ववदन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणकालद्वयात्किञ्चिदधिकः । ★ स च गुणश्रेण्यायामोऽपूर्वकरणाऽद्धाऽनिवृत्तिकरणाऽद्धासूक्ष्मसंपरायाद्धोपशान्तकषायगुणस्थानकसंख्येयभागप्रमाणो भवति, तथा चाऽपूर्वकरणात्प्रारब्धा गलितावशेषप्रमाणा गुणश्रेणिः सूक्ष्मसंपरायचरमसमयं यावत्प्रवर्तते, तदानीं च प्रवर्तमानाया गुणश्रेण्या निक्षेप उपशान्तमोहगुणस्थानकसंख्येयतमाऽऽयामे भवति, तथा यदपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिशीर्षमासीत्, तदेव सूक्ष्मसंपरायचरमसमयेऽपि भवति, तेनेदं

❖ लब्धिसारेऽपि क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टतोऽपि स्थितिखण्ड पल्योपमसंख्यातभागमात्रमेवाऽक्षराणि त्वेवम्"तस्मिन्नेवाऽपूर्वकरणप्रथमसमये वर्तमानस्य चारित्रमोहोपशमकस्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्जघन्यमुत्कृष्टं च स्थितिकाण्डकं पल्यसंख्यातभागमात्रमेव तथाऽपि जघन्यादुत्कृष्टं संख्यातगुणितम्, दर्शनमोहनीयक्षपणकाले विशुद्धिविशेषेण कर्मस्थितेर्बहुशः खण्डितत्वात्स्थित्यनुसारेण च काण्डकाल्पबहुत्वस्य न्याय्यत्वात् ."

★ उदयावलिबहिः प्रथमसमयादारभ्याऽनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसंपरायगुणस्थानककालेभ्य उपशान्तकषायकालसंख्यातैकभागमात्रेणाऽभ्यधिका गुणश्रेणिरपूर्वकरणप्रथमसमये गलिताऽवशेषप्रमाणा प्रारब्धा सा चाऽऽयुर्वर्जितसप्तकर्मण.मुदयावलिबाह्यद्रव्यमपकृष्य प्रागुक्तविधानेन निक्षेपस्वरूपा(इति लब्धिसार २२४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धं भवति—अपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेण्या यामोऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसंपरायाऽद्धाया अग्र उपशान्तकषायसंख्यातभागं यावत्संभवति ।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादेव सर्वासामबध्यमानानां प्रकृतीनामशुभानां गुणसंक्रमः प्रवर्तते । उक्तं चोपाध्यायप्रवरैः कर्मप्रकृतिटीकायाम्— "अत्राऽपि स्थितिघातादयः पूर्ववदेव प्रवर्तन्ते । नवरमिह सर्वासामशुभप्रकृतीनामबध्यमानानां गुणसंक्रमः प्रवर्तत इति वक्तव्यम्" इति । यद्यपि कषायप्राभृतचूर्णिकारैः साक्षाद् गुणसंक्रमो नोक्तस्तथाऽपि ★परिशेषाऽनुमानन्यायेन गुणसंक्रमः संभाव्यते, तथाहि—अबध्यमानाऽशुभप्रकृतीनामपूर्वकरणगुणस्थानकात्प्रभृति कः संक्रमो वाच्यः । न च विध्यातसङ्क्रमः संभवति, तस्य सप्तमगुणस्थानकपर्यन्तं प्रवर्तमानत्वात् । तथैव यथाप्रवृत्तसंङ्क्रमोऽपि न प्रवर्तते, बन्धयोग्यप्रकृतीनां तस्य भवनात् । उद्वलनाऽपि न प्रवर्तते, प्रकृतिविनाशे तस्य सद्भावादिति परिशेषाद् गुणसङ्क्रमः संभवति । किं च कषायप्राभृतचूर्णौ श्रेणितः प्रतिपाताऽधिकारे यथाप्रवृत्तकरणे गुणसङ्क्रमस्य विच्छेद उक्तः, तद्यथा "पढमसमय अधापवत्तकरणे गुणसंकमो वोच्छिण्णो" इति । तेनाऽऽरोहकस्याऽपूर्वकरणे गुणसङ्क्रमः प्रवर्तते स्मेति सिद्धं भवति, अन्यथा विच्छेदस्याऽनुपपत्तेः । विहितस्यैव निषेधः सार्थक इति भावः । 卐अपूर्वकरणगुणस्थानसत्कप्रथमभागस्य प्रान्ते निद्राद्विकस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते । तत्षष्ठभागान्ते-देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकतैजसकार्मणशरीरवर्णचतुष्कसमचतुरस्रसंस्थान–शुभखगतित्रसनवकाऽऽनुपूर्व्योद्योतवर्जितप्रत्येकषट्करूपत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धो विच्छिन्नो भवति । अपूर्वकरणगुणस्थानकस्य सप्तमभागान्तेऽपूर्वकरणगुणस्थानकस्य चरमसमये हास्यरतिभयजुगुप्सालक्षणचतुःप्रकृतीनां बन्धो हास्यादिषट्कस्य चोदयो व्यवच्छिद्येते ।

यद्यप्यनुक्रमेण त्रयो बन्धविच्छेदा भवन्ति, तथाप्यपूर्वकरणगुणस्थानकस्य सप्त विभागाः क्रियन्ते, तत्रेदं कारणं वयं ब्रूमहे-अपूर्वकरणगुणस्थानकस्य समाः सप्तविभागाः क्रियन्ते तत्र-प्रथमविभागान्ते निद्राद्विकस्य षष्ठविभागान्ते त्रिंशत्प्रकृतीनां सप्तमविभागान्ते च चतसृणां प्रकृतीनां बन्धो व्यवच्छिन्नो भवति । उक्तं च कषायप्रभृतचूर्णौ—अपुव्वकरणपविट्ठस्स-

---

★ नपुंसकवेदादिप्रकृतीनां गुणसङ्क्रमोऽप्यत्रैव प्रारब्धः । बन्धवत्प्रकृतीनां गुणसङ्क्रमो नास्तीति लब्धिसारः ।

卐 पढमे छट्ठे चरिमेबंधे दुगतीस चदुरा वोच्छिण्णा । छण्णोकसायउदयो अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णा । (लब्धिसारगाथा२२५) अपूर्वकरणकालस्य सप्तभागेषु प्रथमभागे द्वयोर्निद्राप्रचलयोर्बन्धो व्युच्छिन्नः । षष्ठे भागे तीर्थकरत्वादीनां त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धो व्युच्छिन्नः । सप्तमभागचरमसमये हास्यादिचतुःप्रकृतीनां बन्धो व्युच्छिन्नः । हास्यादिषण्णां कषायाणामुदयोऽपूर्वकरणचरमसमये व्युच्छिन्नः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्हि णिद्दापयलाओ वोच्छिण्णाओ, सो कालो थोवो । परभवियणामाणं वोच्छिण्ण-कालो संखेज्जगुणो अपुव्वकरद्धा विसेसाहिआ"★। इति । एवं सहस्रैः स्थितिघातैरपूर्वकरणं परिसमापयति, परिसमाप्य चाऽनिवृत्तिकरणं प्रविशति । अनिवृत्तिकरण इमान्वक्ष्यमाणान्विशेषान् शृणुत । अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमयात्प्रभृति स्थितिघातादयः प्रवर्तन्ते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "पढमसमयअणियट्टिकरणस्स ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । अपुव्वो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । अणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा । गुणसेढीअसंखगुणणाए सेढीए सेसे सेसे णिक्खेवो । " इति । तान् स्थितिघातादीन्विशेषान्विस्तरतो वक्तुकाम आदावायुर्वर्जसप्तकर्मणां स्थितिसत्त्वं स्थितिबन्धं चाऽऽह–

अंतोकोडाकोडीसंत अनियट्टिणो य उदहीणं ।
बंधो अंतोकोडी पुव्वकमा हाणि अप्पबहु ॥३५॥

अन्तः कोटाकोटीसत्ताऽनिवृत्तेश्चोदधीनाम् ।
बन्धोन्तःकोटी पूर्वक्रमाद्धानिरल्पबहुत्वम् ॥ ३५ ॥इति पदसंस्कारः ।

अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमय आयुर्वर्जसप्तकर्मणां स्थितिसत्कर्माऽन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणं स्थितिबन्धः पुनरन्तःसागरोपमकोटीप्रमाणो ज्ञातव्यः,● कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेऽपि स्थितिबन्धऽन्तःसागरोपमकोटीप्रमाण एव, अक्षराणि त्वेवम् "आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए ट्ठिदिबंधो अंतोकोडीए सदसहस्सपुधत्तं" इति पञ्चसंग्रहे त्वत्र बन्धस्य सत्तायाश्चाऽविशेषेणाऽन्तःकोटाकोटीसागरोपमप्रमाणत्वमेवोक्तम्। तथा च तद् ग्रन्थः"अंतकोडाकोडीबंधं संतं च सत्तण्हं(उपशमना० गाथा ५)।"इति तथैव मूलटीकायाम्

★ तथा चोक्तं धवलायामपि " एदेण आवीदोप्पहुडि ट्ठिदिखंडपुधत्ते गदे णिद्दापयलाणं बंध वोच्छेदो भवति । अपुव्वकरणद्धं सत्तखंडाणि कादूण पढमखंडे वोच्छिण्णा इदि उत्तं होदि । तदो अंतोमुहुत्ते गदे परभवियाण बंधवोच्छेदो पंचसत्तभागे गंतूण त्ति उत्तं होदि । अपुव्वकरणद्धाए जम्हिं णिद्दापयलायओ वोच्छिण्णाओ, सो कालो थोवो परभवियाणमाणं वोच्छिन्नकालो पंचगुणो । अपुव्वकरणद्धा बे सत्त भागाहिया वा तदो अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमये ट्ठिदिखंडयमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च समगं णिट्ठिदा । तम्हि चेव समये हस्सरदिभयदुगंछाणं बंधो विच्छिण्णो हस्सरदिअरदिसोगभयदुगंछाछकम्माणमुदओ च तत्थेव वोच्छिण्णो ।"

● तथैव लब्धिसारेऽपि "अंतकोडाकोडी अंतोकोडी च संत बंधं च ।
सत्तण्हं पयडीणं अणियट्टीकरणपढमम्हि ॥(लब्धिसार गा० २२७)"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"किन्त्वत्र तृतीये करणे भेदः, अन्तःकोटाकोटीमानं बन्धं सत्कर्म च सप्तानामायुर्वर्जानां कर्मणां करणादौ भवतीति।" इति।

तथैव पञ्चसङ्ग्रहमलयगिरिटीकायामप्युक्तम्–केवलमत्र तृतीयकरणे भेदस्तमेव-दर्शयति-अन्तःकोटाकोटीमानं बन्धं सत्कर्म च सप्तानामायुर्वर्जानां करणप्रथमसमये करोति।" इति। अत्र यद्यपि प्रागुक्तेष्वपि करणेष्वेतावान् (अन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणः) बन्ध एतावच्च सत्कर्म सप्तकर्मणां प्राप्यते स्म, तथाऽप्यत्र तदपेक्षया बन्धसत्कर्मणी असंख्येयगुणहीने द्रष्टव्ये इति विशेषः। अनिवृत्तिकरणेऽप्यपि बन्धः पूर्वक्रमेण हानिं गच्छति, तद्यथा—अन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते स्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्यं पल्योपमसंख्येयभागहीनं करोति, तस्मिन्नपि पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं पल्योपमसंख्येयभागहीनं करोतीत्यादि।

अल्पबहुत्वमपि बन्धसत्ताऽपकर्षेऽपि पूर्वक्रमेणैव वेदितव्यम्। तद्यथा-बन्धसत्कर्मणोः स्थित्यपेक्षया सर्वस्तोके नामगोत्रे, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्ये। ततो ज्ञानावरणवेदनीयाऽन्तरायाणि विशेषाऽधिकानि स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यानि। ततोऽपि मोहनीयं विशेषाऽधिकम्। एतच्चाऽल्पबहुत्वं सर्वकालमपि द्रष्टव्यं यावदेतत्स्थानमिति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ-"अप्पबहु त्ति पुव्वकम्मेणेव अप्पाबहुग पि सव्वथोवाणि नामगोयाणि नाणावरणदंसणावरणवेयणियअंतराइयाणि चत्तारि वि तुल्लाणि विसेसाहिगाणि चरित्तमोहणिज्जं विसेसाहियं। सव्वकालं जाव एयंठाणं ताव एवं अप्पाबहुगं" इति।

स्थितिखण्डस्य विशेषं प्रदर्शयितुकाम आह–

ठिइकंडगमुक्कस्सं पि तस्स पल्लस्स संखतमभागो।
ठिइबंधबहुसहस्से सेक्केक्कं जं भणिस्सामो ॥३६॥

स्थितिखण्डमुत्कृष्टमपि तस्य पल्यस्य संख्येयतमभागः।
स्थितिबन्धबहुसहस्रेष्वेकैकं यद्भणिष्यामि ॥३६॥ इति पदसंस्कारः

उत्कृष्टस्थितिखण्डं घात्यमानं तस्य=अनिवृत्तिकरणे प्रविष्टस्य चारित्रमोहोपशमकस्य पल्योपमसंख्येयभागमात्रमेव भवति, नाऽधिकम्, जघन्यमपि तावदेव, केवलमुत्कृष्टपल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणस्थितिखण्डतो जघन्यमिदं स्थितिखण्डं लघुतरं ज्ञातव्यम्। तत्राऽयं विशेषः–सप्तकर्मणां स्थितिखण्डस्य पल्योपमसंख्येयतमभागमात्रत्वेऽपि नामगोत्रयोः स्थितिखण्डं सर्वस्तोकम्, ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां विशेषाऽधिकम् ततोऽपि मोहनीयस्य विशेषाऽधिकम्। उक्तं च पञ्चसंग्रह उपशमनाऽधिकारे मूलटीकायाम्-"यद्यपि सप्तानामपि कर्मणां

पल्योपमसंख्येयभागोऽहितो घातः । तथाऽपि नामगोत्रयोःस्तोको हीनस्थितत्वात्, ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां विशेषाऽधिको मोहनीयस्य तस्मादपि विशेषाऽधिक इति गाथार्थः ।" इति अनिवृत्तिकरणप्रथमसमय एव देशोपशमनानिद्धत्ति-निकाचनाकरणानि व्यवच्छेदमायान्ति । किमुक्तं भवति ? उच्यते-अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये किमपि दलिकं कस्यचिदपि कर्मणो देशोपशमितं वा निधत्तं वा निकाचितं वा सत्तायां न तिष्ठति, तथा चाऽतः प्रभृति कस्मिन्नपि कर्मणि देशोपशमनानिद्धत्तिनिकाचनाकरणानि न प्रवर्तन्ते । एवं संख्यातसहस्रेषु स्थितिघातेषु स्थितिबन्धः सहस्रपृथक्त्वसागरोपमप्रमाणो भवति । उक्तं च कर्मप्रकृति-चूर्णौ--**"ततो ठितिकंडगसहस्सेसु गएसु वज्झमाणठितिबंधो सागरोपमसहस्स-पुहुत्तं भवति"** इति । 卐 ततोऽनिवृत्तिकरणस्य संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वेकस्मिंश्च संख्येयतमे भागेऽवशिष्टमाने सति स्थितिबन्धोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियबन्धतुल्यो भवति, इदमुक्तं भवति-नामगो-त्रयोः सागरोपमस्य द्विसहस्रसप्तभागप्रमाणो स्थितिबन्धो भवति, ज्ञानदर्शनावरणाऽन्तरायवेद-नीयानां सागरोपमत्रिसहस्रसप्तभागप्रमाणो मोहनीयस्य च सागरोपमचतुःसहस्रसप्तभागप्रमितः । तदनन्तरं स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते सति चतुरिन्द्रियबन्धतुल्यः स्थितिबन्धो भवति, पृथक्त्वशब्द-स्य बहुत्ववाचित्वेन संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेष्विति व्याख्येयम्, इदमुक्तं भवति—स्थिति-खण्डपृथक्त्वे गते सति चतुरिन्द्रियबन्धतुल्यःस्थितिबन्धो भवति, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिबन्ध-तुल्यबन्धभवनानन्तरं संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु व्रजितेषु सत्सु नामगोत्रयोःसागरोपमशत-द्विसप्तभागमात्रः, ज्ञानदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां सागरोपमशतत्रिसप्तभागप्रमाणो मोहनीयस्य च सागरोपमशतचतुःसप्तभागमितः स्थितिबन्धो भवति ।

ततो भूयः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते सति त्रीन्द्रियबन्धतुल्यः स्थितिबन्धो भवति । इदमुक्तं भवति-चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धतुल्यबन्धात्संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु नामगोत्रयोः पञ्चाशत्सागरोपमद्विसप्तभागप्रमितः,ज्ञानदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां पञ्चाशत्सा-गरोपमत्रिसप्तभागमात्रश्चारित्रमोहनीयस्य च पञ्चाशत्सागरोपमचतुःसप्तभागप्रमाणः स्थितिबन्धो

卐—तथैवोक्तं लब्धिसारेऽपि—ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा तत्थ असण्णिजस्स ठिदिस-रिसट्ठिदिबंधणं होदि ।। (लब्धिसार गाथा २२८) तट्टीका—अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्याऽन्तर्मुहूर्तं प्रति पल्यसंख्यातभागमात्रस्थितिबन्धाऽपसरणक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु तत्करणकालस्य संख्या-तबहुभागा यदा गच्छन्ति तदाऽसंज्ञिस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति । सहस्रसागरोपमप्रतिभागेन-नामगोत्रयोर्द्विसप्तमभागप्रमितः । ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायसातवेदनीयानां स्थितिबन्धः सागरोपम-सहस्रत्रिसप्तमभागप्रमितः, चारित्रमोहस्य स्थितिबन्धः सागरोपमसहस्रचतुःसप्तभागप्रमितो भवतीत्यर्थः । एवं विंशतिकत्रिंशत्कचत्वारिंशत्ककर्मणां प्रतिभागक्रम उत्तरत्राऽपि ज्ञातव्यः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवति, ततः पुनः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते सति द्वीन्द्रियबन्धतुल्यः स्थितिबन्धो भवति । अयं भावः-त्रीन्द्रियस्थितिबन्धतुल्यबन्धात्संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेष्वतीतेषु नामगोत्रयोः पञ्चविंशतिसागरोपमद्विसप्तभागमात्रः, ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां पञ्चविंशतिसागरोपमत्रिसप्तभागमितो मोहनीयस्य च पञ्चविंशतिसागरोपमचतुःसप्तभागप्रमाणः स्थितबन्धो भवति । ततः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गत एकेन्द्रियस्थितिबन्धतुल्यः स्थितिबन्धो भवति । इदमुक्तं भवति-द्वीन्द्रियबन्धतुल्यबन्धभवनतः संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेष्वतिक्रान्तेषु सत्स्वेकेन्द्रियबन्धतुल्यस्थितिबन्धो भवति, तद्यथा-नामगोत्रयोःसागरोपमद्विसप्तभागप्रमाणः । ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां सागरोपमत्रिसप्तभागमात्रो मोहनीयस्य च सागरोपमचतुःसप्तभागमितः स्थितिबन्धो भवति ।

इत ऊर्ध्वं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्स्वायुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणामेकैकं यद्वक्तव्यं भवति, तद्भणिष्यामः । अथ प्रतिज्ञां निर्वोढुकाम आह--

पल्लदिवड्ढविपल्लाणि जाव पल्लस्सं संखगुणहाणी ।
मोहस्स जाव पल्लं संखेज्जइ भागहाऽमोहा ॥३७॥
तो नवरमसंखगुणा एक्कपहारेण तीसगाणमहो ।
मोहे वीसगहेट्ठा य तीसगाणुप्पि तइयं च ॥३८॥
तो तीसगाणमुप्पिं च वीसगाई असंखगुणणाए ।
तइयं च वीसगाहिय विसेसमहियं कमेणोति ॥३९॥

पल्यद्वयर्धद्विपल्यानि यावत्पल्यस्य संख्येयगुणहान्या ।
मोहस्य यावत्पल्यं संख्येयतमभागहा अमोहयोः ॥३७॥
ततो नवरमसंख्येयगुणहीनमेकप्रकारेण त्रिंशत्कानामध. ।
मोहस्य विंशतिकयोरधस्ताच्च त्रिंशतिकानामुपरि तृतीयं च ॥३८॥
ततस्त्रिंशत्कानामुपरि च विंशतिकान्यसंख्येयगुणनया ।
तृतीयं च विंशतिकाभ्यां च विशेषाधिकं क्रमेणेति ॥३९॥ इति पदसंस्कारः

पल्योपमसार्धपल्योपमद्विपल्यानि यावत्पूर्वक्रमेणैव हानिरल्पबहुत्वं च । इदमत्र ❁हृदयम्---एकेन्द्रियस्थितिबन्धतुल्यबन्धाऽनन्तरं स्थितिखण्डसहस्रेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु वा गतेषु नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्योपममात्रः, ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां सार्धपल्योपमप्रमाणो

टिप्पणी० ❁ उक्तं च लब्धिसारेऽपि—ट्ठिदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयचदुर तिय वि एएदि । ट्ठिदिबंधसमं होदि हु ट्ठिदिबंधमणुक्कमेणेव । (लब्धिसारगाथा २२९) एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ट्ठिदिबंधो पल्लेक्कदिवड्ढुगे ट्ठिदिबंधो वीसियतियाण । (लब्धिसारगाथा २३०)

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

मोहनीयस्य च द्विपल्योपममितो भवति । पल्योपमसार्धपल्योपमादिस्थितिबन्धं यावत्प्राक्तन-स्थितिबन्धः सर्वोऽपि पूर्वस्मात्पूर्वस्मात्पल्योपमसंख्येयतमेन भागेन हीनो हीनतरो ज्ञातव्यः । आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां स्थितिसत्कर्माऽन्तःसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणमेव भवति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"सव्वेसिं संताणि जहक्कमहीणाणी अंतोकोडाकोडीए" इति । स्थितिसत्कर्मणश्चाऽल्पबहुत्व तथैव तेन नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं स्तोकम्, ततो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां विशेषाऽधिकम् । ततो मोहनीयस्य च विशेषाधिकम् उक्तं च **पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम् —"सत्कर्मणि चाऽल्पबहुत्वं बन्धक्रमेण वक्तव्यम् । यद्यप्यन्तःकोटाकोटिः सप्तानामपि तथाऽपि नामगोत्रयोः स्तोकं वेदनीयघातिकर्मणां विशेषाऽधिकं मोहनीयस्यविशेषाऽधिकम् ।**

"पल्यस्स" ति षष्ठी पञ्चम्यर्थे, अध इति चाऽध्याहर्तव्यम् । 卐 ततः पल्योपमादधः स्थितिबन्धस्य संख्येयगुणहानिर्भवतीत्यर्थः । इदमुक्तं भवति-यस्य कर्मणो यस्मिन्काले पल्योपमप्रमाणस्थितिबन्धो जातः, तस्य कर्मणस्तत्कालात्प्रभृत्यन्योऽन्यः स्थितिबन्धो जायमानः संख्येयगुणहीनो भवति । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ-"जस्स जस्स पलिओवमसमगो ठितिबंधो होति तप्पभिति तस्स तस्स संखेज्जगुणहाणीए ओसरति ।"** इति । ततश्चेदानीं नामगोत्रयोः स्थितिबन्धात्पल्योपमप्रमाणस्थितिबन्धं संख्येयगुणहीनं करोति, शेषाणां तु कर्मणां पल्योपमसंख्येयभागहीनं करोति, उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**णामगोदाण पलिदोवमट्ठिदिगादो बंधादो अण्णं जं ट्ठिदिबंध बंधहिदि सो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो** "इति । एवं क्रमेण कतिपयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां पल्योपममात्रः स्थितिबन्धो भवति, नामगोत्रयोश्च पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणो मोहनीयस्य च सार्धपल्योपममानो भवति, उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ-"एवं संखेज्जेसु ठितिबंधसहस्सेसु गएसु नाणावरणदंसणावरणवेयणीयअंतराईयाणं पलिओवम ठितिबंधो मोहणिज्जस्स दिवड्ढपलिओवमट्ठितिबंधो ।"** इति । **कषायप्राभृतचूर्णौ** तत्र मोहनीयस्य पल्योपमत्रिभागेनाऽधिकः पल्योपमप्रमाणः स्थितिबन्धो भवती-

---

卐 उक्तं च लब्धिसारे ....अन्तःकोटाकोटीमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृति पल्योत्पत्तिपर्यन्तं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिबन्धाऽपसरणं भवति । पल्यमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृति पल्यसंख्यातबहुभागमात्रस्थितिबन्धाऽपसरणं भवति । पल्यस्थितेरनन्तरं दूरापकृष्टिस्थितिपर्यन्तं संख्यातगुणहीनः पल्यसंख्यातैकभागमात्रीं स्थितिं बध्नातीत्यर्थः । (लब्धिसार० २३१ टीका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्युक्तम् । तथा च तद्ग्रन्थः—**मोहणीयस्स तिभागुत्तरं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो** ।"इति। अतः प्रभृति नामगोत्रवर्ज्ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणामन्योऽन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो भवति, ज्ञानावरणादीनां पल्योपममात्रस्थितिबन्धस्य प्राप्तत्वात्, मोहनीयस्य तु संख्यातभागहीनो भवति । तत ऊर्ध्वं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु मोहनीयस्य पल्योपममात्रस्थितिबन्धो भवति, तदानीं च शेषाणां षट्कर्मणां स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागमात्रो भवति । तत्राऽल्पबहुत्वं चेत्थम् (१) नामगोत्रयोः सर्वाऽल्पः स्थितिबन्धः स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः । (२) ततोऽपि ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां संख्यातगुणः स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः (३) ततो मोहनीयस्य संख्येयगुणः ।

"मोहस्स जाव पल्लं संखेज्जभागहा" त्ति, यावत् 'मोहस्स' मोहनीयस्य 'पल्लं' पल्योपममात्रः स्थितिबन्धो न भवति, तावत्प्राक्तनसर्वोऽपि मोहनीयस्य स्थितिबन्धः"संखेज्ज-इभागहा" इति पल्योपमस्य संख्येयतमेन भागेन हीनो हीनतरो वेदितव्यः । पल्योपममात्रे च स्थितिबन्धे जाते सत्यन्यं स्थितिबन्धं संख्येयगुणहीनं करोति, एतच्च भावितमेव । अस्माच्च संख्येयगुणहीनान्मोहनीयस्य स्थितिबन्धात्प्रभृतेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु मोहनीयस्याऽपि स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागमात्रो भवति । इदमुक्तं भवति-संख्येयगुणहीनान्मोहनीयस्य स्थितिबन्धात्प्रभृतेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु वा स्थितिघातसहस्रेषु वा गतेषु सत्सु सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयतमभागमात्रो भवति. तथाऽपि स्थितिबन्धस्याऽल्पबहुत्वं पूर्ववदेव वक्तव्यम् । तद्यथा (१) नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः सर्वाऽल्पः, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः (२) ततो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां संख्यातगुणः, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्य (३) ततोऽपि मोहनीयस्य संख्यातगुणो भवति ।

तदानीं च यद्भवति तदाह-**"अमोहो तो नवरमसंखगुण"** इत्यादि, **'तो'** त्ति, ततः सर्वेषां कर्मणां पल्योपमसंख्येयभागमात्रस्थितिबन्धभवनाऽनन्तरं संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु **"अमोहे"** इति द्विवचनतात्पर्यान्मोहनीयवर्जे नामगोत्रे गृह्येते नवरं केवलमन्यं स्थितिबन्धमभिकृत्याऽसंख्येयगुणहीने भवतः, इदमुक्तं भवति-सर्वेषां कर्मणां पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणस्थितिबन्धभवनाऽनन्तरं संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रेष्वतिक्रान्तेषु सत्सु 卐 नाम-

टिप्पणी० 卐 लब्धिसारेऽप्येवम्—वीसीयतीसोयमोहानां पल्यद्वयर्द्धपल्यद्वयमात्रस्थितिबन्धभ्यः पर संख्यातसहस्रेषु नामगोत्रयो; पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु तिसियमोहयोः पल्योपमसंख्यातैकभागमात्रेषु च स्थितिबन्धाऽपसरणेषु गतेषु वीसियादीनां यथासंख्यं पल्यसंख्यातैकभागमात्रपल्यमात्रत्रिभागाधिकमात्राः स्थितिबन्धाः एकस्मिन्काले जायते, ततः संख्यातसहस्रेषु वीसितिसिययोः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु मोहस्य पल्यसंख्यातैकभागमात्रेषु च स्थितिबन्धाऽपसरणेषु गतेषु वीसियादीनां यथासंख्यं पल्यसंख्यातैक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोत्रयोरन्यं स्थितिबन्धमसंख्येयगुणहीनमारभते, पञ्चानां कर्मणां तु पूर्ववत्संख्येयगुणहीनम् । अतःप्रभृति नामगोत्रयोः पल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणःस्थितिबन्धः प्रवर्तते, स च पूर्वपूर्वतोऽसंख्येयगुणहीनो भवति शेषकर्मणां तु पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणो भवति, स चोत्तरोत्तरः संख्येयगुणहीनो भवति । अत्र स्थितिबन्धमाश्रित्याऽल्पबहुत्वं विचार्यते–(१) नामगोत्रयोः सर्वस्तोकः स्थितिबन्धः । (२) ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरयाणामसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः । (३) ततोऽपि मोहनीयस्य संख्यातगुणो भवति । तत उक्तक्रमेण स्थितिबन्धसहस्रेषु वा गतेषु सत्सु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवति । अयं भावः–नामगोत्रयोः पल्याऽसंख्येयभागप्रमाणस्थितिबन्धभवनात् सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवति पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रो भवतीत्यर्थः । एवं नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रो भवति, मोहनीयस्य तु पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाणो भवति । तदानीं स्थितिबन्धमधिकृत्याऽल्पबहुत्वं निगद्यते–(१)नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः सर्वाऽल्पः, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः (२) ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणामसंख्यातगुणः, स्वस्थाने तु मिथस्समानः । (३) ततोऽपि मोहनीयस्याऽसंख्यातगुणः । ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु "एक्कपहारेण तीसगाणमहो मोहे" त्ति, एकप्रहारेणैकहेलयैव त्रिंशत्कानां त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटीस्थितिकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणामधस्तान्मोहनीये कर्मणि स्थितिबन्धमधिकृत्याऽसंख्येयगुणहीनो भवति । नाऽत्र कश्चिदन्यो विकल्पः करणीयः । **उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"ततो ठितिबंधसहस्सेसु बहुसु गएसु 'एक्कप्पहारेण तीसगाणमहो मोहे' त्ति एक्कप्पहारेण चेव त्ति एक्कहेल्लाए 'तीसगाणं' ति नाणावरणदंसणावरणवेयणियअंतराईयाणि एएसिं ठितीतो मोहणिज्जस्स ठिती असंखेज्जगुणहीणा य नत्थि अन्नोविकप्पो । "इति** । पूर्वं हि मोहनीयस्य स्थितिबन्धो ज्ञानावरणीयदीनां स्थितिबन्धतोऽसंख्येयगुणो भवति स्म । संप्रति पुनरेकहेलयैव ज्ञानावरणीयादीनां स्थितिबन्धतोऽपि

भागमात्रः पल्यमात्रः स्थितिबन्धो जायते । वोसियस्थितिबन्धात्तिसियस्थितिबन्धः संख्येयगुण इति विशेषो ज्ञेयः । (लब्धिसारटीका २३२) नामगोत्रयोर्दूरापकृष्टिस्थितौ जातायां स्थितिबंधाऽपसरणमसंख्यातबहुभागप्रमाणं भवति । एवमसंख्यातबहुभागप्रमाणं स्थितिबन्धाऽपसरणं तावद्वक्तव्यं यावदसंख्यातवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति । लब्धिसाराऽक्षराणि त्वेवम्-दूरापकृष्टस्थितेः प्रभृति संख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्धोत्पत्तिपर्यन्तं पल्याऽसंख्यातबहुभागमात्रं स्थितिबन्धाऽपसरणं भवति । दूरापकृष्टेरनन्तर संख्यातसहस्रमात्रस्थितिबन्धपर्यन्तमसंख्यातगुणहीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिं बध्नातीत्यर्थः । (लब्धिसार गाथाटीका २३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीयस्य स्थितिबन्धेनाऽसंख्येयगुणहीनेन भवितव्यम् ।

अथ स्थितिबन्धमधिकृत्याऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते-(१)नामगोत्रयोः सर्वाऽल्पः स्थितिबन्धः, स्वस्थाने तु मिथस्समानः (२)ततो मोहनीयस्याऽसंख्येयगुणः(३) ततोऽपि ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः,स्वस्थाने तु परस्परं समानः । ततः पश्चुक्ताल्पबहुत्वक्रमेण सहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु 'चोसगहेट्ठाये' त्ति,मोहनीयस्य स्थितिबन्ध एकहेलयैव विंशतिकयोर्विंशतिसागरोपमकोटाकोटीस्थितिकयोर्नामगोत्रयोरधस्तादसंख्येयगुणहीनो जातः, किमुक्तं भवति?पूर्वं हि मोहनीयस्य स्थितिबन्धो नामगोत्रयोःस्थितिबन्धतोऽसंख्येयगुण आसीत्, संप्रति पुनरेकहेलयैवेत्थं स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवति, येन मोहनीयस्य स्थितिबन्धो नामगोत्रयोःस्थितिबन्धतोऽसंख्येयगुणहीनो भवेत् । तदानीमल्पबहुत्वं स्थितिबन्धमाश्रित्य विचार्यते (१)मोहनीयस्य स्थितिबन्धस्सर्वस्तोकः (२)ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः । (३) ततोऽपि ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः स्वस्थाने मिथस्समानः । ततःसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्यतीतेषु सत्सु"तीसगाणमुप्पि तइयं च" त्ति, स्थितिबन्धमधिकृत्य 'त्रिंशत्कानां' त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटीस्थितिकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामुपरि तृतीयं वेदनीयं भवति । किमुक्तं भवति ? प्राग् हि ज्ञानावरणादीनां चतुर्णां स्थितिबन्धो मिथस्तुल्य आसीत्,संप्रति तु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणामपि मध्ये ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धो वेदनीयस्याऽधस्तादसंख्येयगुणहीनो जातः, वेदनीयस्य तु सर्वोपरि जातः । वेदनीयस्य सर्वेभ्योऽसंख्येयगुणः स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः ।

अत्र स्थितिबन्धमाश्रित्याऽल्पबहुत्वमभिधीयते—(१) सर्वस्तोको मोहनीयस्य स्थितिबन्धः । (२) ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः (३) ततोऽपि ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु परस्परं समानः । (४) ततोऽपि वेदनीयस्याऽसंख्येयगुणः । ततोऽनेन विधिना स्थितिबन्धसहस्रेषु व्यतीतेषु सत्सु त्रिंशत्कानां ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धो विंशतिकयोर्नामगोत्रयोः स्थितिबन्धादधस्तनोऽसंख्येयगुणहीनो भवति । अयं भावः—प्राग्हि नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः स्थितिबन्ध आसीत्, संप्रति ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धो नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतोऽसंख्येयगुणहीनो भवति तथा नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतो ★ वेदनीयस्य केवलं विशेषाऽधिको द्रष्टव्यः ।

★ टिप्पणी० उक्तं च लब्धिसारे........ तेत्तियमेत्तेबधे समतीये बीसीयाणं हेट्ठादु , तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणनया होंति (लब्धिसार २३६) तक्काले वेयणीयं गोयादुसाहिय होदि इयि मोहतीसवीसियवेयणीआणं कमो जादो (लब्धिसार० २३७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्राऽल्पबहुत्वमुच्यते–(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वाऽल्पः। (२) ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः। (३) ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं समानः। (४) ततो वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"ततो नाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं बंधट्ठितीओ उवरिं नामगोयाणं ट्ठिति जाया। एत्थ ट्ठितीणं अप्पाबहुगं–सव्वत्थोवा मोहणिज्जट्ठिति,नाणावरणदंसणावरणअंतराइयाण तिण्ह वि ट्ठितीतो तुल्लाओ असंखेज्जगुणातो,नामगोयाणं दोण्हं वि ट्ठीतितो असंखेज्जगुणातो वेयणिज्जट्ठिती विसेसाहिया।" इति। अत्र पञ्चसङ्ग्रहटीकायां नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतो वेदनीयस्य स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुण उक्तः तथा च तद्ग्रन्थः–"ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु विंशतिकयोर्नामगोत्रयोरसंख्येयभागे घातीनि ज्ञानावरणीयादीनि त्रीणि बध्यन्ते। नामगोत्राऽपेक्षया ज्ञानावरणीयादीनां स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवतीत्यर्थः। अत्राऽल्पबहुत्वम्–(१) सर्वस्तोको मोहनीयस्य स्थितिबन्धः।(२) ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणःस्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः।(३)ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः। (४) ततोऽपि वेदनीयस्याऽसंख्येयगुणः।"इति।

"असंखगुणणाए"त्ति, यत्र मोहनीयं ज्ञानावरणादिभ्योऽसंख्येयगुणहीनं कृतम्, ततः परं सर्वत्राऽपि ज्ञानावरणादिभ्योऽसंख्येयगुणहीनमेव क्रमेण"एति"=आगच्छति।एतत्सर्वं प्राग्भावितम्। तथा तृतीयं वेदनीयं विंशतिकाभ्यां नामगोत्राभ्यां विशेषाऽधिकं जातं सत्सर्वत्राऽपि विशेषाऽधिकमेवैत्यनुवर्तते, किमुक्तं भवति ? नामगोत्रसत्कस्थितिबन्धतो वेदनीयस्थितिबन्धस्य विशेषाऽधिकभवनाऽनन्तरं मोहनीयस्य स्थितिबन्धोऽल्पः, ततोऽसंख्येयगुणो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणाम्, ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, ततो वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः,इत्थं स्थितिबन्धस्य क्रमोऽग्रेऽपि वक्तव्यः। नामगोत्रयोः स्थितिबन्धतो वेदनीयस्य स्थितिबन्धे विशेषाऽधिके जाते सत्यपि सप्तानां कर्मणां स्थितिसत्कर्माऽन्तःसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणं विद्यते। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"तंमि समए एतेसिं पुव्वं संतं अंतोकोडाकोडीए जहन्नमहीय त्ति"।

अत्र स्थितिसत्कर्मणोऽल्पबहुत्वं नोक्तम्, तथाऽपि पूर्ववत्संभाव्यते, इदमुक्तं भवति(१)नामगोत्रयोः स्थितिसत्त्वं सर्वस्तोकम्,(२)ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां विशेषाऽधिकम्, (३)ततोऽपि मोहनीयस्य विशेषाऽधिकम्। स्थितिसत्त्वस्येदमल्पबहुत्वं कषायप्राभृतचूर्णौ चारित्रमोहनीयक्षपणाऽधिकारगतसत्त्वेन संभाव्यते, कथमेतत्संभवतीति चेद् ? उच्यते– क्षपकश्रेण्यधिकारे स्थितिबन्धमाश्रित्योपपुर्वतचरमाऽल्पबहुत्वाऽधिगमनतः स्थितिघातसहस्रेषु गतेष्वसंज्ञिबन्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुल्यं स्थितिसत्त्वं भवति, तथाऽसंज्ञिबन्धतुल्यस्थितिसत्त्वभवनादर्वाक् स्थितिसत्त्वमवलम्ब्याऽल्पबहुत्वं पूर्ववज्ज्ञातव्यम्, इत्युक्तम् । नामगोत्रयोः सर्वाऽल्पस्थितिसत्त्वं ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां विशेषाऽधिकं ततोऽपि मोहनीयस्य विशेषाऽधिकं वर्तत इत्युक्तमिति भावार्थः । इत्थं क्षपकश्रेण्यधिकारे उपर्युक्तचरमस्थितिबन्धाऽल्पबहुत्वतः सहस्रस्थितिघातान्यावदुपर्युक्तस्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वं वर्तते तर्हि उपशमश्रेण्यां स्थितिबन्धमाश्रित्योपर्युक्तचरमाऽल्पबहुत्वे प्राप्ते स्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वं नामगोत्रयोः सर्वाऽल्पमित्यादि सुतरां भवेदिति वयं ब्रूमः । पञ्चसङ्ग्रहे पल्योपमप्रमाणस्थितिबन्धभवनात्स्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वं सर्वस्थानेषु स्थितिबन्धाऽल्पबहुत्ववत्प्रोक्तम् । तच्च कर्मप्रकृतिकषायप्राभृतचूर्णितो मतान्तरं प्रतिभाति । यतः कर्मप्रकृतिचूर्णौ स्थितिबन्धमेवाऽऽश्रित्याऽल्पबहुत्वं विहितं तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि । स्थितिसत्कर्माऽनुलक्ष्य **कर्मपकृतौ**–"तम्मि समए एसिं पुव्वसंतं अंतकोडाकोडीए जहन्नमहिणत्ति" केवलमेतदेव निर्दिष्टम्, न किञ्चिदधिकम् । यद्यपि कर्मप्रकृतिटीकायां टीकाकारमहर्षिभिः स्थितिसत्त्वाऽल्पबहुत्वं बन्धवद् विहितं तदपि पञ्चसङ्ग्रह मतानुसारेण तैरभिहितमिति संभावयामहे ।

संप्रत्यसंख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणां बन्धे च दानान्तरायादीनां देशघातिरसमाविश्चिकीर्षुराह-

अहुदीरणा असंखेज्जसमयबद्धाण देसघाइत्थ ।
दाणंतरायमणपज्जवं च तो ओहिदुगलाभो ॥४०॥
सुयभोगाचक्खूओ चक्खू य तओ मइसपरिभोगा ।
विरियं च असेढिगया बधंति उ सव्वघाईणि ॥४१॥

अथोदीरणाऽसंख्येयसमयबद्धानां देशघात्यत्र ।
दानान्तरायं मनःपर्यवं च ततोऽवधिद्विकलाभो ॥४०॥
श्रुतभोगाचक्षूंषि चक्षुश्च ततो मतिः सपरिभोगः ।
वीर्यं चाश्रेणिगता बध्नन्ति तु सर्वघातिनि ॥४१॥ इति पदसंस्कारः

अथशब्दोऽधिकाराऽन्तरसूचकः किमिदमधिकारान्तरमिति चेद् ? उच्यते–असंख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणा, पूर्वोक्तचरमाल्पबहुत्वतः सहस्रेषु स्थितिघातेषु गतेषु कषायप्राभृतचूर्णावसंख्येयसमयप्रबद्धानां कर्मणामुदीरणा प्रोक्ता । ★ तथा च तद्ग्रन्थः—' एदेण अप्पाबहुअवि-

★ टिप्पणी जयधवलादिग्रन्थेष्वपीत्थमेव । तथा चाऽत्र जयधवला—एदेण अप्पाबहुगेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि कादूण उवरि गच्छमाणस्स बज्झमाणपयडीणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च जादा (पृ० नं० २६६ पु० नं-६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि कादूण जाणि पुण कम्माणि बज्झंति ताणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च ।" इति । यदा पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रः स्थितिबन्धो भवति, तदाऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा भवतीति कर्मप्रकृतिचूर्णौ पञ्चसङ्ग्रहे चापि निर्दिष्टम्, तथा चाऽत्र कर्मप्रकृतिचूर्णिः "जम्मि-काले एरिसो ट्ठितिबंधो तंमि काले केवतिकालट्ठितीगा उदीरणा एइ तं निरूवणत्थं भण्णति । अह उदीरणा असंखेज्जसमयबद्धाणं कम्माणं उदीरणा । कहं भण्णइ-जाहे पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं ठितिं बंधन्ति तम्मि काले जातो कम्मट्ठि-तीओ बज्झमाणट्ठितीओ समयादिहीणाओ तातो ट्ठितितो उदीरणं एन्ति, उप-रिमाओ न इंति उदीरणं ।" तथा च पञ्चसङ्ग्रहे-

"वीसग असंखभागो मोहं पच्छाउ घाइ तइयस्स ।
वीसाण तओ घाई असंखभागम्मि बज्झंति ॥८७॥
असंखसमयबद्धाणमुदीरणा होइ तम्मि कालम्मि ।" इति ।

तट्टीका- 'यस्मिन्काले पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिबन्धं बध्नाति तस्मिन्काले या बध्यमाना स्थितयस्ताभ्यो याः समयादिहीना असंख्येयसमयनि-र्वर्तितास्तासामुदीरणा भवति ।"

ननु किं नामाऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा इति चेद् ? उच्यते—卐 यावन्त्यः स्थितयो बध्यन्ते, तदपेक्षया याः पूर्वबद्धाः सत्तागताः समयादिहीनाः स्थितयः, ता एवोदीरणामुपग-च्छन्ति, नाऽन्याः, कर्मप्रकृतिचूर्ण्यादिषु तथैवोक्तत्वात् ।

"देसघाइत्थ" इत्यादि, असंख्येयसमय उदीरणाप्रारम्भाऽनन्तरं सहस्रेषु स्थितिघातेषु व्यतीतेषु सत्सु "अत्र" अस्मिन्प्रस्तावे दानान्तरायं मनःपर्यवज्ञानावरणं च देशघाति बध्नाति,

---

लब्धिसारेऽपि तथैव-तोदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ट्ठिदिबंधो । तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं ।। (लब्धिसार० २३८) मोह तीसिय वीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धक्रमप्रारम्भात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धाऽपसरणेष्वतीतेषु (यदा क्रमकरणाऽवसाने) मोहादीनां पल्याऽसंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा जातास्तदाऽसंख्येयसमयप्रबन्धानामुदीरणा भवति ।

卐 टिप्पणी० लब्धिसारेऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा प्रकाराऽन्तरेण दर्शिताः—

अतीते बन्धसहस्रे पल्यासंख्येयः तु स्थितिबन्धः ।
तत्रासंख्येयानामुदीरणा समयप्रबद्धानाम् ॥२३८॥

सं० टी० मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धक्रमः प्रारम्भात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धा-ऽपसरणेष्वतीतेषु यदा क्रमकरणावसाने मोहादीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धाजातास्तदाऽसं-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

दानान्तरायमनःपर्यवज्ञानावरणयोरनुभागबन्धं देशघातिनं करोतीत्यर्थः । ततः संख्यातेषु स्थितबन्धेषु गतेषु सत्स्ववधिज्ञानावरणाऽवधिदर्शनावरणलाभाऽन्तरायाणामनुभागं देशघातिनं बध्नाति, ततोऽपि संख्येयेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु श्रुतज्ञानावरणभोगाऽन्तरायाऽचक्षुर्दर्शनावरणानामनुभागं देशघातिनं बध्नाति । ततो भूयोऽपि स्थितिबन्धेषु सहस्रे ष्वतीतेषु चक्षुर्दर्शनावरणस्याऽनुभागबन्धं देशघातिनं करोति । ततो पुनरपि संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रे षु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु "**महसपरिभोग**" त्ति, मतिज्ञानावरणस्य परिभोगान्तरायसहितस्याऽनुभागं देशघातिनं बध्नाति, मतिज्ञानावरणपरिभोगान्तराययोरनुभागं देशघातिनं बध्नातीत्यर्थः । ततःपुनरपि स्थितिबन्धसहस्रे षु गतेषु सत्सु वीर्यान्तरायस्याऽनुभागं देशघातिनं बध्नाति'**असेढिगया**' त्ति, क्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणिंवाऽनधिगताः सर्वे जन्तवः संसारे पूर्वोक्तानि दानान्तरायादीनि कर्माणि सर्वघातीनि बध्नन्ति तेषामनुभागं सर्वघातिनं बध्नन्तीत्यर्थः । मोहनीयस्य त्रयोदशप्रकृतीनां देशघातिकरणस्याकथनं तु षष्ठगुणस्थाने तासां देशघातित्वस्य बंध उदये च भावात् । बन्धमाश्रित्य पूर्वोक्तानां वीर्यान्तरायस्य च देशघातिरसभवनान्तरं सहस्रे षु स्थितबन्धेषु गतेष्वन्तरकरणं कर्तुमारभते, तद्वक्तुकाम आह—

संजमघाईणंतरमेत्थ उ पढमठिई य अन्नयरे ।
संजलणावेयाणं वेइज्जंतीण कालसमा ॥४२॥

संयमघातिनामन्तरमत्र तु प्रथमस्थितिश्चान्यतरस्य ।
संज्वलनवेदानां वेद्यमानानां कालसमा ॥४२॥ इति पदसंस्कारः

"**संजमघाईणं**" त्ति, बन्धे वीर्यान्तरायस्य देशघात्यनुभागभवनाऽनान्तरं संख्येयेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु संयमघातिनां कर्मणामनन्तानुबन्धिवर्जानां द्वादशानां कषायाणां नवनोकषायाणां च "**अंतरं**" त्ति, अन्तरकरणं करोतीत्येकविंशतिप्रकृतीनामन्तरकरणं कर्तुमुपक्रमतेऽनन्तानुबन्धिनां तु सर्वोपशमनात् सर्वक्षयाद्वा तद्वर्जनम् । तत्र चतुर्णां क्रोधादीनां संज्वलनानामन्यतमस्य यस्य संज्वलनस्योदयस्त्रयाणां च वेदानां पुरुषादीनामन्यतमस्य यस्य वेदस्योदयस्तयोर्वेदकषाययोः कर्मणोः प्रथमा स्थितिः स्वोदयकालप्रमाणाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा भवतीत्यर्थः । यद्यपि संज्वलनक्रोधेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधोपशमो न भवति, तावत्संज्वल-

ख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणा भवति । इतः पूर्वमपकृष्टद्रव्यस्य पल्याऽसंख्यातभागखण्डितस्य बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिप्य तदेकभागं पुनरसंख्यातलोकेन खण्डयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिपतीति समयप्रबद्धासंख्यातैकभागमात्रमेवोदीरणाद्रव्यम् । इदानीं पुनरसंख्यातलोकमितं भागहारं त्यक्त्वा पल्यासंख्यातभागेन खण्डितैकभागमुदयावल्यां निक्षिपतीत्यसंख्येयसमयप्रबद्धमात्रमुदीरणाद्रव्यमित्यर्थः ॥२३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्रोधस्योदयः, संज्वलनमानेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्यख्यानप्रत्याख्यानावरणमानोपशमो न भवति तावत्संज्वलनमानस्योदयः, संज्वलनमायया चोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमायोपशमो न भवति तावत्सञ्ज्वलनमायाया उदयः,सञ्ज्वलनलोभेनोपशमश्रेणिमधिगतस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभोपशमो न भवति, तावद् बादरसञ्ज्वलनलोभस्योदयो भवति, तथाप्युदयवतीनां क्रोधादीनां प्रकृतीनां प्रथमस्थितिरुदयकालत आवलिकयाऽधिका द्रष्टव्या, आवलिकाया अल्पकालत्वेन तदविवक्षितत्वात् पुरुषवेदस्य तु प्रथमस्थितिरुदयकालेन समाना भवति, न तु कषायवदावलिकयाऽधिका। अन्येषामुदयरहितानां चैकादशकषायाणामष्टानां च नोकषायाणां प्रथमस्थितिरावलिकामात्रा। तत्र चतुर्णां संज्वलनानां त्रयाणां च वेदानामुदयकालप्रमाणमिदम्- स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोरुदयकालः सर्वस्तोकः, स्वस्थाने तु मिथस्तुल्यः, ततः पुरुषवेदस्य संख्यातभागाऽधिकः, ततोऽपि संज्वलनक्रोधस्य विशेषाऽधिकः, ततोऽपि सञ्ज्वलनमानस्य विशेषाधिकः, ततोऽपि संज्वलनमायाया विशेषाऽधिकः, ततोऽपि संज्वलनलोभस्य विशेषाऽधिकः। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ- "**पुरिसवेयस्स दीहो वेयणाकालो, इत्थिवेयनपुंसगवेयाणां वेयणाकालो दोण्ह वि तुल्लो संखेज्जभागहीणो, कोहसंजलणाए सव्वथोवो, माणसंजलणाए विसेसाहियो,मायासंजलणाए विसेसाहिओ, तत्तो लोभसंजलणाए विसेसाहिओ।**"इति किन्तु पञ्चसङ्ग्रहे नपुंस्त्रीवेदकालतः पुंवेदस्य कालःसंख्यातगुण उक्तः, तथा च तद्ग्रन्थः—

थीअपुमोदयकालो संखेज्जगुणो उ पुरिसवेयस्स।
तस्स वि विसेसअहिओ कोहे तत्तो वि जहकमसो ॥१॥ इति।

इत्थमुदयरहितानां प्रकृतीनां प्रथमस्थितिः मिथः सदृशा एकावलिकामात्रत्वात्, उदयवत्प्रकृतीनां तु मिथो विसदृशाः।

न च वेद्यमानस्य कषायस्य वेदस्य च प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा,अन्यासामनुदयवतीनां प्रकृतीनां त्वावलिकामात्रा, तर्हि पर्युक्ताऽल्पबहुत्वं कथं संगच्छत इति वाच्यम्,नानाजीवाऽपेक्षयाऽल्पबहुत्वस्य विहितत्वात्। अयं भावः-कश्चित्पुरुषवेदेनोपशमश्रेणिमारोहति, अन्यः स्त्रीवेदेन श्रेणिं प्रतिपद्यते, इतरो नपुंसकवेदेन समारोहति।त्रयो जन्तवो युगपच्छ्रेणिं प्रतिपद्यमाना अन्तरं कुर्वन्ति, तदा स्त्रीवेदेनोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य कालमाश्रित्य स्त्रीवेदस्य यावती प्रथमस्थितिस्तावत्येव नपुंसकवेदेनोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमास्य नपुंसकवेदस्य भवति, ततःसंख्यातभागाधिकप्रथमस्थितिः पुरुषवेदेनोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य पुरुषवेदस्य भवति। एवमेको जन्तुः संज्वलनक्रोधेनोपशमश्रेणिं प्रतिद्यते,अन्यः पुनः संज्वलनमानेन, इतरः संज्वलनमायया,कश्चिल्लोभेन। एषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युगपदुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानेषु चतुर्षु जन्तुषु संज्वलनक्रोधेनोपशमश्रेणिमधिगच्छतो जन्तोः क्रोधस्य यावती प्रथमस्थितिः, ततो विशेषाऽधिका संज्वलनमानेनोपशमश्रेणिमधिगच्छतो जन्तोर्मानस्य, ततो विशेषाऽधिका संज्वलनमाययोपशमश्रेणिमधिगच्छतो जन्तोर्मायायाः, ततोऽपि विशेषाऽधिका संज्वलनलोभेनोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य जन्तोर्लोभस्य। तत्राऽपि संज्वलनक्रोधेन पुरुषवेदेन चोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितितः संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थिति विशेषाऽधिका।

अत्राऽनुदयवतीनां प्रकृतीनां प्रथमस्थितिरावलिकाप्रमाणा भवति, सा चाऽऽवलिका दर्शनत्रिकोपशमनाऽधिकारगतमिथ्यात्वमिश्रयोरावलिकावच्चलनावलिका ज्ञातव्या। ● अन्तरकरणमुपरितनभागाऽपेक्षया समानस्थितिकम्, सर्वासां प्रकृतीनां द्वितीयस्थितिसत्कप्रथमनिषेकाणां समानत्वात्, अधस्तनभागमाश्रित्याऽन्तरकरणं विषमस्थितिकम्। उदयवतीनां प्रकृतीनां प्रथमस्थितेरन्तर्मुहूर्तमात्रत्वेन तत्राऽपि वेदस्य प्रथमस्थितितः संज्वलनक्रोधस्य प्रथ-

---

● टिप्पणी० जयधवलायां प्रथमस्थित्यन्तरकरणाऽऽयामयोरवस्थितत्वं निर्दिष्टम्। अयं भावः—

अन्तरकरणक्रियायाः प्रथमसमयात्प्रभृति चरमसमयं यावत्प्रथमस्थित्यन्तरकरणायामश्चाऽवस्थितौ भवतः। अन्तरकरणक्रियाकाले पूर्वपूर्वसमयेषु क्षीणेषु सत्सु प्रथमस्थितावन्तरकरणस्यैकः समयः प्रविशति, अन्तरकरणे च द्वितीयस्थितिरेकसमयः प्रविशति, एवं प्रतिसमयं द्वितीयस्थितिर्हीयते। प्रथमस्थित्यन्तराऽऽयामौ चाऽवस्थितौ भवत इति जयधवलाकारमतम्। तथा च तद्ग्रन्थः—“एवमेदेणायामेणंतरं करेमाणस्स जाव अंतरकरणं समप्पइ ताव अंतरम्मि उक्किरिज्जमाणट्ठिदिओ अवट्ठिदपमाणाओ चेव भवंति पढमट्ठिदोए वि अवट्ठिदायामो चेव होइ किं कारणम्? पढमट्ठिदोए एगनिसेगे हेट्ठागलिदे उवरिमेगट्ठिदि पढमट्ठिदिए पविसदि, अंतरट्ठिदीसु एगनिसेगस्स पढमट्ठिदीए पवेस उवलंभादो। तक्काले चेव बिदियट्ठिदिए आदिट्ठीदिवि अंतरट्ठिदीसु पविसहि त्ति, एदेण कारणेन अंतरायामो पढमट्ठिदीयायामो च अवट्ठिदो चेव होदि।” इति। लब्धिसारेऽपि प्रथमस्थितिरन्तराऽऽयामश्चाऽवस्थिताम्, इत्युक्त-तद्घटना त्वेवं दर्शिता-वेदनत उदयसमयेषु क्षीयमाणेषु सत्सु गुणश्रेणेः समय उदयावलिकां प्रविशति, गुणश्रेणिं चाऽन्तरकरणस्य समयः प्रविशति, अन्तरकरणे च द्वितीयस्थितेः समयः प्रविशति, तथा च तद्ग्रन्थः-“अत्राऽन्तरकरणप्रारम्भसमयादारभ्य प्रथमस्थित्यन्तराऽऽयामौ व्यवस्थितप्रमाणौ द्रष्टव्यौ। उदयावल्यामेकस्मिन्समये गलिते गुणश्रेणिसमयस्यैकस्योदयावल्यां प्रवेशात्। एवं द्वितीयस्थितिरेव हीयते। प्रथमस्थित्यन्तराऽऽयामौ तदवस्थावेवेति निश्चेतव्यम्। (लब्धिसार-२४७) इति। प्रथमस्थित्यन्तराऽऽयामौ तदवस्थौ स्वीकृत्य द्वितीयस्थितिश्च हीयमाना स्वीक्रियेत, तर्हीयं समस्योत्तिष्ठति, तथाहि-अतः प्राग्गुणश्रेण्यायामो गलिताऽवशेष आसीत्, इतः प्रभृत्यवस्थितोऽभ्युपगन्तव्यः, यतोऽपूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रभृति यद्गुणश्रेणिशीर्षं प्रथमसमय आसीत्, तदेव द्वितीयसमयेऽपि भवति स्म, वेदनत उदयसमयेषु क्षीणेषु सत्सु गुणश्रेण्या उपर्युपरि न वर्धते स्म इत्यर्थः, एवं तावद् वक्तव्यं यावदन्तरकरणक्रियायाः पूर्वसमयः, किन्त्वतः प्रभृति अन्तरकरणक्रियाप्रथमसमयात्प्रतिसमयं गुणश्रेण्यायामेकैकसमयस्य प्रवेशात्, गुणश्रेण्यायामोऽवस्थितः स्वीकर्तव्यः। न च कुत्रचिदप्युपशमश्रेणिमारोहकस्याऽनिवृत्तिकरणेऽवस्थितगुणश्रेण्यायामः प्रतिपादितः।

मस्थितेर्विशेषाऽधिकत्वेनाऽनुदयवतीनां च प्रकृतीनां प्रथमस्थितेरावलिकाप्रमाणत्वेन प्रथमस्थितेर्वैषम्यात् । अधोभागाऽपेक्षयाऽन्तरकरणस्य विषमस्थितिकत्वेन तत्प्रथमसमयोऽपि भिन्नोऽवाप्यते।

। स्थापना चेत्थम् ।

नपुंसकवेदोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
स्त्रीवेदोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
पुरुषवेदोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
संज्व.क्रोधोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
संज्व.मानोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
संज्व.मायोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
संज्व लोभोदयारूढः	प्रथमस्थितिः	अन्तरकरणम्	द्वि. स्थितिः
अनुदयवतीनांप्रकृतीनाम्	प्र।	अन्तरकरणम्	द्वि.स्थितिः

प्रथमस्थितितोऽन्तरकरणाऽऽयामः संख्यातगुणः, उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"पढमट्ठित्तिसंखेज्जगुणातो ट्ठितितो उक्किरति ।" इति ।

किन्त्वाऽन्तरकरणस्य चरमनिषेकगतसर्वदलिकान्येकस्मिन्नेव समय उत्कीर्येरन्,एवं द्विचरमनिषेकगतः सर्वदलिकानि द्वयोः समयोरुत्कीर्येरन् इत्यपभ्युपगन्तव्यम्, उपर्युक्ताऽभ्युपगमनतो निम्नस्वीकृतिःसम्यक् प्रतिभासते तद्यथा—उदयवत्प्रकृतीनामन्तरकरणक्रियाकालस्य प्रथमसमयेऽन्तरकरणस्याऽधो या प्रथमस्थितिर्मुच्यते साऽन्तरकरणक्रियाकालसमाप्ति यावत्प्रतिसमय वेदनतःक्षीणेषु समयेषु सत्सु न्यूना न्यूना भवति, अन्तरकरणाऽऽयामश्चाऽवस्थितो भवति। द्वितीयस्थितेश्च प्रथमनिषेकस्तदवस्थस्तिष्ठति ।

अनुदयवतीनां च प्रकृतीनामावलिकाप्रमाणा प्रथमस्थितिरवस्थिता मन्तव्या । इदमुक्तं भवति—अन्तरकरणकालस्य समयेषु वेदनतः क्षीणेषु सत्स्वन्तरकरणसमयः प्रथमस्थितिलक्षणाऽऽवलिकां प्रविशति द्वितीयस्थितेश्च प्रथमनिषेकस्त्ववस्थितो भवति तेनाऽनुदयवतीनां प्रकृतीनामन्तरकरणमन्तकरणक्रियाकालचरमसमयं यावत्प्रतिसमयमेकादिभिः समयैरन्तरकरणं न्यूनं न्यूनं भवति । अन्तरकरणक्रियाकाले च समाप्ते उदयवतीनां प्रकृतीनां प्रथमस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणाऽवशिष्यते, अनुदयवतीनां च प्रकृतीनां प्रथमस्थितिरावलिकामात्राऽवशिष्यते । इतः प्रभृत्युदयरहितानां प्रकृतीनामावलिकामात्रा प्रथमस्थितिश्चलनावलिका न भवति, अपि तु क्षीयमाणाऽऽवलिकाभवति । किमुक्तं भवति? अन्तःकरणक्रियाकालसमाप्तितःपरं वेदनत उदयसमयेषु क्षीणेषसत्स्वनुदयवतीनां प्रकृतीनामावलिकामात्राप्रथमस्थितिरेकादिसमयैन्यूना भवति तदुपरितनस्थितो दलिकाऽभावादन्तरकरणक्रियासमाप्तित आवलिकायां व्यतिक्रान्तायामुदयरहितप्रकृतीनां प्रथमस्थितिमनुभूयाऽन्तरकरणं प्रविशति । तत्त्वं त्वतिशयज्ञानिनो विदन्ति ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अन्तरकरणक्रियाकालोऽभिनवस्थितिबन्धः स्थितिघातश्च युगपदारभ्यन्ते युगपन्निष्ठां यान्ति। एकेन स्थितिघातकालेन स्थितिबन्धकालेन वाऽन्तरकरणं करोतीत्यर्थः। अंतरकरण-क्रियाकाले च रसघातसहस्राणि व्यतिक्रामन्ति।

अथाऽन्तरकरणसत्कोत्कीर्यमाणदलिकस्य प्रक्षेपविधिर्भण्यते।

(१) यासां प्रकृतीनां बन्ध उदयश्च विद्यते,तासामन्तरकरणसत्कदलिकं स्वप्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति, यथापुरुषवेदारुढःपुरुषवेदस्य।

(२) यासां प्रकृतीनामुदय एव केवलो विद्यते न बन्धः, तासामन्तरकरणसत्कदलिकं प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति न पुनर्द्वितीयस्थितावपि, यथा स्त्रीवेदारूढः स्त्रीवेदस्य।

(३)यासां प्रकृतीनां पुनरुदयो न विद्यते, किन्तु केवलो बन्धस्तासामन्तरकरणसत्कदलिक-मनुत्कीर्यमाणायां द्वितीयस्थितौ प्रक्षिपति, न तु स्वप्रथमस्थितौ, यथा संज्वलनक्रोधोदयारुढः संज्वलनमानादीनाम्।

(४) यासां प्रकृतीनां पुनर्न बन्धो नाऽप्युदयस्तासामन्तरकरणसत्कदलिकं स्वस्थाने न प्रक्षिपति, स्वप्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ वा न प्रक्षिपतीत्यर्थः, किन्तु परप्रकृतौ प्रक्षिपति, यथा अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानदलिकम्, उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ—अंतरं करेंतो जे कम्मं से बन्धति वेदेति तेसिं उक्किरिज्जमाणदलियं पढमे ठिइए बिइए ठिताए वि देति, जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेतिज्जन्ति तेसिं उक्किरज्जमाणा पोग्गले पढमट्ठितिसु अणु-क्किरज्जमाणीसु देति, जे कम्मंसा बज्झंति न वेतिज्जंति तेसिं उक्किरिज्जमाणगं दलियं अणुक्किरिज्जमाणीसु बितियट्ठितिसु देति। जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेतिज्जं-ति तेसिं उक्किरमाणं पदेसग्गं सट्ठाणे ण दिज्जति परट्ठाणं दिज्जति एएण विहिणा अंतरं उक्किरिज्ज भवति।"इति।**

	बन्धः	उदयः	स्वप्रथमस्थितौ दलनिक्षेपः	स्वद्वितीयस्थितौ दलनिक्षेपः
पुरुषवेदारूढस्य पुरुषवेदस्य	भवति	भवति	भवति	भवति
स्त्रीवेदारूढस्य स्त्रीवेदस्य	न भवति	भवति	भवति	न भवति
संज्वलनक्रोधोदयारूढस्य संज्वलनक्रोधस्य	भवति	भवति	भवति	भवति
संज्वलनमानस्य	भवति	न भवति	न भवति	भवति
अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाणाम्	न भवति	न भवति	न भवति	न भवति, किन्तु परप्रकृतौ प्रक्षिपति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ चाऽन्तरकरणसत्कदलनिक्षेपः स्वस्थानाऽपेक्षयोक्तः। अन्तरकरणदलिकं तु परस्थानेऽपि प्रक्षिप्यते। तत्र कः क्रमो बोद्धव्यः? अतः परस्थानदलिकनिक्षेपोऽभिधीयते।

(१) यासां प्रकृतीनां बन्ध उदयश्च भवति, तासां पतद्ग्रहरूपप्रकृतीनामनुत्कीर्यमाणायां प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तचतुर्विधप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं प्रक्षिपति, यथा पुरुषवेदोदयेनाऽऽरूढः पुरुषवेदस्याऽनुत्कीर्यमाणायां प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च चारित्रमोहनीयस्य पुरुषवेदवर्जविंशतिप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं प्रक्षिपति।

(२) यासां प्रकृतीनां बन्धो विद्यते उदयश्च न भवति, तासां पतद्ग्रहरूपप्रकृतीनामनुत्कीर्यमाणायां द्वितीयस्थितावेव तदितरप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं प्रक्षिपति यथा संज्वलनक्रोधोदयारूढः पतद्ग्रहरूपप्रकृतीनां मानादीनामनुत्कीर्यमाणायां द्वितीयस्थितावेव तदितरविंशतिप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं प्रक्षिपति।

(३) यासां प्रकृतीनां बन्धो नाऽस्ति किन्तूदयो विद्यते, तासां प्रकृतीनां प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ वा तदितरप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं न निक्षिपति, अबध्यमानत्वेन पतद्ग्रहत्वाऽभावात्। यथा स्त्रीवेदोदयारूढः स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ वा तदितरप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं न प्रक्षिपति।

(४) यासां प्रकृतीनां बन्धो न भवति नाऽप्युदयस्तासामपि पूर्ववत्प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ वा वा तदितरप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं न प्रक्षिपति, अबध्यमानत्वेन पतद्ग्रहत्वाऽभावात्। यथा पुरुषवेदोदयारूढः स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ तदितरप्रकृतीनामन्तरकरणसत्कदलिकं न प्रक्षिपति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झन्ति वेदिज्जंति तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदिओ उक्कीरेंतो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि बिदियट्ठिदीए च देदि। जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं सत्थाणे ण देदि, बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। जे कम्मंसा ण बज्झंति वेदिज्जंति च तेसिमुक्कीरमाणयं पदेसग्गं अप्पणो पढमट्ठिदिए च देदि। बज्झमाणीणं पयडीणमुक्कीरमाणीसु च ट्ठिदिसु देदि। जे कम्मंसा बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि।" इति।

"अन्नयरे" इत्यार्षत्वादेकवचनं पुंस्त्वनिर्देशश्च, ततोऽयमक्षरार्थः—संज्वलनवेदानामन्यतमयोर्वेदमानयोः प्रकृत्योः प्रथमा स्थितिः कालसमा=उदयकालसमाना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पुरुषवेदोदयेन संज्वलनक्रोधोदयेन चाऽऽरूढस्य जन्तोरुपशमनाविधिरभिधीयते। अन्तरकरणे कृते सति सप्तपदार्था युगपत्प्रवर्तन्ते, तानभिधित्सुराह--

दुसमयकयंतरे आलिगाण छराहं उदीरणाभिनवे।
मोहे एकट्ठाणे बंधुदया संखवासाणि ॥४३॥
संखगुणहाणिबंधो एत्तो सेसाणऽसंखगुणहाणी।
पउवसमए नपुसं असंखगुणणाइ जावंतो ॥४४॥

द्विसमयकृतान्तर आवलिकानां षण्णामुदीरणाभिनवः।
मोहस्यैकस्थानको बन्धोदयौ संख्येयवर्षाणि ॥४३॥
संख्येयगुणहानिबंध इतः शेषाणामसंख्येयगुणहानिः।
प्रोपशमयति नपुंसकमसंख्येयगुणनया यावदन्तः ॥ ४४ ॥ इति पदसंस्कारः।

"दुसमयकयंतरे" त्ति, उत्पत्तिनदनन्तरलक्षणाभ्यां द्वाभ्यां समयाभ्यां कृतेऽन्तरे सत्यन्तरकरणे कृतेऽनन्तरसमय इत्यर्थः इमे सप्त अधिकारा युगपत्प्रवर्तन्ते, उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ "दुसमयकयंतरे" त्ति अंतरकरणे उक्किण्णे ततो अणंतरे समते इमे सत्त अहिगारा जुगवं पयट्टंति।"** इति।

(१) मोहनीयस्याऽऽनुपूर्व्यैव संक्रमः।

(२) संज्वलनलोभस्य संक्रमाऽभावः।

(३) षडावलिकायां व्यतिक्रान्तायामुदीरणा।

(४) 'मोहे' मोहनीये एकस्थानकोऽभिनवो रसबंध उदयश्च भवति।

(५) संख्येयवार्षिको मोहस्य स्थितिबन्धः।

(६) उदयोऽसंप्राप्त्युदय उदीरणाख्यः, सोऽपि संख्येयवर्षिको मोहस्य।

(७) **'पढमसमए'** त्ति, अन्तरकरणे कृते सति प्रथमसमये नपुंसकवेदं चोपशमयति, असंख्येयगुणनयोपशमयितुमारभत इत्यर्थः, तं च तावद्यावदन्तश्चरमसमयः।

विशेषव्याख्यानं पुनरिदम् 卐 (१) मोहनीयस्याऽऽनुपूर्व्यैव सङ्क्रमः। आनुपूर्व्या सङ्-

---

卐 टिप्पणी—

जयधवलायामानुपूर्वीसंक्रमस्वरूपमित्थं दर्शितम्- नपुंसकवेदस्त्रीवेदयोर्दलिकं पुरुषवेद एव सङ्क्रमयति। पुरुषवेदषण्णोकषायाणां दलिकं संज्वलनक्रोध एव। क्रोधस्य दलिकं मान एव, मानस्य दलिकं मायायामेव मायायाश्च लोभेऽवेव सङ्क्रमयति। अक्षराणि त्वेवम्—"मोहणीयस्साणुपुव्वीसंकमो णाम पढमकरणं तमेवमणुगंतव्वं। तं जहा—इत्थिणवुंसयवेदपदेसग्गमेत्तो पाए पुरिसवेदे चेव णियमा संछुहदि। पुरिसवेद छण्णोकसायपच्चक्खाणाऽपच्चक्खाणकोहपदेसग्गं कोहसंजलणस्सुवरि संछुहदि। णाण्णत्थ कत्थ वि।

क्रमो नाम क्रमपूर्वकः सङ्क्रमः। इतः प्राक् संज्वलनक्रोधस्य दलिकं पुरुषवेदसंज्वलनमानमायालोभेषु सङ्क्रमयति स्म। अतः प्रभृति संज्वलनक्रोधस्य दलिकं मानादिषु सङ्क्रमयति, पुरुषवेदे तु न सङ्क्रमयति। एवं पुरुषवेदस्य दलिकं संज्वलनक्रोधादिषु, संज्वलनमानस्य दलिकं संज्वलनमायादिषु संक्रमयति, न तु पुरुषवेदे वा सञ्ज्वलनक्रोधे वा। तथा संज्वलनमायाया दलिकं संज्वलनलोभे सङ्क्रमयति, न पुरुषवेदसञ्ज्वलनक्रोधमानेषु। अयं सङ्क्रमः क्रमपूर्वक उच्यते।

(२) संज्वलनलोभस्य सङ्क्रमाऽभावः—अन्तरकरणे कृते सत्यनन्तरसमयात्प्रभृति मोहनीयस्याऽऽनुपूर्वीसङ्क्रमभवनात्संज्वलनलोभस्याऽन्यत्र सङ्क्रमो भवितुं नाऽर्हति इति कृत्वा लोभस्य सङ्क्रमाऽभाव उक्तः।

(३) षडावलिकायां व्यतिक्रान्तायामुदीरणा। मोहनीयसत्काऽमोहनीयसत्का याः प्रकृतयो बध्यन्ते, तासां षण्णामावलिकानां मध्य उदीरणा न भवति, किन्तु षट्स्वावलिकास्वतिक्रान्तासु। अधुनातननूतनबन्धस्य तथाविधस्वभावसंभवात्, इतः पूर्वं तु बद्धं कर्म बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायां प्राक्तनोदयसत्कर्माऽनुविद्धामुदीरणायामायाति स्म।

(४) मोहनीयस्यैकस्थानको रसबन्धोऽभिनवो भवति, अतः प्राग्मोहनीयस्याऽनुभागबन्धो द्विस्थानको भवति स्म, इतः प्रभृति विशुद्धेर्वृद्धत्वादेकस्थानको रसबन्धो भवति।

(५) मोहस्य संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः, इतः पूर्वमन्तरकरणक्रियासमाप्तिपर्यन्तं सप्तानां कर्मणां स्थितिबन्धोऽसंख्येयवर्षप्रमाणो भवति स्म। संप्रति मोहनीयस्य संख्यातवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति, सोऽपि पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो भवति। शेषकर्मणां च पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवति।

(६) उदयाऽसंप्राप्तोदय उदीरणाख्यः, सोऽपि संख्येयवार्षिको मोहस्य। यद्यपि मोहनीयस्य स्थितिसत्कर्माऽसंख्येयवर्षप्रमाणं भवति, तथाऽप्युदीरणा संख्यातवार्षिका भवति तत्कारणं त्विदं ज्ञायते, मोहनीयकर्मणः स्थितिबन्धस्य संख्यातवर्षप्रमाणत्वादसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणायाश्च विद्यमानत्वाद् बन्धतः समयादिहीनाः संख्येयवर्षप्रमाणाः सत्तागतस्थितय उदीरणामायान्तीति संख्येयवार्षिकोदीरणा सम्यग्युज्यते उपरितनस्थितय उदीरणायां नागच्छन्ति तथास्वभावादिति संभावयामहे।

कोहसंजलणादुविहमाणपदेसग्गं पि माणसंजलणे णियमा संछुहदि, णाण्णह्म्मि वि कम्हि वि। माणसंजलणदुविहमायापदेसग्गं च णियमा मायासंजलणे णिक्खिवदि मायासंजलणदुविहलोहपदेसग्गं च णियमा लोहसंजलणे संछुहदि त्ति एसो आणुपुव्वीसंकमो णाम।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

★ कषायप्राभृतचूर्णौ संख्यातवार्षिकोदीरणा नोक्ता, किन्तु तत्स्थाने मोहनीयस्यैकस्थानको रस उदये भवति इत्युक्तः, मोहनीयस्यैकस्थानाऽनुभागोदयोऽत्र संभवति, यतः संज्वलनचतुष्कस्य पुरुषवेदस्य च य एकस्थाने रसोदय उदीरणाकरणे उदयविधौ चोक्त सोऽत्रैव संभवति। उक्तं च कषायप्राभृतचुर्णौ(१)ताधे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो(२) लोभस्स असंकमो(३) मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ बंधो।(४)णवुंसयवेदस्स पढमसमय उवसामगो (५) छसु आवलियासु गदासु उदीरणा (६) मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ उदयो (७) मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो, एदाणि सत्तविधाणि करणाणि अंतरकदपढमसमए होंति"

नपुंसकवेदस्योपशमनाप्रारम्भः—अतः प्रभृति नपुंसकवेदस्य दलिकस्य प्रतिसमयमसंख्यगुणकारेणोपशमयति, गुणसंक्रमोऽपूर्वकरणादारब्धोऽत्रापि प्रवर्तते, नपुंसकवेदोपशमनाप्रथमसमयादारभ्य सर्वेषां कर्मणामुदीरणागतं दलिकं स्तोकम्, ततोऽसंख्येयगुणं दलिकमुदये वर्तते, गुणश्रेण्या रचितप्रभूतदलिकानां निषेकाणामुदयात् तथोदयगतदलिकतोऽसंख्येयगुणमुपशमय त ततोऽप्यसंख्येयगुणं परप्रकृतिषु सङ्क्रमयति, एवं तावद्वक्तव्यम्, यावद् द्विचरमसमयः। परप्रकृतिषु च प्रतिसमयमुपशम्यमानदलिकतोऽसंख्येयगुणं दलिकं तावत्सङ्क्रमयति यावद् द्विचरमसमयः। चरमसमये तु सङ्क्रम्यमाणदलिकतोऽसंख्येयगुणमुपशमयतीति ज्ञातव्यम्।

★टिप्पणी—धवलायां लब्धिसारे चाऽपि सख्येयवार्षिकोदीरणास्थाने एकस्थानिकोऽनुभागोदय उक्तः, तथा चाऽत्र धवला—"ताधे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो लोभस्स असंकमो मोहणीयस्स एगठाणीओ बंधो णउंसयवेदस्स पढमसमय उवसामगो छसु आवलियासु गदासु उदीरणा मोहणीयस्स एगट्ठाणीओ उदओ मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो एदाणि सत्तविधाणि करणाणि अंतरकदपढमसमए होन्ति"।

तथैव चोक्तं लब्धिसारेऽपि—"अन्तरकृतस्य निष्ठितान्तरकरणस्य प्रथमेऽनन्तरसमये सप्तकरणानि युगपदेव प्रारभ्यन्ते। तत्र पूर्वमन्तरसमाप्तिपर्यन्तं चारित्रमोहस्य द्विस्थानानुभागबन्ध प्रवृत्तः, इदानीं लतासमानैकस्थानाऽनुभागबन्धस्तस्य प्रवर्तत इत्येकं करणम्। तथा मोहनीयस्य द्विस्थानुभागोदयपूर्वमन्तरकरणचरमसमयपर्यन्तमायातः, इदानीं पुनस्तस्य लतासमानैकस्थाननुभागोदय एव प्रवर्तत इत्यपरं करणम्। तथा पूर्वमन्तरकरणकालसमाप्तिपर्यन्तमसख्येयवर्षमात्रो मोहनीयस्य स्थितिबन्धः प्रवृत्त इदानीं पुनरपसरणमाहात्म्यात्सख्येयवर्षमात्रो मोहस्य स्थितिबन्धः प्रारब्ध इत्यन्यत्करणम्। तथा पूर्वमन्तरकरणकालपरिसमाप्तिपर्यन्त चारित्रमोहस्य यत्र यत्राऽपि द्रव्यसङ्क्रमः प्रवृत्तः इदानीं पुनर्वक्ष्यमाणप्रतिनियताऽऽनुपूर्व्या तद् द्रव्यं संक्रामति तथा पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिपर्यन्त संज्वलनलोभस्य शेषसंज्वलनपुंवेदेषु यथासंभवं सङ्क्रमः प्रवृत्त इदानीं पुनः सज्वलनलोभस्य कुत्राऽपि सङ्क्रमो नास्त्येवेत्यपरं करणम्, तथेदानीं प्रथमं नपुंसकवेदस्यैवोपशमनक्रिया प्रारभ्यते तदुपशमनाऽनन्तरमेवेतरप्रकृतीनामुपशमविधानादित्येतदेकं करणम्, तथा पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिपर्यन्तं प्रतिसमयबध्यमानसमयप्रबद्धोऽचलाऽऽवल्यतिक्रम उदीरयितुं शक्यः प्रवृत्तः इदानीं पुनर्बध्यमानानां मोहस्य वा ज्ञानावरणादिकर्मणां वा समयप्रबद्धबन्धप्रथमसमयादारभ्य षट्स्वावलिसु गतास्वेवोदीरयितुं शक्यो नैकसमयोनेस्वपि इत्यन्यत्करणम्" (लब्धिसार २४८ टीका) इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तञ्च कर्मप्रकृतिचूर्णौ 'तस्स णपुंसगवेयस्स उवसामणपढमसमयपभिति जस्स व तस्स व कम्मस्सोदीरणा थोवा उदओ असंखेज्जगुणो, उवसामिज्जमाणणपुंसगवेगस्स पदेसग्गं असंखेज्जगुणं नपुंसगवेयस्स अन्नपगतिं संकामिज्जमाणगं पदेसग्गं असंखेज्जगुणं एवं समदे समदे असंखेज्जगुणं भणियव्वं जाव दुचरिम समउत्ति । चरिमसमए उवसमिज्जमाणं संकामिज्जमाणगातो असंखेज्जगुणं । जाव नपुंसगवेयउवसामणाए चरिम समत्तो ।" इति । 卐 कषायप्राभृतचूर्णौ नपुंसकवेदोपशमनारम्भप्रथमसमयात्प्रभृत्युदीरणागतं दलिकं सर्वस्तोकम्, ततोऽसंख्येयगुणदलमुदये भवति, ततोऽप्यसंख्येयगुणं दलिकं परप्रकृतौ सङ्क्रमयति, ततोऽप्युपशम्यमानं दलिकमसंख्यातगुणम्, एवं तावद्वक्तव्यम्, यावन्नपुंसकवेदोपशमनायाश्चरमसमयः, न तु कर्मप्रकृतिचूर्णायादिवच्चरमसमय एव सङ्क्रम्यमाणदलिकत उपशम्यमानदलमसंख्येयगुणं भवतीत्युक्तम् तथा च तद्ग्रन्थः 'अंतरादो पढमसमयकदादो पाए णपुंसयवेदस्स ❀ आउत्तकरण उवसमगो सेसाणं कम्माण ण किंचि उवसमेदि । जं पढमसमए पदेसग्गमुवसमदि तं थोवं । जं बिदियसमये उवसामेदि तमसंखेज्जगुणं एवमसंखेज्जगुणाए सेढीये उवसामेदि जाव उवसंतं । णवुंसगवेदस्स पढमसमयउवसामगस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसगस्स उदीरणा थोवा उदयो असंखेज्जगुणो णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमऽण्णपयडिसंकामिज्जमाणगमसंखेज्जगुणं उवसामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमय उवसंतेत्ति " इति ।

नपुंसकवेदोपशमनारम्भसमयेऽभिनवः स्थितिबन्धो रसघातो स्थितिघातश्चाऽऽरभ्यन्ते । सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु ● स्थितिघातेषु वा गतेषु नपुंसकवेदः सर्वथोपशमितो भवति । यथा धूलिः

卐 धवलायां लब्धिसारे चाऽनेनैव प्रकारेण नपुंसकवेदोपशमना उक्ता, नपुंसकवेदोपशमकस्य प्रथमसमये विवक्षितस्योदयप्राप्तस्य पुंवेदस्योदीरणाद्रव्यमिदं तत्कालाऽपकृष्टस्य पल्यसंख्यातैकभागेन भक्तस्य बहुभागमुपरितनस्थितौ दत्वा तदेकभागं पुनः पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं गुणश्रेण्यां निक्षिप्य तदेकभागस्यैवोदयनिक्षेपात् । तस्मादुदीरणाद्रव्यात्तदात्वे पुंवेदस्यैवोदयमानं द्रव्यमसंख्यातगुणः सगुणश्रेण्यां प्रागनिक्षिप्तपल्यासंख्य तबहुभागमात्रत्वात् । तस्मादुदयद्रव्यान्नपुंसकवेदस्य सङ्क्रमणद्रव्यमसंख्यातगुणम् स .... तद्भागहारादसंख्य तगुणहीनेन गुणसङ्क्रमभागहारेण खण्डितैकभागमात्रत्वात्तदात्वे नपुंसकवेदस्योपशमनाकालितद्रव्यं संख्यातगुणं, स तद्भागहारात्संख्यातगुणहीनेन भागहारेण खण्डितैकभागमात्रत्वादेवं द्वितीयादिसमयेषु चरमपर्यन्तेषूदीरणाद्रव्यचतुष्टयाऽल्पबहुत्वं नेतव्यम् (लब्धिसार २५७)

❀ किमाउत्तकरणं नाम ? आउत्तकरणमुज्जत्तकरण पारंभकरणमिदि एयट्ठो तात्पर्येण नपुंसकवेदमितः प्रभृत्युपशमतीत्यर्थः (जयधवला) ।

● धवलायां लब्धिसारे चाऽन्तरकरणे कृते मोहनीयस्य स्थितिघातरसघातौ न भवतश्शेषकर्मणां तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सलिलेनोपशमिता भवत्येवं कर्मदलिकं भावविशुद्ध्योपशमितं भवति।

नपुंसकवेदोपशमनामभिहित्वा स्त्रीवेदोपशमनं निजिगदिषुराह—

एवित्थी संखतमे गयम्मि घाईण संखवासाणि ।
संखगुणहाणि एत्तो देसावरणाणुदगराइ ॥४५॥

एवं स्त्रीवेदस्य संख्येयतमे गते घातीनां संख्येयवर्षाणि ।
संख्येयगुणहानितो देशावरणानामुदकराजिम् ॥ ४५ ॥ इति पदसंस्कारः

नपुंसकवेदोपशान्ते सति स्त्रीवेदमुपशमयितुमारभते स्त्रीवेदोपशमनारम्भप्रथमसमयेऽभिनवस्थितिबन्धः स्थितिघातो रसघातश्चाऽऽरभ्यन्ते। स्त्रीवेदविध्यतिदेशं शेषविशेषं चाऽऽह— "एवित्थी" एवं पूर्वोक्तप्रकारेण नपुंसकवेदोपशमनावत्स्त्रीवेदमुपशमयति, उपशम्यमानस्य स्त्रीवेदस्योपशमनाऽद्धायाःसंख्येयतमे भागे गते सति घातिनां ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां "संखवासाणि" संख्येयवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति, अत्र सर्वेषां कर्मणां स्थितिबन्धमाश्रित्याऽल्पबहुत्वं विचार्यते —

प्रवर्तत इत्युक्तस्तद्यथा—"अंतरकरणे कदपढमसमयादो पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा, कुदो ? उवसंतपदेसग्गस्स ट्ठिदिअणुभागेहि वलणाभावा. लब्धिसारेऽपि तथैवोक्तम्, तथाहि—अन्तरकरणास्यऽपि नपुंसकवेदोपशमनाप्रथमसमयादारभ्य मोहनीयस्य स्थितिखण्डमनुभागखण्डनं च नाऽस्ति उपशम्यमानकर्मस्थितेः कण्डकघातो नाऽस्तीति परमगुरूपदेशात्।" इति। स्थितिघातरसघातनिषेधे धवलाकारैरुपशान्तदलिकस्य स्थित्यनुभागो न वर्धते हीयते वा। न चाऽनुपशम्य प्रकृतीस्थितिघातरसघातौ कुतो न भवतोति वाच्यम्, यतःपूर्वमुपशान्तप्रकृतिस्थितिसत्वतः पश्चादुपशमिष्यमाणप्रकृतिः स्थितिसत्वं स्थितिघातैः संख्येयगुणहीनं भवेत तच्च नेष्टम् उपशमनकाले (उपशमश्रेणौ) सर्वासां मोहनीयप्रकृतीनां समानस्थितिकत्वात् इति लब्धिसारधवलयोरभिप्रायः। अक्षराणि त्वेवम्-उवसंतुवसामिज्जमाणमोहपयडीओ मोत्तूण सेसाणं दो घादाकिण्ण हु ति ? ण पुव्वमुवसंतपयडिट्ठिदि संतकम्मादो पच्छा उवसंतपयडिट्ठिदिसंतकम्मस्स सखेज्जगुणं हीणत्तपसंगादो" इति धवलाकारः। तथा चाऽत्र लब्धिसारः-तर्ह्यनुपशम्यमानमोहप्रकृतीनां स्थितिकण्डकघातो भवेदिति न शङ्कितव्यम्, उपशमनकाले मोहप्रकृतीनां सर्वासामपि स्थितिसदृश्यादिति च परमसप्रदोषस्य परमगुरुपर्वक्रमायातस्य सद्भावात् स्थित्यनुसारित्वादनुभागस्याऽपि खण्डनं विना तदवस्थं सिद्धमेव इति कर्मप्रकृतिचूर्णिकारैःकषायप्राभतचूर्णिकारैश्च मोहनीयकर्मणः स्थितिघातरसघातयोर्निषेधो न वर्णितः। तथा च जयधवलाकारस्याऽनुभागऽधिकारगतान्यक्षराणि-अवेदकाऽवस्थायामपि मोहनीयस्य रसघातं साधयन्ति तदक्षराणि त्वेवम्—"अवेदगस्स उक्कोसअणुभागविहत्तिकस्स ? जो अवगतवेद अनियट्टिउवसामओ पढमअणुभागकंडए वट्टमाणो तस्स उक्कोसअणुभागविहत्ति हते अणुक्कोसा। इति। अवेदकाऽवस्थायां मोहनीयस्य रसघातो भवतीति उपर्युक्तैरक्षरैः सिद्धं भवति,। इति तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वाऽल्पः ।

(२) ततो ज्ञानावरणाऽन्तरायाणां संख्येयगुणः ।

(३) ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः ।

(४) ततो वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"तम्मि समए सव्वकम्माणमप्पाबहुअं । तं जहा—मोहणीयस्स सव्वत्थोवो ट्ठिदिबंधो णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो, णामगोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।" इति । "एत्तो" इत्यादि, इतश्च संख्येयवर्षप्रमाणस्थितिबन्धादारभ्याऽन्योन्यो घातिकर्मणां स्थितिबन्धः पूर्वपूर्वस्मात्संख्येयगुणहीनो भवति । अस्मादेव च संख्येयवर्षप्रमाणघातिकर्मप्रथमस्थितिबन्धादारभ्य देशघातिनां केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणवर्जानां ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणाम् "उदकराजिम्" उदकराजिसमानकषायकृतं रसं बध्नाति, एकस्थानकमनुभागं बध्नातीत्यर्थः । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"जं समयं संखेज्जवरिसगो ट्ठितिबंधो तं समयं चेव केवलणाणावरणकेवलदंसणावरणवज्जाणं देसघाईणं पगतीणं एगट्ठाणिओ बंधो पयट्टति" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावप्युक्तम्-"जाधे संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तस्समए चेव एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरणदंसणावरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासिमेगट्ठाणिओ बंधो" इति । तत एवंक्रमेण संख्येयेषु स्थितिघातसहस्रेषु गतेषु सत्सु स्त्रीवेदः सर्वथोपशान्तो भवति ।

स्त्रीवेद उपशान्ते हास्यषट्कं पुरुषवेदं चोपशमयतीति तदुपशमनाविधिमाविश्चिकीर्षुराह—

ता सत्तण्हं एवं संखतमे संखवासितो दोण्हं ।
बिइयो पुण ट्ठिइबंधो सव्वेसिं संखवासाणि ॥ ४६ ॥

ततः सप्तानामेवं सङ्ख्येयतमे संख्येयवार्षिको द्वयोः ।
द्वितीयः पुनः स्थितिबन्धः सर्वेषां संख्येयवर्षाणि ॥ ४६ ॥ इति पदसंस्कारः

"ता" इत्यादि, स्त्रीवेद उपशान्ते ततः शेषान् सप्तनोकषायानुपशमयितुमारभते, तदुपशमनारम्भप्रथमसमयेऽभिनवस्थितिबन्धः स्थितिघातो रसघातश्च प्रारभ्यन्ते संख्यातेषु स्थितिघातसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु 'एवं' इत्यादि, नपुंसकवेदोक्तप्रकारेण सप्तानां नोकषायाणामुपशमनाऽद्धायास्संख्येयतमे भागे गते सति "दोण्हं" त्ति द्वयोर्नामगोत्रयोः संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो भवति वेदनीयस्य पुनरसंख्येयवार्षिक एव, तस्मिन् स्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्यो द्वितीयस्थितिबन्धो वेदनीयस्याऽपि संख्येयवार्षिको भवति । तथा च सति सर्वेषामपि कर्मणामितः प्रभृति संख्येयवर्षप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एव स्थितिबन्धो भवति। तथा च पूर्वस्मादन्योऽन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनः प्रवर्तते। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–'सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामणद्धाए संखेज्जतिभागे गए "दोण्हं" त्ति, नामगोयाणं' एएसिं तंमि काले संखेज्जवासिगो ठितिबंधो वेदणिज्जस्स असंखेज्जवरिसगो चेव ठितिबधो बितितो पुण ठितिबंधो सव्वेसिं संखवासाणि त्ति तम्मि ठितिबंधे पुन्ने जो अन्नो बितितो ठितिबंधो तम्मि काले सव्वकम्माणं वि संखेज्जवरिसगो ठितिबंधो। सव्वकम्माणं संखिज्जवरिसगातो ठितिबंधातो संखेज्जगुणहीण हीणट्ठितिबंधो पवट्टति" इति ●कषायप्राभृतचूर्णौ तूपशम्यमानानां सप्तनोकषायाणामुपशमनाद्धायाः संख्येयतमे भागे गते नामगोत्रवेदनीयानां त्रयाणां संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो भवतीत्युक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः–"एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणामुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे (संखेज्जभागे) गदे तदो णामगोयवेयणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो।" इति। अत्र कषायप्राभृतचूर्णिकारैः स्थितिबन्धमाश्रित्याऽल्पबहुत्वमुक्तम्, तद्यथा–"ताधे ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुअं तं जहा सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो। णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। नामगोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।" इति। ततः संख्यातेषु स्थितिघातसहस्रेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु वा गतेषु सत्सु सप्ताऽपि नोकषाया उपशान्ता भवन्ति।

संप्रति पुरुषवेदोपशमनाद्धायां यो विशेषः तं व्याजिहीर्षुराह—

छस्सुवसमिज्जमाणे सेका उदयट्ठिइ पुरिससेसा।
समऊणावलिगदुगे बद्धा वि य तावदद्धाए ॥४७॥

षट्सूपशम्यमानेषु तस्मिन् समय एका उदयस्थितिः पूरुषस्य शेषा।
समयोनावलिकाद्विकेन बद्धामपि च तावदद्धया ॥४७॥ इति पदसंस्कारः

"छस्सु" इत्यादि, षट्सु नोकषायेषूपशम्यमानेषु यस्मिन्समये षण्णोकषाया उपशान्ताः, तस्मिन्समये पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ शेषा एकैवोदया स्थितिः समयमात्राऽवतिष्ठते। अयं भावः– पुरुषवेदस्योदयचरमसमये हास्यषट्कस्य शेषाणि सर्वाणि दलिकान्युपशम्यन्ते। न च हास्यषट्कं पुरुषवेदोदयद्विचरमसमय उपशमयेत्, यतः पुरुषवेदोदयस्याऽवशिष्यमाणचरमसमये तु सर्वथोप-

● धवलालब्धिसारादिषु ग्रन्थेषु कषायप्राभृतवत् त्रयाणामपि कर्मणां युगपत्संख्येयवार्षिकःस्थितिबन्धो भवतीत्युक्तम्। तद्यथा–थोउवसमिदाणंतरसमयादो सत्तणोकसायाणं। उवसमगो तस्सद्धा संखेज्जदिमे गदे तत्तो ॥ णामदुगवेयणिट्ठिदिबंधो संखवस्सयं होदि। ५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तं प्राप्यत इति वाच्यम्, यतः पुरुषवेदोदयस्य समयोनाऽऽवलिद्वयशेषे पुरुषवेदस्य पतद्ग्रहताऽपगच्छति, ततः प्रभृत्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः संज्वलनचतुष्केऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधत्रिकमप्रत्याख्यानावरणादिमानत्रिकमप्रत्याख्यानावरणादिमायात्रिकमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभद्विकं चेत्येकादश हास्यषट्कं तथा पुरुषवेदः सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वयोश्च मिथ्यात्वं सम्यङ्मिथ्यात्वं चेति विंशतिप्रकृतीनां सङ्क्रमः तावद्भवति, यावत्समयोनाऽऽवलिकाप्रमाणः पुरुषवेदोदयः तावत् विंशतिः प्रकृतयः निरुक्तषट्प्रकृतिषु पुरूषवेदस्य चरमोदयेऽपि सङ्क्रामन्तीत्यर्थः। ततो हास्यषट्के उपशान्ते पूर्वोक्तषट्प्रकृतिषु हास्यषट्कस्योपशान्तत्वाद्धास्यषट्कमृते चतुर्दश प्रकृतयः संक्रामन्ति, ताश्चाऽपि तावत्संक्रामन्ति यावदवेदकाद्धायाः समयोनाऽऽवलिकाद्वयं व्यतिक्रामति। ततः पश्चात्पुरूषवेदस्य सर्वथोपशान्तत्वात्पुरूषवेदं विना पूर्वोक्तषट्प्रकृतिषु पुरुषवेदरहितपूर्वोक्तत्रयोदश प्रकृतयः संक्रामन्ति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—**"ततो पुरिसवेगस्स पढमट्ठितियसमयूणदुआवलियसेसाए पुरिसवेओ पडिग्गहो ण होति त्ति वीसा तेसु चेव सत्तसु पुरुषवेगरहिएसु छसु संक्रमति जाव समयूणाउ दो आवलियाउ। ततो छसु णोकसाएसु उवसंतेसु चोद्दस्स भवंति, ते चोद्दस तेसु चेव छसु संकमति जाव समयूणाओ दो आवलियाओ। ते चेव चोद्दस्सा पुरिसवेदे उवसंते तेरस भवंति।"** इति।

तेन पुरुषवेदस्य चरमोदयसमयेऽपि हास्यषट्कस्य संक्रमभवनात्तदानीं सर्वथा तदुपशान्तत्वं न संभवति। एवं पुरुषवेदोदयचरमसमये वर्तमानः शेषं हास्यषट्कं संक्रमयति सर्वथा चोपशमयति, ततोऽनन्तरसमये पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलं विना शेषं पुरुषवेदं हास्यषट्कं च युगपदुपशान्तत्वं प्राप्यते। उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णावपि—"एदेणकमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तणोकसाया उवसंता णवरि पुरिसवेदस्स बे आवलिया बंधसमयूणा अणुवसंता।"** इति। पुरुषवेदोदयचरमसमये पुरुषवेदस्य चरमस्थितिबन्धः षोडशवार्षिकः सज्वलनानां क्रोधादीनां संख्येयवार्षिको भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—**जंमि समते छ नोकसाया उवसंता तंमि समते पुरिसवेयस्स ट्ठितिबंधो सोलसवरिसाणिसंजलणाणं बंधो संखेज्जाणिवाससहस्साणि"** इति ● कषाय-

● धवलादिग्रन्थेष्वपि पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदसमये संज्वलनचतुष्कस्य द्वात्रिंशद्वार्षिकः स्थितिबन्ध उक्तः तथा चाऽत्र जयधवला-सवेदचरिमसमए पुरिसवेद-चउसंजलणाणं जहाकमं सोलस-बत्तीसवस्समेत्तो जादो सेसाण पुण कम्माणमज्ज वि संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो चेव दट्ठव्वो त्ति भणिदं होदि।
तथैव लब्धिसारेऽपि ··· ····

तच्चरिमे पुंबंधो सोलसवस्साणि संजलणाणं।
तदुगाणं सेसाणं संखेज्जसहस्स वस्साणि ॥ २६३ ॥

प्राभृतचूर्णौ तु तदानीं संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाण उक्तः। तदनन्तरसमये-ऽवेदकाद्धायाः प्रथमसमय इत्यर्थः,संज्वलनक्रोधादीनां स्थितिबन्धस्त्वन्तर्मुहूर्तन्यूनद्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणः कर्मप्रकृतिचूर्णावप्युक्तः, तद्यथा-"**पढमसमय अवेयगस्स संजलणाणं ठितिबंधो बत्तीस वरिसाणि अंतोमुहुत्तूणाणि सेसाणं णाणावरणीयाणं संखेज्जाणि वाससहस्साणि ठितिबंधो**"इति। कषायप्राभृतचूर्णावप्यवेदकस्य प्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तोनो द्वात्रिंशद्वार्षिक उक्तः,तथा च तद्ग्रन्थः-"**पढमसमयअवेदस्स संजलणाणं ठिदिबंधो बत्तीसवस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि** ।" इति । अवेदकप्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धस्याऽन्तर्मुहूर्तन्यूनद्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणत्वात्, तत्पूर्वसमये पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदसमय इति यावत् संज्वलनचतुष्कस्य द्वात्रिंशद्वार्षिकस्थितिबन्धः संभवत्येव। कर्मप्रकृतिचूर्णौ तु संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धः संख्येयानि वर्षसहस्राण्युक्तः,तदानीं शेषकर्मणां स्थितिबन्धो न भावितः, तेनेयंसंभावनाऽस्माभिरुपस्थीयते-"**संजलणाणंबंधो**"इति शब्दात्परं '**बत्तीस वस्साणि सेसाणं कम्माणं** कम्माणं"इत्येतावन्तः शब्दा अशुद्धिवशाल्लुप्ताः संभवन्ति। अयं भावः-पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदसमये शेषकर्मणां संख्यातवार्षिकः संज्वलनचतुष्कस्य च स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणो घटते। यद्वा पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिचरमसमये संख्येयवार्षिकीं स्थितिं बद्ध्वा-ऽनन्तरसमये पूर्वतः संख्यातगुणहीन आरब्धः स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तोनद्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणो वाच्य इति गणितशास्त्राऽपेक्षया तूभयमप्यविरुद्धम्। कर्मप्रकृतेरुभयटीकयोः पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदसमये संज्वलनचतुष्कस्य बन्धः संख्येयसहस्रवार्षिक उक्तः। तथा पुरुषवेदे सर्वथोपशान्तेऽर्थादवेदकस्य द्वितीयावलिकाया द्विचरमसमये संज्वलनचतुष्कस्याऽन्तर्मुहूर्तोनद्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणः, स्थितिबन्ध उक्तः, तथा चाऽत्र मलयगिरिटीका- '**ततः पुरुषवेद उपशान्तः तदानीं च संज्वलनानां द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणोऽन्तर्मुहूर्तोनः स्थितिबन्धो भवति**।"इति। तथैवोपाध्याय-प्रवरैरप्युक्तम्।

पञ्चसंग्रहेऽवेदकस्य द्वितीयाऽऽवलिकाया द्विचरमसमये संज्वलनचतुष्कस्य द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणः स्थितिबन्ध उक्तः, न त्वन्तर्मुहूर्तोनद्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणः। अक्षराणि त्वेवम्—

"**तावइ कालेण चिय पुरिस उवसामए अवेदो सो बंधो बत्तीसमा संजलणियराण उ सहस्सा। मूलटीका "समयोनद्व्यावलिकाकालेन यद्बद्धं दलं तत्तावन्मात्रेण कालेनाऽवेदको भूत्वोपशमयति। पुरुषवेदो यदोपशान्तस्तदा संज्वलनानां द्वात्रिंशद्वार्षिको बन्धः,**"इति।

तट्टीका—"" तस्य पुंवेदोपशमनकालस्य सवेदाऽनिवृत्तिकरणस्य चरमसमये षोडशवर्षमात्रः पुंवेद-स्थितिबन्धः संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमितः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलयगिरीयटीका-"ततः पुरुषवेदोपशान्तः तदानीं च संज्वलनानां द्वात्रिंशत्समा द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणः स्थितिबन्धः।"इति।

पुरुषवेदस्य प्रथमस्थिता आवलिकाद्विके शेषे प्रागुक्तस्वरूप आगालो व्यवच्छिद्यते, इतः प्रभृति द्वितीयस्थितितः पुरुषवेदस्य दलिकं प्रथमस्थितौ नाऽऽगच्छति, उदीरणा तु भवत्येव। ॐ आगालव्यवच्छेदसमय एव हास्यषट्कस्य दलिकं पुरुषवेदे न संक्रमयति, किन्तु संज्वलनेषु। किमुक्तं भवति? आवलिकाद्वये शेषे पुरुषवेदस्य सङ्क्रमाधारतालक्षणा पतद्ग्रहता व्यवच्छिद्यत इति कृत्वा ततः प्रभृति नोकषायमत्कं दलिकं पुरुषवेदे न संक्रमयति, किन्तु संज्वलनक्रोधादिषु। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ 'पुरिसवेयस्स पढमट्ठितिते दुयावलियसेसाए आगालो वोच्छिन्नो अणंतरावलिगाओ उदीरणा एत्ति ताहे छण्हं नोकसायाणं संछोभो णत्थि पुरुषवेदे संजलणेसु संछुभंति।"इति।

अत्र केचित्परिशङ्कन्ते-ननु प्रस्तुत आवलिकाद्वये शेषे आगालविच्छेदसमये हास्यषट्कसत्कं दलिकं पुरुषवेदे न सङ्क्रमयतीत्युच्यते सङ्क्रमाऽधिकारे तु पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिसत्कयोः समयोनयोर्द्वयोरावलिकयोः सत्योः पुरुषवेदः पतद्ग्रहो न भवतीत्युक्तम्, अतो मिथो विरोध उत्तिष्ठति? अत्र परिहार उच्यते-न कश्चिद्विरोधो विवक्षाभेदमात्रस्य सत्वात् तथाहि-अत्राऽऽवलिकाद्विके शेषे आगालस्य व्यवच्छेद उक्तः,तस्याऽयमाशयः- द्विचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये हास्यषट्कं पुरुषवेदे सङ्क्रमयति, ततः परस्मिन्समये हास्यषट्कं पुरुषवेदे न सङ्क्रमयतीति सङ्क्रमाऽधिकारे तु हास्यषट्कस्य सङ्क्रमाऽभावमाश्रित्य पतद्ग्रहविच्छेद उक्तः, अतः समयोनाऽऽवलिकाद्विके शेषे नष्टता नाऽनुपपन्ना विवक्षाभेदस्य सत्त्वात्। अथवा निश्चयनयेन व्यवच्छिद्यमानो व्यवच्छिन्न उच्यते, व्यवहारनयेन तु समयोनावलिकाद्वये शेष आगालोऽव्यवच्छिद्यत उच्यते। तदेवमिह निश्चयनयेन संक्रमाधिकारे तु व्यवहारनयेन प्रोक्तत्वेन समयोनावलिकाद्वये पतद्ग्रहाभावे व्यवच्छिन्नो भवति तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति।

ततः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितावावलिकायां शेषायामुदीरणा व्यवच्छिन्ना भवति। पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेश्चरमनिषेकवेदिते एते पदार्थाः प्रवर्तन्ते। तद्यथा--

(१) हास्यषट्कं नपुंसकवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशान्तम्।

(२) पुरुषवेदस्य बन्धविच्छेदः।

(३) तदुदयविच्छेदश्च

(४) समयोनाऽऽवलिकाद्विकेन बद्धदलिकं विना पुरुषवेदस्य दलं सर्वथोपशान्तम्।

(५) क्रोधत्रिकोपशमनाप्रारम्भः।

टिप्पणी ॐ एत्तो पाए पुरुषवेदस्स गुणसेढि णि णत्थि।"इति जयधवला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धं पुरुषवेदस्य यदनुपशान्तं दलम्, तदप्यवेदकाद्धायां तावता कालेनोपशमयति। नन्वपगतवेदप्रथमसमयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धं दलिकं कथमुपशान्तं न भवतीति चेद्? उच्यते, पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ तद्बन्धः प्रथमतः प्रवर्तते, यथा पूर्वबद्धदलमुपशमयति तथैव नूतनबद्धमपि दलमुपशमयति किन्तु कस्मिन्नपि नूतनबद्धे कर्मणि बन्धसमयादारभ्याऽऽवलिकापर्यन्तं किमपि करणं न प्रवर्तते, बन्धाऽऽवलिका सकलकरणाऽयोग्येति कृत्वा। अतः पुरुषवेदे प्रथमस्थितिसत्काया द्विचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये पुरुषवेदस्य बद्धंदलिकं बन्धसमयादारभ्याऽऽवलिकाचरमसमयपर्यन्तं तदवस्थं तिष्ठति, तदुपशमनं नास्तीत्यर्थः, सकलकरणाऽयोग्यत्वाद्। बन्धाऽऽवलिकायां व्यतिक्रान्तायां तदनन्तरं चरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमयात्प्रभृत्युपशमयितुमारभते, एकसमयेन बद्धं दलिकमुपशमयितुमावलिकाप्रमाणः कालो गच्छेदिति नियमाद् द्विचरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमये पुरुषवेदस्य बद्धदलिकं चरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमुपशमयंश्चरमाऽऽवलिकाचरमसमये सर्वथोपशमयति, अर्थात्पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिचरमसमये द्विचरमाऽऽवलिकाप्रथमसमयेन बद्धं दलं सर्वथोपशम्यत एवं द्विचरमाऽऽवलिकाया द्वितीयसमये बद्धं पुरुषवेदस्य दलिकं चरमाऽऽवलिकायाः प्रथमसमयं यावत्तदवस्थं तिष्ठति, तदुपशमनं नाऽस्ति। ततः परं चरमाऽऽवलिकाया द्वितीयसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमुपशमयञ्जन्तुश्चरमाऽऽवलिकायाश्चरमसमये सर्वथा नोपशमयति, किन्त्वपगतवेदोदयेन जन्तुना प्रथमसमये द्विचरमाऽऽवलिकाद्वितीयसमयेन बद्धं दलिकं सर्वथोपशम्यते, नाऽर्वागिति पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिकाप्रथमसमयेन बद्धं दलिकं प्रथमस्थितिचरमसमये हास्यषट्केन सहोपशम्यते, किन्तु प्रथमस्थितेर्द्विचरमाऽऽवलिकाद्वितीयादिसमयैर्बद्धं दलिकं प्रथमस्थितेश्चरमसमये सर्वथा नोपशम्यते। एवं पुरुषवेदोदयचरमसमये वेदिते समयोनद्विचरमावलिकायां बद्धं संपूर्णश्चरमाऽऽवलिकाया बद्धं चेति सर्वं मिलित्वा समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धं दलिकमनुपशान्तमवतिष्ठते।

अवेदको भूत्वा तावता कालेन तदपि सर्वथोपशमयति। तत्र समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धस्य दलिकस्यावेदकाद्धायामुपशमनाविधिश्चाऽयम्—अवेदकाऽद्धायाः प्रथमसमये स्तोकमुपशमयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणम्, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणम्। एवं प्रतिसमयमसंख्येयगुणकारेण तावदुपशमयति, यावच्चरमसमयः, परप्रकृतिषु च प्रतिसमयं समयोनाऽऽवलिकाद्विकचरमसमयं यावद्यथाप्रवृत्तसंक्रमेण सङ्क्रमयति। सङ्क्रमक्रमश्चाऽयम्— अवेदकाऽद्धायाः प्रथमसमये प्रभूतं सङ्क्रमयति, ततो द्वितीयसमये विशेषहीनं ततोऽपि तृतीयसमये विशेषहीनम्, प्रतिसमयं विशेषहीनक्रमेण संज्वलनक्रोधादिषु सङ्क्रमयति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ— "अवेयगो जं तं समऊण दुआवलिबंधं अणुवसंतं तं असंखेज्जगुणसेढीए उवसामिज्जति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परपगतिए पुण अह पवत्तसंकमेण संकामेति पढमसमए अवेयगस्स संकमो बहुगो, से काले विसेसहीणो, एवं जाव उवसामणंतो ।" इति

अत्र परप्रकृतिषु प्रवर्तमानस्य यो विशेषहीनक्रम उक्तः स एकसमयेन बद्धदलिकाऽपेक्षया ज्ञातव्यः । एतदुक्तं भवति–तत्तत्समये बद्धदलिकतो बन्धसमयादारभ्याऽऽवलिकायां तदनन्तरसमये प्रभूतं दलिकं संक्रमयति, ततो द्वितीयसमये विशेषहीनम्, ततोऽपि तृतीयसमये विशेषहीनमेवं तावद्वाच्यम्, यावत्तत्तत्समयबद्धदलिकस्य सङ्क्रमचरमसमयः । 卐उक्तं च **कषायप्राभृतचूर्णौ**— **"पढमसमयअवेद स स कामिज्जदि बहुअं से काले विसेसहीणं एस कमो एकसमयपिबद्धस्स चेव ।"** इति । ननु विशेषहीनक्रमस्तत्तत्समयेन बद्धदलिकाऽपेक्षयोच्यते, अनेकसमयबद्धनूतनदलिकाऽपेक्षया कथं नोच्यते ? इति चेत्, शृणु, दलिकं योगानुरूपं बध्यते, नानासमयाऽपेक्षया योगोऽसंख्यातभागहीनः संख्यातगुणहीनोऽसंख्यातगुणहीनो वा संभवति । एवं नानासमयाऽपेक्षया योगोऽसंख्यातभागवृद्धो संख्यातभागवृद्धो वा संख्यातगुणवृद्धो वाऽसंख्यातगुणवृद्धो वा संभवति । योगस्य वृद्धिर्हानिर्वा चतुर्धा संभवति, तेन बन्धद्वारेण दलिकमपि चतुर्विधया वृद्ध्या वा हान्या वा संचीयते । अतो भिन्नभिन्नसमयैर्बद्धदलिकस्यैव समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धदलिकस्य यः पूर्वपूर्वतोऽसंख्यातगुण उपशमनाक्रम उक्तः, सोऽपि तत्तत्समयेन बद्धदलिकस्यैव वाच्यः ।

यदुक्तं समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धं नूतनदलिकमवेदकाऽद्धायां तावता कालेनोपशान्तं भवति, तत्र पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेर्द्विचरमाऽऽवलिकासत्कद्वितीयसमयेन बद्धदलिकं बन्धावलिकायामव्यतिक्रान्तायां चरमावलिकाया द्वितीयसमये कियच्चिद् दलिकमुपशमयति, एवं तृतीयसमये कतिपयचिद्दलमुपशमयति । एवमवेदकाद्धायाः प्रथमसमये सर्वथोपशमयति एकसमयेनैव द्धस्य दलिकस्योपशमनाया कालस्यावलिकाप्रमाण वनियमात् । तथैव प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिकायास्तृतीयसमयेन बद्धदलिकं तच्चरमावलिकायास्तृतीयसमये कियचिद्दलिकमुपशमयति कतिपयचिद्दलिकं तच्चतुर्थसमये उपशमयति. एवं क्रमेणाऽवेदकाद्धाया द्वितीयसमये सर्वथोपशमयति ।

पूर्ववत्प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिकायाश्चतुर्थसमयेन बद्धादलिकात्तच्चरमाऽऽवलिकायाश्चतुर्थसमयात्प्रभृति दलिकमुपशमयितुमारभते, अवेदकाद्धायाश्च तृतीयसमये सर्वथोपशमयति । एवं क्रमेण तत्तत्समयबद्धदलिकस्योपशमनविधिर्द्रष्टव्यः । इदमुक्तं भवति–प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिका-

卐 तथैव चोक्तं धवलायां लब्धिसारे च—"पढमसमयअवेदेणं संकामिज्जमाणपदेसग्गं बहुअं से काले विसेसहीणं एस कमो जाव सव्वुवसंतं इदि । जोगसमयपबद्धमस्सिऊण एदं उत्तं जोगापत्ताणं णाणासमयपबद्धाणं उत्त कमाणुववत्तीदो" इतिधवलाकारः । **अथ लब्धिसारः—"तथा पुंवेदनवकबंधस्यैकसमयप्रबद्धद्रव्यं–प्रागतवेद"**इति ।

याश्चरमसमये बद्धं दलिकं तच्चरमावलिकासत्कचरमसमय उपशमयितुमारभते, अवेदकाद्धायाश्च प्रथमावलिकासत्कद्विचरमसमये सर्वं दलमुपशमयति । एवं पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेश्चरमावलिकायाः प्रथमसमयेन बद्धस्य दलिकस्योपशमनारम्भोऽवेदकाद्धायाः प्रथमसमये जातः । अवेदकाऽद्धायाश्च प्रथमाऽऽवलिकापर्यवसाने सर्वदलमुपशान्तं जातम् । पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेश्चरमावलिकाया द्वितीयेन समयेन बद्धस्य दलिकस्योपशमनाप्रारम्भोऽवेदकाद्धाया द्वितीयसमये भवति । अवेदकाद्धायाः प्रथमसमये तु तदुपशमनं नाऽस्ति, बन्धावलिकाया अव्यतिक्रान्तत्वाऽभावात् . तेनाऽवेदकाद्धाया द्वितीयसमये तदुपशमनारम्भो भवति, द्वितीयावलिकायाश्च प्रथमसमये सर्वं तद्दलिकं सर्वात्मनोपशमयति, एतेन पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिकाया द्वितीयसमयात्प्रभृति तच्चरमावलिकासत्कप्रथमसमयपर्यन्तं विद्यमानैस्समयैर्बद्धाद्दलिकान्कियच्चिद्दलिकमवेदकाद्धायाः प्रथमसमय उपशमनायां वर्तते. ततः परेण प्रथमस्थितिचरमावलिकाद्वितीयादिरूपेण समयेन बद्धं किमपि दलिकं तस्मिन्समये(अवेदकाद्धासत्कप्रथमसमये) उपशमनायां न वर्तते, एवमवेदकाद्धाया प्रथमसमय आवलिकाप्रमाणसमयैर्बद्धाद्दलिकात्कियच्चिद्दलिकमुपशान्तं भवति । तथैवाऽवेदकाद्धाया द्वितीयसमयेऽपि प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिकासत्कतृतीयसमयात्प्रभृति चरमावलिकासत्कद्वितीयसमयपर्यवसानैः समयैर्बद्धदलिकात्कियच्चिद्दलिकमुपशमयति । ततःपरेण समयेन बद्धदलिकात्त किमपि दलमुपशमयति, अतोऽवेदकाद्धाया द्वितीयसमये यदुपशमयति, तद्दलमावलिकासमयबद्धदलिकस्य कियच्चिद्भागप्रमाणम् । एवमवेदकाद्धायाः प्रथमावलिकायाश्चरमसमयपर्यन्तमावलिकासमयैर्बद्धदलिकस्य कियच्चिद्भागप्रमाणमुपशमयति । किन्त्ववेदकाद्धाया द्वितीयावलिकायाः प्रथमसमये समयोनाऽऽवलिकया बद्धदलिकस्य कियच्चिद्भागप्रमाण दलमुपशमयति, न त्वावलिकया बद्धदलिकम् । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते—प्रथमस्थितेश्चरमावलिकासत्कप्रथमसमयेन बद्धदलिकमवेदकाऽद्धायाः प्रथमाऽऽवलिकायाश्चरमसमयये शेषं सर्वं सर्वात्मनोपशमयति, न कियच्चिदनुपशान्तं तिष्ठति, तेन केवलं समयोनाऽऽवलिकया बद्धदलिकतः कियच्चिद्दलमवेदकाऽद्धाया द्वितीयावलिकायाः प्रथमसमय उपशम्यते । एवमवेदकाऽद्धाया द्वितीयावलिकाया द्वितीयसमये द्विसमयन्यूनावलिक बद्धदलिकतः कियच्चिद्दलमुपशम्यते । एवमेवाऽवेदकाऽद्धाया द्वितीयावलिकाया द्विचरमसमय एकसमयमात्रेण बद्धदलिकतोऽवशेषं दलं सर्वथोपशमयति तस्मिन्समये पुरुषवेदः सर्वथोपशम्यते ।

अथासत्कल्पनयोपयुक्तं परिभाष्यते, असत्कल्पनया स्थापना चेत्थम्—

१उ. २उ. ३उ. ४उ. ५उ. ६उ. ७उ. ८उ.

१प्रा. २प्रा. ३प्रा. ४प्रा. ५प्रा. ६प्रा ७प्रा. ८प्रा.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेतसूचि:-(१) असत्कल्पनया ४ समयाः=आवलिका । (२) प्रथमसमयतश्चतुर्थसमयं यावत् पुरुषवेदप्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिका, (३) पञ्चमसमयतोऽष्टमं यावत् प्रथमस्थितिचरमावलिका, (४) नवमसमयतो द्वादशं यावदवेदकप्रथमावलिका (५) त्रयोदशसमयतोऽवेदकद्वितीयावलिका । (६) प्रा= उपशमनाप्रारंभ । उ=उपशमना ।

प्रथमसमयेन बन्धद्वारेण सङ्क्रमणद्वारेण वाऽऽगतं दलिकं पञ्चमसमय उपशमयितुमारभते, अष्टमसमये च सर्वथोपशमयति,द्वितीयसमयेन बद्धं दलिकं षष्ठसमय उपशमयितुमारभते,नवमसमये च सर्वथोपशमयति, तृतीयसमयेन बद्धं दलिकं सप्तमसमय उपशमयितुमारभते दशमे च समये सर्वथोपशमयति, चतुर्थसमयेन बद्धं दलिकमष्टमसमय उपशमयितुमारभत एकादशे च सर्वथोपशमयति, पञ्चमसमयेन बद्धं दलिकं नवमसमय उपशमयितुमारभते द्वादशे च समये सर्वथोपशमयति, षष्ठसमयेन बद्धं दलिकंदशमसमय उपशमयितुमारभते त्रयोदशे च समये सर्वथोपशमयति । सप्तमसमयेन बद्धं दलिकमेकादशे समय उपशमयितुमारभते चतुर्दशे च समये सर्वथोपशमयति।

अष्टमसमयेन पुरुषवेदोदयचरमसमयेन बद्धं दलिकं द्वादशे समय उपशमयितुमारभते पञ्चदशे च समये सर्वथोपशमयति। अवेदकाऽद्धायाः प्रथमावलिकासत्कप्रथमसमय अर्थान्नवमसमये द्वितीयसमयात्प्रभृति पञ्चमसमयपर्यन्तैः समयैर्बद्धदलिकमुपशमयति । अवेदकाऽद्धायाः प्रथमावलिकासत्कद्वितीयसमय अर्थाद्दशमसमये तृतीयसमयात्प्रभृति षष्ठसमयपर्यन्तैः समयैर्बद्धदलिकमुपशमयति । अवेदकाद्धायाः प्रथमावलिकासत्कतृतीयसमयेऽर्थादेकादशसमये चतुर्थसमयात्प्रभृति सप्तमसमयपर्यन्तैः समयैर्बद्धदलिकमुपशमयति। अवेदकाद्धायाः प्रथमावलिकासत्कचतुर्थसमयेऽर्थाद् द्वादशसमये पञ्चमसमयात्प्रभृत्यष्टमसमयपर्यन्तैस्समयैर्बद्धदलिकमुपशमयति। अवेदकाद्धाया द्वितीयावलिकासत्कप्रथमसमयेऽर्थात् त्रयोदशसमये षष्ठसमयादारभ्याऽष्टमसमयपर्यन्तैः समयैर्बद्धदलिकमुपशमयति। अष्टमसमयात्परतो बन्धाऽभावात् अवेदकाऽद्धाया द्वितीयावलिकासत्कद्वितीयसमयेऽर्थाच्चतुर्दशसमये सप्तमसमयात्प्रभृत्यष्टमसमयपर्यन्तैस्समयैर्बद्धदलिकमुपशमयति । अवेदकाऽद्धाया द्वितीयावलिकासत्कद्विचरमसमयेऽर्थात्पञ्चदशसमयेऽष्टमसमयेन बद्धदलिकमुपशमयति ।

ननु यथा पुरुषवेदस्य समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन नूतनबद्धदलिकमनुपशान्तमवतिष्ठते, तथैव समयोनावलिकाद्वयेन पुरुषवेदे हास्यषट्करूपस्वजातीयपरप्रकृतेः सङ्क्रमत आगतं दलिकमपि कथमनुपशान्तं न तिष्ठति, इति चेत्? उच्यते-पुरुषवेदस्य प्रथमस्थिता आवलिकाद्वये शेषे तत्पतद्ग्रहताया नष्टत्वात्पुरुषवेदस्य पतद्ग्रहतायां नष्टायां सत्यां ततः प्रभृति तस्मिन्संक्रमतो दलिकं नागच्छतीति कृत्वा पुरुषवेदोदयचरमसमये समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन बद्धमेव दलिकमनुपशान्तं न तिष्ठति सङ्क्रमत आगतम्, इत्यलं प्रपञ्चेन ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषवेदस्योपशमनामभिधाय क्रोधस्योपशमनां प्रदिदर्शयिषुराह–

तिविहमवेओ कोहं कमेण सेसे वि तिविहतिविहे वि ।
पुरिससमा संजलणा पढमठिई आलिगा अहिगा ॥४८॥

त्रिविधमवेदकः क्रोधं क्रमेण शेषानपि त्रिविधत्रिविधानपि ।
पुरुषसमाः संज्वलनाः प्रथमस्थितिरावलिका साधिका ॥४८॥ इति पदसंस्कारः ।

यस्मिन्समये पुरुषवेदस्याऽवेदको जातः, तस्मादेव समयादारभ्याऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधान् युगपदुपशमयितुमारभते, पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितितः संज्वलनक्रोधसत्का याः प्रथमस्थितेर्विशेषाऽधिकत्वात्पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ समाप्तायामपि संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितिरवशिष्यते । तस्याः प्रथमसमयात्प्रभृति एते पदार्था भवन्ति–

(१) क्रोधत्रिकोपशामनाप्रारम्भः ।

(२) समयोनाऽऽवलिकाद्विकेन पुरुषवेदस्य बद्धदलिकं यदनुपशान्तं तिष्ठति, तस्योपशमनासङ्क्रमौ भवतः, उपशमनाविधेः सङ्क्रमविधेश्च प्रागुक्तत्वेन पिष्टपेषणप्रसंगान्न पुनरत्राऽभिधीयते ।

(३) अभिनवस्थितिबन्धरसघाताश्चारभ्येते, स्थितिबन्धः पूर्वोक्तः । तद्यथा–अपगतवेदाद्धायाः प्रथमसमये संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनद्वात्रिंशद्वार्षिकः, सोऽपि पूर्वपूर्वतः संख्येय भागहीनो भवति, शेषकर्मणां च संख्येयसहस्रवार्षिकः पूर्वपूर्वतश्च संख्येयगुणहीनो भवति ।

(४) अल्पबहुत्वमपि पूर्ववद् द्रष्टव्यम्, तथाहि–मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वाऽल्पः ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां संख्यातगुणः स्वस्थाने मिथस्तुल्यः, ततोऽपि नामगोत्रयोः संख्यातगुणः, ततो वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः । पुरुषवेदोदयस्याऽपगमात्समयोनाऽऽवलिकाद्वये गते सति पुरुषवेदः सर्वथोपशान्तो भवति । यावत्संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितावावलिकात्रिकं शेषं तावदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणयोर्दलिकं संज्वलनक्रोधे संक्रमयति । ततः परं संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ समयोनाऽऽवलिकात्रिके शेषे सति● संज्वलनक्रोधस्य पतद्ग्रहता नश्यति । ततः प्रभृ-

● लब्धिसारे संज्वलनक्रोधस्य पतद्ग्रहतायामपगतायामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणयोर्दलिकं संज्वलनमाने एकावलिकापर्यन्तं संक्रमयति– "अपगतवेदे प्रथमसमयादारभ्य संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितिरावलिकयावशेषा यावद्भवति तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधद्वयद्रव्यगुणसङ्क्रमेण गृहीत्वा सञ्ज्वलनक्रोधे संक्रमयति । तत्र प्रथमासङ्क्रमावलिर्द्वितयोपशमनावलिस्तृतीयोच्छिष्टावलिरिति व्यपदिश्यते । ततःपरं तद्द्रव्यं सङ्क्रमावलिचरमसमयपर्यन्तं सञ्ज्वलनमाने संक्रमयति" इति यदुक्तं तन्न सम्यग्हेतुपूर्वकमवबुध्यते अद्यप्रभृत्यावलिकाद्विकं यावदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणकषायाणामनुपशान्तत्वेनाऽऽवलिकाद्विकपर्यन्तं तयोः सङ्क्रमसंभवात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणयोर्दलिकं तत्र न सङ्क्रमयति, किन्तु संज्वलनमानादावित्यर्थः। ततः संज्वलनक्रोधस्य द्व्यावलिकाशेषायां संज्वलनक्रोधस्याऽऽगालो*व्यवच्छिद्यते, ततः परं द्वितीयस्थितेर्दलानि प्रथमस्थितौ नागच्छन्तीत्यर्थः, तदानीं प्रत्यागालव्यवच्छेदोऽपि कषायप्राभृतचूर्ण्युक्तः। उदीरणा तु प्रवर्तते। साऽपि तावत्प्रवर्तते यावदेकावलिकाशेषा भवति, उदीरणावलिकायाश्चरमसमय इमे वक्ष्यमाणाः पदार्थाः प्रवर्तन्ते—

(१) संज्वलनक्रोधादिचतुष्कस्य स्थितिबन्धश्चातुर्मासिकश्शेषकर्मणां च संख्यातवर्षसहस्रप्रमितः अल्पबहुत्वं तु पूर्ववद् द्रष्टव्यम्।

(२) संज्वलनक्रोधस्य जघन्यस्थित्युदीरणा तथा तदुदयस्य चरमसमयः। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ -'जाव आवलिया पडिआवलिगसेसा कोहसंजलणाए, ताहे बितियट्ठितितो आगालो वोच्छिन्नो, पडिआवलिगातो उदीरणा एति, कोहसंजलणाए पडिआवलिगाते एगंमि समते सेसे कोहसंजलणाए जहन्निगा ट्ठिति उदीरणा।" इति। ततोऽनन्तरसमये प्रथमस्थितेरेकावलिकाशेषेऽमूनि वक्ष्यमाणानि वस्तूनि सञ्जायन्ते—

(१) अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधद्वयस्य सर्वथोपशमः।

(२) प्रथमस्थितेरेकावलिकां समयोनऽऽवलिकाद्विकबद्धं च दलिकं मुक्त्वा संज्वलनक्रोधस्य शेषमन्यत्सर्वमुपशान्तम्। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"तंमि समते चत्तारि मासा ट्ठितिबंधो संजलणाणं सेसाणं कम्माणं वरिससहस्साणि ट्ठितिबंधो। पडिआवलियवोच्छेदसमये चेव दो कोहा उवसंता। कोहसंजलणाए पढमट्ठितिते आवलियं समऊण दुआवलियं बद्धं च सेसं सव्वं उवसंतं दलियं।" इति।

(३) संज्वलनबन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिन्नाः, यस्मिन्समये चरमबन्धः प्रवर्तते, व्यवहारनयेन तदनन्तरसमयस्तद्विच्छेदस्याऽत्र विवक्षितः, तेन चरमबन्धस्याऽनन्तरसमये बन्धविच्छेद उक्तः। एवमुदयोदीरणागालपतद्ग्रहादिष्वप्यवगन्तव्यम्।

ननु कर्मप्रकृतिचूर्णौ बन्धादीनां विच्छेदः संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थिता आवलिकायां शेषायामुक्तः, तथा च तद्ग्रन्थः-"कोहस्स पढमट्ठितिते आवलिगावसेसाते, ताहे कोहस्स बंधो उदतो उदीरणा य तिन्नि य वि वोच्छिन्नाणि" इति कषायप्राभृतचूर्णौ तु प्रथमस्थितेः समयोनावलिकाशेषे संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयौ व्यवच्छिद्येत इत्युक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः—"जाधे कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदिए समयुणावलिया सेसा ताधे चेव कोहसंजलणस्स बंधोदया

* जयधवलायामत्र गुणश्रेणिविच्छेदोऽपि कथितस्तथा च तद्ग्रन्थः-'आगालपडिआगालवोच्छेदे संजादे तदोप्पहुडि कोहसंजलणस्स णत्थि गुणसेढिणिक्खेवो।" (१८५१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वोच्छिण्णा" इत्युभयोः परस्परं विरोधः स्यादिति चेत् ? उच्यते, यस्मिन्समये संज्वलनक्रोधस्यबन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यन्ते, तस्मिन्नेव समये द्वितीयस्थितितो मानस्य दलिकं गृहीत्वा तत्प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"**जाहे चेव कोहस्स बंधोउदओ उदीरणा च वोच्छन्नाणि, ताहे चेव माणस्स ठितिं बीयिठितितो दलियं घेत्तूण करोति पढमसमयवेयगो पढमट्ठितिं करमाणो**" इत्यादि ●संज्वलनमानस्य वेद्यमानत्वात् संज्वलनक्रोधस्योदयसमयगतदलिकं संज्वलनमाने स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रान्तं भवति, अत एव समयोनाऽऽवलिकागतनिषेकेषु स्वस्वरूपेण तद्दलिकमवतिष्ठते। एकनिषेकगतसंक्रान्तसंज्वलनक्रोधदलिकस्य मानत्वेन विवक्षामनाश्रित्य **कर्मप्रकृतिचूर्णिकारैरुक्तम्,** तद्विवक्षां स्वाश्रित्य **कषायाप्राभृतचूर्णिकारैः** समयोनावलिकाशेषे बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यन्त इत्युक्तम्, अतो न कश्चित्पदार्थभेदः, विवक्षाभेदस्य संभवात्। तथा च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ** प्रत्यावलिकाया विच्छेदकाले समयोनावलिकाद्वयेन संज्वलनक्रोधस्य बद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठतीत्युक्तम्, कषायप्राभृतचूर्णिकाराणां तु द्विसमयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनक्रोधस्य नूतनबद्धपलिकमनुपशान्तं तिष्ठतीत्यभिप्रायः, तथा च तद्ग्रन्थः–**पडिआवलिया उदयावलियं पविसमणा पविट्ठा। ताधे चेव कोहसंजलणे दो आवलियबंधे दुसमयूणे मोत्तूण सेसा तिविहा कोधपदेसा उवसामिज्जमाणा उवसंता**"इति। अत्राऽपि पूर्ववद्विवक्षाभेदोऽस्ति, न पदार्थभेदः। तद्यथा–प्रत्यावलिकायाः प्रथमसमये प्रवृत्तोपशमनक्रियातः परं संज्वलनक्रोधस्य द्विसमयोनद्वयावलिकाबद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति। तस्मिन्समये प्रवृत्तोपशमनक्रियाया विवक्षामनाश्रित्य समयोनावलिकाद्विकेनबद्धं दलिकमनुपशान्तं तिष्ठतीत्युच्यते। संज्वलनमानोदये वर्तमानस्सन् संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितेः शेषावलिकां संज्वलनमाने स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमय्य वेदयति तथा च समयोनावलिकाद्विकेन बद्धदलिकमपि पुरुषवेदोक्तप्रकारेण तावता कालेनोपशमयति सङ्क्रमयति च, तथाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनमानोपशमनायाः प्रारम्भं करोति।

'**कमेण**' इत्यादि, अनेनैव क्रमेण शेषानपि कषायान् त्रिविधान् त्रिप्रकारान् मानमायालोभरूपान्, पुनः कथं भूतान् ? इत्याह– त्रिविधान् प्रत्येकं त्रिप्रकारान्। तथाहि–अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदात् त्रिविधो मानः, एवं मायालोभावपि, तानुपशमयति। तत्र संज्वलनोपशमना पुरुषवेदसमाऽवसेया, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमानादीनां चोपश-

---

● कुद मत्थ उच्छिट्ठमावलियाए समयूणत्तमिदि णासंकणिज्जं, तम्मि चेव समये उदयवोच्छेदणवसेण–पढमट्ठिदिसेगट्ठिदिए माणसंजलणोदयम्मि त्थिवुक्कसंकमेण संकमणाए तिस्से तहा भावोवलभादो (जयधवला पृष्ठ१८५३)

मना षण्णोकषायसमाना, अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणक्रोधसमाना वा, नवरं संज्वलनानां प्रथमस्थितावेकावलिका पुरुषवेदाऽपेक्षयाऽवशिष्टा द्रष्टव्या। तथाहि—पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिः षट्सु नोकषायेषु सर्वात्मना शान्तेष्वेकसमयो भवति स्म, तेषूपशान्तेषु पुनः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिर्न तिष्ठति। अत्राऽनुपशान्ताऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमानादिषु पुनरुपशान्तेषु संज्वलनमानादीनां प्रथमस्थितिरेकावलिकाप्रमाणाऽवशिष्यत इतीदमतिसंक्षेपेण प्रोक्तमित्यतः विस्तरतः प्रदर्श्यते—

संज्वलनमानोपशमना-(१)संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छेदसमय एव संज्वलननमानस्य द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकं समाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च। अत्रैकस्मिन्नेव समये द्वितीयस्थितितो दलिकं समाकृष्य प्रथमस्थितेः रचनं निषेकस्य च वेदनं युगपत्प्रवर्तते।

तत्र दलरचना चेत्थम्-प्रथमस्थितेरुदयसमये स्तोकं दलं रचयति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं प्रक्षिपति, ततो भूयोऽसंख्येयगुणं तृतीयसमये प्रक्षिपति, एवं तावद्वाच्यम् यावत्प्रथमस्थितेश्चरमसमयः। उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ "जाहे चेव कोहस्स बंधो उदओ उदीरणा य वोच्छिन्नाणि ताहे चेव माणस्स पढमट्ठितिं बीयट्ठितितो दलियं घेत्तूण करेति, पढमसमये वेयगो पढमट्ठितिं करेमाणो पढमसमते उदते पदेसग्गं थोवं देति, से काले असंखेज्जगुणाए सेढीए देति, जाव पढमट्ठितिए चरमसमतो त्ति।"** इति। यदोपरितनस्थितितो दलमाकृष्य प्रथमस्थितिं रचयति, तदा द्वितीयस्थितावपि दलप्रक्षेपो भवति, प्रथमस्थितेश्चरमसमये निक्षिप्यमाणदलिकतो द्वितीयस्थितेः 卐 प्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणहीनं दलं निक्षिपति, तदुपरितननिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपतीति कषायप्राभृतचूर्णिकारः। अक्षराणि त्वेवम्—

卐 — द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेकेऽसंख्येयगुणहीननिक्षेप इदं कारणं लब्धिसार उक्तम्—सत्तागतदलिकमपकृष्टभागहारेण विभज्य तदेकभागं भूयः पल्योपमाऽसंख्यातभागेन भक्त्वैकभागमुदयसमयादारभ्य प्रथमस्थितेश्चरमसमयपर्यन्तं प्रक्षिप्य बहुभागान्द्वितीयस्थितेराद्यनिषेकात्प्रभृति तावत्प्रक्षिपति यावदतिस्थापनाऽप्राप्ता भवति; एवं प्रथमस्थितेश्चरमनिषेके निक्षिप्यमाणदलिकतोऽसंख्येयगुहीनं दलं द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेके निक्षिप्यते कुतः? इति चेद्? उच्यते, प्रथमस्थितेश्चरमनिषेक उत्कीर्णदलिकसत्कपल्योपमाऽसंख्येयतमभागप्रमाणदलिकमसंख्येयसमयप्रबद्धप्रमाणं निक्षिप्यते, द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेके तूत्कीर्णदलिकसत्काऽसंख्यातबहुभागगतदलिकं द्व्यर्धगुणहानिभागहारेण विभज्य तदेकभागमेकसमयप्रबद्धाऽसंख्येयभागमात्रं निक्षिपतीति प्रथमस्थितेश्चरमनिषेके निक्षिप्यमाणदलिकतोऽसंख्येयगुणहीनं दलं द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेके निक्षिप्यते द्वितीय स्थितेः प्रथमनिषेकात्परं विशेषहीनक्रमेण तावत्प्रक्षिपति यावदतिस्थापना प्राप्ता भवति मानस्य प्रथमस्थितिं कुर्वन्प्रथमसमय उपर्युक्तक्रमेण दलिकं निक्षिपति, एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि निक्षेपक्रमो वाच्यः, तदानीं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ कषायप्राभृतिचूर्णौ च निक्षपेक्रमो नोक्तः। लब्धिसाराऽक्षराणि त्वेवम् —

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

"बिदिय ट्ठिदिए जा आदिट्ठीदी तिस्से असंखेज्जगुणं हीणं तदो विसेसहीणं चेव" इति

(२) संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितिप्रथमसमय एवाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनमानत्रिकं युगपदुपशमयितुमारभते ।

(३) तस्मिन्नेव समये संज्वलनमानादित्रिकस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहुर्तोन चातुर्मासिकः शेषकर्मणां तु ज्ञानावरणीयादीनां संख्येयवर्षसहस्रप्रमाणः, अल्पबहुत्वं तु पूर्ववज्ज्ञातव्यम् ।

(४) संज्वलनक्रोधस्याऽवशिष्टाऽऽवलिका संज्वलनमाने स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमयति ।

(५) तदानीं समयोनाऽऽवलिकाद्वयेन संज्वलनक्रोधस्य बद्धदलिकं पुरुषवेदोक्तप्रकारेण तावता कालेन सङ्क्रमयत्युपशमयति च यावत्संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितावावलिकात्रिकं शेषं भवति तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणयोर्दलिकं संज्वलनमाने संक्रमयति, ततःपरं प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिके शेषे सति संज्वलनमानस्य पतद्ग्रहताया अपगमात्तत्र न प्रक्षिपति, किन्तु ✠ संज्वलनमायालोभयोः सङ्क्रमयति । संज्वलनमानस्य प्रथमस्थिता आवलिकाद्विके शेषे पूर्वोक्तस्वरूपागालो व्यवच्छिद्यते। तदानीं च कषायप्राभृतचूर्णिकारमते प्रत्यागालोऽपि व्यवच्छिद्यते, उदीरणा तु तावत्प्रवर्तते

सेकाले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
पढमट्ठिदिम्मि दव्वं असंखगुणियक्कमे देदि ॥ २७२ ॥
पढमट्ठिदिसीसादो बिदियादिम्हि य असंखगुणहीणं ।
तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं ॥ २७३ ॥

संस्कृतटीका—क्रोधत्रयोपशमनाऽनन्तरसमयेऽयमनिवृत्तिकरणसंयतः संज्वलनमानस्याऽन्तर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति तद्यथा-संज्वलनमानस्य द्वितीयस्थितौ स्थितिसत्त्वद्रव्यादस्मात् - अपकर्षणभागहारखण्डितैकभागं गृहीत्वा पुनः पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयावलिप्रथमसमयादारभ्येदानीं क्रियमाणप्रथमस्थितिचरमसमयपर्यन्तं 'प्रक्षेपयोग' इत्यादिना प्रतिनिषेकेऽसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति । पुनः पल्याऽसंख्यातबहुभागं द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेन विशेषहीनक्रमेण उपर्यतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपति पुनर्द्वितीयादिसमयेष्वपि प्रथमसमयादपकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य प्रागुक्तप्रकारेण प्रथमद्वितीयस्थित्योर्निक्षिपति । प्रतिसमयं प्रथमस्थितिप्रथमनिषेकमेकैकमुदयमानमनुभवति च ॥ २७२ ॥ प्रथमस्थितिचरमसमयनिक्षिप्तद्रव्याद् द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके द्रव्यमसंख्यातगुणहीनम्, प्रथमस्थितिशीर्षद्रव्यस्य पल्यभागहारभूताऽसंख्यातबाहुल्याद्विशेषादसंख्यसमयबद्धमात्रत्वात् । द्वितीयस्थितिप्रथमनिक्षेपनिक्षिप्तद्रव्यस्य च द्व्यर्धगुणहान्यपकर्षणभागहारभक्तत्वेनैकसमयप्रबद्धाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् । ततो द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेकद्रव्यादुपरितननिषेकेषु विशेषहीनक्रमेणाऽतिस्थापनावलेरधो निक्षिप्तद्रव्यं विशेषतोऽसंख्येयगुणहीनमेव ।

✠ अत्राऽपि संज्वलनमायायामप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमानद्विकमावलित्रयपर्यन्तमेव सङ्क्रमयति इति लब्धिसारे उक्तम्, तद्यथा "संज्वलनमानप्रथमस्थितौ यावदावलित्रयमवशिष्यते तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानद्वयद्रव्यं संज्वलनमान एव पूर्वोक्तविधानेन सङ्क्रमावलिकाचरमसमयपर्यन्तं तद्द्रव्यं संज्वलनमायादिद्विक एव सङ्क्रामति (लब्धिसार० २६५) ।" इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावदावलिका शेषा भवति, उदीरणावलिकायाश्चरमसमये संज्वलनमानस्य जघन्यस्थित्युदीरणा तदुदयस्य च चरमसमयः, तत ऊर्ध्वमनन्तरसमये प्रथमस्थिता आवलिकाकाले शेष इत्यर्थः एतानि वस्तूनि प्रवर्तन्ते

(१) संज्वलनमानस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिन्ना भवन्ति।

(२) तदानीं चाऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानद्विकमुपशान्तं भवति।

(३) प्रथमस्थितिमुक्त्वाऽवशिष्टाऽऽवलिकां समयोनावलिकाद्विकेन च बद्धं दलिकं विमुच्य सर्वमन्यद् दलिकं संज्वलनमानस्योपशान्तं भवति।

मायोदये वर्तमानः सन् संज्वलनमानस्याऽवशिष्टावलिकां स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमय्य वेदयति तथा समयोनावलिकाद्विकेन बद्धदलिकमपि तावता कालेन पुरुषवेदोक्तक्रमेण संक्रमयति उपशमयति च। कषायप्राभृतचूर्णौ आवलिकास्थाने समयोनावलिकायां शेषायां संज्वलनमानस्य बन्धोदयौ व्यवच्छिद्येते तथा द्विसमयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमानस्य बद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठतीत्युक्तम्। तच्च पूर्ववद्भावनीयम्।

संज्वलनमायोपशमना—यस्मिन्समये संज्वलनमानस्य बन्धोदयोदीरणा विच्छिद्यन्ते, तस्मिन्नेव समय एते पदार्थाः प्रवर्तन्ते—

(१) संज्वलनमायाया द्वितीयस्थितितो दलिकं समाकृष्य संज्वलनमानवत्प्रथमस्थितिं करोति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "दलियनिक्खेवो जहा माणस्स।"

(२) तदानीं च मायात्रिकं युगपदुपशमयितुमारभते।

(३) तथा संज्वलनमायालोभयोरन्तर्मुहूर्तोनो द्वैमासिकः स्थितिबन्धश्शेषकर्मणां च संख्येयानि वर्षाणि।

(४) तत्समयादेव संज्वलनमानस्याऽवशिष्टावलिकामात्रां स्थितिं संज्वलनमायायां स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति वेदयति च।

(५) तथा समयोनावलिकाद्वयेन संज्वलनमानस्य बद्धदलिकं यदनुपशान्तं तिष्ठति, तत्पुरुषवेदोक्तप्रकारेण संक्रमयत्युपशमयति च, यावत्संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितेरावलिकात्रिकमात्रा शेषा भवति, तावदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमायाद्विकं संज्वलनमायायां संक्रमयति। ततः परं समयोनावलिकात्रिके शेषे मायायाः पतद्ग्रहताया अपगमात् तत्र न संक्रमयति, किन्तु ★संज्वलनलोभे संक्रमयति। संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितेरावलिकाद्विके शेष आगालो व्यव-

---

★ अत्राऽपि संज्वलनमायायाः पतद्ग्रहताया अपगमात्संज्वलनलोभेऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमायाद्विकमावलिकापर्यन्तं संक्रमयति। ततः परं न संक्रमयति इत्युक्तम्, अक्षराणि त्वेवम्—

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

च्छिद्यते तदानीं च कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन प्रत्यागालोऽपि व्यवच्छिद्यत इत्युक्तम् उदीरणा तावद्वक्तव्या, यावदावलिका शेषा भवति ।

उदीरणावलिकायाश्चरमसमये इमौ पदार्थौ भवतः (१) संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्ध एकमासिकश्शेषाणां च संख्येयानि वर्षाणि । (२) तदानीं च संज्वलनमायाया जघन्यस्थित्युदीरणा तदुदयस्य च चरमसमयः ।

ततोऽनन्तरसमये प्रथमस्थितेरावलिकाप्रमाणकाले शेष इत्यर्थः, अमी पदार्था प्रवर्तन्ते (१) संज्वलनमायाया बन्धोदयोदीरणा व्यच्छिद्यन्ते (२) अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमायाद्विकं सर्वथोपशान्तं भवति (३) प्रथमस्थितेरवशिष्टावलिकां तथा समयोनावलिकाद्वयबद्धं दलिकं विमुच्य सर्वमन्यत्संज्वलनमायाया दलमुपशान्तम् संज्वलनलोभमनुभवन् मायाप्रथमस्थितेरवशिष्टावलिकां स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति तथा समयोनावलिकाद्वये बद्धं दलिकमपि तावता कालेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेण संक्रमयत्युपशमयति च ।

संज्वलनलोभोपशमना — यस्मिन् समये मायाया बन्धोदयोदीरणा विच्छिद्यन्ते तस्मिन्नेव समयेऽमी पदार्था प्रवर्तन्ते — (१)द्वितीयस्थितिसकाशात्संज्वलनलोभस्य दलिकं गृहीत्वा संज्वलनमानवत्प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च। अतो मूलकार संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेः प्रमाणमाह —

लोभस्स बेतिभागा बिइभागोत्थ किट्टिकरणद्धा ।
एगफड्डगस्स अणंतभागो उ ता हेट्ठा ॥४९॥

लोभस्य द्वौ त्रिभागौ, द्वितीयत्रिभागोऽत्र किट्टिकरणाद्धा ।
एकस्पर्धकवर्गणानन्तभागस्तु ता अधस्तात् ॥ ४९ । इति पदसंस्कारः

★ लोभवेदकाद्धाया द्वित्रिभागप्रमाणां प्रथमस्थितिं करोति । इदमुक्तं भवति, लोभस्योपशमनाप्रथमसमयादारभ्याऽनिवृत्तिकरणचरमसमयपर्यन्तं संज्वलनबादरलोभवेदककालो भवति, ततः परं सूक्ष्मसंपरायचरमसमयपर्यन्तं सूक्ष्मलोभवेदककालो भवति, उभावपि मिलित्वा लोभवेदकाऽद्धा आन्तर्मौहूर्तिकी तस्यास्त्रयो विभागाः कर्तव्या । तत्र द्वयोस्त्रिभागयोर्द्वितीयस्थितितः समाकृष्य

"मायासंज्वलनप्रथमस्थितौ आवलिकात्रयं यावदवशिष्यते तावदप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरमायाद्वयद्रव्यं मायासंज्वलने सङ्क्रमयति ततः परं संक्रमाणावल्यां संज्वलनलोभे संक्रमयति (लब्धिसार २७६ टीका)

★ लब्धिसारेऽपि द्वित्रिभागतोऽधिका प्रथमस्थितिरुक्ता तद्यथा-"स च लोभकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः इदं संख्यातेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं त्रिषु स्थानेषु विभज्य स्थापयेत् पुनस्तदेकभागं संख्यातेनखण्डयित्वा बहुभागं प्रथमस्थाने दद्यात् । पुनरवशिष्टैकभागमपरेण संख्यातेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं द्वितीयस्थाने दद्यात् तदेकभागं तृतीयस्थाने दद्यात् । अत्र प्रथमभाग; संज्वलनबादरलोभवेदकाऽद्धा प्रथमार्थः । द्वितीयभागः सूक्ष्मसंपरायकालः । अत्र प्रथमद्वितीयभागयोर्मेलने लोभवेदकाऽद्धात्रिभागमात्र साधिकं प्रथमस्थितिप्रमाणं भवति ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिकं निक्षिपति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "लोभवेयगद्धाए बेतिभागमेत्ता लोभस्स पढमट्ठिति करेति।" तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि "ताधे चेव लोभसंजलणमोकड्डिऊण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि एत्तो पाए जा लोभवेदगद्धा होदि। तिस्से लोभवेदगद्धाए बेत्तिभागा। एत्तियमेत्ती लोभस्स पढमट्ठिदी कदा।" इति। तत्राऽपि प्रथमस्त्रिभागोऽश्वकर्णकरणाद्धासंज्ञः, द्वितीयस्त्रिभागः किट्टिकरणाद्धासंज्ञः ।

(२) तदानीं च संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तन्यूनैकमासिकः शेषकर्मणां च संख्येयसहस्रवार्षिकः ।

(३) तस्मादेव समयादारभ्य संज्वलनमायाया अवशिष्टावलिकां संज्वलनलोभे स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमय्य वेदयति ।

(४) संज्वलनलोभोदयप्रथमसमयात्प्रभृति समयोनावलिकाद्विकेन संज्वलनमायायाबद्धं दलिकं तावता कालेन संक्रमयति सर्वात्मना चोपशमयति ।

(५) तदानीमेवाऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनलोभत्रिकं युगपदुपशमयितुमारभते उपशमनाविधिश्च प्राग्वदवधेयः ।

(६) अश्वकर्णकरणाद्धा - संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेः प्रथमसमयादारभ्याऽश्वकर्णकरणाऽद्धायां वर्तमानः सन् पूर्वस्पर्धकेभ्यः प्रतिसमयं दलिकं गृहीत्वा तस्याऽत्यन्तनीरसतामापाद्याऽपूर्वस्पर्धकानि करोति। इदमत्र हृदयम्—इदं तावदनन्तानन्तपरमाणुनिष्पन्नान् स्कन्धान् जीवः कर्मतया गृह्णाति, तत्रैकस्मिन्परमाणौ यः सर्वजघन्यो रसः, सोऽपि सर्वजीवानन्तगुणान् रसाऽविभागान् धारयति। तदुपेतकार्मणपरमाणूनां समुदायः प्रथमा वर्गणा, ततः क्रमेणैकोत्तररसविभागवृद्ध्या सिद्धानन्तभागाऽभव्याऽनन्तगुणा वर्गणा वाच्याः, तावतीनां वर्गणानां समुदायः स्पर्धकमुच्यते। इत ऊर्ध्वमेकोत्तरवृद्ध्या वर्धमानरसेन युक्तः कार्मणपरमाणुर्न लभ्यते। किन्तु सर्वजीवाऽनन्तगुणैरेव रसाविभागैरधिकैः,ततः प्राक्तनक्रमेण द्वितीयस्पर्धकमारभ्यते, एवं तावद्वाच्यानि, यावदनन्तानि स्पर्धकानि। एतेभ्यः सत्तागतस्पर्धकेभ्य इदानीं प्रथमादिवर्गणा गृहीत्वा विशुद्धिप्रकर्षवशात्तत्कालबध्यमानसंज्वलनलोभस्पर्धकवदनन्तगुणहीनरसाः कृत्वा पूर्ववत्स्पर्धकानि करोति। आसंसारं हि परिभ्रमता न कदाचनाऽपि बन्धमाश्रित्यैतादृशानि स्पर्धकानि कृतानीत्यपूर्वाण्युच्यन्त इति। तत एवमपूर्वस्पर्धकानि कुर्वतः संख्येयेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्स्वश्वकर्णकरणाऽद्धा परिसमाप्ता भवति. उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"अस्संकनकरणद्धाते वट्टमाणो लोभसंजलणाए पुव्वफड्डगेहिंतो समते समते अपुव्वाणि फड्डगाणि करेति अपुव्वाणि नाम बंधरूपेण व उप्पातियाणि ण होंति, विसोहिए अन्नहा फड्डगस्स रुपेणेव

णिवत्तियाणि तत्तो संखेज्जेसु ठ्ठितिणं बंधेसु गतेसु अस्सकन्नकरणद्धा गता भवति " इति । कषायप्राभृतचूर्णौ त्वश्वकर्णकरणाऽद्धायामपूर्वस्पर्धकप्रक्रिया नोक्ता, तथैव प्रथमस्थितेः प्रथमाऽर्धाऽश्वकर्णकरणाद्धासंज्ञा इत्यपि नोक्तम्, किन्तु यावत्प्रथमाऽधस्तावत्स्पर्धकमत्त्वमित्येवोक्तम् । तथा च तद्ग्रन्थः"**तदो संखेज्जेहिं ठ्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं तिस्से लोभस्स पढमठ्ठिदिए अद्धं गदं ताधे पुण फद्दयगदं संतकम्मं ।**" इति । प्रथमस्थितिमत्कप्रथमार्धप्रमाणामश्वकर्णकरणाद्धां व्यतिक्रम्य किट्टिकरणाऽद्धां प्रविशति ।

किट्टीकरणाद्धा--"**बिइयतिभागोत्थ**" इत्यादि, लोभवेदकाऽद्धाया द्वितीयस्त्रिविभागः किट्टिकरणाद्धासंज्ञ इत्युक्तः,तत्र किट्टिकरणाऽद्धायाः प्रथमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो दिनपृथक्त्वप्रमाणः शेषकर्मणां पुनः● वर्षपृथक्त्वप्रमाणः उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**- "**इयाणिं किट्टिकरणद्धा-तिसे पढमसमते लोभसंजलणाए ठ्ठितिबंधो दिवसपुहुत्तं सेसाण कम्माणं ठ्ठितिबंधो वाससहस्सपुहुत्तं**"इति । टीकाकारैरपि तथैवोक्तम् । **कषायप्राभृतचूर्णि**-कारैस्तु प्रथमस्थितेः प्रथमाऽद्धान्त उपयुक्तस्थितिबन्ध उक्तः,तथा च तद्ग्रथः-"**तदो अस्स चरिमसमए लोहसंजलणस्स ठ्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं ठ्ठिदिबंधो वस्ससहस्सपुधत्त★**"इति । किट्टिकरणाऽद्धायाः प्रथमसमयात्प्रभृति सत्तागतेभ्यः पूर्वस्पर्धकेभ्योऽपूर्वस्पर्धकेभ्यश्च दलिकं गृहीत्वा प्रतिसमयमनन्ता किट्टीः करोति ।

卐 किट्टयो नाम पूर्वस्पर्धकेभ्योऽपूर्वस्पर्धकेभ्यश्च वर्गणा गृहीत्वा तासामनन्तगुणहीनरसतामापाद्यैकोत्तरवृद्धित्यागेन बृहदन्तरालतया व्यवस्थापनं यथा स्पर्धकेषु यासामेव वर्गणानामसत्कल्पनयाऽनुभागविभागाः शतमेकोत्तरं द्वयुत्तरमासीत् (१००-१०१-१०२), तासामेवाऽनुभागविभागा पञ्च पञ्चदश पञ्चविंशति भवन्तीति (५-१५-२५) । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**--"**किट्टी णाम अणुभागबंधलक्खणस्वरूपविपर्यासेन अणुभागरचना ।**"**इति** । अपूर्वस्पर्धकप्रक्रियायामत्यन्तनीरसतामापाद्य स्पर्धकेष्वेकोत्तरवृद्धाद्या वर्गणा व्यवस्थापयन्ति । अत्र त्वत्यन्तनीरसतामपाद्य स्पर्धकेषु वर्गणा एकोत्तरवृद्धिपरित्यागेन व्यवस्थापयन्ति ।

● अत्र पृथक्त्वशब्दस्य बहुत्व वाचित्वेन प्रभूतानि वर्षसहस्राणि स्थितिबन्धो भवतीति व्याख्येयम् । तेनोत्तरत्र स्थितिबन्धः प्रभूतवर्षसहस्राणि संगच्छते ।

★लब्धिसारेऽपि तथैव प्रतिपादितं तद्यथा—

पढमट्ठिदिअद्धंते लोहस्स य होदि दिणपुधत्तं तु ।
वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ट्ठिदिबंधो ॥ (लब्धिसार २८२)

卐 कृष्टिशब्दस्याऽर्थं उच्यते, कर्शनं कृष्टिः कर्मपरमाणुशक्तेस्तनूकरणामत्यर्थः 'कृश तनूकरणे" इति धात्वर्थमाश्रित्य प्रतिपादनात् । अथवा कृष्यते तनूक्रियत इति कृष्टिः प्रतिसमयं पूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणाशक्तेरनन्तगुणहीनशक्तिवर्गणाकृष्टिरिति भावार्थः । इति लब्धिसारः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टीनां प्रमाणम्—'एगफड्डगवग्गण अणंतभागो' त्ति, एकस्मिन्ननुभागस्पर्धके या अनन्ता वर्गणास्तासामनन्ततमे भागे यावत्यो वर्गणास्तावतीः किट्टीः प्रथमसमये करोति। ताश्चाऽनन्ताः। ननु ताः किट्टयः किमपूर्वस्पर्धकसत्कसर्वजघन्यमनुभागस्पर्धकाऽनुभागेन सदृशाः करोत्युत ततोऽपि हीनाः? उच्यते, ततोऽपि हीनाः, तदेवाऽऽह 'हेट्ठा' त्ति, 卐 यत्सर्वजघन्यमनुभागस्पर्धकं तस्याऽधस्तात्करोति,ततोऽप्यनन्तगुणहीनरसा करोतीत्यर्थः ।

किट्टिकरणाऽद्धायां यावतीः किट्टीः करोति तत्प्रदिदर्शयिषुराह—

अणुसमयं सेढीए असंखगुणहाणि जा अपुव्वाओ ।
तव्विवरियं जहन्नगाइ विसेसूणं ॥५०॥

अनुसमयं श्रेण्याऽसंख्यगुणहानिर्या अपूर्वाः ।
तद्विपरीतं दलिकं जघन्यादितो विशेषोनम् ॥ ५० ॥ इति पदसंस्कारः

'अनुसमयं' इति समये समय इति वीप्साम् "योग्यतावीप्स०" इति सिद्धहेम(३-१-४०) सूत्रेणाऽव्ययीभावसमासः, प्रतिसमयमपूर्वा या नवा नवाः किट्टीः करोति, ताः प्रतिसमयमसंख्येयगुणहानियुक्तश्रेणिभाजो द्रष्टव्याः । नवत्वं चाऽत्र प्रतिसमयं यथोत्तरमनन्तगुणहीनरसत्वापादनेन द्रष्टव्यम् । भावार्थः पुनरयम्—किट्टिकरणाऽद्धाया प्रथमसमये प्रभूताः किट्टीः करोति, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणहीनाः करोति, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणहीनाः । एवं क्रमेण तावद् वक्तव्यम्,यावत्किट्टिकरणाऽद्धायाश्चरमसमयः ।

अथ किट्टिगतं दलिकमभिधीयते 'तव्विवरियं' त्ति, दलिकं तद्विपरितं किट्टिसंख्याविपरितं द्रष्टव्यम् । तथाहि प्रथमसमये सकलकिट्टिगतं दलिकं सर्वस्तोकं ततो द्वितीयसमये सकलकिट्टिगतं दलिकमसंख्येयगुणम्,ततोऽपि तृतीयसमये सकलकिट्टिगतं दलिकमसंख्येयगुणम् । एवं तावद्वक्तव्यं यावत्किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः ।

संप्रति प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां परस्परं प्रदेशप्रमाणं निरूपणार्थमाह—'जहन्नगाइ विसेसूणं'त्ति, जघन्यकादिविशेषोनं जघन्यमादिं कृत्वा परतः क्रमेण प्रतिकिट्टि विशेषोनं विशेषोनं प्रदेशाग्रमभिधातव्यम् । इदमत्र हृदयम्—प्रथमसमयकृतास्वनन्तासु किट्टिषु मध्ये या सर्व-

---

卐 अस्माद् (संज्वलनलोभसत्त्वद्रव्यात्) प्रथमसमये द्रव्यमपकृष्य संज्वलनलोभजघन्यस्पर्धकलतासमानादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽधस्तादनंतगुणहीनाऽविभागप्रतिच्छेदकतया एकस्पर्धकवर्गणाशलाकानन्तैकभागप्रमिता अनुभागसूक्ष्मकिट्टीः करोति । अन्तर्मुहूर्तकालनिर्वर्त्यमानाऽनुभागकण्डकघातं विनेदानीं प्रतिसमयं सर्वजघन्यशक्त्यनन्तैकभागप्रमितत्वेन कृष्टिघातं कर्तुं प्रारभत इत्यर्थः । (लब्धिसारः २८३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दाऽनुभागा किट्टिस्तस्यां दलिकं सर्वप्रभूतम्, ततस्तन्मध्यगत द्वितीयकिट्टावनन्तरेणाऽनन्तगुणाऽनुभागेनाऽधिकायां दलिकं विशेषहीनम्, ततोऽप्यनन्तरेणाऽनन्तगुणेनाऽनुभागेनाऽधिकायां तन्मध्यगततृतीयकिट्टौ विशेषहीनमेवमनन्तरानन्तरानन्तगुणाऽनुभागाऽधिकासु किट्टिषु विशेषहीनं तावदभिदध्याद् यावत्प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये सर्वोत्कृष्टकिट्टिरिति। अयं क्रमः सर्वेष्वपि समयेषु प्रत्येकस्मिन् किट्टिसमुदाये वाच्यः।

किट्टिगताऽनुभागमाश्रित्याऽल्पबहुत्वं मोहनीयस्य च स्थितिबन्धं निजिगदिषुराह—

अणुभागोणंतगुणो चाउम्मासाइ संखभागूणो।
मोहे दिवसपुहुत्तं किट्टिकरणाइसमयम्मि ॥५१॥

अनुभागोऽनन्तगुणश्चातुर्मासिकात् संख्येयभागोनः।
मोहस्य दिवसपृथक्त्वं किट्टीकरणादिसमये ॥५१॥ इति पदसंस्कारः

प्रथमसमयकृतासु किट्टिषु सामान्येनानुभागः सर्वप्रभूतःततो द्वितीयसमयकृतासु किट्टिषु सामस्त्येनाऽनन्तगुणहीनः,ततोऽपि तृतीयसमयकृतास्वनन्तगुणहीनः। एवं तावदभिधातव्यम्, यावत्किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः।

अथ विशेषतस्तत्समयकृतकिट्टिगताऽनुभागमाश्रित्याऽल्पबहुत्वमाह—"अणुभागोणंतगुणो" त्ति, प्रथमसमयकृतानां किट्टीनामनुभागो यथोत्तरमनन्तगुणो वाच्यः। तद्यथा—प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वमन्दाऽनुभागा किट्टिः, तस्याः सर्वस्तोकोऽनुभागः, ततो द्वितीयकिट्टेरनन्तगुणोऽनुभागः,ततोऽपि तृतीयकिट्टेरनुभागोऽनन्तगुणः,एवं तावद्वक्तव्यम्, यावत्प्रथमसमये कृतानां किट्टीनां मध्ये सर्वोत्कृष्टाऽनुभागा किट्टिरिति। एवं द्वितीयादिष्वपि समयेषु कृतानां किट्टीनामनुभागमाश्रित्याऽल्पबहुत्वमभिधातव्यम्। इदमत्र हृदयम्-तत्तत्समयकृताः किट्टयः क्रमशः स्थापयितव्याः। किमुक्तं भवति ? प्रथमसमये कृतासु किट्टिषु सर्वपूर्वतोऽधिकाऽनुभागाः किट्टयः तावत्स्थापयितव्याः, यावत्सर्वोत्कृष्टकिट्टिः,एवं द्वितीयसमयकृतकिट्टयः स्थापयितव्याः। स्थाप्यमानानां किट्टीनामनुभागः पूर्वपूर्वतोऽनन्तगुणो वाच्यः, दलिकं तु विशेषहीनं विशेषहीनं वाच्यम्,तच्च प्राग्भावितमेव। तथा प्रथमसमये कृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वमन्दाऽनुभागा किट्टिः, तस्याः सर्वप्रभूतोऽनुभागः, ततो द्वितीयसमये कृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वोत्कृष्टाऽनुभागा किट्टिः,तस्या अप्यनन्तगुणहीनः। ततो द्वितीयसमयकृतसर्वमन्दाऽनुभागकिट्टेरनुभागोऽनन्तगुणहीनः, ततस्तृतीयसमयकृतसर्वोत्कृष्टानुभागकिट्टेरनन्तगुणहीनोऽनुभागः। एवं किट्टिकरणाऽद्धायाश्चरमसमये कृतानां किट्टीनां मध्ये सर्वमन्दाऽनुभागकिट्टेरनन्तगुणहीनोऽनुभागो वक्तव्यः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु प्रथमसमयकृतसकलकिट्टिगतं दलिकं स्तोकम्, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं दलिकं गृहीत्वा किट्टीः करोतीत्यादि यदुक्तम्, तत्र द्वितीयादिसमयेषु किट्टयर्थं गृह्यमाणदलिकतो नवा नवाः किट्टीः करोति, तदा पूर्वकिट्टिष्वपि दलिकं प्रक्षिपति न वा इति चेद् ? उच्यते—कर्मप्रकृतिचूर्ण्यादौ न कश्चिद्विशेषोऽभिहितः, किन्तु 卐 कषायप्राभृतचूर्णौ इदमुक्तम् । तद्यथा—प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतदलिकतोऽसंख्येयगुणं दलिकं द्वितीयसमयकृतायां जघन्याऽनुभागकिट्टयां प्रक्षिपति, ततः परमुत्तरोत्तरकिट्टिषु विशेषहीनं दलिकं प्रक्षिपति, एवं तावद्वक्तव्यम्, यावदोघोत्कृष्टा किट्टिः । अत्रौघोत्कृष्टशब्देन द्वितीयसमयेऽपि प्रथमसमयसत्कोत्कृष्टानुभागां किट्टिं यावद्विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपतीति व्याख्येयम् । अन्यथा कषायप्राभृतचूर्णौ द्वितीयसमये तत्समयकृतामुत्कृष्टाऽनुभागां किट्टिं यावद्वक्तव्यं स्यादित्यस्माकं तात्पर्यव्याख्यानम् । तथा च तद्ग्रन्थः—★ **पढमसमए जहण्णियाए किट्टिए पदेसग्गं बहुअं, बिदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं। एवं जाव चरिमाए किट्टिए पदेसग्गं तं विसेसहीणं। बिदियसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । बिदियाए विसेसहीणं । एवं जाव ओघुक्कस्सियाए विसेसहीणं ।**" इति । परः शङ्कते—ननु प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतदलिकतो द्वितीयसमयकृतसर्वोत्कृष्टकिट्टयामसंख्येयगुणदलिकं भवतीति कर्मप्रकृतिचूर्णिकाराणामभिप्रायः, तथा च तद्ग्रन्थः—"**जा पढमसमयकयाणं किट्टीणं सव्वबहुपयेसा किट्टी सा बितियसमयकयाणं सव्वबहुपदेसातो किट्टितो असंखेज्जगुणहीणा एवं अणंतराणंतरेण णेयव्वं**" इति । पूर्वोक्तनिक्षेपक्रमे कथं कर्मप्रकृत्यक्षराणि संगच्छन्ते ? इदमुक्तं भवति—प्रथमसमयकृतकिट्टिषु प्राग् यद्दलिकमासीत्पुनर्द्वितीयसमयेऽपि किट्टीः कुर्वंस्तत्र नूतनदलिकं प्रक्षिपति, द्वितीयसमये क्रियमाणकिट्टिषु तु केवलमभिनवदलिकं भवत्यतो द्वितीयसमयकृतसर्वोत्कृष्टकिट्टिगतदलिकं प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतदलिकतोऽसंख्येयगुणं कथं सिध्यति ? अत्रोत्तरम्—उपर्युक्ताऽल्पबहुत्वे प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टया दलिकं द्वितीयसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतदलिकतोऽसंख्येयगुणहीनं यदुक्तम्, तद् द्वितीयसमये प्रथमसमयकृतकिट्टयां निक्षेपविवक्षामनाश्रित्योक्तम् । अयं भावः—प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्ट—

卐 टिप्पणी— किट्टिकरणाऽद्धायाः सर्वसमयेषु कृताः किट्टयो जघन्याऽनुभागादारभ्य क्रमश उत्कृष्टाऽनुभागपर्यन्तं स्थाप्यते तर्हि पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरकिट्टयोऽनुभागमाश्रित्याऽनन्तगुणहीना दलिकमाश्रित्य विशेषहीना गोपुच्छाकारो भवन्तीति लब्धिसार उक्तम्, तच्च तेषां मतानुसारेण, ततो दलिकनिक्षेपविधिर्ज्ञातिव्यः ।

★ जयधवलायां तु स्पर्धकेष्वपि निक्षेपोऽभिहितः, तथाहि "तदो जहण्णफद्दयादिवग्गणाए अणंतगुणहीणं ततो विसेसहीणं अणंतभागेण त्ति णेदव्वं जाव उक्कस्सफद्दयादो जहण्णाइच्छावणामेत्तफद्दयाणि हेट्ठा ओसरिदूण ट्ठिदतदित्थफद्दयस्स उक्कस्सिया वग्गणा त्ति ।" इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशविशिष्टकिट्टियां ये प्रदेशा आसन्, ते द्वितीयसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतप्रदेशतोऽसंख्येयगुणहीना अर्थात् प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगता ये प्रदेशा आसन्, ततोऽसंख्येयगुणप्रदेशा द्वितीयसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टायां किट्टौ भवन्तीत्यर्थः। कर्मप्रकृतिटीकाकारैः प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतदलिकतो द्वितीयसमयकृतसर्वजघन्यप्रदेशविशिष्टकिट्टिगतदलमसंख्येयगुणमिति यदुक्तं तदप्यनया नीत्या संगच्छते। विशेषस्तु क्षपकश्रेण्यां विवृत्तमस्माभिस्तथा मलयगिरिटीकायामपि प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वबहुप्रदेशा किट्टिः, सा स्तोकप्रदेशा ततो द्वितीयसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वाऽल्पप्रदेशा किट्टिः साऽसंख्येयगुणप्रदेशा, एवं तावद्वाच्यम्, यावच्चरमसमयः। एवमुपाध्यायपुङ्गवैरप्युक्तम्।

'मोहे' मोहनीये संज्वलनानां चातुर्मासिकात्स्थितिबन्धादारभ्याऽन्योऽन्यः स्थितिबन्धः संख्येयभागेनोनोऽन्तरस्तावद्वक्तव्यः, यावत्किट्टिकरणाऽद्धायाः प्रथमसमये दिवसपृथक्त्वप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति। स च प्राग्यथास्थानमुक्तः। किट्टिकरणाऽद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु यद्भवति, तदाह—

भिन्नमुहुत्तो संखेज्जेसु य घाईण दिणपुहुत्तं तु।
वाससहस्सपुहुत्तं अंतो दिवसस्स अंते सिं॥ ५२॥
वाससहस्सपुहुत्ता बिवरिस अंतो अघाइकम्माणं।
लोभस्स अणुवसंतं किट्टिओ जं च पुव्वुत्तं॥ ५३॥

भिन्नमुहूर्त्तः संख्येयेषु च घातिनीनां दिनपृथक्त्वं ततः।
वर्षसहस्रपृथक्त्वमन्तर्दिवसस्यान्ते तेषाम् ॥ ५२॥
वर्षसहस्रपृथक्त्वाद् द्विवर्षस्यान्तोऽघातिकर्मणाम्।
लोभस्यानुपशान्तं किट्टय यच्च पूर्वोक्तम् ॥ ५३॥ इति पदसंस्कारः

"भिन्नमुहुत्तो" इत्यादि, अस्याः किट्टिकरणाऽद्धायाः संख्यातेषु भागेषु व्रजितेषु सत्सु संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो भिन्नमुहूर्तप्रमाणो भवति, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवतीत्यर्थः, त्रयाणां घातिकर्मणां दिनपृथक्त्वप्रमाणः, नामगोत्रवेदनीयानां च वर्षसहस्रपृथक्त्वम्, प्रभूतवर्षसहस्रप्रमाणः, किट्टिकरणाऽद्धाया द्विचरमस्थितिबन्धं यावत्स्थितिबन्धो नामगोत्रवेदनीयानां प्रभूतवर्षसहस्रप्रमाणो भवति, पृथक्त्वशब्दस्याऽत्र बहुत्ववाचित्वात्। किट्टिकरणाद्धायाः (बादरसंज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेः) समयोनावलिकात्रिके शेषेऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणयोर्दलिकं संज्वलनलोभे न संक्रमयति, तस्य पतद्ग्रहतानिवृत्तेः। किन्तु स्वस्थान एव स्थितमुपशमं नीयते, किट्टि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणद्धाया आवलिकाप्रत्यावलिकालक्षणद्वयाऽऽवलिकाशेषायां पुनः बादरसंज्वलनलोभस्याऽऽगालो व्यवच्छिद्यते । उदीरणा तु प्रथमस्थितेर्द्विचरमावलिकातस्तावत्प्रवर्तते,यावदावलिका शेषा भवति । उदीरणावलिकाचरमसमय एते पदार्था भवन्ति—

(१) अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकचरमसमयः=नवमगुणस्थानकस्य चरमसमय इत्यर्थः।

(२) बादरसंज्वलनलोभोदयोदीरणायाश्चरमसमयः ।

(३) संज्वलनलोभसत्कचरमस्थिति बन्धः ।

(४) संज्वलनलोभस्य'अन्ते' किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमये स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्तथा 'सिं' त्ति तेषां घातिकर्मणामन्तर्दिवसस्याऽन्तरहोरात्रस्य स्थितिबन्धः, अघातिनां तु नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिबन्धादन्यो हीनो हीनतरः स्थितिबन्धो भवंस्तस्मिन् किट्टिकरणाद्धाचरमसमये 'द्विवर्षस्य' द्वयोर्वर्षयोरन्तर्मध्ये भवति

ततोऽनन्तरसमये किट्टिकरणाद्धाया आवलिकाकाले शेषेऽमी पदार्थाः प्रवर्तन्ते—

(१) संज्वलनलोभस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते ।

(२) बादरसंज्लनलोभस्योदयोदीरणयोर्व्यवच्छेदः ।

(३) अनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकस्य व्यवच्छेदः ।

(४) अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणौ सर्वथोपशान्तौ ।

(५) 'किट्टिओ'त्ति, किट्टिकृतं द्वितीयस्थितिगतं यद्दलिकं तथा'जं च पुव्वत्तं'यत्पूर्वोक्तं समयोनावलिकाद्विकेन बद्धमभिनवदलिकं यच्च प्रथमस्थितेरुदयावलिकारूपैकाऽऽवलिकागतदलिकं शेषीभूतमेतत्सर्वं 'लोभस्स' त्ति,'लोभस्य' संज्वलनलोभस्याऽनुपशान्तं वर्तते, शेषं पुनः सर्वात्मनोपशान्तम् ।

प्रथमस्थितेर्बादरसंज्वलनलोभस्य शेषीभूतामावलिकामात्रां स्थितिं सूक्ष्मकिट्टिमनुभवन् स्तिबुकसङ्क्रमेण च संक्रमय्य वेदयति तथा समयोनावलिकाद्वयेन संज्वलनलोभस्य बद्धं दलिकमपि सूक्ष्मसंज्वलनलोभमनुभवन् किट्टीश्चोपशमयंस्तावता कालेन संज्वलनक्रोधोक्तप्रकारेणोपशमयति।

अथ सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्य वक्तव्यतां व्याजिहीर्षुराह—

सेसद्धं तणुरागो तावइया किट्टिऊ य पढमठिइं ।
वज्जिय असंखभागं हेट्ठुवरिमुदीरए सेसा ॥ ५४ ॥

शेषाद्धां तनुरागस्तावतीं किट्टितश्च प्रथमस्थितिम् ।
वर्जयित्वाऽसंख्येयभागमधश्चोपर्युदीरयति शेषाः । ॥५४॥ इति पदसंस्कारः

"सेसद्धं"त्ति,शेषाद्धां शेषकालं तृतीये विभाग इत्यर्थः। तनुरागः सूक्ष्मसंपरायो भवति, स च बादरसंज्वलनलोभोदयविच्छेदसमय एव प्राक्कृताः कियतीश्चित्किट्टीर्द्वितीयस्थितेः सकाशात्समाकृष्य तावतीं सूक्ष्मसंपरायाद्धातुल्यां संज्वलनमानोक्तप्रकारेण प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च सूक्ष्मसंपरायप्रथमस्थितिश्च बादरसंज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितितः किञ्चिन्न्यूना तदर्धप्रमाणा क्रियते। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदि तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसंपराइयस्स पढमट्ठिदि दुभागो थोऊणाओ ।"**इति।

अत्र कषायप्राभृतचूर्णिकाराणामिदं तात्पर्यम्– लोभवेदकाद्धायास्त्रयो विभागाः क्रियन्ते।(१) प्रथमो विभागः केवलस्पर्धकसत्त्वकालः,अश्वकर्णकरणाऽद्धा (२) द्वितीयो विभागःकिट्टिकरणाऽद्धा (३) तृतीयो विभागः किट्टिवेदनाऽद्धा। तत्र कालाऽपेक्षया प्रभूतः प्रथमो विभागः,ततो विशेषहीनो द्वितीयविभागस्ततोऽपि विशेषहीनस्तृतीयो विभागः। प्रथमद्वितीयविभागाद् द्वयाद्धातो बादरसंज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितिरेकावलिकयाऽधिका। सूक्ष्मलोभस्य प्रथमस्थितिश्च द्वितीयविभागलक्षणकिट्टिवेदकाऽद्धाप्रमाणा भवति, न न्यूनाऽधिका,वक्ष्यते चैतत्सर्वमल्पबहुत्वाऽधिकारे तद्यथा—**"उवसामगस्स सुहुमसंपरायद्धा किट्टिणमुवसामणद्धासुहुमसंपराइयस्स पढमट्ठिदि च तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहिया। उवसमगस्स किट्टिकरणद्धा विसेसाहिया पडिवदमाणगस्स बादरसंपराइयस्स लोभवेदगद्धा संखेज्जगुणा, तस्सेव लोहस्स तिविहस्सवि तुल्लो गुणसेढिनिक्खेवो विसेसाहियो उवसामगस्स बादरसंपराइयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया। तस्सेव पढमट्ठिदि विसेसाहिया।** इति। उपर्युक्ताऽल्पबहुत्वस्येदं तात्पर्यम्–सूक्ष्मसंपरायऽद्धातः किट्टिकरणाद्धा विशेषाऽधिका, ततोऽपि श्रेणितः प्रतिपततो बादरसंपरायस्य लोभवेदकाद्धा संख्येयगुणा ततोऽपि श्रेणितः प्रतिपततो जीवस्य लोभत्रयस्य गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः,तत उपशमकस्योपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य जन्तोर्बादरसंपरायगुणस्थानके लोभवेदकाद्धा विशेषाऽधिका। अत्र किट्टिकरणाद्धातः श्रेणितः प्रतिपततो जन्तोर्बादरसंपरायकालस्य संख्यातगुणत्वेन संख्यातगुणस्य जघन्यतोऽपि द्विगुणत्वेन श्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य जन्तोर्बादरसंपरायकालो द्विगुणतोऽप्यधिको भवति। बादरसंपरायलोभवेदकाऽद्धाया द्वौ विभागौ क्रियेते, तत्रैकोऽऽश्वकर्णकरणाद्धा अन्यश्च किट्टिकरणाद्धेति कृत्वा प्रथमार्धोऽश्वकर्णकरणाद्धा द्वितीयकिट्टिकरणाद्धातो विशेषाऽधिको भवति। न च पूर्वं लोभवेदकाद्धाया द्वित्रिभागप्रमाणा प्रथमस्थितिः क्रियत इत्युक्तम् कथमेतत्संगच्छते ? यतो लोभवेदकाऽद्धाया द्वित्रिभागतः किञ्चिदधिकः केवलो बादरलोभवेदककालः प्रथमस्थितिस्तु ततोऽप्यावलिकाऽधिकेति वाच्यम्, पूर्वकथनस्य सामान्यत्वेन विरोधाऽभावात्। अयं भावः–अनिवृत्तिकरणवक्तव्यतायां लोभवेद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काऽद्धायाः कालतः सदृशस्त्रीन् विभागान् कृत्वा द्वित्रिभागप्रमाणा प्रथमस्थितिः क्रियत इति नाऽभ्युपगन्तव्यम्, किन्तु लोभवेदकाऽद्धायां मुख्यतः त्रीणि कार्याणि भवन्ति तदपेक्षया त्रयो विभागाः क्रियन्ते, न कालाऽपेक्षया सदृशाः। तत्र विषमेभ्यः त्रिभ्यो भागेभ्यो द्वित्रिभागे लोभस्य प्रथमस्थितिः कर्तव्या। यद्वा त्रयाणामश्वकर्णकरणाऽद्धाकिट्टिकरणाऽद्धाकिट्टिवेदनाऽद्धानां परस्परं किञ्चिन्न्यूनाधिक्यं भवति, तेन तद्विवक्षामनाश्रित्य ग्रन्थकारैः **'बितिभाग'**इत्याद्युक्तम्।

किट्टिवेदनविधिः—"वज्जिय"इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये सत्तागतकिट्टीनामसंख्येयबहुभागमात्राः किट्टीर्वेदयति, तत्राऽपि याः किट्टयः किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयचरमसमयकृतास्ता वर्जयित्वाऽनुभवति। तत्राऽप्ययं विशेषः—सर्वोत्कृष्टाऽनुभागकिट्टेरारभ्य प्रथमसमयकृतसकलकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणाः किट्टीः सर्वमन्दानुभागकिट्टेश्चारभ्य चरमसमयकृतसकलकिट्टीनामसंख्येयभागप्रमाणाः किट्टीः वर्जयित्वा शेषकिट्टीरनुभवति। किमुक्तं भवति? प्रथमसमयकृतसर्वोत्कृष्टनुभागकिट्टेरारभ्य प्रथमसमयकृतकिट्टीनामुपरितनमसंख्येयभागं परित्यज्य शेषसर्वकिट्टिगतं कियच्चित्तथा चरमसमयकृतसर्वजघन्याऽनुभागकिट्टेरारभ्य चरमसमयकृतकिट्टीनामधस्तनाऽसंख्येयतमभागं विमुच्य शेषसर्वकिट्टिगतं दलं तथा द्वितीयादिद्विचरमसमयपर्यवसानसमयकृतसर्वकिट्टिगतदलमुदयेनानुभवति। उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**—"**जाओ अपढमसमयअचरिमेसु समएसु अपुव्वाओ कयाओ ताओ पढमसमते सव्वतो उदिन्नाओ। जाओ पढमसमते कयाओ तासिं अग्गगाओ असंखेज्जतिभागं मोत्तूणं, जातो य चरिमसमयकयाओ किट्टिओ तासिं च जहन्नगपभिइं असंखेज्जतिभागं मोत्तूणं जातो य चरिमसमयकया किट्टीतो तासिं च जहन्नगपभितिइं असंखेज्जतिभागं मोत्तूणं सेसाओ उदीरेति। पढमसमयकयाण उवरिं चरिमसमयकयाणं हेट्ठतो असंखेज्जतिभागं मोत्तूण उदीरेत्ति।** "इति। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्य द्वितीयादिसमयेषु यो विशेषो भवति, तमाविश्चिकीर्षुराह—

गेण्हंतो य मुयंतो असंखभागो य चरिमसमयम्मि।
उवसामेई बिईयट्ठिइं पि पुव्वं व सव्वद्धं ॥ ५५ ॥

गृह्णंश्च मुञ्चन्नसंख्येयभागं तु चरमसमयम्।
उपशमयति द्वितीयस्थितिमपि पूर्ववत्सर्वाद्धाम् ॥५५॥ इति पदसंस्कारः

किट्टिवेदनाऽद्धाया द्वितीयसमये उदयप्राप्तानां किट्टीनामुपरितनाऽसंख्येयभागं मुञ्चति, अधस्तादपूर्वं चाऽसंख्येयभागमनुभवितुं गृह्णाति। इदमत्र हृदयम्—प्रथमसमये उत्कृष्टाऽनुभागकिट्टेरारभ्याऽमुक्ताः किट्टीः सर्वजघन्यकिट्टेरारभ्याऽमुक्ताः किट्टीश्च वर्जयित्वा शेषाः किट्टय उदय आ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छन्ति द्वितीयसमय उत्कृष्टाऽनुभागाकिट्टेरारभ्य पूर्वतोऽधिकाः किट्टीस्तथा सर्वजघन्यानुभाग-किट्टेरारभ्य पूर्वतो न्यूनाः किट्टीर्वर्जयित्वा शेषा उदये वर्तन्ते । एवं तावद्वक्तव्यम्, यावत्सूक्ष्म-संपरायस्य चरमसमयः । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**—"**बितियसमते उदिन्नाणं असंखेज्ज-भागं मुयंति हेट्ठतो अपुव्वं असंखेज्जणो एवं जाव सुहुमरागचरिमसमतो** ।" इति । भावार्थः पुनरयम्—सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयकृतोपरितना यावत्यः किट्टयो मुच्यन्ते, ततो द्वितीयसमयेऽसंख्यातभागेनाऽधिका उपरितना विमुच्यन्तेऽधस्ताच्च सर्व-जघन्याऽनुभागकिट्टेरारभ्य यावत्यः किट्टयो मुक्तास्तद्गततीव्राऽनुभागकिट्टेरारभ्य द्वितीयसमये-ऽसंख्यातभागप्रमाणा अपूर्वाः किट्टीर्गृहीत्वोदयन्ति । इदमुक्तं भवति-द्वितीयसमये प्रथमसमयतः सर्वमन्दानुभागकिट्टेरारभ्याऽसंख्येयभागहीना मुच्यन्त उदयप्राप्ताः किट्टयो मुच्यन्त इति यदुप-र्युक्तम् , तस्य द्विधा व्याख्यानं भवितुमर्हति–(१) उदये तावतीः किट्टीर्न गृह्णाति, तावदनुभागाः किट्टय उदये न भवन्तीत्यर्थः । एवमुदीरणाकरणेनाऽपि ताः किट्टय उदये न भवन्तीति प्रथम-व्याख्यानम् । (२) सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमस्थितिं कुर्वंस्तत्सर्वनिषेकेषु सर्वकिट्टिगतदलं विरचयति । तत्र प्रथमसमये या वर्ज्यन्ते, ताः स्वरूपतो न वेदयति, अपि तु तासामनुभागमल्पीकृत्याऽभि-वर्ध्य वाऽनुभवति, रसस्य वृद्धिर्हानिर्वोदयसमये भवतीत्यपरार्थः 'वज्जिय' इति पदस्याऽर्थः स्व-रूपतऽननुभूय 'मुयंतो' इति पदस्याप्यर्थः स्वरूपतोऽननुभवन्निति कर्तव्यः ।

प्रथमाऽर्थे दोषापत्तिः-प्रथमाऽर्थे स्वीक्रियमाणे **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**—"**उदिन्नाणं असंखे-ज्जइभागं मुयंति**" त्ति, सूक्ष्मसंपरायद्वितीयसमये यदुक्तं तन्न घटते, उदयप्राप्तानां दलिकानां विपाकोदयतः प्रदेशोदयतो वा विनाशस्याऽवश्यंभावेन तद्वर्जनस्य वैफल्यप्रसंगात् । द्वितीयाऽर्थे दोषाऽऽपत्तिः-द्वितीयार्थे स्वीक्रियमाण उदयावलिकायां प्रविष्टानां किट्टीनामनुभागरूपवृद्धिर्हानिर्वा कथं भवेत् ? उदयावलिवर्जशेषसर्वाऽनुभाग उद्वर्तनाकरणेनाऽपवर्तनाकरणेन वा साध्यः । उक्तं च **कषायप्राभृते–सव्वे वि य अणुभागे ओकड्डदि जे ण आवलियपविट्ठे । उक्कड्डदि बंधसमे णिरूवक्कम होदि आवलिया ॥ १५९ ॥** इति ।

तच्चूर्णिः–उदयावलिपविट्ठे अणुभागे मोत्तूण सेसे सव्वे चेव अणुभागे ओकड्डदि एवं चेव उक्कड्डदि ।" इति । किञ्चाऽऽरोहकस्य किट्टिकरणाद्धा प्रथमसमयादारभ्य सूक्ष्मसंपरायचरमसमयपर्यन्तमुद्वर्तना न भवति । तथा चाऽत्र **कषायप्राभृतः- किट्टी करेदि णियमा ओवट्टतो ठिदी य अणुभागे । वड्ढंतो किटीए अकारगो होदि बोद्धव्वो ॥ १६४ ॥ इति ।**

तच्चूर्णिः–"उवसामगो पुण पढमसमय किट्टीकारगमादिं कादूण जाव चरिम-समयकसायो ताव ओकड्डगो ण पुण उक्कड्डगो । पडिवदमाणगो पुण पढमसमय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसाय पाहुडि ओकड्डगो वि उक्कड्डगो वि ।" इति । तथैव क्षपकश्रेण्यधिकारेऽपि "हंदि किट्टीकारगो किट्टीवेदगो वा ट्ठिदी अणुभागेण ण उक्कड्डदि त्ति"। इति 卐। अत्र द्वितीयार्थ एवाऽऽश्रीयते, उदयसमयगताऽनुभागस्य वृद्धेर्वा हानेर्वा संभवात् । उक्तं च कषायप्राभृते क्षपणाऽधिकारे–

"पच्छिम आवलियाए समयूणाए दु जे य अणुभागा
उक्कस्स हेट्ठिमा मज्झिमासु णियमा परिणमंति ॥ २२८ ॥" इति ।

तच्चूर्णि–"विहासा पच्छिम आवलिया" त्ति, का सण्णा? जा उदयावलिया सा पच्छिमावलिया तदो तिस्से उदयावलियाए उदयसमयं मोत्तूण सेसेसु समएसु जा संगहकिट्टी वेदिज्जमाणिया तिस्से अंतरकिट्टीओ सव्वाओ ताव धरिज्जन्ति जाव ण उदयं पविट्ठाओ त्ति । उदयं जाधे पविट्ठाओ ताधे चेव तिस्से संगहकिट्टीए अग्गकिट्टीमादिं कादूण उवरिं असंखेज्जदिभागो जहण्णियं किट्टीमादिं कादूण हेट्ठा असंखेज्जदिभागो च मज्झिमकिट्टीसु परिणमदि" इति ।

ननु द्वितीयार्थे स्वीक्रियमाणे पूर्वोक्तदोषसंभवात्कथमसौ आश्रीयते इति चेद्? उच्यते, यद्यप्युदयावलिकायामपवर्तनोद्वर्तना वा न भवति, तथाऽप्युद्वर्तनाकरणेनाऽपवर्तनाकरणेनोदयगतानुभागस्य वृद्धिर्वा हानिर्वा संभवति, तथास्वभावात्, सा च नोद्वर्तनाकरणाऽपवर्तनाकरणसाध्या इत्यर्थः ।

सूक्ष्मसंपरायाद्धाप्रथमसमये याः किट्टयः किट्टिकरणाद्धाप्रथमसमयकृतसकलकिट्टीनां सर्वोत्कृष्टकिट्टेरारभ्याऽग्रिमाऽसंख्येयभागप्रमाणायुक्ता आसन्, तद्गताऽधस्तनास्तदसंख्येयभागप्रमाणा अभिनवकिट्टयः पुनः सूक्ष्मसंपरायस्य द्वितीये समये मुच्यन्त उदये न भवन्तीत्यर्थः । एवं किट्टिकरणाऽद्धायाश्चरमसमयकृतसकलकिट्टीनां सर्वजघन्यकिट्टेरारभ्य तदुपरितन्योऽसंख्येयप्रमाणा अभिनवाः किट्टयः पुनः सूक्ष्मसंपरायस्य द्वितीयसमये मुच्यन्त उदये न भवन्तीत्यर्थः, एवं

卐 तथैव लब्धिसारेऽपि द्वितीयोऽर्थ आश्रितः, अक्षराणि त्वेवम्-सूक्ष्मकृष्टिकरणकालस्य प्रथमसमयकृतानां सूक्ष्मकृष्टीनां पल्याऽसंख्यातैकमात्रकृष्टयः स्वस्वरूपेण नोदयमागच्छन्ति शेषास्ते बहुभागाद्वितीयादिद्विचरमसमयपर्यन्तेषु समयेषु कृतकृष्टयश्चरमसमयकृतकृष्टीनां पल्याऽसंख्यातबहुभागमात्रकृष्टयश्च स्वशक्तियुक्ता एवोदयमागच्छन्ति । चरमसमयकृतकृष्टीनां पल्याऽसंख्यातैकभागमात्रकृष्टयस्तु स्वशक्तिरूपेण नोदयमागच्छन्ति । या उदयमनागताः प्रथमसमयकृतकृष्टीनां चरमकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैक भागप्रमिताः कृष्टयस्ताः स्वस्वरूपं परित्यज्य स्वशक्तेरनन्तगुणहीनशक्तिरूपतया परिणम्योदयमागच्छन्ति । याश्चाऽनुदयप्राप्ताश्चरमसमयकृतकृष्टीनां जघन्यकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैकभागप्रमाणाः कृष्टयस्ताश्चस्वस्वरूपं परित्यज्य स्वशक्तेरनन्तगुणशक्त्यात्मकतया परिणम्य मध्यमकृष्टिस्वरूपेणोदयमागच्छन्तीति तात्पर्यम् ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टिकरणाऽद्धायाश्चरमसमयकृतसकलकिट्टीनां सर्वजघन्यकिट्टेरारभ्य तदुपरितनाऽसंख्येयप्रमाणाः सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये या विमुच्यन्ते, तद्गता उपरितन्यस्तदसंख्येयभागमात्रा द्वितीयसमये पुनः गृह्यन्त उदय आगच्छन्तीत्यर्थः । प्रथमसमये यास्तीव्राऽनुभागा उदयाऽयोग्याः किट्टय आसन्, तासामनुभागस्य हानिर्जाता याश्च मन्दानुभागा उदयाऽयोग्याः किट्टय आसंस्तासां वृद्धिर्जाता । तत्राऽप्ययं विशेषः—प्रतिसमये विमुच्यमानकिट्टितो विशेषहीनाः किट्टय उदयार्थं गृह्यन्ते, अतः प्रतिसमयमुदयगताः किट्टयः पूर्वपूर्वसमयतो विशेषहीना लभ्यन्ते । एवं तावद्वक्तव्यम् , यावत्सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्य चरमसमयः ।

सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये वेद्यमानाः किट्टयः-सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये किट्टिकरणाऽद्धाप्रथमसमयकृता उदयाऽयोग्याः किट्टयः, असत्कल्पनया सर्वोत्कृष्टकिट्टेरारभ्य शततमकिट्टिपर्यन्तशतम् (१००) सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये किट्टिकरणाद्धाचरमसमयकृता उदयाऽयोग्याः किट्टयः, एवं सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमय ओघतः सर्वजघन्यकिट्टेरारभ्याऽसत्कल्पनयाऽशीतितमकिट्टिपर्यन्तं विद्यमाना अशीतिः ८० उदयाऽयोग्याः किट्टयः सर्वसंख्यायाऽशीत्युत्तरशतम् १८०, सूक्ष्मसंपरायस्य द्वितीयसमय उपर्युत्कृष्टरसा विंशतिः २० किट्टयः पूर्वतोऽधिका मुच्यन्ते । किमुक्तं भवति ? सूक्ष्मसंपरायद्वितीयसमये सर्वोत्कृष्टकिट्टेरारभ्य विंशत्यधिकशततमकिट्टिपर्यवसाना विंशत्यधिकशतं किट्टयो विमुच्यन्ते उदयायोग्या भवन्तीत्यर्थः, तथा सूक्ष्मसंपरायप्रथममुक्तकिट्टिभ्यः षोडशकिट्टीर्गृह्णाति, तेन सर्वजघन्यकिट्टेरारभ्य चतुःषष्टिः किट्टय उदयाऽयोग्या भवन्ति, अतः पूर्वसमयतोऽत्रोदयायोग्याश्चतस्रः किट्टयोऽधिका भवन्ति सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमयेऽशीत्यधिकशतं किट्टय उदयायोग्या आसन्, द्वितीयसमये चतुरशीत्यधिकशतमुदयायोग्याः किट्टयो भवन्ति । अतः पूर्वसमयत उत्तरसमये विशेषहीनाः किट्टय उदयमागच्छन्ति । एवं ग्रहणमोक्षौ कुर्वंस्तावद्वक्तव्यम्, यावत्सूक्ष्मसंपरायस्य चरमसमयः । सूक्ष्मसंपरायाऽद्धायाः प्रथमसमयात्प्रभृत्येते पदार्था युगपत्प्रवर्तन्ते ।

(१) द्वितीयस्थितितः किट्टीः समाकृष्य प्रथमस्थितिं कुर्वन्वेदयति ।

(२) बादरलोभस्याऽवशिष्टावलिकां किट्टिषु स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमय्याऽनुभवति ।

(३) समयोनावलिकाद्विकेन लोभस्याभिनवबद्धदलिकं तावता कालेनोपशमनाकरणेन सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानके सर्वथोपशमयति, संज्वलनलोभस्याऽन्यत्र सङ्क्रमाऽभावेन केवलयोपशमनया सर्वात्मनोपशमयति ।

(४) द्वितीयस्थितिगतसर्वकिट्टिगतमपि दलमसंख्येयगुणकारेण सूक्ष्मसंपरायाद्धाप्रथमसमयादारभ्योपशमयितुमुपक्रमते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"ताहे चेव सव्वासिं किट्टीणं पदेसग्गं उवसामेउं आढवेइ।" इति। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताहे चेव सव्वासु किट्टिसु पदेसग्गं उवसामेदि गुणसेढीए"। इति।

"सव्वद्धं" ति, सर्वाद्धां सकलामपि सूक्ष्मसंपरायाऽद्धां यावत्पूर्ववदुपशमयति।

सूक्ष्मसंपरायचरमसमय एते पदार्थाः प्रवर्तन्ते–(१) सर्वकिट्टिगतं दलं सर्वथोपशम्यते (२) ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामान्तर्मौहूर्तिकः स्थितिबन्धो नामगोत्रयोश्च षोडशमुहूर्तप्रमाणः, वेदनीयस्य च चतुर्विंशतिमुहूर्तमानः।

(३) सूक्ष्मलोभकिट्टेः प्रथमस्थितिमनुभूयाऽनन्तरसमय उपशान्तमोहगुणस्थानकं प्राप्नोति। तदानीं च सकलोऽपि लोभ उपशान्तो भवति। एवं तत्र सर्वं मोहनीयं सर्वथोपशान्तं प्राप्यते। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "सुहुमरागस्स नाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं अंतोमुहुत्तिगो ठितिबंधो, नामगोयाणं सोलसमुहुत्तिगो ठितिबंधो, वेयणिज्जस्स चउवीसमुहुत्तिगो ठितिबंधो से काले सव्वं मोहं उवसंतं भवति।" इति।

अथोपशान्तमोहगुणस्थानकं व्याचिख्यासुराह—

उवसंतद्धा भिन्नमुहुत्तो तीसे य संखतमतुल्ला।
गुणसेढी सव्वद्धं तुल्लाय पएसकालेहिं ॥५६॥
उवसंताय अकरणा संकमणा वट्टणा य दिट्ठितिगे।

उपशान्ताद्धा भिन्नमुहूर्तं तस्याश्च संख्येयतमतुल्या।
गुणश्रेणिः सर्वाद्धां तुल्याश्च प्रदेशकालाभ्याम् ॥५६॥
उपशान्ताश्चाकरणाः संक्रमोद्वर्तने च दृष्टित्रिके। इति पदसंस्कारः

"उवसंतद्धा" त्ति, उपशान्तमोहगुणस्थानककालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः। तत्र चोपशान्ताद्धायां तत्संख्येयतमभागमात्रां मोहायुर्वर्जषट्कर्मसत्कानां सत्तासम्भविनां सर्वोत्तरप्रकृतीनां गुणश्रेणिमारचयति, साऽपि च 'सव्वद्धं' ति, सर्वाद्धां सकलमप्युपशान्तमोहगुणस्थानककालं यावत्प्रदेशाऽपेक्षया कालाऽपेक्षया च तुल्या विरच्यते। अयं भावः–सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्य चरमसमयं यावद् गुणश्रेणिर्गलिताऽवशेषाऽऽसीत्, इतः प्रभृत्युपशान्तमोहगुणस्थानकस्य संख्येयभागमात्रा कालाऽपेक्षया प्रदेशाऽपेक्षया चाऽवस्थिता भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "उवसंतद्धाते संखिज्जतिभागतुल्लं गुणसेढिं करेति सव्वं उवसंतद्धं अवट्ठितो गुणसेढिकालो "सव्वद्धं तुल्लाय पदेसकालेहिं" ति पदेसग्गेण वि कालेण वि तुल्लो।" इति।

भावार्थः पुनरयम्—उपशान्तमोहगुणस्थानप्रथमसमये गुणश्रेण्यर्थं यावद्दलं गृहीत्वोपशान्तमोह-

गुणस्थानकसंख्येयतमभागप्रमाण उदयसमयाद्यावत्यायामेऽसंख्येयगुणकारेण निक्षिपति, तद्द्वितीयसमयेऽवस्थितपरिणामात्तावदेव दलमादायोदयसमयात्तावत्येवाऽऽयामेऽसंख्येयगुणकारेण प्रक्षिपति, एवं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये तावदेव दलं गृहीत्वा तावत्येवाऽऽयामे निक्षिपति, उपशान्तमोहगुणस्थानकपूर्वपूर्वसमयेषु क्षीणेषु सत्सु गुणश्रेणिशिर उपर्युपरि वर्धत इत्यर्थः। तेनोपशान्तमोहगुणस्थानकपर्यन्तं गुणश्रेणिः कालाऽपेक्षया दलाऽपेक्षया चाऽवस्थिता भवति, अवस्थितपरिणामरूपहेतोरेकरूपत्वात्। कथमेतदवगन्तव्यमिति चेद्? उच्यते-उपशान्ताऽद्धायां स्थितोऽवस्थितपरिणामो भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ **"सव्वं कालं सव्वं उवसतद्धं अवट्ठितो परिणामो भवति"** इति। न चोपशान्तमोहगुणस्थानके वर्तमानो जन्तुरवस्थितपरिणामः कथं भवतीति वाच्यम्. यतो मोहनीयकर्मण उदयेन परिणामस्य संक्लिष्टत्वं वा विशुद्धत्वं वा भवति, अत्र तु मोहनीयकर्मणः सर्वथोदयाऽभावेनाऽवस्थिता एव परिणामा विद्यन्ते। सूक्ष्मसंपरायचरमसमये गुणश्रेण्यर्थं यावद्दलं गृह्णाति, ततोऽसंख्येयगुणमुपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमये गुणश्रेण्यर्थं गृह्णाति. यतश्चारित्रमोहनीयोपशमनातो विशुद्धेराधिक्येनोपशान्तमोहगुणस्थानके दलिकाऽपेक्षया निर्जराऽसंख्येयगुणा भवति, कषायोदयाभावजघन्ययथाख्यातचारित्रमप्यस्मिन्गुणस्थानके जन्तुरवाप्नोति।

उत्कृष्टप्रदेशोदय :— यदोपशान्तमोहगुणस्थानकसमयाननुभवंस्जन्तुस्तद्गुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशिरोनिषेकमुदयेऽवाप्नोति, तदा स ज्ञानावरणादीनामुत्कृष्टप्रदेशोदयमनुभवति। न चाऽयोगिगुणस्थानकचरमसमय उत्कृष्टप्रदेशोदयसंभवादत्रोत्कृष्टप्रदेशोदयः कथमुच्यते, इति वाच्यम्, उपशमश्रेण्यपेक्षयात्रोत्कृष्टप्रदेशोदयस्योक्तत्वात्। ननूपशमश्रेण्यामत्रोत्कृष्टप्रदेशोदयो भवतीति कथमेतदवगन्तव्यमिति चेद्? उच्यते—उपशान्तमोहगुणस्थानकस्य प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिनिक्षेपस्य चरमनिषेकेण प्राप्यमाणं यद्दलं यच्च द्वितीयसमयकृतगुणश्रेणिनिक्षेपस्य द्विचरमनिषेकेण प्राप्यमाणं भवति तथा यत्तृतीयसमयकृतगुणश्रेणिनिक्षेपस्य त्रिचरमनिषेकेण प्राप्यमाणमेवं तावद्वक्तव्यं यावदुदयसमयकृतगुणश्रेणिनिक्षेपस्य प्रथमनिषेकेण प्राप्यमाणम्। एतत्सर्वं दलं तस्मिन्नुदयसमये संगृहीतं भवति, अत उपशान्तमोहगुणस्थानके गुणश्रेण्यर्थमेकसमयेन यावद्दलमुत्किरति, तावद्दलं गुणश्रेण्या प्राप्तं तथा सत्तागतमन्यद्गोपुच्छाकारेण पूर्वं सत्त्वमासीत्, एतत्सर्वदलं तस्मिन्नुदयसमय उदेतीति कृत्वोत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति। न च प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनसमयेष्वपि गुणश्रेण्यर्थमेकसमयेन यावद्दलमुत्किरति तावद्दलं संभवति, ततः कथं प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षसमय एवोत्कृष्टप्रदेशोदय उच्यत इति वाच्यम्, उपरितनसमयेषु गुणश्रेण्या प्राप्यमाणदलिकस्य समानत्वेऽपि प्रथमसमय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतगुणश्रेणिशीर्षसमये यत्सत्तागतगोपुच्छाकारदलिकं तत उत्तरोत्तरसमये सत्तागतगोपुच्छाकारदलिकस्य विशेषहीनत्वेन तदानीमुदयमानदलिकस्य न्यूनत्वसंभवात् । न चैवमपूर्वकरणप्रथमादिसमयकृतगलिताऽवशेषगुणश्रेणिशीर्षसमय उदयमान उत्कृष्टप्रदेशोदयः कथं न भवति, ? यतो गलिताऽवशेषगुणश्रेणिशीर्षेऽपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्योपशान्तमोहगुणस्थानकेऽपि दलं प्रक्षिप्यत इति वाच्यम्, सूक्ष्मसंपरायगुणश्रेणिचरमसमयपर्यन्तनिक्षिप्तप्राक्तनगुणश्रेणिसर्वदलिकतोऽप्युपशान्तमोहगुणस्थानकस्य विशुद्धिमाहात्म्येन तद्गुणस्थानकप्रथमसमये गुणश्रेण्यर्थं गृह्यमाणदलिकस्याऽसंख्येयगुणत्वेन गलिताऽवशेषगुणश्रेणिशीर्षे उदयमान उत्कृष्टप्रदेशोदयाऽसंभवात् ।

ननु सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकचरमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षसमय उपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षतोऽर्वाक् कथं प्राप्यत इति चेद् ? उच्यते— अल्पबहुत्वाऽधिकारे वक्ष्यते सूक्ष्मसंपरायचरमसमयकृतगुणश्रेण्यायामत उपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेण्यायामः संख्येयगुणः, तत्राऽक्षराणि त्वेवम्— "**चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो त चेव गुणसेढिसीसयं ति भण्णदि । उवसंतकसायस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो ।**" इति । इत्थमुपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेण्यायामतः संख्येयगुणहीनः सूक्ष्मसंपरायचरमसमयकृतगुणश्रेण्यायामो भवति । तेनोपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेण्यायामस्य संख्येयतमे भागे सूक्ष्मसंपरायस्य चरमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षं प्राप्यते । ततः परं संख्येयेषु बहुभागेषु गतेषूपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षं प्राप्यते, अत उपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षतोऽर्वाक् सूक्ष्मसंपरायस्यगुणस्थानकचरमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षं लभ्यते ।

अनुभागः- उपशान्तमोहगुणस्थानके वेद्यमानपञ्चविंशतिप्रकृतीनामनुभागोऽवस्थितो भवति, कथमेतद्भवतीति चेद् ? उच्यते, नामकर्मणस्तैजसकार्मणशरीरवर्णगन्धरसस्पर्शस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभाऽगुरुलघुनिर्माणरूपा ध्रुवोदया द्वादश नामकर्मणः सुभगादेययशःकीर्तयस्तिस्रो ध्रुवोदया अन्तरायपञ्चकमुच्चैर्गोत्रं केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं निद्राद्विकं चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनां परिणामप्रत्ययत्वादवस्थितोऽनुभाग उदये वर्तते । उपशान्तमोहगुणस्थानकेऽवस्थितपरिणामसद्भावात् मतिज्ञानावरणश्रुतज्ञानावरणाऽवधिज्ञानावरणमनःपर्यवज्ञानावरणचक्षुर्दर्शनावरणाऽचक्षुर्दर्शनावरणाऽवधिदर्शनावरणीयवेदनीयद्विकमनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विका-ऽऽद्यसंहननत्रिकसंस्थानषट्कखगतिद्विकोपघातपराघातश्वासोच्छ्वासत्रसचतुष्कसुस्वरदुःस्वररूपाणां चतुस्त्रिंशतः प्रकृतीनां परिणामप्रत्ययाभावेन तदनुभाग उदये षट्स्थानपतितो वृद्धो हीनो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाऽवस्थितो वाऽपि भवति। ● उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"केवलणाणावरणकेवलदंसणावरणीयाणमणुभागउदएण सव्वउवसंतद्धाए अवट्ठिदवेदगो। णिद्दापयलाणं पि जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो अंतराइयस्स अवट्ठिदवेदगो सेसाणं लद्धिकम्मंसाणमणुभागुदओ वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा। णामाणि गोदाणि जाणि परिणामपच्चयाणि तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभागोदएण।" इति 'उवसंता' इत्यादि, उपशान्तमोहगुणस्थानके उपशान्तचारित्रमोहनीयप्रकृतयः 'अकरणा' करणरहिता भवन्ति सङ्क्रमणोद्वर्तनाऽपवर्तनोदीरणानिद्धत्तनिकाचनाकरणानामयोग्या भवन्तीत्यर्थः। 'दिट्ठितिगे' दृष्टित्रिके पुनरुपशान्तेऽपि सङ्क्रमणाऽपवर्तने भवतः। तत्र सङ्क्रमो मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः 'सम्यक्त्वे मिथ्यात्वस्य च मिश्रेऽपि, अपवर्तना तु त्रयाणामपि मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वानां भवति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"उवसंताओ मोहपगडीओ करणाय ण भवंति। संकमणाते उवट्टणाए ओवट्टणाते उदीरणाते णिहत्तिए णिकायणाए य ण जायंति। "संकमणोवट्टणाय दिट्ठितिगे" त्ति, संकमणं च उव्वट्टणं च दिट्ठितिगस्स अत्थि। कहं? भण्णइ—तंमि काले मिच्छत्तसंमामिच्छत्ताण समत्ते संकमो, तिण्हवि उव्वट्टणा अत्थि चेव।" इति।

उक्तः पुंवेदक्रोधोदयारूढस्याऽऽरोहणक्रमः। अथ तस्यैव प्रतिपातोऽभिधीयते।

प्रतिपातः

य उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते स अवश्यमेव श्रेणितः प्रतिपतति, ततस्तस्य प्रतिपातं वक्तुकाम आह–

टिप्पणी ● तथैव लब्धिसारेऽप्युक्तम्"इति पञ्चविंशतिप्रकृतयः परिणामप्रत्ययाः, आत्मनो संक्लेशपरिणामहानिवृद्ध्यनुसारेण एतत्प्रकृत्यनुभागस्य हानिवृद्धिसद्भावात्। तासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनुभागोदय उपशान्तकषाये प्रथमसमयादारभ्य तत्कालचरमसमयपर्यन्तमवस्थित एव तत्र यथाख्यातविशुद्धचारित्रस्य प्रतिसमयं हानिवृद्धिभ्यां विनाऽवस्थितत्वेन तत्कर्मप्रकृत्यनुभागोदयेऽस्याऽपि हानिवृद्धिभ्यां विनाऽवस्थितत्वं सिद्धम्। शेषा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचतुष्टयं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रयं साताऽसातवेदनीयद्वयं मनुष्यायुमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गाऽऽद्यसंहननत्रयषट्संस्थानोपघातपराघातोच्छ्वासविहायोगतिद्वयप्रत्येकत्रसबादरपर्याप्तस्वरद्वयनामप्रकृतयश्चतुर्विंशतिरिति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयो भवप्रत्यया एतासामनुभागस्य विशुद्धिसंक्लेशपरिणामहानिवृद्धिनिरपेक्षतया विवक्षित भवाश्रयेणैव षट्स्थानपतितहानिवृद्धिसंभवात्। अतः कारणादवस्थितविशुद्धिपरिणामेऽप्युपशान्तकषाय एतच्चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनामनुभागोदयस्त्रिस्थानसंभवी भवति कदाचिद्धीयते कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धानिवृद्धिभ्यां विनैकादश एवाऽवतिष्ठन्त इत्यर्थः।" इति।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

पच्छाणुपुव्विगाए परिवडइ पमत्तविरतो त्ति ॥५७॥

पश्चानुपूर्व्या प्रतिपतति (यावत्) प्रमत्तविरतिमिति ॥५७॥ इति पदसंस्कारः

एको जन्तुरूपशान्तमोहगुणस्थानकस्य प्रथमसमयात्प्रभृति तच्चरमसमयपर्यन्तं विद्यमानेषु समयेष्वायुषि पूर्णे मृत्वोपशान्तमोहगुणस्थानकतश्च्युत्वा देवः सन्नविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकं गच्छति, अन्यो जन्तुः पुनरुपशान्तमोहगुणस्थानकस्याऽन्तर्मुहूर्ते काले व्यतीते ततः परिच्युत्याऽधस्तनगुणस्थानकानि क्रमशः स्पृशतीति प्रतिपातो द्विविधो भवति (१) भवक्षयेण (२) अद्धाक्षयेण च ।

तत्राऽऽद्यो भवक्षयनिमित्तकः प्रतिपातो विविच्यते । उपशान्तमोहगुणस्थानककाले प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यन्तमायुषि क्षीण उपशान्तमोहकाले मृत्वा देवगता अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानके प्रतिपतति, तस्य प्रथमसमय एव बन्धनोदीरणासङ्क्रमणनिधत्त्यादीनि सर्वाण्यपि करणानि युगपत्प्रवर्तन्ते, अविरतिसम्यग्दृष्टित्वभावादुपशान्तप्रकृतीनामुपशान्तत्वं प्रणश्यतीत्यर्थः । प्रथमसमय एव कर्मदलं समाकृष्याऽन्तरकरणं पूरयति ।

अन्तरकरणे दलप्रक्षेपविधिश्चाऽयम्—प्रथमसमये यानि कर्माण्युदयप्राप्तानि तेषां दलिकान्युदयसमयादारभ्योदयावलिकायां तदुपरि च रचयति । यानि कर्माण्युदयाप्राप्तानि तेषां दलिकान्युदयावलिकाबहिर्विशेषहीनक्रमेण गोपुच्छसंस्थितानि विरचयत्यन्तरकरणं च ★दलिकैः । किमुक्तं भवति—विशेषहीनक्रमेणोदयप्राप्तानामप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभानामन्यतमस्य कषायस्य पुरुषवेदहास्यरतीनामुदयवतोर्भयजुगुप्सयोर्यथासंभवं दलिकमुदयसमयात्प्रक्षिपति. उदयाऽप्राप्तानां नपुंसकवेदादीनां शेषमोहनीयप्रकृतीनां दलमुदयावल्युपरितनप्रथमसमयाद्विशेषहीनक्रमेण निक्षिपति । अथाऽद्धाक्षयहेतुकः प्रतिपातो विवर्ण्यते—यस्तूपशान्तमोहगुणस्थानकस्याऽन्तर्मुहूर्ते काले समाप्ते आयुषि सति प्रतिपतति, स पश्चादानुपूर्व्या येन क्रमेणाऽऽरूढस्तेनैव क्रमेण प्रमत्तगुणस्थानकं यावत्प्रतिपतति । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"जो उवसमद्धाखएणं परिपडति तस्स विभासा"पच्छाणुपुव्विगए परिवडति पमत्त-**

टिप्पणी ★ लब्धिसारेऽन्तरपूर्णेऽयं वर्णितः— भवक्षयादुपशान्तकषायगुणस्थानकात्प्रतिपतितदेवाऽसंयतः प्रथमसमय उदयवतामप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभानामन्यतमस्य कषायस्य पुंवेदहास्यरतीनां भयजुगुप्सयोर्यथासंभवमन्यतरस्य च द्रव्यं स....इदं पुनरसंख्यातलोकेन खण्डयित्वैकभागमुदयावल्यां दत्वा स तद्बहुभागेषूदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्याऽन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च दिवड्ढगुणहाणि भजिद इत्यादिविधानेन विशेषहीनक्रमेण ददाति, उदयरहितानां नपुंसकवेदादीनां मोहप्रकृतीनां द्रव्यमपकृष्योदयावलिबाह्यनिषेकेष्वन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन विशेषहीनक्रमेण प्रतिनिषेकं ददाति । अनेन विधानेन चारित्रमोहस्याऽन्तरं पूरयतीत्यर्थः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वीरउ"त्ति, जेणेव विहिणा आरूढो तेणेव विहिणा पच्छाणुपुव्वीए परिवडति पमत्तसजतो" इति। भावार्थः पुनरयम्—उपशान्तमोहगुणस्थानकतः पतन् प्रथमं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं गच्छति, तदनन्तरमनिवृत्तिगुणस्थानकं लभते, ततश्चाऽपूर्वकरणगुणस्थानकमश्नुते, तदन्वप्रमत्तगुणस्थानकं प्रविशति, ततः पश्चात्प्रमत्तगुणस्थानकम् ।

एवं सामान्येनाऽभिधाय विशेषेणाऽभिधित्सुराह—

उक्कड्ढित्ता बिइठिईहिं उदयाइसु खिवइ दव्वं ।
सेढीए विसेसूणं आवलिउप्पिं असंखगुणं ॥५८॥

अपकृष्य द्वितीयस्थितेरुदयादिषु क्षिपति द्रव्यम् ।
श्रेण्या विशेषोनमावलिकोपर्यसंख्येयगुणम् ॥५८॥ इति पदसंस्कारः

उपशान्तमोहगुणस्थानकात्प्रतिपतन्सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं गच्छति। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकप्रथमसमय एव त्रयो लोभा उपशान्ता भवन्ति सूक्ष्मलोभं वेदयितुं द्वितीयस्थितेः सकाशात्किट्टीः समाकृष्योदयसमयात्सूक्ष्मलोभवेदकाऽद्धातः किञ्चिदधिके काले प्रथमस्थितिं करोति। तत्र दलनिक्षेपक्रमश्चाऽयम् 'उदयादिषु' उदयसमयप्रभृतिषु स्थितिषु श्रेण्या विशेषोनं विशेषोनं दलं प्रक्षिपति। तद्यथा—उदयसमये प्रभूतम्, ततो द्वितीयसमये विशेषहीनम्, ततोऽपि तृतीयसमये विशेषहीनम्, एवं तावद्वक्तव्यम्, यावदुदयावलिकायाश्चरमसमय उदयावलिकाया उपर्यसंख्येयगुणम्। तद्यथा—उदयावलिकाया उपरि प्रथमसमये प्राक्तनाऽनन्तरसमयदलिकनिक्षेपाऽपेक्षयाऽसंख्येयगुणं दलम्, ततोऽपि द्वितीयादिसमयेषु यथोत्तरमसंख्येयगुणं वाच्यम्, यावद्गुणश्रेणिशिरः, गुणश्रेणिश्च सूक्ष्मलोभवेदकाऽद्धातः किञ्चिदधिककालप्रमाणा भवति। गुणश्रेणिशिरस उपरि प्रथमनिषकेऽसंख्यगुणहीनम्, ततः विशेषहीनं विशेषहीनं दलं प्रक्षिपति. उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ-"परिवडमाणो लोभाइणोवकंमे वेयमाणो तेसिं वितियठितितो दलियं घेत्तूण पढमट्ठिती करेति, 'उदयादिसु' त्ति उदयादिसु ट्ठित्तिसु निक्खिवइ। 'सेढीए विसेसूणं' ति-पढमसमये बहुगं बितियसमते विसेसहीणं जाव आवलिगा, आवलिगाते परतो गुणसेढीक्कमेण णिक्खिवइ। आवलिगा उवरिं असखेज्जगुणाए सेढीए जाव गुणसेढीसीसगमिति परओ विसेसहीणा चेव ट्ठिति॥" इति। कषायप्राभृतचूर्णिकारैस्तदुदयसमयादुत्तरोत्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणकारेणदलिकनिक्षेप उक्तः। तथा च तद्ग्रन्थः-"पढमसमयसुहुमसंपराइएण तिविह लोभमोकड्डियूण संजलणस्स उदयादिगुणसेढी कदा।" इति।

अनुदयवतीनां प्रकृतीनां निक्षेपविधिं व्याजिहीर्षुरभिधत्ते—

वेइज्जंतीणेवं इयरासिं आलिगाइ बाहिरओ ।
ण हि संकमोणुपुव्विं छावलिगोदीरणा उप्पिं ॥५१॥

वेद्यमानानामेवमितरासामावलिकाया बहिः ।
न हि संक्रम आनुपूर्व्या, षडावलिकापर्युदीरणा ॥ ५१ ॥ इति पदसंस्कारः

'**वेद्यमानाम्**' वेद्यमानां प्रकृतीनाम् '**एव**' उक्तप्रकारेणदलनिक्षेपविधिरुक्तः। सम्प्रति '**इतरासाम्**' शेषाणामवेद्यमानानामप्रत्याख्यानावरणादीनां प्रकृतीनां दलिकानि द्वितीयस्थितितो गृहीत्वोदयावलिकाया उपरि दलिकनिक्षेपो भवति, तासामुदयाऽभावेनोदयावलिकायां निक्षेपमकृत्वा तदुपरितनेषु निषेकेषु दलं निक्षिपतीत्यर्थः, तद्यथा-उदयावलिकोपरितनप्रथमनिषेके दलिकं स्तोकं प्रक्षिपति, ततोऽनन्तरनिषेकेऽसंख्येयगुणम्, एवं श्रेण्या तावन्निक्षिप्तव्यम्, यावद्गुणश्रेणिशिरस्ततोऽसंख्येयगुणहीनम्, ततः परं विशेषहीनक्रमेण दलं निक्षिप्यते। '**न हि**' इत्यादि, 'हि' शब्दोऽवधारणे किमवधार्यत इति चेद्? उच्यते—यः प्रागुपशमश्रेण्यारोहे मोहनीयस्याऽन्तरकरणे कृतेऽनुपूर्व्यैव सङ्क्रम उक्तः, स इह न, किन्त्वनानुपूर्व्याऽपि। ननु सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानके मोहनीयस्याऽनानुपूर्व्या सङ्क्रमः कस्यां प्रकृतौ संभवेत्, बन्धाऽभावेन पतद्ग्रहताऽसिद्धेरिति चेद्? उच्यते—अनानुपूर्वीसङ्क्रमस्य स्वरूपयोग्यतया प्रतिपादितत्वमस्ति। वस्तुतो यदा माया भन्त्स्यते, तदैव लोभस्य सङ्क्रमोऽनानुपूर्व्या भविष्यति कषायप्राभृतचूर्णौ तु संज्वलनलोभे बध्यमाने मोहनीयस्याऽनानुपूर्व्या सङ्क्रम उक्तः, तथा च तद्ग्रन्थः "**अणियट्टी पढुडी मोहणीयस्स अणाणुपुव्वीसंकमो लोभस्स वि संकमो।**" इति। सोऽपि स्वरूपयोग्यतयैव भवितव्यः, अन्यथा तदानीमप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणयोः संज्वलनलोभे यः सङ्क्रमो भवति, सोऽपि आनुपूर्व्यैव नाऽनानुपूर्व्या। तदानीं च संज्वलनलोभस्य त्वन्यत्र सङ्क्रमो न भवति, अन्यासां प्रकृतीनां बन्धाऽभावेन पतद्ग्रहताऽभावात्।

तथाऽन्तरकरणे कृते कस्यचित्कर्मणो बन्धाऽनन्तरं षण्णामावलिकानामपर्युदीरणा भवतीति यत्पूर्वमुक्तम्, तदपीह न भवति। किन्तु बन्धावलिकायां व्यतिक्रान्तायामुदीरणा भवितुमर्हति। उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"**बद्धं छण्हं आवलिगाणं परओ उदीरिज्जंति**त्ति तं पि नत्थि बंधावलियाए गयाते उदिरिज्जति" इति। एवं **कषायप्राभृतचूर्णा**वपि "**सव्वस्स पडिवदमाणगस्स छसु आवलियासु गदासु उदीरणा इदि णत्थि णियमो आवलियादिक्कंतमुदिरिज्जति।**" इति।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ननु गुणश्रेणिशिरःपर्यन्तं निक्षेप उक्तः, किन्तु गुणश्रेण्यायामो नोक्त इति कस्यचिच्छङ्का भवेत् , तत्परिहारार्थमाह–

वेइज्जमाणसंजलणद्धा अहिगा उ मोहगुणसेढी ।
तुल्ला य जयारूढो अतो य सेसेहि से तुल्ला ॥६०॥

वेद्यमानसंज्वलनाद्धाया अधिका तु मोहगुणश्रेणिः ।
तुल्या च येनारूढोऽतश्च शेषाभिः तस्य तुल्या ॥६०॥ इति पदसंस्कारः

"मोहे गुणसेढी"इत्यादि, प्रतिपततः सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयेऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनलोभमोहनीयस्य गुणश्रेणिः सूक्ष्मसंपरायकालादधिका,सा च कालमाश्रित्य तुल्या। इदमुक्तं भवति—सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये यावान् गुणश्रेण्यायामः,तद्द्वितीयसमयेऽपि तावन्मात्रः एवं वेदनत समयेषु क्षीणेषु सत्सु गुणश्रेण्यायाम उपर्युपरि वर्धते, शेषकर्मणां मोहनीयायुर्वर्जानां ज्ञानावरणीयादीनां च गुणश्रेण्यायामोऽवरोहकसूक्ष्मसंपरायाऽनिवृत्तिकरणाऽपूर्वकरणगुणस्थानकत्रयकालादधिको भवति, स च गलिताऽवशेषमात्र उदयेन क्षीणेषु समयेषु सत्सु न्यूनो न्यूनो भवतीत्यर्थः, उपशान्तकषाये तु शेषकर्मणां गुणश्रेणिरवस्थिताऽऽसीत्, इदानीं तु गलिताऽवशेषमात्री भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ **"सेसाणमाउवज्जाणं कम्माणं गुणसेढीणिक्खेवो अणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ सेसे सेसे च निक्खेवो । तिविहस्स लोहस्स तत्तियो चेव णिक्खेवो ।"** इति । एवमग्रेऽपि यदा माया वेदिष्यते, तदा मायाया गुणश्रेणिस्तद्वेदनकालतः किञ्चिदधिकायामाऽवस्थिता करिष्यते, शेषकर्मणां च प्राग्वित वक्तव्या । 'जया' त्ति, प्राकृतत्वात् स्त्रीनिर्देशो येन संज्वलनेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्तमुदयेन प्राप्तः संस्ततः प्रभृति तस्य क्रोधादिकषायस्य गुणश्रेणिं शेषकर्मसत्कगुणश्रेणिभिस्सह तुल्यामारभते, तदानीं यावत्यायामे शेषकर्मणां गुणश्रेणिं करोति, तावत्येवायामे तत्कषायस्य गुणश्रेणिं विरचयति तां च पुनर्गलिताऽवशेषमात्रीं करोति, यथा कश्चित्क्रोधोदयेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्ततः श्रेणितः प्रतिपतन् यदा क्रोधमुदयेन प्राप्तस्ततः प्रभृति तस्य कषायस्य गुणश्रेणिः शेषकर्मभिस्तुल्या भवति । एवं मानमाययोरपि वाच्यम् । संज्वलनलोभेन पुनरूपशमश्रेणिमारूढस्य प्रतिपातकाले सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयादेवाऽऽरभ्य लोभस्य गुणश्रेणिः शेषकर्मणां गुणश्रेणिभिस्समाना प्रवर्तते, साऽपि च गलिताऽवशेषा । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ– **"वेतिज्जमाणसंजलणद्धाए अहिगा उ मोहगुणसेढी तुल्ला य जयारूढो त्ति वेतिज्जमाणसंजलणद्धाए अहिगा मोहणिज्जगुणसेढीकालं पडुच्च, तुल्ला य 'जयारूढो' त्ति–जाए संजलणाए सेढिं पडिवन्नो तातो चेव तं कम्मं पत्तस्स सेसकंमेहि**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरिसा गुणसेढी । सेसकम्माणं पुण आरुहंतस्स जं भणियं तारिसं चेव अणुणमतिरित्तं भाणियव्वं । कालतो अब्भहिया तत्तिया य गुणसेढी कालं पडुच्च काइं पत्ते अनो य सेसेहिं तुल्लत्ति-जाहे कोहं पत्तो ततो पभिति सेसं कंमेहिं सरिसा गुणसेढी ।" इति । अथ स्थितिबन्धमनुभागबन्धं च वक्तुकामोऽभिधत्ते—

खवगुवसामगपडिवयमाणदुगुणो तहिं तहिं बंधो ।
अणुभागोऽणंतगुणो असुभाण सुभाण विवरीओ ॥६१॥

क्षपकस्योपशमकस्य प्रतिपततो द्विगुणस्तत्र तत्र बन्धः ।
अनुभागोऽनन्तगुणोऽशुभानां शुभानां विपरीतः ॥६१॥ इति पदसंस्कारः

"खवगुवसामग" त्ति क्षपकस्य क्षपकश्रेणिमारोहतो जीवस्य यस्मिन् स्थाने यावान् स्थितिबन्धो भवति, तस्मिन्नेव स्थान उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबन्धो द्विगुणो भवति, ततोऽपि तस्मिन्नेव स्थान उपशमश्रेणितः प्रतिपततो जन्तोर्द्विगुणः स्थितिबन्धो भवतीति क्षपकस्य स्थितिबन्धतः प्रतिपततश्चतुर्गुणो भवतीत्यर्थः । अयं क्रमोऽनिवृत्तिकरणस्य किञ्चित्कालं यावद्वक्तव्यः,तत परं द्विगुणनियमो नाऽवतिष्ठते ऽधिकतरस्यापि भावात् । तथा क्षपकस्य यस्मिन् स्थानेऽशुभानां प्रकृतीनां यावाननुभागो बध्यते, ततस्तस्मिन्नेव स्थाने तासामेवाऽशुभानामुपशामकेन योऽनुभागो बध्यते, सोऽनन्तगुणस्ततोऽप्युपशमश्रेणितः प्रतिपततो जन्तोरनन्तगुणो बध्यते । 'सुभाणं विवरिओ'त्ति शुभानां प्रकृतीनां पुनरनुभागो विपरीतो वाच्यः, तथाहि-उपशमश्रेणितोऽवरोहता यस्मिन्स्थाने शुभप्रकृतीनां यावाननुभागो बध्यते, ततोऽनन्तगुणस्तस्मिन्नेव स्थान उपशमकेन तासामेव शुभानां प्रकृतीनां बध्यते, ततोऽपि तस्मिन्नेव स्थानेऽनन्तगुणः क्षपकेण बध्यते । शेषं यथाऽऽरोहतः,तथा प्रतिपततोऽपि वेदितव्यम्, यावत्प्रमत्तगुणस्थानकम् । एतत्सर्वं संक्षेपेणाऽभिहितम् ।

अथ विस्तरतोऽभिधीयते । उपशान्तमोहगुणस्थानकतः पतित्वा सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमय एते पदार्थाः प्रवर्तन्ते—

(१) द्वितीयस्थितिगतं लोभत्रयमनुपशान्तं भवति ।

(२) द्वितीयस्थितितः किट्टीः समाकृष्य सूक्ष्मलोभवदेकाऽद्धातः किञ्चिदधिककालां प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च । तथोदयावलिकायामुपरितनस्थितौ यथाक्रमं गोपुच्छाकारेणाऽसंख्येयगुणकारेण च प्रक्षिप्य गुणश्रेणिशिरस उपरितनस्थितौ विशेषहीनक्रमेण प्रक्षिपति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐 कषाय-प्राभृतचूर्णिकारमतेनोदयसमयादेवाऽसंख्येयगुणकारेण प्रक्षिपति ।

(३) सूक्ष्मलोभस्य गुणश्रेणिः सूक्ष्मलोभवेदकाऽद्धातः किञ्चिदधिकाऽऽयामा भवति, सा चाऽवस्थिता भवति । (४) अप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणलोभद्विकस्य गुणश्रेणिरुदयावलिकाया उपरितननिषेकाद्भवति साऽप्यवस्थिता भवति ।

※ (५) शेषकर्मणां गुणश्रेणिः सूक्ष्मसंपरायाऽनिवृत्तिकरणाऽपूर्वकरणगुणस्थानकत्रयकालादधिकायामा क्रियते, सा च गुणश्रेणिर्गलिताऽवशेषमात्री भवति ।

(६) ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वेऽप्युपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानतो द्विगुणत्वम् । नामगोत्रयोर्द्वात्रिंशदन्तर्मुहूर्तप्रमाणः स्थितिबन्धो वेदनीयस्य चाऽष्टचत्वारिंशद्मुहूर्तमात्रः ।

(७) आनुपूर्व्या सङ्क्रमस्य यो नियमः प्रागासीत्, स इदानीं व्यवच्छिद्यते ।

(८) आरोहकस्याऽशुभानां योऽनुभागबन्ध आसीत्, ततोऽनन्तगुणवृद्धः श्रेणितः प्रतिपततो भवति, आरोहकस्य शुभानां प्रकृतीनां योऽनुभागबन्धो भवति स्म, ततोऽनन्तगुणहीनः श्रेणितः प्रतिपततो भवति ।

(९) येनैव क्रमेण स्थितिबन्धादीन् कुर्वन्नारूढः, तेनैव क्रमेण पश्चानुपूर्व्या स्थितिबन्धादीन् कुर्वन् प्रतिपतति, ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मसंपरायस्य द्वितीयसमय इत्यर्थः, स्थितिबन्धः तावान्नेव भवति, रसबन्धस्त्वशुभानां प्रकृतीनामनन्तगुणवृद्धः शुभानां चाऽनन्तगुणहीनो भवति, एवं पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमये गुणश्रेण्यर्थं दलं च पूर्वतोऽसंख्येयगुणहीनं गृहीत्वोत्तरोत्तरनिषेकेष्वसंख्येयगुणकारेण श्रेण्या विरचयति एवं प्रतिसमयमनन्तगुणसंक्लेशस्य सत्त्वात्पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमयेऽसंख्येयगुणहीनं दलिकं गृहीत्वोत्तरोत्तरनिषेकेष्वसंख्येयगुणकारेण श्रेण्या रचयति ।

卐 टिप्पणी—तथैव लब्धिसारेऽपि तत्र तावदुदयवतः संज्वलनलोभस्य द्वितीयस्थितौ स्थितं कृष्टिगतं द्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातभागखण्डितैकभागमात्रमुदयसमयादारभ्य गुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तं संख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य पुनस्तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेणिशीर्षस्यान्तरायाममुल्लङ्घ्य द्वितीयस्थितौ दिवड्ढगुणहानि भाजिद इत्यादिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । उदयरहितयोरप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभयोर्द्वितीयस्थितौ स्थितं द्रव्यमपकृष्योदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण तदुपर्यन्तराऽऽयाममुल्लङ्घ्य द्वितीयस्थितौ पूर्ववद्विशेषहीनक्रमेण निक्षपेत् एवमुत्तरत्राऽप्युदयाऽनुदयवतोर्गुणश्रेणिनिक्षेपक्रमो ज्ञातव्यः ।

※लब्धिसारे शेषकर्मणां गुणश्रेणिदलिकनिक्षेप इत्थं प्ररूपितः—पुनःषण्णामायुर्मोहवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां दलिकमपकृष्य पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिप्य बहुभागं गुणश्रेण्यायामेऽवरोहकसूक्ष्मसंपरायाऽनिवृत्त्यपूर्वकरणकालेभ्यो विशेषाऽधिकमात्र गलितावशेषेऽसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्याऽवशिष्टबहुभागोपरितनस्थितौ पूर्ववद्विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये चरमसमयकृतकिट्टीनां जघन्यकिट्टेरारभ्याऽसंख्येयभागप्रमाणाः किट्टीर्विमुच्य प्रथमसमयकृतकिट्टीनां चोत्कृष्टकिट्टेरारभ्याऽसंख्येयभागमात्रीः किट्टीः परित्यज्य शेषाः स्वरूपेणोदयन्ति, सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमये यावत्यः किट्टय उदयन्ति, ततो विशेषाधिकाः किट्टयस्तद्द्वितीयसमये वेद्यन्ते, यथोपशमश्रेणिमारोहन् पूर्वपूर्वसमयतः प्रतिसमयमसंख्येयभागमात्रास्तीव्राऽनुभागा अमुकाः किट्टीर्विमुच्याऽसंख्येयभागमात्राश्च मन्दानुभागाः किट्टीर्गृह्णाति स्म । तथोपशमश्रेणितः प्रतिपतन्नयं विपरीतमाचष्टे । किमुक्तं भवति ? असंख्येयभागमात्रीर्मन्दानुभागा किट्टीः परित्यज्याऽसंख्येयभागमात्रास्तीव्राऽनुभागाः किट्टीर्गृह्णाति, विमुच्यमानकिट्टितो विशेषाऽधिकाः किट्टीर्गृह्णाति, तेन पूर्वपूर्वसमयत उत्तरोत्तरसमय उदये विशेषाधिकाः किट्टयः प्राप्यन्ते । + उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ—"**पढमसमए उदिण्णाओ थोवाओ बिदियसमये उदिण्णाओ किट्टोओ विसेसाहियाओ सव्वसुहुमसंपराइयद्धाए विसेसाहियवड्ढीए किट्टीणमुदये**" इति । उदयेऽनुभागस्तु पूर्वपूर्वतः प्रतिसमयमनन्तगुणो विद्यते । न चोदये पूर्वपूर्वतः किट्टयो विशेषाधिका भवन्ति, अनुभागोऽनन्तगुणः कथमुदये भवति ? इति वाच्यं विवक्षितसमय उदयमाना उत्कृष्टकिट्टेरनन्तरमुदयार्थं गृह्यमाणोपरितनकिट्टिषु प्रथमकिट्टेरप्यनन्तगुणरसोपेतत्वादेवमनेन क्रमेण तावद्वक्तव्यम्, यावत्सूक्ष्मलोभस्य प्रथमस्थितेरावलिकाऽवशिष्यते, तदानीं सूक्ष्मसंपरायकालः पूर्णो भवति, ततोऽनन्तरसमये तदानीमनिवृत्तिकरणबादरसंपरायगुणस्थानकं प्रविशति, अतस्तत्स्वरूपं विविच्यते—

अनिवृत्तिकरणबादरसंपरायगुणस्थानकप्रथमसमय इमे पदार्थाः प्रवर्तन्ते—

(१) लोभत्रिकस्य बादरलोभवेदककालतः किञ्चिदधिकायामाऽवस्थिता पूर्ववद्गुणश्रेणिर्निरच्यते ।

(२) शेषकर्मणां गलिताऽवशेषगुणश्रेणिः पूर्ववत्प्रवर्तते ।

(३) सूक्ष्मलोभस्याऽवशिष्टाऽऽवलिका बादरलोभे सङ्क्रमय्याऽनुभवति ।

+ टिप्पणी—एवं लब्धिसारेऽप्युक्तम्—अवरोहकसूक्ष्मसंपरायप्रथमसमय उदयनिषेककृष्टीनां पल्यासंख्यातखण्डितबहुभागमात्रा मध्यमकृष्टय उदये गच्छन्ति । तदेकभागस्य पुनरसंख्यतभागा द्विपञ्चमभागमात्राः कृष्टय आदिकृष्टेरारभ्याऽनुदया उपरि च तत्त्रिपञ्चमभागमात्र्यः कृष्टयोऽग्रकृष्टेरारभ्याऽनुदयास्तासामाद्यन्तकृष्टीनां स्वस्वरूपं परित्यज्य मध्यमकृष्टिस्वरूपेण परिणम्योदयो भवतीत्यर्थः पुनर्द्वितीयसमय आदिकृष्टीनां पल्याऽसंख्यातैकभागमात्रीः कृष्टीर्गृहीत्वा मध्यमकृष्टय उदयमागच्छन्ति । तत्र ऋणात् ………अस्माद्धनमिदमभ्यधिकमिति धतार्णया विवरे शेषप्रमाणेन प्रथमसमयोदयकृष्टिभ्यो द्वितीयसमयोदयकृष्टयो विशेषाधिकाः । एवं तृतीयादिसमयेष्वपि तच्चरमसमयपर्यन्तं विशेषाधिकाः कृष्टय उदयमागच्छन्ति । अत एव प्रतिसमयमनन्तगुणानुभागोदयः कृष्टीनां ज्ञातव्यः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

(४) अनिवृत्तिकरणप्रथमसमय एवाऽऽवलिकावर्जशेषसर्वकिट्टयो नष्टाः, उक्तं च कषायप्रभृतचूर्णौ "ताहे चेव फद्दयगदं लोभं वेददि किट्टओ सव्वाओ णट्ठाओ णवरि जाओ उदयावलियब्भंतराओ ताओ त्थिवुक्कसंकमेण फद्दएसु विपच्चिषहिंति । इति । "

(५) संज्वलनलोभस्य बन्ध आरभ्यते, अतः संज्वलनलोभेऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभद्विकं सङ्क्रमयति ।

(६) तदानीं स्थितिबन्धश्चेत्थम्-संज्वलनलोभस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः स्थितिबन्धः, ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामहोरात्रपृथक्त्वम्, नामगोत्रवेदनीयानां संख्यातवर्षसहस्रमात्रो भवति । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"एदम्हि पुणो ट्ठिदिबंधे जो अण्णो वेदणीयणामगोदाणं ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जवस्ससहस्साणि । तिण्हं घातिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तपुधत्तिगो लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो पुव्वबंधादो विसेसाहियाओ ।"इति ।

यथा श्रेणिमारोहतो लोभवेदकाऽद्धायास्त्रयो विभागाः क्रियन्ते स्म तथैव प्रतिपततोऽपि लोभवेदकाद्धायास्त्रयो विभागाः क्रियन्ते, तत्र प्रथमविभागे सूक्ष्मलोभवेदकाद्धा, द्वितीयविभागे बादरसंज्वलनलोभवेदकाऽद्धायाः प्रथमाऽर्धः, तृतीयविभागे बादरलोभवेदकाऽद्धाया द्वितीयाऽर्धः, तत्राऽयं विशेषः-आरोहकस्य लोभवेदककालात्प्रतिपततो लोभवेदककालः किञ्चिन्न्यूनो ज्ञातव्यः एवं सर्वत्राऽऽरोहकस्य कालात्प्रतिपातकस्य मायादिवेदककालेषु किञ्चिन्न्यूनता द्रष्टव्या । तत्र लोभवेदकाऽद्धाया द्वितीयविभागस्य संख्येयतमे भागे गते बादरसंज्वलनलोभवेदकाऽद्धाप्रथमाऽर्धस्य संख्येयतमे भागे वेदित इत्यर्थः, संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो मुहूर्तपृथक्त्वमात्रः, ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां पुनरहोरात्रपृथक्त्वतो वर्षसहस्रपृथक्त्वमितो नामगोत्रवेदनीयानां संख्यातसहस्रवर्षप्रमाणः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"लोभवेदगद्धाए विदियस्स तिभागस्स संखेज्जदिभागं गंतूण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो मुहुत्तपुधत्तं णामगोदवेयणीयाणं ट्ठितिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, तिण्हं घातिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तपुधत्तिगादो ट्ठिदिबंधादो वस्ससहस्सपुधत्तिगो ट्ठितिबंधो जादो ।" इति ।

यद्यप्यघातिकर्मणां स्थितिबन्धस्य संख्यातगुणवृद्धिरनिवृत्तिकरणद्वितीयस्थितिबन्धाज्जाता, किन्तु घातित्रयस्य संख्यातगुणवृद्धिरितः प्रभृति जाता, इत्थं षण्णामपि कर्मणां स्थितिबन्धवृद्धेः संख्यातगुणत्वं प्रवर्तते । तत्राऽयं विशेषः—घातित्रयस्य स्थितिबन्धादघातित्रयस्य स्थितिबन्धः संख्यातगुणो भवति । एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु बादरसंज्वलनलोभवेदकाऽद्धायाः प्रथमाऽर्धस्याऽवशिष्टसंख्येयबहुभागांस्तथा तद् द्वितीयार्धमनुभूय मायायाः प्रथमस्थितिं करोति वेदयति च । **मायावेदकाऽद्धा**—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलनबादरलोभवेदकाऽद्धां व्यतिक्रम्याऽनन्तरसमय एते पदार्था भवन्ति ।

(१) मायत्रिकमनुपशान्तं भवति ।

(२) मायात्रिकस्य गुणश्रेण्यायामो मायावेदकाऽद्धातः किञ्चिदधिको भवति, स चाऽवस्थितः ।

आधिक्यं चाऽऽवलिकामात्रं ज्ञातव्यम् । तथैव लोभत्रयस्य प्रथमस्थितिं गुणश्रेण्यायामं च विस्तीर्य मायागुणश्रेण्यायामप्रमाणं करोति, सोऽपि गुणश्रेण्यायामोऽवस्थितो भवति। किन्तु गुणश्रेणिनिक्षेपः प्रागुदयसमयादासीद् , अत्र तूदयावलिकोपरितनप्रथमनिषेकाद् भवति ।

(३) शेषकर्मणां गलिताऽवशेषमात्री गुणश्रेणिः पूर्ववत्प्रवर्तते ।

(४) मायाया बन्ध आरभ्यते तेन लोभत्रिकं मायाद्विकं च संज्वलनमायायां संक्रमयति, यत आनुपूर्वीसङ्क्रमनियमः सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमय एव व्यवच्छिन्नः । तथैव तदानीं संज्वलनलोभोऽपि बध्यते, तेन तस्मिन् मायात्रिकं लोभद्विकं च सङ्क्रमयति ।

(५) प्रतिपतज्जन्तुर्मायावेदकाऽद्धायाः प्रथमसमये संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्धो द्विमासिकः ❀ शेषाणां षण्णामपि कर्मणां संख्यातवर्षसहस्राणि पूर्ववत् । षण्णामपि कर्मणां पूर्वपूर्वस्थितिबन्धत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः संख्येयगुणो भवति, मोहनीयस्य पुनर्विशेषाऽधिकः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ-"**पढमसमयमायावेदगस्स दोण्हं संजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जवस्ससहस्साणि । पुण्णे ट्ठिदिबंधे मोहणीयवज्जाणं कम्माण संखेज्जगुणो ट्ठिदिबधो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ**" । इति । एवंक्रमेण सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु मायावेदककालः समाप्तो भवति । मायावेदककालचरमसमये स्थितिबन्धो मोहनीयस्याऽन्तर्मुहूर्तोनचतुर्मासप्रमाणः शेषकर्मणां च संख्येयसहस्रवर्षप्रमाणः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**एदेण कम्मेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयमायावेदगो जादो ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।**" इति ।

मानवेदकाऽद्धा—

अनिवृत्तिकरणे मायावेदककालसमाप्त्यनन्तरसमय एते पदार्थाः प्रवर्तन्ते—

(१) मानत्रिकमनुपशान्तं भवति ।

(२) मानत्रयस्य मानवेदकाऽद्धातः किञ्चिदधिकायामा गुणश्रेणिः क्रियते, साऽप्यव-

---

❀ तत्राऽपि घातित्रयस्थितिबन्धात्संख्येयगुणोऽघातित्रयस्येति लब्धिसारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिता तथा मायात्रयस्य लोभत्रयस्य च गुणश्रेणिर्मानस्य गुणश्रेण्यायामतुल्याऽवस्थिता चोदयावलिकाया उपरि क्रियते।

(३) शेषकर्मणां गलिताऽवशेषमात्री गुणश्रेणिः पूर्ववत्प्रवर्तते।

(४) तदानीमेव संज्वलनमानस्य बन्ध आरभ्यतेऽतो मोहनीयस्य तिस्रः प्रकृतयो बध्यन्ते, तासां पतद्ग्रहत्वेन संज्वलनलोभमायामानेषु मानत्रिकं मायात्रिकं लोभत्रिकं चाऽनानुपूर्व्या सङ्क्रमयति, इदमुक्तं भवति— मानवेदकाऽद्धायाः प्रथमसमयादेव संज्वलनमाने मायात्रिकं लोभत्रिकं मध्यममानद्विकं च संक्रमयति संज्वलनमायायां च मध्यममायाद्वयं लोभत्रिकं मानत्रिकं च संक्रमयति संज्वलनलोभे च मायात्रिकं मध्यमलोभद्वयं मानत्रिकं च संक्रमयति।

(५) तदानीमेव संज्वलनत्रिकस्य स्थितिबन्धश्चातुर्मासिकः शेषकर्मणां च संख्येयवर्षसहस्रप्रमाणः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा पडिपुण्णा सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि"। इति। उत्तरोत्तरस्थितिबन्धो मोहनीयस्य विशेषाधिकः, शेषकर्मणां तु संख्येयगुणः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु व्रजितेषु सत्सु मानवेदककालः समाप्तो भवति। तदानीं च मोहनीयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तोनाऽष्टमासिकः शेषकर्मणां संख्येयवर्षसहस्रमितः, उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–एवं ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गंतूण माणस्स चरिमसमयवेदगस्स तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठमासा अंतोमुहुत्तूणा सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।" इति।

क्रोधवेदकाऽद्धा–

मानवेदककाले समाप्तेऽनन्तरसमय इमे पदार्थाः प्रवर्तन्ते--

(१) क्रोधत्रिकमनुपशान्तं भवति।

(२) 卐 क्रोधस्य प्रथमस्थितिं कुर्वन्नप्यन्तरस्यापुरणात् प्रथमस्थितित्वेन व्यवह्रियते, तेन

卐 टिप्पणी—अन्तराऽन्तरमेवं पूरयतीति दर्शितजयधवला—"संपहि जाधे एवंविहो गुणसेढीणिक्खेवो जा ताध चेव बारसण्हं एदेसिं कम्माणमंतरमावूरिज्जदि त्ति घेत्तव्वं। जस्स कसायस्स उदएण सेढिमारुढो तम्मि कसाये ओकड्डिदे एवंविहो गुणसेडिणिक्खेवो अंतरापूरणं च होदि त्ति णिच्छेयव्वो। एदो तदो एत्थ अंतरावूरणविहाणं किंचि वत्तइस्सामो। तं जहा—बारसविहं कसायमोकड्डियूण तक्काले गुणसेढिणिक्खेवं करेमाणो कोहसंजलणस्स ताव उदए थोवं पदेसग्गं देदि। तत्तो असंखेज्जगुणं जाव णाणावरणादिकम्माणं पुव्वणिक्खित्तगुणसेडिसीसयं पत्तोत्ति। पुणो तदणंतरोवरिमअंतरसमयम्मि एक्कवारमसंखेज्जगुणहीणं णिक्खिवदि तदो विसेसहीणं कादूण संछुहदि

गलिताऽवशेषगुणश्रेणिं करोति, तदायामश्च शेषकर्मणां तत्कालीनगुणश्रेण्यायामेन सदृशो भवति । इतः प्रभृति मानत्रिकस्य मायात्रिकस्य लोभत्रिकस्य चाऽपि गुणश्रेणिं प्रागुक्ताऽऽयामं विस्तीर्य शेषकर्मणां तत्कालीनगुणश्रेण्यायामेन सदृशा गलिताऽवशेषमात्री प्रारभ्यते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णावपि-"पढमसमयकोधवेदगस्स बारसण्हं वि कसायाणं गुणसेढीणिक्खेवो सेसाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण सरिसो होदि। जहा मोहणीयवज्जाणं कम्माणं सेसे सेसे गुणसेढिं णिक्खिवदि तहा एत्तो पाए बारसण्हं कसायाणं सेसे गुणसेढी णिक्खिवदव्वा ।" इति ।

इदमत्र तात्पर्यम्—यस्य संज्वलनकषायस्योदयेनाऽऽरूढः,तं कषायमुदयेन प्राप्तः सन् प्रतिपतन् गलिताऽवशेषां गुणश्रेण्यायामेन च सदृशां गुणश्रेणिं रचयति, उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "जाए संजलणाए सेढिं पडिवन्नो ताओ चेव तं कम्म पत्तस्स सेसकम्मेहिं सरिसा गुणसेढी।" इति । (३) शेषकर्मणां च प्रागारब्धा गलिताऽवशेषगुणश्रेणिरत्राऽपि पूर्ववत्प्रवर्तते ।

जाव अंतरचरिमट्ठिदि त्ति तदो बिदियट्ठिदि आदिसमयम्मि असंखेज्जगुणहीणं णिक्खिवदि तत्तो परं सव्वत्थ विसेसहीणं चेव सछुहदि जाव अप्पप्पणो ओकड्डिदपदेसमइच्छावणावलियाए अपत्तो त्ति एव सेसकसायाणं वि अंतरापूरणविहाणमेत्थ दट्ठव्वं विसेसाभावादो णवरि तेसिमुदयावलिबाहिरे चेव गुणसेढिणिक्खेवो त्ति वत्तव्वं सत्तणोकसायइत्थिणवुंसयवेदाणं पि अप्पप्पणो अंतरे जहावसरं पूरिज्जमाणे णिसेगपरूवणा एवं चेव कायव्वा ।" इति।

लब्धिसारेऽन्तरं पूरयतीति विशेषो दर्शितः, दलिकप्रक्षेपविधिरित्थ दर्शितस्तद्यथा "इतः पूर्वं मोहनीयस्याऽवस्थिताऽऽयामा गुणश्रेणिःकृता । इदानीं पुनर्गलिताऽवशेषा प्रारब्धेत्यर्थविशेषः यस्य कषायस्योदयेनोपशमश्रेणिमारूढो जीवः पुनरवतरणे तस्य कषायस्योदयसमयादारभ्य गलिताऽवशेषगुणश्रेणिरन्तरपूरणं च क्रियते तत्रोदयवतः संज्वलनक्रोधस्य द्रव्यमपकृष्य पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागं स......उदयादिगुणश्रेण्यायामे निक्षिपति पुनर्द्वितीयस्थितौ प्रथमनिषेकद्रव्यं स....- इदम् 'पदहतमुखमादिधन' मित्यनेनाऽन्तर्मुहूर्तमात्राऽन्तरायामेन गुणयित्वा लब्धं समपट्टिकाधनम्... द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके द्विगुणहान्या विभज्य द्वाभ्यां गुणितेऽधस्तनगुणहानिचयो भवति । सैकपदाहतपदफलचयहतमुत्तरधनामित्यानीतं चयधनं स....—....इदं प्रागानीते समपट्टिकाधने साऽधिकं कुर्यात्स- ---। एतावद् द्रव्यमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितबहुभागद्रव्याद् गृहीत्वा, अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदेत्यादिविधिना विशेषहीनक्रमेणाऽन्तरायामे निक्षिपेत् । अवशिष्टबहुभागद्रव्यं स ...— द्वितीयस्थितौ "दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमो" इत्यादिविधिना नानागुणहानिषु विशेषहीनक्रमेण तत्तदपकृष्टनिषेकमतिस्थापनावलिमात्रणाऽप्राप्य निक्षिपति । एवं निक्षिप्ते गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यादन्तरायामप्रथमसमयनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनम् । अन्तरायामचरमसमयनिक्षिप्तद्रव्याद् द्वितीयस्थितिप्रथमसमयनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं द्रष्टव्यम् । एवमुदयरहितानां शेषैकादशकषायाणां द्रव्यमपकृष्योदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामेऽन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च द्रव्यत्रयनिक्षेपविधिः कर्तव्यः ।" इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) संज्वलनक्रोधस्य बन्ध आरभ्यते, तेनेतः प्रभृति मोहनीयस्य चतस्रः प्रकृतयो बध्यन्ते। तासां पतद्ग्रहत्वेन संज्वलनक्रोधमानमायालोभेषु द्वादशकषायाणामनानुपूर्व्या सङ्क्रमयति। इदमुक्तं भवति–संज्वलनक्रोधे मध्यमक्रोधद्विकं मानत्रिकं मायात्रिकं लोभत्रिकं चेत्येकादश प्रकृतीः सङ्क्रमयति, संज्वलनमाने च क्रोधत्रिकं मध्यममानद्विकं मायात्रिकं लोभत्रिकं चेत्येकादश प्रकृतीः सङ्क्रमयति, संज्वलनमायायां च क्रोधत्रिकं मानत्रिकं मध्यममायाद्विकं लोभत्रिकं चेत्येकादश प्रकृतीः सङ्क्रमयति संज्वलनलोभे च क्रोधत्रिकं मानत्रिकं मायात्रिकं मध्यमलोभद्वयं चेत्येकादश प्रकृतीः सङ्क्रमयति।

(५) तदानीं संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धोऽष्टमासप्रमाणश्शेषकर्मणां च संख्यातवर्षसहस्रमितः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**ताधे ट्ठिदिबंधो चउण्हं संजलणाणमट्ठमासा पडिवुण्णा सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**" इति। पूर्ववदुत्तरोत्तराऽभिनवस्थितिबन्धो मोहनीयस्य विशेषाऽधिकः, शेषाणां तु कर्मणां संख्यातगुणः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गच्छत्स्ववेदकस्य चरमसमये संज्वलनचतुष्कस्याऽन्तमुहूर्तोनचतुःषष्टिवर्षप्रमाणो भवति शेषकर्मणां च संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो च हुसट्ठिवस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**" इति।

पुरुषवेदोदयः—

(१) अवेदकस्य चरमसमये वेदिते सप्तनोकषायाणामुपशान्तत्वमपगच्छति। + द्वितीयस्थितितस्तेषां दलं गृहीत्वा प्रागुपक्रान्तद्वादशकषायगुणश्रेण्यायामसदृशां गलिताऽवशेषां गुणश्रेणिं विरचयति। तत्राऽपि पुरुषवेदस्योदयसमयात्प्रभृति शेषाणां षण्णां पुनरुदयावलिकाया उपरितनसमयाद्रचयति।

(२) शेषकर्मणां प्रागारब्धा गलिताऽवशेषमात्री गुणश्रेणिरत्राऽपि प्रवर्तते।

(३) पुरुषवेदमुदयेनानुभवति तथा पुरुषवेदं बद्धुमुपक्रमते, सप्तानां च नोकषायाणामनानुपूर्व्या सङ्क्रममितः प्रभृत्यारभते। तेन बध्यमानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभपुरुषवेदेषु पञ्चप्रकृतिषु मोहनीयस्यैकोनविंशतिप्रकृतीः संक्रमयति।

+ टिप्पणी—अत्र लब्धिसारे सप्तनोकषायाणां संज्वलनक्रोधस्यानन्तरं पूरयतीत्युक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः- "तत्रोदयवतोः पुंवेदसंज्वलनक्रोधयोर्द्रव्यमपकृष्योदयादिगुणश्रेण्यायामेऽन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च संज्वलनक्रोधोक्तप्रकारेण द्रव्यनिक्षेपं करोति। उदयरहितानां शेषकषायनोकषायाणां द्रव्यमपकृष्योदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामेऽन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तप्रकारेण निक्षिपति।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) तदानीं पुरुषवेदस्य स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमितः संज्वलनचतुष्कस्य चतुःषष्टिवर्षप्रमाणः शेषकर्मणां च संख्यातवर्षसहस्राणि। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"ताधे चेव पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो बत्तीसवस्साणि पडिवुण्णाणि संजलणाणं ट्ठिदिबंधो च दुसट्ठिवस्साणि सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।" इति।

पुरुषवेदोपशामनाऽपगमतः सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु स्त्रीवेदोऽनुपशान्तो भवति। पुरुषवेदोऽनुपशमनातो यावति काले स्त्रीवेदोनुपशान्तः, तावतः कालस्य संख्यातेषु बहुभागेषु गतेषु सत्सु नामगोत्रवेदनीयानामसंख्येयवर्षसहस्रप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति। अतः प्रभृति पूर्वपूर्वस्थितिबन्धतो नामगोत्रवेदनीयानां स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति, यतः प्रभृति यस्य कर्मणः स्थितिबन्धोऽसंख्येयवार्षिको भवति; ततः प्रभृति तस्य कर्मणः पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणो भवत्येवं तावद्वाच्यम्, यावत्पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणः स्थितिबन्धो न भवतीति नियमसंभवात्, उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–जत्तो पाए असंखेज्जवस्सट्ठिदिबंधो तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधमसंखेज्जगुणं बंधइ एदेण कमेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागियादो ट्ठिदिबंधादो एक्कप्पहारेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ ट्ठिदिबंधो जादो एत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधं संखेज्जगुणं बंधइ।"इति।

तत्रेदमल्पबहुत्वम्–मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः, ततो घातित्रयस्य संख्येयगुणः, ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, ततोऽपि वेदनीयस्य विशेषाधिकः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "पुरिसवेदे अणुवसंते जाव इत्थिवेदो उवसंतो एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णामगोदवेदणीयाणमसंखेज्जवस्सियट्ठिदिगो बंधो अप्पाबहुअं कायव्वं सव्वथोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो णामगोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।" इति। एवं सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु स्त्रीवेदस्योपशमना नश्यति। तेन तद्दलिकं ममाकृष्योदयावलिकोपरितन– 卐 प्रथमनिषेकादारभ्य शेषकर्मसत्कगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तं गलिताऽवशेषमात्रीं गुणश्रेणिं रचयति। एवमितः प्रभृति मोहनीयस्य विंशतिप्रकृतीनां गलिताऽवशेष-

---

卐 अत्र लब्धिसारे स्त्रीवेदस्याऽन्तरपूरणमुक्तम्, तथा च तद्ग्रन्थः-"ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेष्वन्तर्मुहूर्तकाले गतेष्वेकस्मिन् समये स्त्रीवेदोपशमो विनष्टस्ततः प्रभृति स्त्रीवेदद्रव्यं सङ्क्रमणाऽपकर्षणादिकरणायोग्यं सञ्जातमित्यर्थः। तस्मिन् स्त्रीवेदोपशमनविनाशप्रथमसमये स्त्रीवेदमपकृष्य तस्योदयरहितत्वादुदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामेऽन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन निक्षिपति।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणश्रेणिं करोति बध्यमानपञ्चप्रकृतिषु च विंशतिप्रकृत्यात्मकं सङ्क्रमस्थानं प्राप्नोति ।

स्त्रीवेदोपशमनानाशतः सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्रजितेषु नपुंसकवेदोऽनुपशान्तो भवति । स्त्रीवेदोपशमनानाशतो यावति काले नपुंसकवेद उपशान्तनाशस्तावतः कालस्य संख्येयेषु बहुभागेषु गतेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्थितिबन्धोऽसंख्येयवर्षप्रमाणो भवति । तेनेतः प्रभृति षण्णामपि कर्मणामसंख्येयवर्षमात्रः स्थितिबन्धो भवति, अतः प्रभृति स्थितिबन्धः पूर्वपूर्वतोऽसंख्येयगुणो भवति, नियमस्य प्रागुक्तत्वान्नाऽत्र पुनरभिधीयते । तत्राऽल्पबहुत्वम्—मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकस्ततोऽसंख्येयगुणो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणाम्, ततोऽप्यसंख्येयगुणो नामगोत्रयोः,ततो वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ- "**इत्थिवेदे अणुवसंते जाव णवुंसयवेदो उवसंतो एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणमसंखेज्जवस्सिय ट्ठिदिबंधो जादो ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो नामगोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ** । इति । ततः प्रभृत्येव ज्ञानावरणचतुष्कदर्शनावरणत्रिकाऽन्तरायपञ्चकरूपद्वादशदेशघातिप्रकृतीनां द्विस्थाकमनुभागं बध्नाति । इतः प्रागेतासां प्रकृतीनां बन्ध एकस्थानाऽनुभाग आसीत् ।

सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु नपुंसकवेदस्योपशमनाऽपगच्छति ।

●(१) तदानीमेव द्वितीयस्थितितो दलिकं गृहीत्वा नपुंसकवेदस्य गलिताऽवशेषां गुणश्रेणिमुदयावलिकोपरितननिषेकाच्छेषकर्मगुणश्रेण्यायामेन सदृशां करोति । एवं ततः प्रभृति मोहनीयस्यैकविंशतिप्रकृतीनां गलिताऽवशेषगुणश्रेणिं करोति ।

(२) शेषकर्मणां प्रागारब्धा गलिताऽवशेषगुणश्रेणिस्तत्राऽपि प्रवर्तते ।

(३) तदानीमेव बध्यमानपुरुषवेदसंज्वलनक्रोधमानमायालोभेष्वनानुपूर्व्या चारित्रमोहनीयस्यैकविंशतिप्रकृत्यात्मकं सङ्क्रमस्थानं प्राप्यते ।

नपुंसकवेदानुपशमनप्रथमसमयात्प्रभृति श्रेणिप्रतिपन्नसत्काऽनिवृत्तिकरणस्याऽन्तरकरणक्रियासमाप्तिचरमसमयपर्यन्तो योऽन्तर्मुहूर्तकालस्तस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु मोहनीयस्याऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो द्विस्थानकश्चाऽनुभाग उदयमागच्छति । इदमुक्तं भवति—श्रेणितः प्रतिपातकोऽन्तरं न करोति, अतोऽन्तरकरणसमाप्तिचरमसमयोऽपि तेन नाऽवाप्यते,

---

● लब्धिसारेऽत्र नपुंसकवेदस्याऽन्तरपूरणं प्राग्वदभिहितम् । अक्षराणि त्वेवम् "तत्प्रथमसमये नपुंसकवेदद्रव्यमपकृष्येतरकर्मगलिताऽवशेषगुणश्रेण्यायामसमान उदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामेऽन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन निक्षिपति ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तूपशमश्रेणितः प्रतिपततो यः स्वनपुंसकवेदाऽनुपशमनप्रथमसमयो यश्चाऽऽरूढाऽन्तरकरण-निष्ठानचरमसमये सदृशः प्रतिपातुककालस्तयोरन्तरगतकालस्य संख्येयेषु बहुभागेषु गतेष्ववशिष्ट-संख्येयतमभागस्य प्रथमसमयं प्राप्नोति, तदा मोहनीयस्याऽसंख्येयवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धः, तथेतः प्रभृति मोहनीयस्योत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति, नियमस्य प्रागुक्तत्वेन पिष्टपेषणप्रसंगान्न पुनरभिधीयते। मोहनीयस्य चाऽनुभागबन्धो द्विस्थानको भवति, एवमुदये-ऽपि द्विस्थानकोऽनुभागो भवति। इतः प्राग्मोहनीयस्यैकस्थानकोऽनुभागबन्ध एकस्थानकश्चा-ऽनुभागोदय आसीत्, सत्तायां तु प्रागपि द्विस्थानकोऽनुभाग आसीत्, अन्यथा तत्कालबध्यमान-द्विस्थानकस्याऽऽवलिकाया अनाक्रान्तत्वेन द्विस्थानकाऽनुभागोदयस्याऽनुपपत्तेः। बन्धमाश्रित्य तदानीमल्पबहुत्वं त्वित्थम्–(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः (२) ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्य (३) ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः (४) ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकः।

अन्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयात्सप्त पदार्थाः प्रागुक्तास्तेभ्यो मोहस्याऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो द्विस्थानकाऽनुभागबन्धो द्विस्थानकाऽनुभागोदयश्चेति त्रयः पदार्था अवरोहकस्य विपरीतेनेतः प्रभृति प्रवर्तन्ते (लोभस्याऽसङ्क्रमो नपुंसकवेदोपशमना चेति द्वे वस्तुनी विमुच्य) इतः प्रागेवाऽनिवृत्तिकरणे व्यक्तिरूपेण लोभस्य सङ्क्रमो नपुंसकवेदोपशमनाऽपगमश्च प्रवृत्तौ मोहनीयस्याऽऽनुपूर्वीसङ्क्रमो बद्धकर्म च षडावलिका व्यतिक्रम्योदीर्यन्त इति नियमौ परित्य-ज्य मोहनीयस्याऽनानुपूर्वी सङ्क्रमो बन्धाऽऽवलिकाव्यतिक्रमणे चोदीरणेति द्वौ पदार्थौ प्रति-पातुकसूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयादेव प्रवृत्तौ। न च ये सप्त पदार्था आरोहकस्याऽन्तरकरणक्रिया-समाप्तितः प्रवृत्ताः तेभ्यस्त्रयः पदार्था विपर्ययेणाऽवरोहकस्याऽऽरोहकाऽन्तरकरणक्रियासमाप्तिसम-काले प्रवर्तनीयाः। प्रतिपातुकस्य यो नपुंसकवेदाऽनुपशमनप्रथमसमयश्चाऽऽरोहकाऽन्तरकरण-समाप्तिचरमसमयसदृशः प्रतिपातुककालः, तयोरन्तरगतकालस्य संख्येयतमेऽवशिष्यमाणे कथं प्रवर्तन्ते ? इति वाच्यम्, यद्यपि येनैव क्रमेणोपशमश्रेणिमारोहति. तेनैव विपरीतक्रमेण पदार्थाः प्रवर्तन्ते, तथाऽप्यारोहकस्य यस्मिन् काले प्रवृत्ता आसन्, तस्मिन्नेव काले न प्रवर्तन्ते, आरोह-ककालतोऽवरोहककालस्य किञ्चिन्न्यूनत्वनियमसत्त्वात् तथा च सत्यारोहकस्य यत्स्थाने मोह-नीयस्य संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्ध एकस्थानकोऽनुभागबन्ध एकस्थानकश्चाऽनुभागोदयो भवन्ति स्म। ततोऽर्वागेवाऽवरोहकस्य तेषां त्रयाणां पदार्थानां प्रवर्तनं संभवति।

सर्वघातिरसबन्धारम्भः——मोहनीयस्याऽसंख्येयवार्षिकस्थितिबन्धभवनान्तरं पूर्वोक्ताऽल्प-बहुत्वक्रमेण संख्येयेषु सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु वीर्यान्तरायकर्मणोऽनुभागः सर्वघाती बध्यत इतः प्राग्बन्धे देशघात्यनुभाग आसीत्, ततः संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्रजितेषु मतिज्ञाना-वरणोपभोगान्तराययोर्देशघात्यनुभागं परित्यज्य सर्वघात्यनुभागं बध्नाति, ततः स्थितिबन्धपृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थक्त्वे गते चक्षुर्दर्शनावरणस्याऽनुभागः सर्वघाती बध्यते । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वे गते श्रुतज्ञानावरणाऽचक्षुर्दर्शनावरणभोगान्तरायाणां देशघात्यनुभागं परित्यज्य सर्वघात्यनुभागं बध्नाति। ततः संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेष्ववधिज्ञानावरणाऽवधिदर्शनावरणलाभान्तरायाणां देशघात्यनुभागं मुक्त्वा सर्वघात्यनुभागं बध्नाति । ततः सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु मनःपर्यवज्ञानावरणदानान्तराययोर्देशघात्यनुभागं परित्यज्य सर्वघात्यनुभागं बध्नाति, बन्धे मनःपर्यवज्ञानावरणदानान्तराययोः सर्वघात्यनुभागभवनान्तरं सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्स्वसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा व्यवच्छिन्ना भवति । ● उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"तदो ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणमुदीरणा पडिहम्मदि असंखेज्जलोगभागो समयपबद्धस्स उदीरणा पवत्तदि ' इति । यदाऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा भवति, तदानीमुदीरणायामसंख्येयसमयप्रबद्धप्रमाणदलमायात्, इतः प्रभृति समयप्रबद्धस्याऽसंख्येयलोकाकाशभागप्रमाणं दलमुदीरणामायाति ।

स्थितिबन्धस्य क्रमपरावृत्तिः

यस्मिन्कालेऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा नश्यति, तदानीमपि सप्तकर्मणां पल्योपमऽसंख्येयभागरूपोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः प्रवर्तते । अल्पबहुत्वं त्वित्थम्—

(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः (२) ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु परस्परं सदृशः (३) ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने

● अत्र लब्धिसारेऽयं विशेषो दर्शित :— असंख्येसमयप्रबद्धोदीरणाऽवसरेऽपकृष्टं द्रव्यंपल्योपमाऽसंख्येयभागेन भक्त्वा बहुभागान् गुणश्रेण्यायामोपरितनायां द्वितीयस्थितौ निक्षिप्याऽवशिष्टैकभाग भूयः पल्याऽसंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागानुदयावलिकोपरितननिषेकात्प्रक्षिप्य शेषैकभागमुदयावलिकायां निक्षिपति स्म, इतः प्रभृत्यपकृष्टद्रव्य पल्योपमाऽसंख्येयभागेन विभज्य बहुभागान् गुणश्रेण्यायामोपरितनायां स्थितौ निक्षिप्याऽवशिष्टकभागं पल्याऽसंख्यातभागस्थानेऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणरूपभागकारेण भक्त्वा बहुभागानुदयावलिकोपरितननिषेकाद्गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्याऽवशिष्टैकभागमुदयावलिकायां प्रक्षिपतीतः प्राग्गुणश्रेण्यर्थं गृहीतदलिकस्य पल्योपमाऽसख्यातभागमात्रदलिकस्योदयावलिकायां निक्षेपात्तत्राऽसंख्येयबद्धदलं निक्षिपति स्म । अतः प्रभृति गुणश्रेण्यर्थं गृह्यमाणदलिकस्याऽसंख्येयल्लोकभागप्रमाणस्य दलस्योदयावलिकायां निक्षेपात्तत्र समयप्रबद्धस्याऽसंख्येयभागे मात्रे दलं प्रक्षिपति। लब्धिसाराऽक्षराणि त्वेवम् "गुणश्रेणिकरणार्थमपकृष्टद्रव्यस्याऽऽरोहको यः पल्याऽसंख्यातमात्रो भागहारः प्रागुक्तः सोऽधो यावदायातोऽस्मिन्नवसरे प्रतिहतः । इदानीमसंख्यातलोकमात्रो भागहारोऽपकृष्टद्रव्यस्य संजातः । ततः करणादसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणां विनैकसमयप्रबद्धाऽसंख्येयभागमात्रोदीरणा संजातेत्यर्थः ।" इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथः तुल्यः (४) ततोऽपि वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः ।

अथ स्थितिबन्धेऽल्पबहुत्वस्य क्रमः परावर्तते, पूर्वोक्तक्रमेण सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्यतीतेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायत्रिकं नामगोत्रयोरुपरि गच्छति । प्राग् हि घातित्रयस्थितिबन्धो नामगोत्रस्थितिबन्धस्याऽसंख्येयभागमात्र आसीत्, अधुना तु घातित्रयस्य स्थितिबन्धो नामगोत्रतो विशेषाऽधिको भवति ।

तदानीमल्पबहुत्वं विचार्यते–(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वस्तोकः (२) ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु मिथः सदृशः (३) ततोऽपि घातित्रयस्य विशेषाऽधिकः स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः (४) ततोऽपि वेदनीयस्य विशेषाऽधिकः ।

ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु घातित्रयस्य स्थितिबन्धो वेदनीयस्य स्थितिबन्धेन सदृशो भवति । अल्पबहुत्वं त्वित्थम्–(१) मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वाऽल्पः (२) ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने मिथस्तुल्यः(३)ततोऽपि ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां विशेषाधिकः स्वस्थाने मिथस्समानः । एवंक्रमेण सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्रजितेषु मोहनीयस्य स्थितिबन्धो नामगोत्रयोरुपरि गच्छति । मोहनीयस्य स्थितिबन्धो नामगोत्रतो विशेषाऽधिको भवतीत्यर्थः । स्थितिबन्धमाश्रित्याऽल्पबहुत्वं त्वेवम्– (१) नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः सर्वाल्पः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः (२) ततो मोहनीयस्य विशेषाऽधिकः (३) ततोऽपि ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां विशेषाऽधिकः स्वस्थाने तु मिथस्समानः ।

उपर्युक्तक्रमेण सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु मोहनीयस्य स्थितिबन्धो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानामुपरि गच्छति, एतदुक्तं भवति–मोहनीयस्य स्थितिबन्धो ज्ञानावरणादिचतुष्कतोऽपि विशेषाऽधिको भवति । स्थितिबन्धमवलम्ब्याऽल्पबहुत्वमभिधीयते (१) नामगोत्रयोः सर्वाल्पः स्थितिबन्धः (२) ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां विशेषाधिकः (३) ततः पुनर्मोहनीयस्य विशेषाधिकः, इदमल्पबहुत्वमग्रेऽपि सर्वत्र वक्तव्यम् । उक्तक्रमेण सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्रजितेषु समानामपि कर्मणां युगपत्पल्योपमसंख्यातभागमात्रः स्थितिबन्धो भवति, ततः प्रभृति समानामपि कर्मणां पूर्वपूर्वस्थितिबन्धत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः संख्यातगुणो भवति, उक्तक्रमेण सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्रजितेषु पल्योपमसंख्यातभागमात्रस्थितिबन्धान्मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्योपमप्रमाणः, ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां पल्योपमसंख्यातभागस्थितिबन्धात्पल्योपमस्य त्रिचतुर्भागप्रमितः नामगोत्रयोः पल्योपमसंख्यातभागस्थितिबन्धात्पल्योपमाऽर्धप्रमाणः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

इदानीं स्थितिबन्धः पूर्वस्थितिबन्धस्तद्वृद्धिप्रमाणं च यन्त्रे दर्श्यते—

प्रकृतयः	स्थितिबन्धस्य वृद्धिप्रमाणम्	स्थितिबन्धः
नामगोत्रयोः	पल्यसंख्यातभागन्यूनपल्याऽर्धमात्रः	पल्याऽर्धमात्रः
ज्ञानदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानाम्	पल्यसंख्यातभागन्यूनपल्यत्रिकचतुर्भागमात्रः	पल्यत्रिचतुर्भागप्रमाणः
मोहनीयस्य	पल्याऽसंख्यातभागोनपल्यमात्रः	पल्यमात्रः

इतः प्रभृति पूर्वपूर्वस्थितिबन्धत उत्तरोत्तरस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्यातभागमात्रेण वर्धते, पल्योपमसंख्यातभागमात्रवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्ध एकेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशो भवति । ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु व्रजितेषु सप्तानामपि कर्मणां स्थितिबन्धो द्वीन्द्रियस्थितिबन्धतुल्यो भवति । ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेष्वतिक्रान्तेषु नामकर्मादीनां सप्तकर्मणां स्थितिबन्धस्त्रीन्द्रियस्थितिबन्धसदृशो भवति । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेऽपगते सप्तकर्मणां स्थितिबन्धश्चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धसदृग्भवति । ततः संख्यातेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु व्यतिक्रान्तेषु सप्तकर्मणां स्थितिबन्धोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिबन्धः-समानो भवति । ततः संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु व्यतीतेषु प्रतिपन्ननिवृत्तिकरणचरमसमयं प्राप्नोति । तदानीं नामकर्मादीनां स्थितिबन्धोऽन्तःकोटीवर्षप्रमाणो भवति सागरोपमलक्षपृथक्त्व-प्रमाणो भवतीत्यर्थः । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"**चरिमसमयअणियट्टिस्स ट्ठिदिबंधो सागरोपमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए** ।" इति ।

अस्मिन्प्रकरणे प्रागुक्ता गुणश्रेणिः स्मृतिहेतवे पुनरभिधीयते–प्रतिपातुकसूक्ष्मसंपरायगुण-स्थानकप्रथमसमयादारभ्याऽवरोहकाऽपूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं मोहनीयवर्जज्ञानावरणादिषट्कर्मणां सूक्ष्मसंपरायाऽनिवृत्तिकरणाऽपूर्वकरणकालत्रयात्किञ्चिदधिकाऽऽयामा गलिताऽवशेषमात्री गुण-श्रेणिर्भवति, ततः प्रतिपातुकयथाप्रवृत्तकरणेऽवस्थिताऽऽयामा, एवं प्रमत्तगुणस्थानकेऽपि । मोहनीयकर्मणस्त्वयं विशेषः–सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयाद्यस्य कषायस्योदयेन श्रेणिं प्रतिपन्नः, तं कषायमुदयेनाऽप्राप्तस्य प्रतिपातुकस्य शेषकषायाणामवस्थिताऽऽयामा गुणश्रेणिर्भवति, यथा क्रोधेनाऽऽरूढस्य प्रतिपातुकस्य कियन्तं कालं यावल्लोभस्य गुणश्रेण्यायामोऽवस्थितो भवति तद्गुणश्रेण्यायामश्च त्रिर्वर्धते । ततः परं गलिताऽवशेषो भवति, तथाहि–क्रोधोदयेनाऽऽरूढः प्रतिपातुकः सूक्ष्मसंपरायलोभस्याऽवस्थिताऽऽयामगुणश्रेणिं कृत्वाऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमये बादरलोभस्य प्रथमस्थितिं कुर्वन्नायामं वर्धयति, स च बादरलोभवेदकाऽद्धायाश्चरमसमयपर्यन्त-मवस्थितो भवति । ततः पुनर्मायावेदकाऽद्धायाः प्रथमसमये द्वितीयवारमायामं वर्धयति, स च मायावेदकाऽद्धायाश्चरमसमयपर्यन्तमवस्थितो भवति, ततः पुनस्तृतीयवारं मानवेदकाऽद्धा प्रथम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय आयामं वर्धयति, स च मानवेदकाद्धाचरमसमयं यावदवस्थितो भवति। ततः क्रोधवेदकाऽद्धा-प्रथमसमयाच्चतुर्थवारमायामं वर्धयित्वा गलिताऽवशेषमात्रशेषकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशां करोति। अतः प्रभृति गुणश्रेण्यायामश्च गलिताऽवशेषो भवति । इदानीं च द्वादशकषायाणां गलिताऽव-शेषगुणश्रेणिं करोति । ततो नोकषायाणामुपशान्तत्वे नष्टे तेषामपि गुणश्रेणिः कषायवद्गलिता-वशेषगुणश्रेणिर्भवति ।

अपूर्वकरणम्—प्रतिपातुकाऽनिवृत्तिकरणचरमसमयमनुभूयाऽपूर्वकरणे प्रतिपतति,अपूर्व-करणप्रथमसमय एव देशोपशमनानिधत्तिनिकाचनाकरणान्युद्घाटितानि भवन्तीति मूलकारा-श्चूर्णिकाराश्च स्वयमेव चतुःषष्टितमगाथायां वक्ष्यन्ते, तदानीं हास्यरतिभयजुगुप्सारूपचतुष्प्रकृतीनां बन्धमारभते, तेन मोहनीयस्य नवप्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं बध्नाति, नानाजीवऽपेक्षया च हास्यषट्कमुदेति ततोऽवरुह्य द्वितीयभागारम्भाद् देवद्विकादित्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धको जायते । ततोऽपूर्वकरणसप्तमभागप्रथमसमयं प्राप्य निद्राद्विकं बद्धुमुपक्रमते। ततः संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्स्वपूर्वकरणं परिसमाप्तं भवति। तदानीं स्थितिबन्धोऽन्तःसागरोपमकोटा-कोटीवर्षप्रमाणो भवति । इदानीमेव सप्तानामपि कर्मणां गलिताऽवशेषगुणश्रेणिर्व्यवच्छिन्ना भवति, ततः परं गलिताऽवशेषगुणश्रेणिर्न भवति ।

यथाप्रवृत्तकरणम्—अपूर्वकरणं परिसमाप्य श्रेणितः पातुको जन्तुर्यथाप्रवृत्तकरणे प्रतिपतति । यथाप्रवृत्तकरणेऽपूर्वकरणवद्गलिताऽवशेषगुणश्रेणिं न करोति, किन्तु प्रतिसमयम-संख्येयगुणहीनक्रमेण दलं गृहीत्वा संयमहेतुकामवस्थितताऽऽयामगुणश्रेणिं करोति । श्रेणि-निमित्तका त्वपूर्वकरणेन सह व्यवच्छिन्ना । इदानीं च गुणश्रेण्यायामः सूक्ष्मसंपरायप्रथम-समयात्प्रारब्धप्राक्तनगुणश्रेण्यायामतः संख्येयगुणोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणश्च । एवं प्रतिसमयं दलिका-ऽपेक्षयाऽसंख्येयगुणहीनक्रमेणाऽवस्थितां गुणश्रेणिं यथाप्रवृत्तकरणेऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं करोति ततः परं स्वभावस्थो भवति। ततः परं यदि संयत एव तिष्ठेत्, तर्हि तावदायामाम्, देशविरतिं गच्छेत्, तर्हि संख्यातगुणाऽऽयामाम्, यः पुनरुपशमश्रेणिं क्षपकश्रेणिं वा प्रतिपद्यते, तर्हि संख्यातगुणहीनायामां गुणश्रेणिं कुर्यात् । यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादेव गुणसङ्क्रमो व्यव-च्छिन्नो भवति, बन्धयोग्यप्रकृतीनां यथाप्रवृत्तसङ्क्रमस्तद्गुणस्थानके च बन्धाऽयोग्यप्रकृतीनां विध्यातसङ्क्रमः प्रवर्तते । उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ "**पढमसमय अधापवत्तकरणे गुणसंकमो वोच्छिण्णो सव्वकम्माणमधापवत्तसंकमो जादो णवरि जेसिं विज्जा-दसंकमो अत्थि तेसिं विज्जादसंकमो चेव ।**" इति । श्रेणिप्रतिपन्नस्याऽपूर्वकरणप्रथमस-मयादारभ्य प्रतिपातुकाऽपूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं यः कालः, ततः संख्येयगुण औपशमिक-

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वेन सह प्रतिपततः यथाप्रवृत्तकरणकालः। उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ–"उवसामगस्स पढमसमय अपुव्वकरणप्पहुडि जाव पडिवदमाणगस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति तदो एत्तो संखेज्जगुणकालं पडिणियत्तो अधापवत्तकरणेण उवसमसम्मत्तमणुपालेदि।" इति। भावार्थः पुनरयम्–यद्यप्यारोहकाऽपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य प्रतिपातुकाऽपूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं विद्यमानकालतो यथाप्रवृत्तकरणकालस्य संख्यातगुणत्वे न कश्चिदोषः, तथाऽपि यथाप्रवृत्तकरणकालेन स्वभावसंयतो विवक्षितव्यः।

यथाप्रवृत्तकरणं व्यतिक्रम्य प्रतिपातुकः प्रमत्तसंयतगुणस्थानकं प्रतिपद्यते ततः परं यत्करोति तद्व्याजिहीर्षुराह—

किच्चा पमत्ततदियरठाणे परिवत्तिबहुसहस्साणि।
हिट्ठिल्लाणंतरदुगं आसाणं वा वि गच्छेज्जा ॥६२॥

कृत्वा प्रमत्ततदितरस्थानयोः परिवृत्तीर्बहुसहस्राणि।
अधस्तादनन्तरद्विकमासादनं वाऽपि गच्छेत् ॥६२॥ इति पदसंस्कारः

प्रतिपातुकः प्रमत्तगुणस्थानके विश्राम्यति, यथा समुद्रतरणश्रान्तपुरुषस्तटे यद्वा सङ्ग्रामाङ्गणविनिर्गतपुरुषो युद्धाङ्गणबहिर्भूमौ विश्राम्यति, ततः परं 'पमत्ततदियरठाणे' इति, प्रमत्ताऽप्रमत्तसंयतगुणस्थानकयोः प्रभूतानि सहस्राणि यावत्परावृत्तीः कृत्वा प्रतिपातुकः 'हिट्ठिल्लाणंतरदुगं' त्ति, अधस्तनगुणस्थानकद्विकं देशविरताऽविरतलक्षणं गच्छति, कोऽपि देशविरतिं प्रतिपद्यते कश्चिच्चतुर्थगुणस्थानकं लभत इत्यर्थः। तत्र यदि देशविरतिं प्रतिपद्यते, तर्हि गुणश्रेण्यायाममभिवर्ध्य गुणश्रेणिं करोति, यत एकादशगुणश्रेणिषूत्तरोत्तरगुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणहीनो भवति।

"आसाण" मित्यादि, 卐 कश्चिदौपशमिकसम्यक्त्वाऽद्धाया उत्कृष्टतः षट्स्वावलिकासु शेषासु जघन्यतः समयमात्रे शेषे सास्वादनभावमपि भजेत्-सास्वादनगुणस्थानकं प्राप्नुयादित्यर्थः।

श्रेणिगतौपशमिकसम्यक्त्वकाले म्रियमाणः कस्यां गतावुत्पद्यत इति शङ्कापरिहारार्थमाह—

卐 उपशमश्रेणितः पतन् केषाञ्चिन्मतेन सास्वादनं गच्छति केषाञ्चिन्मतेन पुनर्न प्राप्नोतीति लब्धिसारग्रन्थकाराः। अक्षराणि त्वेवम्–

तस्ससमत्तद्धाए असजमं देससंजमं वाऽपि।
गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि ॥३४८॥
जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरिक्खं णरं ण गच्छादि।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण ॥३४९॥
उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि।
भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण ॥३५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवसमसम्मत्तद्धा अंतो आउक्खया धुवं देवो ।
तिसु आउगेसु बद्धसु जेण सेढिं न आरुहई ॥६३॥

उपशमसम्यक्त्वाद्धान्तरायुःक्षयाद्ध्रुवं देवः ।
त्रिष्वायुष्केषु बद्धेषु येन श्रेणिं नारोहति ॥६३॥

औपशमिकसम्यक्त्वाऽद्धाया अन्तर्मध्ये वर्तमानो यदि कश्चिदायुःक्षयात्कालं करोति, तर्हि स ध्रुवमवश्यं देवो भवति । किञ्च सास्वादनं गतः सन्नपि यदि कालं करोति, तथाऽपि देव एव भवति, किं कारणमिति चेद् ? उच्यते, येन यस्मात्कारणाद्देवायुर्वर्जेषु शेषेषु त्रिष्वायुःष्वन्यतमाऽऽयुषि बद्धे श्रेणिं नाऽऽरोहति, तस्मात् श्रेणिस्थितः पतन् वा कालं कृत्वा देव एव भवति । अबद्धायुष्कस्तु कालमेव न करोति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ–"**जई सासायणो कालं करोति, सो वि णियमा देवो भवति, किं कारणम् ? भन्नति–तिसु आउगेसु बद्धेसु जम्हा उवसामगो सेढीते अणुरुहो भवति तम्हा सासायणो वि देवलोगं जाति।**" इति।

प्रतिपततः करणान्युदयस्थित्यादिकं कथं प्रवर्तन्त इत्यतः प्राह—

उग्घाडियाणि करणाणि उदयठिइमाइगं इयरतुल्लं ।
एगभवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमेज्जा ॥६४॥

उद्घाटितानी करणानि उदयस्थित्यादिकमितरतुल्यम् ।
एकभवे द्विकृत्वश्चारित्रमोहमुपशमयति ॥६४॥ **इति पदसंस्कारः**

"उग्घाडियाणि" त्ति, "करणाणि" त्ति, बन्धनसङ्क्रमणादीनि करणान्युपशमश्रेणिं समारोहतो येन क्रमेण यानि यानि व्यवच्छिद्यन्ते तेनैव क्रमेण श्रेणितः प्रतिपततस्तानि तान्युद्घाटितानि भवन्ति प्रवर्तन्त इत्यर्थः । तथोदयस्थित्यादिकमुदयस्थितिबन्धादिकमितरतुल्यमारोहकतुल्यम्, येन क्रमेणाऽऽरोहकस्योदयस्थित्यादिकं व्यवच्छिद्यते, तेनैव क्रमेण प्रतिपातुकस्य तत्प्रवृत्तिरित्यर्थः । एतत्सर्वं विस्तरतः प्रसंगतः प्रागुक्तम् ।

नन्वेकस्मिञ्जन्मनि जन्तुः कतिकृत्वोपशमश्रेणिं समारोहतीति शङ्कां परिहर्तुकाम आह-"एगभवे" इत्यादि एकस्मिन्भवे द्वौ वारौ चारित्रमोहनीयमुपशमयति परिणामविशेषेण द्विरुपशश्रेणिं समारोढुं शक्नोति, न तु तृतीयमपि वारमित्यर्थः, यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिंप्रतिपद्यते, स तस्मिन्भवे क्षपकश्रेणिं न प्रतिपद्यते । यस्त्वेकवारमुपशमश्रेणिं समारोहति, स तस्मिन्भवे क्षपकश्रेणिमपि समारोहेदपीति मन्यन्ते कार्मग्रन्थिकाः,सैद्धान्तिकमतेन त्वेकस्मिन्भवे य उपशमश्रेणिमारोहेत्, स क्षपकश्रेणिं नारोहेत् । इदमुक्तं भवति–एकस्मिन्भवे यद्यपि द्विरुपश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मश्रेणिं प्रतिपत्तुं प्रभवति, किन्तूपशमश्रेणिं समारुह्य तस्मिन्नेव भवे क्षपकश्रेणिं न समारोहेत्, उक्तं चाऽन्यत्राऽपि-"अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं" इति । इत्थमुक्ता पुरुषवेदोदयविशिष्टस्य जन्तोरारोहणाऽवरोहणप्रक्रिया ।

अथ स्त्रीवेदोदयविशिष्टस्य नपुंसकवेदोदयविशिष्टस्य च प्रक्रियाविशेषमभिधित्सुराह—

उदयं वज्जिय इत्थी इत्थीं समयइ अवेयगा सत्त ।
तह वरिसवरो वरिसवरिं इत्थिं समगं कमारद्धे ॥६५॥

उदयं वर्जयित्वा स्त्री स्त्रीं शमयत्यवेदका सप्त ।
तथा वर्षवरो वर्षवरं स्त्री समकं क्रमारब्धे (सति) ॥६५॥

पुरुषवेदारूढो नपुंसकस्त्रीवेदद्विकस्योपशमने यावन्तं कालं गमयति, स्त्रीवेदारूढस्तावत्कालमात्रीं स्त्रीवेदस्य प्रथमस्थितिं विमुच्याऽन्तरकरणं प्रकरोति । अन्तरकरणं कृत्वाऽऽदौ नपुंसकवेदं प्रोपशमयति, अन्तर्मुहूर्तकालेन सर्वथोपशम्य स्त्रीवेदमुपशमयितुमुपक्रमते, तं च तावदुपशमयति यावत्स्वोदयस्य चरमसमयः । तस्मिंश्च समय एकां चरमसमयरूपामुदयस्थितिं वर्जयित्वा शेषसकलमपि स्त्रीवेददलिकं सर्वथोपशमयति वेदनतो नाशयति ।

● तदानीं पुरुषवेदस्य स्थितिबन्धो संख्यातसहस्रवर्षप्रमाणः संभवति । कथमेतदवगन्तव्यम्? इति चेत्, उच्यते—पुरुषवेदारूढस्य पुंवेदबन्धविच्छेदतः स्त्रीवेदाऽऽरूढस्य पुरुषवेदसत्ककालबन्धस्याऽर्वाग्व्यवच्छेदादिति ब्रूमः, ततोऽनन्तरसमये पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिन्नो भवति । ततः प्रभृत्यवेदका सति हास्यषट्कपुरुषवेदरूपसप्तनोकषायान् युगपदुपशमयितुमारभते । अन्तर्मुहूर्तेन कालेन सर्वथोपशमयति । उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ-"अवेतिगा संति छन्नोकसाते पुरिसवेयं च सत्तकंमपगडीओ जुगव उवसामेति ।" इति । तथैव कषायप्राभृतचूर्णावपि-"इत्थिवेदेणं उवट्ठिदस्स णाणत्त पत्ताइस्सामो तं जहा अवेदो सत्तकम्मंसे उवसामेदि सत्तण्हं पि उवसामणद्धा तुल्ला । एदं णाणत्तं । सेसा सव्वे वियप्पा पुरिसवेदेण सह सरिसा ।" इति । अत्र पुरुषवेदाऽऽरूढवद् हास्यषट्के सर्वथोपशान्ते पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धनूतनदलिकमनुपशान्तं न तिष्ठति, किं कारणमिति चेद्? उच्यते-पुरुषवेदोदयारूढस्य हास्यषट्कसत्कस्य सर्वथोपशमनस्य चरमसमयेऽपि पुरुषवेदो बध्यमान आसीत्, स्त्रीवेदारूढस्य तु हास्यषट्कोपशमनाप्रारम्भादेव पुरुषवेदस्य बन्धव्यवच्छिन्नो भवति । ततः परमन्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते सप्तनोकषाया युगपत् सर्वथोपशम्यन्ते,

● टिप्पणी— महाबन्धे स्त्रीवेदमार्गणायां पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातसहस्रवार्षिकः प्रोक्तः स च क्षपकश्रेण्या उपशमश्रेण्यां वाऽत्रैव सङ्गच्छते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेन हास्यषट्क उपशान्ते समयोनावलिकाद्विकबद्धदलिकं पुरुषवेदारूढवदनुपशान्तं न तिष्ठति, शेषं पुरुषवेदारूढवदवगन्तव्यम् ।

'तह' इत्यादि, 'वर्षवरो' नपुंसकः 'कमारद्धे', त्ति, क्रमारब्धे सति 'तह' त्ति, एकामुदयस्थितिं मुक्त्वा नपुंसकवेदस्त्रीवेदौ नपुंसकवेदारूढसमकं युगपदुपशमयति । पुरुषवेदारूढस्य यावान् नपुंसकवेदस्त्रीवेदोपशमनकालो भवति, तावन्मात्रीं प्रथमस्थितिं नपुंसकवेदस्य शेषवेदद्विकस्य पुनरावलिकाप्रमाणां विमुच्य नपुंसकवेदारूढोऽन्तरकरणं प्रकरोति, अन्तरकरणं च कृत्वा नपुंसकवेदं प्रोपशमयति, यावत्पुंवेदोदयारूढः सर्वथा नपुंसकवेदमुपशमयति, नपुंसकवेदारूढस्तावत्केवलं नपुंसकवेदमुपशमयन्नपि न सर्वथोपशमयति, ततः परं स्त्रीवेदमुपशमयितुमुपक्रमत इति नपुंसकवेदस्त्रीवेदौ द्वावुपशमयन्नपुंसकवेदसत्कप्रथमस्थितेश्चरमसमयपर्यन्तमुपशमयति, चरमसमये द्वावपि वेदौ सर्वथोपशम्येते ।

तदानीं पुरुषवेदस्य स्थितिबन्धः संख्येयसहस्रवार्षिकः संभवति, ततोऽनन्तरसमये नपुंसकवेदस्योदयो व्यवच्छिन्नो भवति, पुरुषवेदस्य च बन्धोऽपगच्छति । ततः प्रभृति पुंवेदहास्यादिषट्कलक्षणसप्तप्रकृतीर्युगपदुपशमयितुमारभते युगपच्च सर्वथोपशमयति । उक्तं च **कर्मप्रकृतिचूर्णौ**–**"तदो अवेदो सत्तकम्माणि उवसामेदि । तुल्ला च सत्तण्हं पि कम्माणमुपसमणा ।"** अत्राऽपि हास्यषट्क उपशान्ते पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलिकमनुपशान्तं न तिष्ठति स्त्रीवेदोदयारूढवत् । शेषं सर्वं पुरुषवेदारूढप्रकारेणाऽवगन्तव्यम् । इत्थं संज्वलनक्रोधोदयेनाऽऽरूढस्याऽऽरोहणाऽवरोहणप्रक्रिया दर्शिता ।

संप्रति संज्वलनमानोदयेन संज्वलनमायोदयेन संज्वलनलोभोदयेन चोपशमश्रेणिमारूढानामारोहणाऽवरोहणप्रक्रियाविशेषो भण्यते । संज्वलनमानोदयेनारूढस्याऽऽरोहणक्रियायामयं विशेषः

यदा तु पुरुषवेदसंज्वलनमानोदयेनोपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते, तदा संज्वलनक्रोधोदयारूढस्य यावती संज्वलनक्रोधस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा संज्वलनमानस्य चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा समुदिता प्रथमस्थितिर्भवति, तावतीं केवलस्य संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितिं करोति संज्वलनक्रोधस्य चोदयाऽभावेन तत्प्रथमस्थितिरावलिकामात्री क्रियते । पुरुषवेदस्य चरमसमयं यावत्क्रोधोदयारूढवदवगन्तव्यम् । पुरुषवेदोदयचरमसमये हास्यषट्कं सर्वथोपशम्यते पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्वयनूतनबद्धदलिकं वर्जयित्वा सर्वं पुरुषवेदस्य दलिकमुपशम्यते । समयोनावलिकाद्विकाऽभिनवबद्धदलं तावता कालेनाऽवेदको मानमनुभवन्नप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधत्रिकं चोपशमयन् पुरुषवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति । अवेदकप्रथमसमयात्संज्वलनमानमनुभवन्पुरुषवेदोक्तप्रकारेण क्रोधत्रिकमुपशमयितुमुपक्रमते ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पुरुषवेदक्रोधोदयप्रतिपन्नस्याऽपगतवेदस्य यावान् कालः क्रोधोपशमनायां गच्छति, तावता कालेन मानोदयारूढः क्रोधत्रयमुपशमयति, संज्वलनक्रोधस्य केवलं समयोनावलिकाद्विकनूतनबद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति, तदानीमेव संज्वलनक्रोधस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते। ततः प्रभृति मानत्रिकमुपशमयन् संज्वलनक्रोधस्य समयोनावलिकाद्विकेन बद्धदलिकं तावता कालेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेणोपशमयति, शेषं पूर्ववत्, यथा—मानमुपशमयतो जन्तोः संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितेः समयोनावलिकात्रिके शेषे संज्वलनमानस्य पतद्ग्रहताऽपगच्छति, आवलिकाद्विके शेष आगालो व्यवच्छिन्न आवलिकायां च शेषायां बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिद्यन्ते, तदानीं च मानत्रिकं सर्वथोपशान्तं भवति, नवरि संज्वलनमानस्य समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलं तथाऽऽवलिकामात्रप्रथमस्थितिगतं दलमनुपशान्तं तिष्ठतीत्यादि पूर्ववदवसेयम्।

प्रतिपाते प्रक्रियाविशेषः—

मानोदयेनाऽऽरूढो यदि प्रतिपतेत्तर्हि स सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयादारभ्य मायावेदाद्धाचरमसमयं यावत्पुरुषवेदक्रोधोदयेनारूढवत्प्रक्रियां करोति, न कश्चिद्विशेषः। 卐 ततो मानोदयारूढः प्रतिपातुको मानवेदकाऽद्धायाः प्रथमसमयादारभ्य नवानामपि कषायाणां गलिताऽवशेषमात्रीं गुणश्रेणिं विरचयति, तदायामश्च शेषकर्मगुणश्रेण्यायामेन एकादृशो भवति। इह मानवेदकाऽद्धा क्रोधारूढप्रतिपातुकक्रोधमानोदयसमुहितकालप्रमाणः। पुरुषवेदक्रोधोदयारूढस्य मानवेदकाऽद्धायां व्यतिक्रान्तायां पुरुषवेदमानारूढस्य प्रतिपततः क्रोधत्रयमनुपशान्तं भवति, तदानीं द्वितीयस्थितितो दलिकं गृहीत्वोदयावलिकाया उपरितननिषेकात्क्रोधत्रिकदलानि शेषकर्मगुणश्रेण्यायामेन सदृशे गुणश्रेण्यायामे रचयति, स चाऽऽयामो गलिताऽवशेषमात्रः, इत्थं तदानीं द्वादशकषायाणां गलिताऽवशेषगुणश्रेणिर्भवति तथा चारित्रमोहनीयस्य द्वादशप्रकृत्यात्मकं सङ्क्रमस्थानं क्षायिकसम्यग्दृष्टिना प्राप्यते। शेषं पुरुषवेदक्रोधोदयारूढप्रतिपातुकवदवगन्तव्यम्।

अथ मायावेदोदयारूढस्याऽऽरोहणप्रक्रियायां विशेषो भण्यते।

अथ आरोहणप्रक्रियायां विशेषः

पुरुषवेदक्रोधोदयारूढस्य, संज्वलनक्रोधमानमायानां त्रयाणां समुदिता यावन्मात्री प्रथमस्थितिरासीत्, तावन्मात्री पुरुषवेदमायारूढस्य संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितिर्भवति। शेषाणामनुदयवतीनां प्रकृतीनामावलिकामात्री प्रथमस्थितिः क्रियते। पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधोदयद्वयारूढवत्तावद्वक्तव्यम्, यावत्पुरुषवेदस्योदयचरमसमयः, पुरुषवेदोदयस्य चरमसमये हास्यषट्कं पुरुषवेदं

卐 टिप्पणी:—लब्धिसारे यत्कषायेन श्रेणि प्रतिपन्नस्तं कषायं प्राप्याऽन्तरं पूरयतीत्युक्तम्। यस्यकषायस्योदयेन श्रेणिमारुह्य पतितस्तस्मिन्नप्रकृष्टेऽन्तरमापूरयति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च सर्वथोपशम्यते नवरं पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति, तदपि तावता कालेन संज्वलनमायां वेदयन्क्रोधत्रिकं चोपशमयन्नवेदकोऽयं सर्वथोपशमयति । पुरुषवेदक्रोधोदयेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य संज्वलनक्रोधस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धं नूतनदलं विमुच्य क्रोधत्रिकस्योपशमनायां यावन्तं कालं गमयति, तावति कालेऽयं पुरुषवेदमायोदयारूढः क्रोधत्रिकं नपुंसकवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति नवरं समयोनावलिकाद्विकनूतनबद्धदलमनुपशान्तं तिष्ठति, तदानीमेव संज्वलनक्रोधस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते। ततः प्रभृति संज्वलनमानत्रिकमुपशमयितुमारभते मानत्रिकं चोपशमयन् संज्वलनक्रोधस्य नूतनबद्धदलिकं समयोनावलिकाद्विकेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति। पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधारूढो यद्वा संज्वलनमानोदयारूढो यावति काले समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलं वर्जयित्वा मानत्रिकं सर्वथोपशमयति, तावति काले पुरुषवेदमायोदयारूढो मानत्रिकं नपुंसकवेदोक्तप्रकारेणोपशमयति, केवलं संज्वलनमानस्य समयोनावलिकाद्विकेन बद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति, तदानीं च संज्वलनमानस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते। ततः प्रभृति मायात्रिकमुपशमयितुमुपक्रमते मायात्रिकं चोपशमयन् संज्वलनमानस्य समयोनावलिकाद्वयेन बद्धनूतनदलिकं तावता कालेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेणोपशमयति संज्वलनमायायाः प्रथमस्थिते समयोनावलिकाद्वयेन बद्धनूतनदलिकं तावताकालेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेणोपशमयति, संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितेः समयोनावलिकाद्विके शेषे संज्वलनमायायाः पतद्ग्रहता व्यवच्छिद्यते, आवलिकाद्विके शेष आगालो व्यवच्छिन्न आवलिकायां च शेषायां बन्धोदयोदीरणा अपगच्छन्ति। तदानीमेव समयोनावलिकाद्वयबद्धाऽभिनवदलमनुपशान्तं तिष्ठति शेषं पूर्ववदवसेयम् ।

प्रतिपाते प्रक्रियाविशेषः

श्रेणितः प्रतिपतन् सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयादारभ्य बादरलोभवेदकाऽद्धाचरमसमयपर्यन्तं पुरुषवेदक्रोधारूढप्रतिपातुकवज्ज्ञातव्यम् । ततोऽनन्तरं मायावेदकप्रथमसमये षण्णामपि कषायाणां गलिताऽवशेषगुणश्रेणिं करोति ★ तदायामश्च शेषकर्मगुणश्रेण्यायामेन सदृशो भवति । मायावेदकाऽद्धा च क्रोधोदयारूढप्रतिपातुकस्य क्रोधमानमायानां समुदितो यावानुदयकालस्तावान्मायोदयारूढप्रतिपतनस्य केवलमायावेदककालो भवति, यदा क्रोधारूढाऽवतारकस्य मायावेदकाऽद्धायां व्यतिक्रान्तायां मानत्रिकमनुपशान्तं भवति, तदा मायोदयारूढस्य प्रतिपातुकस्य मानत्रिकमनुपशान्तं भवति तदानीमेव द्वितीयस्थितितो मानत्रिकस्याऽपि दलं गृहीत्वोदयावलिकाया उपरि शेषकर्मगुणश्रेण्यायाममदृशीं गलिताऽवशेषां गुणश्रेणिं रचयति, तदानीं मानत्रिकस्याऽनुपशान्तत्वेन चारित्रमोहनीयस्य नवप्रकृत्यात्मकं सङ्क्रमस्थानं क्षायिकसम्यग्दृष्टिना प्राप्यते।

★ टिप्पणी० मायावेदकप्रथमसमयेऽन्तरं पूरयतीति लब्धिसारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः परं क्रोधारूढप्रतिपातुकस्य मानवेदकस्य यावान्कालो भवति, तावति काले व्यतीते क्रोधत्रिकमनुपशान्तं भवति, द्वितीयस्थितितो दलं समाकृष्य क्रोधत्रिकस्योदयावलिकोपरितननिषेकाच्छेषकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशीं गलितावशेषामात्रीं गुणश्रेणिं विरचयति। इतः प्रभृति मोहनीयस्य द्वादशप्रकृतीनां गलितावशेषगुणश्रेणिः प्रवर्तते, क्रोधोपशमनाऽपगमनाच्चारित्रमोहनीयस्य द्वादशप्रकृत्यात्मकं सङ्क्रमस्थानं प्राप्यते, शेषं क्रोधारूढप्रतिपातुकपुरुषवदवधेयम्।

अथ पुरुषवेदसंज्वलनलोभोदयारूढस्याऽऽरोहणप्रक्रियायां विशेष उच्यते।

आरोहणप्रक्रियाविशेषः

पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधोदयारूढेन संज्वलनक्रोधमानमायाबादरलोभानां संपिण्डिता यावन्मात्री प्रथमस्थितिः क्रियते, तावन्मात्री संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितिः पुरुषवेदसंज्वलनलोभोदयारूढेन क्रियते, अर्थादन्तरकरणक्रियाकालप्रथमसमयादारभ्याऽनिवृत्तिकरणचरमसमयादग्रतनाऽऽवलिकापर्यन्तं संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितिः क्रियते, शेषाऽनुदयवतीनां च प्रकृतीनामावलिकामात्री, शेषप्रक्रिया पूर्ववत्तावद्वक्तव्या, यावत्पुरुषवेदोदयस्य चरमसमयः, तदानीं पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते। हास्यषट्कं पुरुषवेदं च सर्वथोपशमयति, केवलं समयोनावलिकाद्विकबद्धदलिकमनुपशान्तं तिष्ठति, तदपि ततोऽनन्तरसमयात्क्रोधत्रिकमुपशमयन् संज्वलनलोभं वेदयन्नपगतवेदोदयं तावता कालेन सर्वथोपशमयति। पुरुषवेदक्रोधोदयारूढः क्रोधत्रिकोपशमनायां यावन्तं कालं नयति, पुरुषवेदलोभोदयारूढस्तावति काले क्रोधत्रिकं नपुंसकवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति, नवरं संज्वलनक्रोधस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धनूतनदलमनुपशान्तं तिष्ठति। तदानीमेव संज्वलनक्रोधस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते, अतः प्रभृति मानत्रिकमुपशमयितुमारभते मानत्रिकं चोपशमयन् संज्वलनक्रोधस्य बद्धनूतनदलमपि समयोनाऽऽवलिकाद्विककालेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति। पुरुषवेदक्रोधोदयप्रतिपन्नो यावति काले समयोनाऽऽवलिकाद्वयबद्धनूतनदलं विमुच्य मानत्रिकमुपशमयति, तावति काले पुरुषवेदसंज्वलनलोभोदयारूढो मानत्रिकं नपुंसकवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति, केवलं संज्वलनमानस्य समयोनावलिकाबद्धनूतनदलमनुपशान्तं तिष्ठति। तदानीं संज्वलनमानस्य बन्धो व्यवच्छिन्नो भवति। ततः प्रभृति मायात्रिकमुपशमयन् संज्वलनमानस्य बद्धनूतनदलं समयोनावलिकाद्विकेन कालेन पुरुषवेदोक्तप्रकारेण सर्वथोपशमयति। पुरुषवेदक्रोधप्रतिपन्नो यावति काले समयोनावलिकाद्वयबद्धदलं वर्जयित्वा मायात्रिकमुपशमयति, तावति काले पुरुषवेदोक्तप्रकारेण लोभोदयारूढो मायात्रिकमुपशमयति, नवरं समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलमनुपशान्तं तिष्ठति। तदानीमेव मायाया बन्धो व्यवच्छिद्यते। अतः प्रभृति लोभत्रिकमुपशमयितुमारभते पुरुषवेदक्रोधोदयारूढवदपूर्वस्पर्धकानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टीश्च करोति, किन्तु संज्वलनबादरलोभस्य प्रथमस्थितिर्न करोति तस्यैव वेद्यमानत्वात्। संज्वलनबादरलोभस्य प्रथमस्थितेः समयोनावलिकात्रये शेषे संज्वलनलोभस्य पतद्ग्रहताऽपगच्छति, आवलिकाद्विके शेषे संज्वलनलोभस्याऽऽगालो व्यवच्छिन्नो भवति, आवलिकायां शेषायां संज्वलनलोभस्य बन्धो बादरसंज्वलनलोभस्य चोदयोऽपगच्छति लोभत्रिकं सर्वथोपशान्तं तिष्ठति, नवरं बादरसंज्वलनलोभस्य समयोनावलिकाद्वयबद्धदलं तथा प्रथमस्थितिसत्काऽवशिष्टाऽऽवलिकागतं दलं किट्टिगतं च दलमनुपशान्तं भवति, शेषं पूर्ववत्तावदवगन्तव्यम् , यावदुपशान्तमोहगुणस्थानकस्य चरमसमयः ।

अवतारणे प्रक्रियाविशेषः

सूक्ष्मसंपरायस्य प्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं सर्वाऽपि प्रक्रिया संज्वलनक्रोधारूढवदवगन्तव्या, ततोऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमयतो लोभारूढप्रतिपातुको लोभत्रिकस्य गलितावशेषमात्रीं शेषकर्मगुणश्रेण्यायामेन समानां गुणश्रेणिं करोति । क्रोधारूढप्रतिपातुकस्य यावान् लोभमायामानक्रोधानां समुदितोदयकालस्तावान् लोभोदयारूढाऽवतारकस्य केवललोभस्योदयो भवति ।

क्रोधोदयारूढप्रतिपतनस्य लोभवेदकाऽद्धायामतीतायां यदा मायात्रिकमनुपशान्तं भवति, तदा लोभारूढप्रतिपादुकस्याऽपि मायात्रिकमनुपशान्तं भवति । तदानीं द्वितीयस्थितेर्मायात्रिकस्य दलं गृहीत्वोदयावलिकाबहिः शेषकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशां गुणश्रेणिं विरचयति, इतः प्रभृति षण्णां कषायाणां गलितावशेषा गुणश्रेणिः प्रवर्तते । मायात्रिकस्याऽनुपशमना तत्सङ्क्रमश्च प्रवर्तते । तदानीं षण्णां कषायाणामनानुपूर्व्या सङ्क्रमो भवति । मायात्रिकस्योपशमनाऽपगमनात्क्रोधारूढप्रतिपातुकस्य मायावेदकाऽद्धायां व्यतिक्रान्तायां यदा मानमनुपशान्तं भवति, तदा संज्वलनलोभारूढप्रतिपादुकस्याऽपि मानत्रिकमनुपशान्तं भवति । इदानीं द्वितीयस्थितितो मानत्रिकस्य दलं गृहीत्वोदयावलिकाया उपरि शेषकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशां गलिताऽवशेषां गुणश्रेणिं करोति । मानत्रिकस्याऽनुपशान्तत्वेन तत्सङ्क्रमसंभवात् नवकषायाणामनानुपूर्व्या सङ्क्रमः प्रवर्तते । मानत्रिकस्योपशमननाशाद्यस्मिन्काले क्रोधारूढप्रतिपातुकस्य मानवेदकाऽद्धायां व्यतिक्रान्तायां क्रोधत्रिकमनुपशान्तं भवति, तस्मिन्काले लोभारूढाऽवतारकस्याऽपि क्रोधत्रिकमनुपशान्तं भवति । तेन द्वितीयस्थितितः क्रोधत्रिकं गृहीत्वोदयावलिकाया बहिः शेषकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशां गलिताऽवशेषमात्रीं गुणश्रेणिं विरचयति । क्रोधत्रिकस्योपशमनाऽपगमनेन तत्सङ्क्रमप्रारम्भाद् द्वादशकषायाणां सङ्क्रम इतः प्रभृति प्रवर्तते, शेषं क्रोधारूढप्रतिपातुकवद्विनिश्चेतव्यं यदा संज्वलनक्रोधमानमायालोभपुरुषवेदानामुपशान्तत्वं नश्यति, तदा तेषां बन्ध आरभ्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्वम्

संप्रति पुरुषवेदसंज्वलनक्रोधोदयारूढस्याऽऽरोहकाऽपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्याऽपूर्वकरण-चरमसमयपर्यन्तं संभाव्यमानानामष्टानवतिपदानां कालतोऽल्पबहुत्वमभिधीयते—

(१) जघन्याऽनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा सर्वाऽल्पा । सा चाऽऽरोहकस्य सूक्ष्मसंपरायचरम-समये समाप्यमानाऽनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा संभवति ।

(२) तत उत्कृष्टानुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा विशेषाऽधिका, सा चाऽऽरोहकाऽपूर्वकरणप्रथम-समये प्रारभ्यमानाऽनुभागखण्डोत्कीर्णाद्धा निश्चेतव्या पूर्वतश्च विशेषाऽधिका ।

卐 (३)ततो जघन्यस्थितिबन्धाद्धा जघन्यस्थितिघाताद्धा च संख्येयगुणे परस्परं च तुल्ये षण्णा-मपि कर्मणामारोहकसूक्ष्मसंपरायचरमसमये समाप्यमानस्थितिघातस्य कालस्तत्कालीनस्थितिबन्ध-कालश्च पूर्वतः संख्यातगुणौ परस्परं च तुल्यौ भवतः। कथमेतदवसीयत इति चेद् ?उच्यते,एकस्मिन् स्थितिघाते रसघातसहस्राणां भवनात्स्थितिघातकालेन च स्थितिबन्धकालस्य तुल्यत्वनियमादारोहक-सूक्ष्मसंपरायचरमसमये समाप्यमानस्थितिघातकालेन तत्कालीनस्थितिबन्धस्य तुल्यत्वं सिध्यति ।

(४) ततोऽवतारकस्य जघन्यस्थितिबन्धाऽद्धा विशेषाऽधिका । यदा जन्तुः श्रेणिमारोहति, तदा तस्य जन्तोर्विशुद्धिर्वर्धते । आरोहकस्य विशुद्धेः प्रवर्धमानत्वादुत्तरोत्तरस्थितिबन्धाद्धा हीना भवति, प्रतिपातुकस्य तु संक्लेशस्याऽभिवर्धनादुत्तरोत्तरस्थितिबन्धाऽद्धा विशेषाऽधिका सञ्जायते । तेनाऽऽरोहकस्य सूक्ष्मसंपरायचरमसमयसमाप्यमानस्थितिबन्धकालतोऽवतारकस्य सूक्ष्मसंपराय-●प्रथमसमयभाविस्थितिबन्धकालो विशेषाऽधिकः । श्रेणितः प्रतिपततस्तु स्थितिघाता न भवन्ति। कथमेतदनुगन्तव्यमिति चेद् ? उच्यते, यद्यवतारकस्य स्थितिघाता मन्येरन्, तर्ह्यवतारकस्य जघन्यस्थितिबन्धाद्धा तत्कालीना स्थितिघाताद्धा च परस्परं समाने पूर्वतश्च विशेषाऽधिके

卐 टिप्पणी- ततो ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यस्थितिकण्डकोत्कीर्णकालः सूक्ष्मसंपरायचरमसमयसंभव्य-निवृत्तिकरणचरमसमयसंभवो मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धकालश्च संख्यातगुणो परस्परं समाना इति लब्धिसारे यदुक्तं तच्चिन्त्यं किं कारणमिति चेद् ? उच्यते सप्तानामपि कर्मणामनिवृत्तिकरणचरम-समये समानस्थितिबन्धकालः परस्परं तुल्यः संभवति, अन्यथा स्वीकारे प्रत्येककर्मणां स्थितिबन्धाद्धा पृथक् वक्तव्या स्यात् । अनिवृत्तिकरणचरमसमयतः परं सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सूक्ष्मसंपरायचरम-समये समाप्यमानस्थितिबन्धस्य कालोऽवाप्यते, तेनाऽनिवृत्तिकरणचरमस्थितिबन्धकालतः सूक्ष्मसंपराय-चरमस्थितिबन्धकालो विशेषहीनो वक्तव्यः,उत्तरोत्तरस्थितिबन्धकालस्य विशेषहीनत्वादतो मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धकालतः शेषषट्कर्मणां जघन्यस्थितिबन्धकालो विशेषहीन एव संभवति न तुल्यः ।

● एदेण सुत्तणिद्देसेण जाणिज्जदे जहा ओदरमाणस्स सव्वावत्थासु ट्ठिदि अणुभागघादा णत्थित्ति जइ अत्थि ते ओदरमाणस्स ट्ठिदिबंधगद्धाए सह ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धं पि भणेज्ज ण च एवं तहाणु-वइट्ठत्तादो। (१६२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्तव्ये स्याताम् , नैवमुच्यते । तेनाऽवतारकस्य स्थितिघाताः न भवन्तीति सिध्यति । एतच्च कषायप्राभृतचूर्णिकारमतेन संभवति, अल्पबहुत्वस्य कषायप्राभृतचूर्णिमतानुसारित्वात् । पञ्चसंग्रहटीकाकृन्मतेन प्रतिपातुकस्यापि स्थितिघाता भवन्त्येव । यदुक्तम्—

"तथा यत् यत्र स्थाने जातं स्थितिरसघातादि तत्तत्र स्थाने तद्दीर्घमेव भवतीति ।"

(५) ततोऽन्तरकरणक्रियाकालो विशेषाऽधिकः । न चाऽन्तरकरणक्रियाकालस्यैकस्थितिबन्धकालेन तुल्यत्वेनाऽवतारकजघन्यस्थितिबन्धाऽद्धातोऽन्तरकरणक्रियाकालस्य विशेषाऽधिक्यं न संभवतीति वाच्यम् , यतोऽनिवृत्तिकरणसत्के संख्येयतमे भागेऽवशिष्टेऽन्तरकरणं स्थितिघातोऽभिनवस्थितिबन्धश्च युगपदारभ्यन्ते, एकेन स्थितिबन्धकालेनाऽन्तकरणं करोति, अत्र यद्यपि तत्कालीनस्थितिबन्धकालेनाऽन्तरकरणं करोतीति नोक्तं तथाऽपि प्रकृतत्वात्तत्कालेनाऽन्तरं करोतीत्येवाऽर्थसंभवेनाऽवतारकस्य जघन्यस्थितिबन्धकालतोऽनिवृत्तिकरणसंख्येयतमे भागेऽवशिष्यमाण आरभ्यमाणस्थितिबन्धकालो विशेषाऽधिकः संभवति, तत्स्थितिबन्धकालेन चाऽन्तरकरणक्रियाकालतुल्यात्वात्पूर्वपदतोऽन्तरकरणक्रियाकालो विशेषाऽधिको भवति ।

(६) तत उत्कृष्टस्थितिबन्धाद्धा उत्कृष्टस्थितिखण्डोत्कीर्णाऽद्धा च विशेषाऽधिके । सप्तानामपि कर्मणामारोहकस्याऽपूर्वकरणप्रथमसमय आरभ्यमाणस्याऽभिनवस्य स्थितिबन्धस्य स्थितिघातस्य च यः कालः पूर्वतो विशेषाऽधिक इति निश्चेतव्यः, किं कारणमिति चेत् ? उच्यते–उत्तरोत्तरस्थितिबन्धकालस्य स्थितिघातकालस्य च विशेषहीनत्वेनाऽनयोः स्थितिबन्धकालस्थितिघातकालयोरन्तरकरणक्रियाकालतुल्यस्थितिबन्धकालतो विशेषाऽधिकत्वसंभवात्पूर्वपदत उत्कृष्टस्थितिबन्धकालस्थितिघातकालौ विशेषाऽधिकौ परस्परं च तुल्यौ भवतः ।

(७) तत आरोहकसूक्ष्मसंपरायचरमसमयभाविगलिताऽशेषगुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः । स च गुणश्रेण्यायामः षण्णामपि कर्मणां सूक्ष्मसंपरायचरमसमये भवति, पूर्वतश्च संख्यातगुणः प्रागन्तर्मुहूर्ततोऽस्याऽन्तर्मुहूर्तकालस्य संख्यातगुणत्वात् ।

(८) तत उपशान्तमोहगुणस्थानकगुणश्रेणिनिक्षेपः संख्यातगुणः । सूक्ष्मसंपरायचरमसमयगलिताऽवशेषगुणश्रेण्यायामत उपशान्तमोहगुणस्थानकप्रथमसमये संख्येयगुणामवस्थिताऽऽयामां गुणश्रेणिं करोतीत्युक्तत्वात्पूर्वत उपशान्तमोहगुणश्रेणिनिक्षेपः संख्यातगुणः सिध्यति ।

(९) ततः प्रतिपातुकस्य सूक्ष्मसंपरायाऽद्धा संख्यातगुणा ।

(१०) ततः प्रतिपातुकस्य सूक्ष्मसंपरायलोभगुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाधिकः । श्रेणितः प्रतिपतन् सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये द्वितीयस्थितितः किट्टीः समाकृष्य सूक्ष्मवेदकाऽद्धात आवलिकाऽधिक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणाऽऽयामे गुणश्रेणिं रचयति, अतः प्रतिपातुकसूक्ष्मसंपरागुणश्रेणिनिक्षेपः पूर्वतो विशेषाऽधिको भवति ।

(११) तत आरोहकसूक्ष्मसंपरायकालः सूक्ष्मकिट्टिप्रथमस्थित्यायामः सूक्ष्मकिट्टयुपशमनकालश्च विशेषाधिकाः स्वस्थाने च मिथस्तुल्या भवन्ति । आरोहकः सूक्ष्मसंपरागुणस्थानकप्रथमसमये द्वितीयस्थितितः किट्टीः समाकृष्य सूक्ष्मसंपरायाऽद्धाप्रमाणं सूक्ष्मलोभस्य प्रथमस्थितिं करोति तथा तत्प्रथमसमयात्सूक्ष्मकिट्टीरनुभवन्सूक्ष्मसंपरायचरमसमयपर्यन्तमुपशमयति, तेन सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमयात्तच्चरमसमयपर्यन्तं सूक्ष्मकिट्टयुपशमनकालोऽपि संभवतीति कृत्वा त्रयः कालाः परस्परं तुल्या भवन्ति । आरोहकस्य सूक्ष्मलोभवेदककालतोऽवरोहकसूक्ष्मलोभवेदककालस्य किञ्चिन्न्यूनत्वस्य प्रागुक्तत्वाच्च न्यूनत्वमावलिकातोऽधिकमितिकृत्वा पूर्वत एते त्रयः कालाः विशेषाऽधिकाः परस्परं च तुल्या भवन्ति ।

(१२) ततः किट्टिकरणाऽद्धा विशेषाऽधिका । लोभवेदकाऽद्धायास्त्रयो विभागाः क्रियन्ते तद्यथा—(१) अश्वकर्णकरणाऽद्धा (२) किट्टीकरणाऽद्धा (३) किट्टीवेदनाऽद्धा च । एतेषां क्रमशो विशेषहीनत्वं प्रागुक्तमिति किट्टिवेदनाऽद्धालक्षणसूक्ष्मसंपरायाऽद्धातः किट्टिकरणाऽद्धा विशेषाऽधिका घटते ।

(१३) ततोऽवतारकस्य बादरलोभवेदकाद्धा संख्येयगुणा । आरोहककिट्टिकरणाद्धाया द्विगुणतोऽप्यधिका आरोहकबादरलोभवेदकाऽद्धा भवति, ततः प्रतिपातुकबादरलोभवेदकाऽद्धायाः किञ्चिन्न्यूनत्वस्यैवोक्तत्वादवतारकलोभवेदकाऽद्धा पूर्वतः संख्यातगुणा संभवति ।

(१४) ततः प्रतिपातुकस्य लोभत्रयस्य गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः परस्परं च तुल्यः । अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये प्रतिपातुको द्वितीयस्थितितो दलं गृहीत्वा लोभत्रयस्य गुणश्रेणिं बादरलोभवेदकाऽद्धात आवलिकामात्रेणाऽधिक आयामे रचयति । यद्यप्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणद्विकस्योदयावलिकाया उपरि गुणश्रेणिर्भवति, तथाऽपि संज्वलनलोभस्य गुणश्रेणिशीर्षेणेतरलोभद्विकस्य गुणश्रेणिशीर्षस्य समानत्वात्तयोरायामस्याऽपि सदृक्षत्वादिति कृत्वा पूर्वतोऽवतारकाऽनिवृत्तिकरणगुणश्रेणिनिक्षेप आवलिकया विशेषाऽधिकः । अत्राऽयं विशेषः— लोभेतरकषायोदयेनाऽऽरूढप्रतिपातुकस्याऽपि लोभस्य तावानेव निक्षेपो भवति ।

(१५) तत उपशमकस्याऽनिवृत्तिकरणगुणस्थानके बादरलोभवेदकाऽद्धा विशेषाऽधिका । आरोहकलोभवेदकाद्धादितोऽवरोहकलोभवेकाऽद्धादीनां किञ्चिन्न्यूनत्वमिति नियमान्न्यूनत्वं आऽऽवलिकातोऽधिकं संभवतीति कृत्वाऽऽरोहकबादरलोभवेदकाऽद्धा पूर्वतो विशेषाऽधिका ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६) ततो बादरलोभस्य प्रथमस्थितिर्विशेषाऽधिका। आरोहकस्य मायावेदनाऽनन्तरं बादरलोभवेदकाऽद्धातः श्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य लोभस्य प्रथमस्थितिरावलिकाकालेनाऽधिका भवतीति कृत्वा बादरलोभस्य प्रथमस्थितिः पूर्वतो विशेषाऽधिका जायते।

卐 (१७) ततः प्रतिपातुकलोभवेदकाद्धा विशेषाऽधिका। अस्याः सूक्ष्मबादरलोभवेदकाऽद्धाद्वयप्रमाणत्वेन पूर्वत आधिक्यं भवति।

(१८) ततः प्रतिपततः मायावेदकाद्धा विशेषाऽधिका। लोभवेदकालतो मायावेदाऽद्धाया आधिक्यात्पूर्वतो विशेषाऽधिक्यं संभवति किं कारणमिति चेद्? उच्यते--श्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य मानवेदककालतो मायावेदककालो विशेषहीनः, ततोऽपि लोभवेदककालो विशेषहीन इति नियमात्प्रतिपातुकस्य लोभवेदककालतो मायावेदककालो विशेषाऽधिको भवति, एवमग्रेऽपि यथास्थानं भावनीयम्।

(१९) ततः प्रतिपातुकस्य मायात्रिकलोभत्रिकरूपषट्कषायाणां गुणश्रेण्यायामो विशेषाऽधिकः। प्रतिपतन् लोभवेदकाऽद्धायां व्यतिक्रान्तायां द्वितीयस्थितितो मायात्रिकं समाकृष्य वेदयति, तदानीं संज्वलनमायाया उदयसमयादप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणमायाद्विकस्य लोभत्रिकस्य चोदयावलिकोपरितननिषेकाद्गुणश्रेणिं मायावेदककालत आवलिकयाऽधिक आयामे विरचयति, तेन षण्णां कषायाणां गुणश्रेणिनिक्षेपः पूर्वतो विशेषाऽधिकः संभवति। अत्राऽपि लोभमायाभ्यामितरकषायेणाऽऽरूढप्रतिपातुकस्य षण्णां कषायाणां गुणश्रेणिनिक्षेपस्तावानेव भवति।

(२०) अवतारकस्य मानवेदकाऽद्धा विशेषाऽधिका हेतुस्त्वष्टादशपद उक्त एव बोद्धव्यः।

(२१) ततो मानवेदयतः प्रतिपातुकस्य नवानां कषायाणां गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः। मायावेदकाद्धायां व्यतीतायां प्रतिपातुको मानं समाकृष्य वेदयति। तदानीं मानत्रिकमायात्रिकलोभत्रिकरूपनवप्रकृतीनां गुणश्रेणिं मानवेदकाऽद्धात आवलिकयाऽधिकायामे रचयति।

(२२) तत आरोहकस्य मायावेदकाऽद्धा विशेषाऽधिका।

(२३) तत आरोहकस्य संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितिर्विशेषाऽधिका, संज्वलनमायावेदककालतः संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितेरावलिकयाऽधिकत्वात्।

(२४) ततो मायोपशमनकालो विशेषाऽधिकः, यतो मायोपशमनकालः पूर्वतः समयोनाऽऽवलिकयाऽधिको भवति। कथमेतदवसीयते? इति चेद्, उच्यते—संज्वलनमायासत्कप्रथम-

---

卐 "ततः पतत्बादरलोभवेदककालो विशेषाऽधिक इति लब्धिसारटीकायां यदुक्तं तच्चिन्त्यं तस्य त्रयोदशपद उक्तत्वात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितेः प्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं मायात्रिकमुपशमयन्नपि न सर्वथोपशमयति, किन्तु समयोनावलिकाद्वयेन बद्धनूतनदलमनुपशान्तत्वेन सत्तायां स्थापयति, ततोऽनन्तरं तावता कालेनोपशमयतीति कृत्वा मायाप्रथमस्थित्याद्यसमयात्तच्चरमसमयपर्यन्तं यो मायावेदककालः, ततः समयोनावलिकाद्विकेनाऽधिक उपशमनकालः, तथा मायावेदकालतो मायाप्रथमस्थितिराव-लिकयाऽधिकेत्युक्तत्वाद् मायाप्रथमस्थितितो मायोपशमनकालः समयोनावलिकयाऽधिकः ।

(२५) ततः प्रतिपद्यमानस्य मानवेदकाऽद्धा विशेषाऽधिका ।

(२६) ततः प्रतिपद्यमानस्य मानकषायस्य प्रथमस्थितिर्विशेषाऽधिका । इदं पदं पूर्वत आवलिकयाऽधिकं भवति, प्रथमस्थितेरावलिकायां शेषायां मानोदयस्य व्यवच्छेदात् ।

(२७) ततो मानोपशमनकालो विशेषाऽधिकः, समयोनावलिकामात्रेणाऽधिकत्वात् । तत्र कारणं तु चतुर्विंशतितमपदवज्ज्ञातव्यम् । नवरमत्र मायास्थाने मान इति वक्तव्यम् ।

(२८) ततः क्रोधोपशमनाऽद्धा विशेषाऽधिका । यद्यपि क्रोधवेदकाऽद्धायां पूर्णायां क्रोधस्य प्रथमस्थितिरावलिकामात्र्यवतिष्ठते, तथा ततः प्रभृति समयोनावलिकाद्वयेन बद्धनूतन-दलमुपशमयतस्तावता कालेनोपशमयति. तथाऽपि मानादिवत्क्रोधवेदककालतः क्रोधप्रथमस्थि-तिर्विशेषाऽधिका. ततोऽपि क्रोधोपशमनकालो विशेषाऽधिक इति न वक्तव्यम् , यतो यथाप्रवृत्त-करणप्रथमसमयात्संज्वलनक्रोधं तावद्वेदयति, यावदनिवृत्तिकरणे यावत्संज्वलनक्रोधोदयस्य चरमसमयः । तेन यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादनिवृत्तिकरणे क्रोधवेदनस्य चरमसमयपर्यन्तं क्रोधवेदकाऽद्धोच्यते, तथाऽनिवृत्तिकरणेऽन्तरकरणक्रियायां समाप्तायामनन्तरसमयादारभ्य क्रोधवेदनचरमसमयत आवलिकयाऽधिका प्रथमस्थितिर्भवति, क्रोधोपशमना तु प्रथमस्थितेर्न-पुंसकवेदस्त्रीवेदहास्यषट्कानामुपशमनाकाले व्यतीते क्रोधस्योपशमना प्रारभ्यते, सा च तावत् प्रवर्तते यावत्क्रोधचरमोदयसमयात्समयोनाऽऽवलिकाद्विकप्रमाणः कालो व्यतिक्रान्तो भवति, ततः क्रोधवेदनकालः सर्वप्रभूतः, ततो हीना क्रोधस्य प्रथमस्थितिः, ततोऽपि न्यूनः क्रोधोपश-मनकाल इत्येव भवति, न तु मानादिक्रमेणाऽल्पबहुत्वं वक्तव्यम् ।

स्थापना चेत्थम्

य　　　　　　　　　　　　　　क　　　　ज　　　ब¹ ब²　　　भ

यथाप्रवृत्तकरणम्	अपूर्वकरणम्	अ—	निवृ—त्ति	क		र	णम्

य .... ब¹ क्रोधवेदनकालः

क .... ब² प्रथमस्थिति. ब¹... भ समयोनावलिकद्वयबद्धानुपशान्तं तावत्कालेनोपशान्तम्

ब¹........................ ब² उच्छिष्टावलिका स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमति मानकषाये

ज .... झ क्रोधोपशमनकालः

(२९) ततो हास्यषट्कोपशमनकालो विशेषाऽधिकः, क्रोधोपशमनकालतो हास्यषट्कोपशमनकालस्य विशेषाऽधिकत्वात् ।

(३०) ततः पुरुषवेदोपशमनकालो विशेषाऽधिकः ।

यतो हास्यषट्कोपशमनकालतः समयोनावलिकाद्विकेनाऽधिकपुरुषवेदोपशमनकालो भवति पुंवेदारूढस्य, न सर्वस्य, कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते—यद्यपि हास्यषट्कं पुरुषवेदं च युगपदुपशमयितुमुपक्रमते, तथाऽपि हास्यषट्के सर्वथोपशान्तेऽपि पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्विकेन बद्धनूतनदलमनुपशान्तं तिष्ठति, तदपि तावता कालेनोपशमयतीति कृत्वा पुरुषवेदोपशमनकालो समयोनावलिकाद्विकेनाऽधिको भवति ।

(३१) ततः स्त्रीवेदोपशमनाद्धा विशेषाऽधिका, पुरुषवेदोपशमनकालतः स्त्रीवेदोपशमनकालो विशेषाऽधिकः, किं कारणमिति चेद् ? उच्यते—श्रेणिमारोहतः पूर्वपूर्वत उत्तरोत्तरसमये विशोधिः प्रवर्धते, तेन प्रागुपशम्यमानप्रकृतीनामुपशमनायां कालः प्रभूतो गच्छति, पश्चादुपशम्यमानप्रकृतीनामुपशमनायां कालो हीनो हीनतरो व्यतिक्रमति, तत्र विशुद्धेराधिक्यादिति संभावयामहे।

(३२) ततो नपुंसकवेदोपशमनकालो विशेषाऽधिकः । हेतुस्तु पूर्ववदवगन्तव्यः ।

(३३) ततः क्षुल्लकभवो विशेषाऽधिकः । षट्पञ्चाशदधिकद्विशतावलिकाप्रमाणः पूर्वतश्च विशेषाऽधिकः ।

(३४) तत उपशान्ताऽद्धा द्विगुणा, उपशान्तमोहगुणस्थानककालः पूर्वतो द्विगुणो भवतीत्यर्थः ।

(३५) ततः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिर्विशेषाऽधिका ।

(३६) ततः क्रोधस्य प्रथमस्थितिर्विशेषाऽधिका ।

अन्तरकरणक्रियायां पूर्णायां क्रोधस्य पुरुषवेदस्य च प्रथमस्थितिर्भवति, तस्यां च क्रमेण नपुंसकवेदहास्यषट्कपुरुषवेदानुपशमयति । तत्र हास्यषट्के सर्वथोपशान्ते पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिरपगच्छति, ततः परं क्रोधस्य प्रथमस्थितिमनुभवन् क्रोधत्रिकं चोपशमयन्नपि क्रोधवेदकाऽद्धाचरमसमयपर्यन्तमुपशमयति, तत आवलिकाऽनन्तरं क्रोधस्य प्रथमस्थितिरपगच्छतीति कृत्वा पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितितः क्रोधस्य प्रथमस्थितिर्विशेषाऽधिका भवति, आधिक्यं च तस्याः किञ्चिन्न्यूनपुरुषवेदप्रथमस्थितिसत्कत्रिभागेन संभवति । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते, क्रोधस्य प्रथमस्थितौ क्रमशश्चत्वारि कार्याणि भवन्ति, प्रथमं नपुंसकवेदोपशमना द्वितीयं स्त्रीवेदोपशमना तृतीयं च पुरुषवेदेन सह हास्यषट्कोपशमना चतुर्थं च समयोनावलि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काद्वयवर्जक्रोधोपशमना तथा पूर्वपूर्वप्रकृत्युपशमनकालप्रमाणत उत्तरोत्तरप्रकृत्युपशमनकालस्य हीनत्वेन पुरुषवेदप्रथमस्थितितः किञ्चिन्न्यूनत्रिभागेनाऽधिका क्रोधप्रथमस्थितिर्भवति ।

स्थापना—

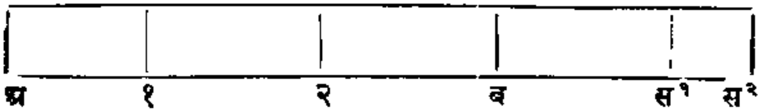

अ .... ब पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितिः

अ........................ स² संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितिः

अ .... १ नपुंसवेदोपशमनाद्धा

१........................ २ स्त्रीवेदोपशमनाद्धा

२........................ ब समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलवर्जपुरुषवेदेन सह हास्यषट्कोपशमनाऽद्धा

ब .... स¹ पुरुषवेदस्य समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलेन सह समयोनावलिकाद्विकबद्धनूतनदलवर्जक्रोधोपशमनाद्धा

स¹ क्रोधोदयस्य चरमसमयः

(३७) ततो मोहनीयस्योपशमनाद्धा विशेषाऽधिका । मोहनीयोपशमनकालः पूर्वतो मानमायालोभरूपत्रयप्रकृतीनामुपशमनकालेनाऽधिकः । कथमेतदवसीयत इति चेद् ? उच्यते—नपुंसकोपशमनाप्रथमसमयादारभ्य समयोनावलिकाद्वयबद्धनूतनदलवर्जक्रोधोपशमनाचरमसमयपर्यन्तं क्रोधस्य प्रथमस्थितिर्भवति, मोहनीयस्योपशमनकालस्तु नपुंसकवेदोपशमनकालप्रथमसमयात्सूक्ष्मलोभोपशमनाकालचरमसमयपर्यन्तं दृश्यत इति कृत्वा क्रोधप्रथमस्थितितो मोहनीयोपशमनकालो मानमायालोभानामुपशमनकालेनाऽधिको वक्तव्यः ।

(३८) ततः प्रतिपातुकस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकालः संख्यातगुणः । श्रेणिं समारोहतो मोहनीयस्य स्थितिबन्धस्स्तोकः, ततोऽसंख्येयगुणो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः, ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः । ततोऽपि वेदनीयस्याऽसंख्येयगुणः, इति स्थितिबन्धस्य क्रमभवनाऽन्तरं सहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु देशघातिरसभवनात्संख्यातसहस्रस्थितिबन्धतोऽर्वागसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा प्रारभ्यते, सा च तावत्प्रवर्तते यावत्प्रतिपातुकस्य सर्वघातिरसभवनाऽनन्तरं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धा गता भवन्ति । तत्र प्रतिपातुकसूक्ष्मसंपरायप्रथमयात्प्रभृति सर्वघातिरसभवनान्तरं संख्यातसहस्रतमस्थितिबन्धाऽद्धाचरमसमयपर्यन्तं विद्यमानो यः कालो भवति, स प्रतिपततोऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणायाः काल उच्यते, स च पूर्वतः संख्यातगुणः भवतीत्युपपद्यते ।

(३९) तत आरोहकस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकालो विशेषाऽधिकः । आरोहककालतोऽवतारककालस्य न्यूनत्वसंभवात्पूर्वतोऽयं विशेषाऽधिको भवति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४०) ततोऽवतारकस्याऽनिवृत्तिकरणाऽद्धा संख्येयगुणा। आरोहकस्याऽनिवृत्तिकरणमन्कर्मसंख्येयबहुभागेषु गतेष्वसंज्ञिबन्धतुल्यस्थितिबन्धो भवति, ततः परमपि स्थितिबन्धसहस्रे षु गतेष्वसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणा प्रारभ्यत इति कृत्वाऽऽआरोहकस्याऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाप्रवर्तनकालोऽनिवृत्तिकरणसंख्येयतमभागप्रमाणो भवति। न च सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकेऽप्यसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणायाः प्रवर्तनादनिवृत्तिकरणसंख्येयतमभागतोऽधिको भवतीति वाच्यम्, सूक्ष्मसंपरायकालस्याऽल्पत्वेनाऽनिवृत्तिकरणसंख्येयतमभाग एव समावेशात्। इत्थमरोहकाऽनिवृत्तिकरणकालोऽसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकालतः संख्येयगुणः सिध्यति। ततोऽवतारकाऽनिवृत्तिकरणकालस्य किञ्चिन्न्यूनत्वं वक्तव्यम् आरोहककालतोऽवरोहककालस्य न्यूनत्वनियमात्। इत्थं पूर्वतोऽवरोहकाऽनिवृत्तिकरणकालः संख्यातगुणः सिध्यति।

(४१) तत आरोहकस्याऽनिवृत्तिकरणाऽद्धा विशेषाऽधिका। आरोहकतोऽवरोहककालस्य न्यूनत्वात्पूर्वत आरोहकाऽनिवृत्तिकरणाऽद्धा विशेषाऽधिका निश्चेतव्या।

(४२) ततः प्रतिपातुकस्याऽपूर्वकरणाऽद्धा संख्यातगुणा। अस्याः पूर्वतो बृहत्तराऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् संख्यातगुणत्वं न्याय्यम्।

(४३) तत आरोहकस्याऽपूर्वकरणाऽद्धा विशेषाऽधिका। तत्र हेतुस्त्वेकचत्वारिंशत्पदवदवगन्तव्यः।

(४४) ततः प्रतिपतत उत्कृष्टगुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः। प्रतिपातुकस्य सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये शेषकर्मणां गुणश्रेणिरपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसंपरायाऽद्धात्रयात्किञ्चिदधिककालप्रमाणगलिताऽवशेषाऽऽयामे भवति। यद्यप्यवतारकाऽपूर्वकरणकाल आरोहकतो न्यूनो भवति, तथाऽपि गुणश्रेणिनिक्षेपोऽनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसंपरायाऽद्धाया अधिककालस्याऽपि समावेशात्पूर्वतो विशेषाऽधिको युक्तिसहः। अयमुत्कृष्टगुणश्रेणिनिक्षेपो मोहनीयवर्जशेषककर्मणामेव सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये वक्तव्यः, किं कारणमिति चेद्? उच्यते सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये मोहनीयस्य गुणश्रेणिनिक्षेपस्तत्कालतः किञ्चिदधिकाऽऽयामप्रमाणो भवति, न त्वपूर्वकरणादिकालत्रयादधिककालप्रमाणशेषकर्मवत्। तथा शेषकर्मण्यपि यदि सूक्ष्मसंपरायस्याऽऽद्यसामयिकगुणश्रेणिनिक्षेपो न ग्राह्यते, तर्हि निक्षेपस्य गलिताऽवशेषत्वादन्यसमयेषूत्कृष्टनिक्षेपो न प्राप्येत। अत्रेदमपि विशेषतो बोध्यम्, यद् मोहनीयस्य शेषकर्मसदृशोत्कृष्टगुणश्रेणिनिक्षेपो न भवति, तथाप्यारोहकाऽपूर्वकरणतः प्रपततो मोहनीयस्योत्कृष्टगुणश्रेणिनिक्षेपोऽपि विशेषाऽधिको भवति।

(४५) तत आरोहकाऽपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिकः। प्रतिपातुकत आरोहकस्याऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसंपरायकालानामाधिक्यादवरोहकोत्कृष्टगुणश्रेणिनिक्षेपत आरोहकोत्कृष्टगुणश्रेणिनिक्षेपो विशेषाऽधिको निश्चेतव्यः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४६) तत आरोहकस्य क्रोधवेदकाऽद्धा संख्येयगुणा। श्रेणिं प्रतिपद्यमानो यथाप्रवृत्तकरणप्रथमसमयात्प्रभृत्यनिवृत्तिकरणसंख्येयबहुभागं यावत्क्रोधमनुभवति, सा क्रोधवेदकाऽद्धोच्यते। गुणश्रेण्यायामस्त्वपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसंपरायाद्धात्रयात्किञ्चिदधिककालप्रमाणः यथाप्रवृत्तकरणकालस्य संख्यातगुणत्वेनाऽऽरोहकक्रोधवेदकाऽद्धा संख्यातगुणा भवति।

स्थापना त्वित्थम्

ब·····——·········इ गुणश्रेणिनिक्षेपः
य··········· ···प क्रोधवेदकाऽद्धा
य········ ······——···अ यथाप्रवृत्तकरणाऽद्धा
अ ···················ब अपूर्वकरणाऽद्धा
ब ········ ——····क अनिवृत्तिकरणाऽद्धा
क········ · —··ड सूक्ष्मसंपरायाऽद्धा
प —·················क मानमायालोभवेदकाद्धा

न चाऽपूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रवर्तमानपदार्थानामेवाऽल्पबहुत्वं प्रावप्रतिज्ञातम्, तर्हि क्रोधवेदकाऽद्धायां यथाप्रवृत्तकरणकालस्य प्रवेशात्प्रतिज्ञाहानिरिति वाच्यम्, अपूर्वकरणादिषु प्रवर्तमानपदार्थे कथ्यमाने तत्सम्बन्धिपदार्थानां कथने न कश्चिद् बाधः, तेनाऽग्रेऽप्यल्पबहुत्वाऽधिकारे प्रसंगवशाद् यथाप्रवृत्तकरणगुणश्रेणिनिक्षेपोऽभिधास्यते।

(४७) ततो यथाप्रवृत्तकरणसंयतस्य गुणश्रेणिनिक्षेपः संख्यातगुणः। अत्र प्रतिपातुकस्य यथाप्रवृत्तसंयतगुणश्रेणिनिक्षेपो ज्ञातव्यः।

(४८) ततो दर्शनमोहोपशान्ताऽद्धा संख्यातगुणा। दर्शनत्रिकमुपशमय्य षष्ठगुणस्थानकं सप्तमगुणस्थानकं च सहस्रशः स्पृष्ट्वा चारित्रमोहनीयमुपशमय्योपशान्तमोहगुणस्थानकं परिस्पृश्य श्रेणितः प्रतिपतञ्जन्तुः सूक्ष्मसंपरायाऽनिवृत्तिकरणाऽपूर्वकरणयथाप्रवृत्तकरणाऽद्धाचतुष्कमनुभूय यावत्प्रमत्तादिगुणस्थानके क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं न प्राप्नोति, ततोऽर्वाग्सर्वोऽपि कालो दर्शनत्रिकोपशान्ताद्धा प्रोच्यते। सा च पूर्वतः संख्यातगुणा।

(४९) ततश्चारित्रमोहनीयस्याऽन्तराऽऽयामः संख्येयगुणः। न च चारित्रमोहनीयोपशमनात्पूर्वं दर्शनत्रिकमुपशमयति तथा मोहनीयोपशमनाऽपगमनात्पूर्वं दर्शनत्रिकोपशमना प्रणश्येत्, तर्हि चारित्रमोहनीयस्याऽन्तरायामो दर्शनत्रिकोपशान्ताऽद्धातः संख्यातगुणः कथं भवितुमर्हति? हीनो वक्तव्य इति वाच्यम्, चारित्रमोहनीयोपशान्ताऽद्धा दर्शनत्रिकोपशान्ताऽद्धातो हीना युक्ता, चतुस्त्रिंशत्तमे पदे तस्या विहितत्वात्, अत्र तु मोहनीयाऽन्तरकरणाऽऽयामस्य मोहोपशान्ताऽद्धातो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्नत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वे न कश्चिद्दोषः। कथमिति चेद्? उच्यते—यावानन्तरकरणाऽऽयामस्तावत्यायामे चारित्रमोहनीयप्रकृतय उपशान्ता न तिष्ठन्ति, अपि त्वन्तकरणाऽऽयाममंख्येयतमभागपर्यन्तमेवोपशान्तास्तिष्ठन्ति, ततः परं क्रमशोऽनुपशान्ता भवन्ति। अन्तरकरणाऽऽयामश्चाऽन्तरकरणक्रियाकाले चारित्रमोहनीयस्य दलिकाऽभाववती कृता स्थितिरुच्यते, सा चेत्थं पूर्वतस्संख्यातगुणा संभवति।

(५०) ततो दर्शनमोहस्याऽन्तराऽऽयामस्संख्यातगुणः। अत्राऽपि पूर्ववद्दर्शनत्रिकाऽन्तरकरणक्रियाकाले दर्शनत्रिकस्य दलिकाऽभाववती कृता स्थितिर्वाच्या।

(५१) ततो जघन्याऽबाधा संख्यातगुणा। सूक्ष्मसंपरायचरणसमयबध्यमानमोहनीयवर्जषट्कर्मणां तथा मोहनीयकर्मणोऽनिवृत्तिकरणचरमसमये जघन्याऽबाधा प्राप्यते, सा चान्तर्मुहूर्तप्रमाणा पूर्वतस्संख्यातगुणा भवति।

(५२) तत उत्कृष्टाऽबाधा संख्यातगुणा। उत्कृष्टाऽबाधा चाऽवतारकाऽपूर्वकरणचरमसमये प्राप्यते, आरोहकसूक्ष्मसंपरायचरमसमयसत्कस्थितिबन्धतः प्रतिपातुकाऽपूर्वकरणचरमसमयसत्कस्थितिबन्धस्य संख्यातगुणत्वेनाऽबाधायाश्च स्थितिबन्धाऽनुसारित्वात्तस्याः पूर्वतः संख्यातगुणत्वं सिध्यति।

(५३) ततः प्रतिपद्यमानस्य मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणः पूर्वतोऽनिवृत्तिकरणचरमसमयेमोहनीयकर्मणां स्थितिबन्धस्य संख्यातगुणेन बृहत्तराऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वं निश्चेतव्यम्।

(५४) ततः प्रतिपातुकस्य मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्ध संख्यातगुणः। प्रतिपातुकाऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमयभावी ग्राह्यः, प्रतिपद्यमानस्थितिबन्धतः प्रतिपातुकस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वं सिध्यति।

(५५) तत उपशमकस्य घातित्रयस्य जघन्यस्थितिबन्धस्संख्यातगुणः। स चाऽऽरोहकसूक्ष्मसंपरायचरमसमये प्राप्यते, तस्य चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वेऽपि पूर्वतः संख्यातगुणत्वं सुमन्तव्यम्।

(५६) ततः प्रतिपातुकस्य घातित्रयस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणः। स चाऽवरोहकस्य सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये भवति, आरोहकतोऽवरोहकस्य स्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वनियमात्पूर्वतः संख्यातगुणत्वं युक्तमेव।

(५७) ततोऽन्तर्मुहूर्तकालः संख्यातगुणः। इतः पूर्वपदानामन्तर्मुहूर्तमात्रत्वेऽपि अन्तर्मुहूर्तकालस्य भेदबाहुल्यादस्य समयोनमुहूर्तप्रमाणस्योत्कृष्टाऽन्तर्मुहूर्तकालस्य पूर्वतस्संख्यातगुणत्वं सयुक्तिकम्। अतः परं पदानां कालो मुहूर्ततोऽधिको भवतीति ज्ञातव्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५८) तत आरोहकस्य नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणः। उपशमकस्य नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धः सूक्ष्मसंपरायचरमसमये षोडशमुहूर्ताः, तेषां चाऽन्तर्मुहूर्ततः संख्यातगुणत्वेन पूर्वत आरोहकस्य नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धस्संख्यातगुणः।

(५९) ततो वेदनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धो विशेषाऽधिकः। आरोहकसूक्ष्मसंपरायचरमसमये भाविनोर्नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धस्य षोडशमुहूर्तप्रमाणत्वात्तदानीं च वेदनीयस्य चतुर्विंशतिमुहूर्तप्रमाणत्वात्तस्य पूर्वतोऽष्टमुहूर्तैराधिक्यं ज्ञातव्यम्।

(६०) ततः प्रतिपातुकस्य नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धो विशेषाऽधिकः। उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमाने नामगोत्रयोः सूक्ष्मसंपरायचरमसमयभाविषोडशमुहूर्तप्रमाणजघन्यस्थितिबन्धतोऽवरोहकस्य नामगोत्रयोः सूक्ष्मसंपरायप्रथमसमये भाविजघन्यस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वेन द्वात्रिंशन्मुहूर्तप्रमाणत्वेन पूर्वपदतोऽष्टमुहूर्तैराधिक्यं भवति।

(६१) ततः प्रतिपातुकस्य वेदनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धो विशेषाऽधिकः। आरोहकस्य सूक्ष्मसंपरायचरमसमये वेदनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धतोऽवरोहकस्य जघन्यस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वेनाऽष्टाचत्वारिंशन्मुहूर्तप्रमाणत्वेनपूर्वपदतः षोडशमुहूर्तैराधिक्यं निश्चेतव्यम्।

(६२) तत उपशमकस्य मायायाः जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणः। श्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य मायाया जघन्यस्थितिबन्धस्यैकमासिकत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वं युज्यते।

(६३) ततः प्रतिपातुकस्य मायाया जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणः। श्रेणितः प्रतिपातुकस्य मायाया जघन्यस्थितिबन्धस्याऽऽरोहकतो द्विगुणत्वेन द्वैमासिकत्वेनेति यावत्पूर्वपदतः संख्यातगुणत्वं सहेतुकम्।

(६४) तेनोपशमकस्य मानस्य जघन्यस्थितिबन्धस्तुल्यः। श्रेणिं प्रतिपद्यमानस्य मानस्य चरमस्थितिबन्धस्य द्वैमासिकत्वेन पूर्वेण समानत्वं संभवति।

(६५) ततः प्रतिपातुकस्य मानस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्यातगुणः। आरोहकतोऽवतारकस्य स्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वं सिध्यति।

(६६) तेनाऽऽरोहकस्य क्रोधस्य जघन्यस्थितिबन्धस्तुल्यः। आरोहकस्य क्रोधस्य चरमस्थितिबन्धस्य चातुर्मासिकत्वेन पूर्वेण समानत्वं भवति।

(६७) ततः प्रतिपततः क्रोधस्य जघन्यस्थितिबन्धस्संख्येयगुणः। आरोहकतोऽवरोहकस्य स्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वात्।

(६८) तत उपशमकस्य पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धस्संख्यातगुणः। उपशमकस्य चरमस्थितिबन्धस्य षोडशवर्षप्रमाणत्वेन पूर्वतः संख्येयगुणत्वे न कश्चिद्दोषः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

(६९) ततस्तदानीमेवोपशमकस्य संज्वलनचतुष्कस्य जघन्यस्थितिबन्धस्संख्यातगुणः। उपशमकस्य पुरुषवेदसत्कचरमस्थितिबन्धकालीनसंज्वलनचतुष्कस्थितिबन्धस्य द्वात्रिंशद्वार्षिकत्वेन पूर्वतः संख्यातगुणत्वं न्याय्यम्।

(७०) तेन प्रतिपातुकस्य पुरुषवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धस्तुल्यः, प्रतिपततो जन्तोरपि पुरुषवेदसत्कबन्धप्रथमसमये प्रारभ्यमाणस्य स्थितिबन्धस्य द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणत्वात्पूर्वपदेन तुल्यत्वं न्याय्यम्।

(७१) ततः प्रतिपातुकस्य तदानीं संज्वलनचतुष्कस्य स्थितिबन्धो द्विगुणः। आरोहकतोऽवतारकस्य स्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वेन प्रतिपातुकस्य तदानीं पुरुषवेदबन्धसमय इत्यर्थः, संज्वलनचतुष्कस्य चतुषष्टिवर्षप्रमाणत्वात्पूर्वतः संख्यातगुणत्वं युक्तमेव।

(७२) तत आरोहकस्य मोहनीयस्य संख्यातवर्षप्रमाणः प्रथमस्थितिबन्धः संख्यातगुणः। अन्तरकरणक्रियायां समाप्तायां मोहनीयस्य स्थितिबन्धः संख्यातवर्षमात्रो भवति, सोऽत्र ग्राह्यः, नाऽन्यः।

(७३) ततोऽवतारकस्य चरमो मोहनीयस्य संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः संख्यातगुणः। आरोहकतोऽवरोहकस्य संक्लेशाऽधिक्यात्स्थितिबन्धस्य प्रभूतत्वं संभवति। श्रेणितः प्रतिपततोऽल्पकालपर्यंतं द्विगुणनियमस्य सद्भावादत्र पूर्वतः संख्यातगुणत्वे न कश्चिद् बाधः।

(७४) तत उपशमकस्य घातित्रयस्य प्रथमः संख्येयवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धःसंख्यातगुणः। आरोहकस्य स्त्रीवेदोपशमनाकालस्य संख्येयतमे भागेऽतीते प्रवर्तमानसंख्येयवार्षिक आद्यस्थितिबन्धः प्रवर्तते, सोऽत्र ग्राह्यः।

(७५) ततः प्रतिपातुकस्य घातित्रयस्य चरमसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः। अत्र हेतुस्तु त्रिसप्ततितमपदवज्ज्ञातव्यः। अयं विशेषः—श्रेणितः प्रतिपातुकस्य स्त्रीवेदोपशमनाऽपगमनत आरभ्य नपुंसकवेदोपशमनाऽपगमपर्यन्तं विद्यमानकालस्य संख्येयबहुभागेषु व्यतिक्रान्तेषु घातित्रयस्य यश्चरमः संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः, सोऽत्र ग्राह्यः।

(७६) तत उपशमकस्याऽघातित्रयस्य प्रथमः संख्येयवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धः संख्यातगुणः। आरोहकस्य हास्यषट्कोपशमनायाः संख्येयतमे भागे व्यतीते योऽघातित्रयस्याऽऽद्यः संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो भवति, सोऽत्र निश्चेतव्यः।

(७७) ततोऽवतारकस्याऽघातित्रयस्य चरमः संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः। हेतुस्तु त्रिसप्ततितमपदवदत्राऽप्यवगन्तव्यः। पुरुषवेदोपशमनानाशतः प्रभृति स्त्रीवेदोपशमनानाशपर्यन्तं विद्यमानस्य कालस्य संख्येयबहुभागेषु व्यतिक्रान्तेषु योऽघातित्रयस्य चरमः संख्येय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षमात्रः स्थितिबन्धः, सोऽत्राऽभ्युपगन्तव्यः, प्रतिपातुकस्याऽघातित्रयस्य चरमसंख्येयवार्षिकस्थितिबन्धतोऽघातित्रयस्य संख्येयवार्षिकस्थितिबन्धस्याऽर्वाक्प्राप्तत्वेऽपि संख्यातगुणत्वमिदानीमपि=प्रतिपातुकस्य घातित्रयस्य चरमसंख्येयवार्षिकस्थितिबन्धाऽवसरेऽपीत्यर्थः, मोहनीयस्य सर्वाऽल्पस्थितिबन्धः, ततः संख्यातगुणो घातित्रयस्य, ततोऽपि संख्येयगुणोऽघातित्रयस्येत्यल्पबहुत्वसत्त्वात् ।

(७८) तत उपशमकस्य मोहनीयस्याऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । स चाऽन्तरकरणक्रियाकालभावी ग्राह्यः । ततः परं मोहनीयस्य संख्यातवार्षिकः स्थितिबन्धो भवति ।

(७९) ततः प्रतिपततो मोहनीयस्य प्रथमोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । संक्लेशवर्धनात्प्रतिपातुकस्य स्थितिबन्ध आरोहकतोऽसंख्येयगुणः संभवति ।

(८०) तत उपशमकस्य घातित्रयस्य चरमोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । आरोहकस्य स्त्रीवेदोपशमनायाः संख्येयतमे भागे गते घातित्रयस्याऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो भवति, मोहनीयस्याप्यन्तरकरणक्रियाकालभाविमोहनीयसत्कचरमस्थितिबन्धतोऽसंख्येयगुणो भवति, एवमन्यत्राऽपि यथास्थानं भावनीयम् ।

(८१) ततोऽवरोहकस्य घातित्रयस्य प्रथमोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । पञ्चसप्ततितमपदे यो घातित्रयस्य चरमस्संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो विहितः, ततोऽनन्तरं प्रवर्तमानः स्थितिबन्धोऽत्र ज्ञातव्यः, हेतुस्तु त्रिसप्ततितमपद उक्तः ।

(८२) तत उपशमकस्य नामगोत्रवेदनीयानां चरमोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । प्रतिपद्यमानस्य हास्यषट्कपुरुषवेद पशमनाकालस्य संख्येयतमे भागे गतेऽघातित्रयस्य चरमोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽत्राप्यते, (भावना त्वष्टसप्ततितमपदवत्कर्तव्या ।) १

(८३) ततः प्रतिपातुकस्य नामगोत्रवेदनीयानां प्रथमोऽसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । हेतुस्तु त्रिसप्ततितमपदवन्निश्चेतव्यः । सप्तसप्ततितमपदेऽघातित्रयस्य चरमसंख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः, ततोऽनन्तरभावी स्थितिबन्धोऽत्र ज्ञातव्यः, अत्राऽयं विशेषतोऽवगन्तव्यः यस्मिन्काल आरोहकस्य यः स्थितिबन्धो भवति, ततोऽन्तर्मुहूर्तेन प्रागवरोहकस्य तत्स्थितिबन्धः प्राप्यते ।

(८४) तत उपशमकस्य नामगोत्रयोः पल्योपमसंख्यातभागमात्रः प्रथमः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः । नामगोत्रयोः पल्योपममात्रस्थितिबन्धभवनाद्यः पल्योपमसंख्येयभागमात्रो भवति, सोऽत्र बोध्यः ।

(८५) तत आरोहकस्य घातित्रयवेदनीयानामाद्यपल्योपमसंख्येयभागप्रमाणः स्थितिबन्धो

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

विशेषाऽधिको भवति, घातित्रयस्य पल्योपममात्रस्थितिबन्धादनन्तरभावी पल्योपमसंख्येयभाग मात्रो ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायवेदनीयानां नूतनस्थितिबन्धोऽत्र ग्राह्यः, पूर्वतो बृहत्तरत्वात् ।

(८६) तत आरोहकस्य मोहनीयस्य पल्योपमसंख्यातभागमित आद्यः स्थितिबन्धो विशेषाऽधिकः, स च पूर्वतो बृहत्तरः ।

(८७) ततश्चरमस्थितिखण्डं संख्येयगुणम् । तच्च सूक्ष्मसंपरायचरमसमये ज्ञानावरणादिकर्मणां भवति, तस्य च पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणत्वेऽपि पूर्वतः संख्यातबृहत्तरत्वं वाच्यम्।

(८८) पल्योपममात्रस्थितिबन्धात्प्राग्यः स्थितिबन्ध आसीत्, तस्माद् येन पल्योपमसंख्येयभागेन हीनो भूत्वा पल्योपमप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति, स पल्योपमसंख्येयभागः पूर्वतःसंख्यातगुणः ।

(८९) ततः पल्योपमः संख्येयगुण, पूर्वपदस्य पल्योपमसंख्यातभागमात्रत्वात् ।

(९०) तत आरोहकस्याऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमयभावी स्थितिबन्धः संख्येयगुणः । आरोहकाऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमयभाविस्थितिबन्धस्याऽन्तःसागरोपमकोटिप्रमाणत्वेन सागरोपमलक्षपृथक्त्वात् पूर्वतोऽस्य संख्येयगुणत्वं संभवति ।

(९१) ततोऽवतारकाऽनिवृत्तिकरणचरमसमयभावी स्थितिबन्धः संख्यातगुणः ।

(९२) तत आरोहकस्याऽपूर्वकरणप्रथमसमयभावीस्थितिबन्धः संख्यातगुणः । अपूर्वकरणस्य प्रथमसमय आरोहकोऽन्तःसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणां स्थितिं बध्नातीति कृत्वा पूर्वत इदं पदं संख्यातगुणं संभवति ।

(९३) ततः प्रतिपातुकस्याऽपूर्वकरणचरमसमये स्थितिबन्धः संख्येयगुणः ।

卐 (९४) ततः प्रतिपातुकस्याऽपूर्वकरणाचरमसमये स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणम् ।

(९५) ततोऽवरोहकस्याऽपूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाऽधिकम् । येषां मतेनाऽवतारकस्याऽपूर्वकरणे स्थितिघातादयो न भवन्ति, तेन तैः स्थितिन्यूना न भवति किन्तूदयेन क्षीणा भवति । इत्थमपूर्वकरणप्रथमसमये यत्स्थितिसत्त्वमासीत्, तदेवाऽन्तर्मुहूर्तोनमपूर्वकरणचरमसमये भवति, उदयेनान्तर्मुहूर्तकालस्य वेदितत्वात् येषां मतेनावतारकस्यापि स्थितिघाता भवन्ति, तेषां मतेन संख्यातैः स्थितिखण्डैर्न्यूनं भवति । तच्च न्यूनत्वं संख्येयभागमात्रम्, तेन चरमसमयतः प्रथमसमये स्थितिसत्त्वमन्तर्मुहूर्तकालेन वा संख्येयभागेन वाऽधिकं भवतीति कृत्वा पूर्वत इदं पदं विशेषाऽधिकं संभवति ।

卐 अंतकोडाकोडीपमाणत्तअविसेसेवि सम्माइट्ठिम्मि बंधादो संतस्स संखेज्जगुणभावेन एवं सव्वद्ध अवट्ठाणादो (जयधवला १९३७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९६) ततोऽवतारकस्याऽनिवृत्तिकरणचरमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाऽधिकम् । प्रतिपातुकस्य स्थितिघातानभिगच्छतां मतेन पूर्वपद उदयेन समयमात्रस्थितेः क्षीणत्वेन पूर्वस्थितिसत्त्वतः समयमात्रकालेनाधिकत्वात् । अवतारकस्य स्थितिघातानभ्युपगच्छतां मतेनैकेन स्थितिखण्डेनाधिकत्वात् ।

(९७) तत आरोहकस्याऽनिवृत्तिकरणप्रथमसमये स्थितिसत्कर्म संख्येयगुणम् । आरोहकाऽनिवृत्तिकरणादिषु स्थितिघातैः स्थितिसत्कर्मनाशात्पूर्वतः संख्येयगुणमविरुद्धम् ।

(९८) तत उपशमकस्याऽपूर्वकरणचरमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाऽधिकम् । पूर्वतश्चरमसमये पल्योपमसंख्येयभागमितघात्यमानखण्डेनाधिकं भवति ।

(९९) तत उपशमकस्याऽपूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणम्, अपूर्वकरणे बहुसंख्येयभागानां स्थितिघातैर्घातितत्वेन पूर्वपदस्य संख्येयभागमात्रत्वात् ।

उक्तं च कषायप्राभृतचूर्णौ अल्पबहुत्वम्—एत्तो पुरिसवेदेण सह कोहेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पडिवदमाणगस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति एदिस्से अद्धाए जाणि कालसंजुत्ताणि पदाणि तेसिमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो—तं जहा........सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा । उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा च तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । पडिवदमाणगस्स जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा विसेसाहिया । अंतरकरणद्धा विसेसाहिया । उक्कस्सिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा च विसेसाहिया । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो त चेव गुणसेढिसीसयं त्ति भण्णदि । उवसंतकसायस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयद्धा संखेज्जगुणा । तस्सेव लोभस्स गुणसेढीणिक्खेवो विसेसाहिओ ।

उवसामगस्स सुहुमसांपराइयद्धा किट्टिणमुवसामणद्धा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी च तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । उवसामगस्स किट्टिकरणद्धा विसेसाहिया । पडिवदमाणगस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा संखेज्जगुणा । तस्सेव लोहस्स तिविहस्स वि तुल्लो गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसामगस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया, तस्सेव पढमट्ठिदि विसेसाहिया । पडिवदमाणयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया, पडिवदमाणगस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मायावेदगद्धा विसेसाहिया। तस्सेव मायावेदगस्स छण्णं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ।

पडिवदमाणगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया। तस्सेव पडिवदमाणगस्स माणवेदगस्स णवण्हं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ। उवसामगस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया। मायाए पढमट्ठिदी विसेसाहिया। मायाए उवसामणद्धा विसेसाहिया। उवसामगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया। माणस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। माणस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। कोहस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। छण्णोकसायाणामुवसामणद्धा विसेसाहिया। पुरिसवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। इत्थिवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। णपुंसयवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। खुद्दाभवग्गहणं विसेसाहियं।

उवसंतद्धा दुगुणा। पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। कोहस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। मोहणीयस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। पडिवदमाणगस्स जाव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा सो कालो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणकालो विसेसाहिओ। पडिवदमाणयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, उवसामगस्स अणियट्टिअद्धा विसेसाहिया। पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा। उवसामगस्स अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया। पडिवदमाणगस्स उक्कस्सओ गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ।

उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमयगुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ। उवसामगस्स कोधवेदगद्धा संखेज्जगुणा। अधापवत्तसंजदस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो। दंसणमोहणीयस्स उवसंतद्धा संखेज्जगुणा। चारित्तमोहणीयमुवसामगो अंतरं करेंतो जाओ ट्ठिदिओ उक्कीरदि ताओ ट्ठिदिओ संखेज्जगुणाओ। दंसणमोहणीयस्स अंतरट्ठिदिओ संखेज्जगुणाओ। जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा। उवसामगस्स मोहणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स मोहणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एदेसिं चेव कम्माणं पडिवदमाणयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। अंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवसामगस्स जहण्णगो णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ, पडिवदमाणगस्स णामागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। तस्सेव वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। उवसामगस्स मायासंजलणस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो मासो। तस्सेव पडिवदमाणगस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बे मासा। उवसामगस्स माणसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बे मासा। पडिवदमाणगस्स तस्सेव जहण्णओ ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा। उवसामगस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठमासा। उवसामगस्स पुरिसवेदस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि तस्समये चेव संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि।

पडिवदमाणगस्स पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बत्तीसवस्साणि। तस्समये चेव संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चउसट्ठिवस्साणि। उवसामगस्स पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स तिण्हं घादिकम्माणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स णामागोदवेदणीयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणगस्स णामागोदवेदणीयाणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ संखेज्जगुणो।

उवसामगस्स चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणगस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। उवसामगस्स घादिकम्माण चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणगस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो घादिकम्माणं संखेज्जगुणो। उवसामगस्स णामागोदवेदणीयाणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणगस्स णामागोदवेदणीयाणं पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। उवसामगस्स णामागोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ पढमो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।

णाणावरणदंसणावरणवेदणीयअंतराइयाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। मोहणीयस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। जाओ ट्ठिदिओ परिहाइदूण पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो, ताओ ट्ठिदिओ संखेज्जगुणाओ। पलिदोवमं संखेज्जगुणं। अणियट्टिस्स पढमसमये ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमये ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमये ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमये ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमये ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। उवसामगस्स अणियट्टिस्स पढमसमये ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। उवसामगस्स चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए अपुव्वकरणस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

तदेवं परिसमाप्ता प्रथमोपशमिकसम्यक्त्व–देशविरति-सर्वविरत्यनन्तानुबन्धिविसंयोजना-तदुपशमना–क्षायिकसम्यक्त्व-श्रेण्युपशमसम्यक्त्वोपशमश्रेण्यारोहणावरोहणप्रक्रिया प्ररूपणा। एतत्प्ररूपणाव्यावर्णनेन मया यत् पुण्यमुपार्जितम्, तेन जीवानामेतेषां गुणानां प्राप्तिर्भवेत्, प्रान्ते च शिवम्।

अथ प्रशस्तिः

नौमि **श्रीवीरनाथं** गणधरसुनुतं पादयुग्मं यदीयं,
शक्रेन्द्रादिद्युनाथैः स्तुत इह भरते तीर्थनाथोऽन्तिमो यः।
प्राप्ता भव्याश्च यस्यामृतसमवचसा बोधिरत्नं त्वनेके,
प्रव्रज्यां यस्य पार्श्वे शिवसदनफलां चोररीकृत्य सिद्धाः ॥१॥ (स्रग्धरा)

यद्विद्याच्छवितो भगः किमुत खं भीत्याधिगम्याऽटति,
शुभ्रो यद्यशउच्चयः किमुत खे पर्येति चन्द्रच्छलात्

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

कर्मारेर्हतये व्यधुः किमुत ये कर्मप्रकृत्यायुर्ध,
दद्युस्ते **शिवशर्मसूरिगुरवः** कर्म प्रणाशे बलम् ॥२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

यस्योपास्तिमवाप्य सच्चरणयोर्लब्ध्वा यदीयां कृपां,
वृत्ति प्रेमगुणा मयोपशमनासंज्ञेऽधिकारे खलु ।
श्रीकर्मप्रकृतौ दब्धा सुगुरुणा सा येन संशोधिता,
जीयात् कर्मकृतान्तवित् स **विजयश्रीप्रेमसूरीश्वरः** ॥३॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

यः स्याद्वादनयप्रमाणविदुरो वैराग्यवारान्निधिः,
मोहग्रीष्मसुतप्तभव्यभुवने यद्गीः पयोदायते ।
यो नित्यं तपते तपः कृशतनुः संसारसंतापहम्,
श्रीगच्छाधिपतिः स पातु **भुवन-श्रीभानुसूरीश्वरः** ॥४॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

संशोधिताऽपि वृत्तिर्विजयोदयसूरिभिः कृपां कृत्वा ।
सिद्धान्तदिवाकृद्भिः पदार्थसंग्राहकैः पूज्यैः ॥५॥ (पथ्यार्या)

आगमकर्मप्रकृतिग्रन्थेष्वपि बुद्धिशालिभिर्विजयैः ।
जयघोष-धर्मजिद्-हेमचन्द्रसूरीश्वरैरन्यैः ॥६॥ (युग्मम्)

मेवाडदेशमुद्धरति गुरुर्मम यः सहोदरश्च ।
भवजलधितारणतरीतुल्यो स **जितेन्द्रसूरीश्वरः** ॥७॥ (आर्या)

प्रेमगुणाटीकारचनेन हि **गुणरत्नसूरिणा** कुशलम् ।
यदत्रापि मया तेनाखिलविश्वं द्रागश्नुवीत शिवम् ॥८॥ (पथ्यार्या)

शिशुचेष्टाऽप्येषा मम न भवति हास्यास्पदं कृतिनाम् ।
यस्माद्धि यथाशक्ति शुभे यतनीयमिति ते प्राहुः ॥९॥ (उपगीति)

छाद्मस्थात् मतिमान्द्यात् वाऽपि यत् किञ्चद् विरुद्धमागमतः ।
स्यादुक्तं तच्छोध्यं बहुश्रुतैर्मयि विधाय कृपाम् ॥१०॥ (पथ्यार्या)

संसारोदधिनौ तुल्योऽस्तु संभवजिनः श्रिये ।
पूरणग्रामवास्तव्याः भक्तितः प्रणमन्ति तम् ॥११॥ (अनुष्टुप्)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमदार्हद्—वेदान्त–न्याय–मीमांसक–वैशेषिक–सौगतादिविविधदर्शनानामुद्भवस्थलो भारतवर्षः। तत्र च जन्ममरणरागद्वेष-विषयकषायदुर्ध्यानादिसंतप्तभवभ्रमणशीलकलिकाल-जन्तूनामात्यन्तिकदुःखोच्छेदक्षममनन्तज्ञानदर्शनाऽक्षयसुखवीतरागभावादिसहजस्वाभाविकात्म-गुणानामनन्यहेतुर्जैनेन्द्रदर्शनं सर्वेषामग्रे विलसति। मोक्षाभिलाषिणोऽनेकभव्यात्मानस्तमा-श्रित्यऽपारभवोदधिं पारयित्वा सर्वोच्चनिर्वाणपदमऽप्रापन्, प्राप्नुवन्ति, प्राप्स्यन्ति च।

अध्यात्मोद्भवस्थलभारतवर्षे श्रीशत्रुञ्जयसम्मेतशिखर–रैवतशिखर-चम्पा-पुरि-पावापुर्याद्यनेकतारकतीर्थानि परिशोभन्ते। तान्याराध्य मुमुक्षव ऐहिकामुष्मिकसर्वसंता-पानपहरन्ति। गौरवशालिन्यां तादृश्यां भारतभूमौ गुर्जर–मरुधर–महाराष्ट्र–कर्नाटक-हिमाचलप्रदेश-मध्यप्रदेश-उत्तरप्रदेशाद्यनेकाः प्रान्ता विराजन्ते। तत्र च विभिन्नभाषा-वेशभूषा-जीवनपद्धति-धर्माद्यनेकसंस्कृतयः प्रचलितास्सन्ति।

भारतवर्षे धर्मकर्मशूराणां मातृभूमिर्मरुधरो राजस्थानेत्यपरनामा प्रान्तश्चकास्ते। स चाऽर्बुदाचल-राणकपुर-कनकाचल-जैसलमेर-जीराउला-ब्राह्मणवाडा-नन्दिवर्धनपुर-प्रभृतितीर्थस्थानादिभिः समलङ्कृतोऽस्ति।

तत्र चाखिलविश्वे प्रतिष्ठामहोत्सवे यस्याभिधानमवश्यमेव गृह्यते, तस्य सुविख्यात-जीराउलातीर्थपार्श्वे स्वर्णगिरिदुर्गोपलक्षित-जालोरजिलायामपूर्णोऽपि पूर्णतां विख्याप-यन्निव पुरणग्रामः सुशोभते।

अधुना पुरणग्रामे क्षत्रियजैनस्वर्णकारब्राह्मण-भील्ल-शूद्रादिजातयः प्रतिव-सन्ति। सर्वेऽपि परस्परं सहकारेण जीवनं यापयन्ति। एकस्यापत्ता इतरे धनधान्यादिसाहाय्यं कुर्वन्ति। तत्र च धनाढ्या जैनाः सन्ति। ते च दानशौण्डाः, दुष्कालादा अर्थान्नपाना-दिभिर्जनान् पशूंश्चोपकुर्वन्ति। श्राद्धानां जनसमवाये लोकप्रियता वर्तते।

पुराऽत्र श्रावकाणां श्रद्धापुञ्ज इव षोडशधर्मजिनपतेरुत्तुंगशिखरबद्धजिनमंदिरं मासीत्। पूज्यपादाचार्यदेवादीनां सत्प्रेरणया धर्मजिनपतेर्मूर्तिरुत्थापिता। नवाधिकविंशतिशत-तमवैक्रमाब्दे (२००९) मृगशीर्षमासे शुक्लपक्षे दशम्यां तिथौ शुभमुहूर्ते परमपूज्यप्रशांत-मूर्तिशान्तिसूरीश्वराणां शुभनिश्रायां प्रशमरसनिमग्नस्तृतीयजिनपतेः श्रीसंभवनाथ-प्रभोर्प्रतिष्ठा हर्षोल्लासेन श्रीसङ्घेन कारिता। ग्रामस्योच्चैस्तरभागे स्थितो जिनालयमुत्त-माङ्गस्यावतंसक इव परिशोभते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा समुद्रः पूर्णिमायाः शशिसंयोगेनोर्ध्वतामुपयाति तथा विश्वानन्ददायक श्रीसंभवनाथप्रभोः संयोगेन श्री सङ्घोऽपि धर्मधनधान्यादिभिः समार्घ्यत् । श्रीसङ्घे दीक्षोद्यापनप्रभुभक्तिमहोत्सवादिधर्मानुष्ठानानि विशेषरूपेणाऽऽरब्धानि ।

एकदा महावातेन जिनालयस्य ध्वजदण्डस्त्रुटितः । ततो नूतनध्वजदण्डः निर्मापितः । तस्य द्वयोश्च जिनबिम्बयोः प्रतिष्ठा एकत्रिंशदधिकविंशतितमवैक्रमीयवर्षे (२०३१) परमपूज्य शासनप्रभावकाचार्यदेवश्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वराणां निश्रायां कारिता । तदनन्तरं जिनमन्दिरं विचित्रकाचकलाकृत्यामण्डितस्तया च जिनालयं देवविमान सदृशमुपशोभते । सम्पूर्णशिखरस्य च जीर्णोद्धारःकृतः । शिखरं विशिष्टे पाषाणेन समलङ्कृतम् , तत्र च चतुर्णां मङ्गलमूर्तीनां प्रतिष्ठा-ऽष्टादशाभिषेकश्च समहोत्सवमस्माकं (आचार्यगुणरत्नसूरीश्वरादीनाम्) निश्रायां षट्चत्वारिंशदधिकविंशतिवैक्रमाब्दे (२०४६) वैशाखशुक्लापञ्चम्यां तिथौ कृता ।

सद्धर्मसुवासितपूरणनगरे निम्नलिखिताः साध्व्यश्च दीक्षिताः सन्ति ।

अभिधानम्	गुरोर्नाम
प. पू. उदयरत्नविजयः मा. सा.	प. पू. आ. नित्यानन्दसूरीश्वराः
,, संयमरत्न विजयः मा. सा.	प. पू. आ. गुणरत्न सूरीश्वराः
प. पू. रत्नरेखाश्रीजी म. सा.	,, रंजनश्रीजी म. सा.
प. पू. विवेकप्रभाश्रीजी म. सा.	,, त्रिलोचनाश्रीजी म. सा,
,, सूरप्रभाश्रीजी म. सा.	,, विवेकप्रभाश्रीजी म. सा.
,, सत्त्वपूर्णाश्रीजी म. सा.	,, कीर्तिपूर्णाश्रीजी म. सा.
,, सौम्यपूर्णाश्रीजी म. सा.	,, गुणपूर्णाश्रीजी म. सा.
,, कीर्तिरेखाश्रीजी म. सा.	,, पुण्यरेखाश्रीजी म. सा.
,, गुणज्ञरेखाश्रीजी म. सा.	,, ,,
,, हेमरेखाश्रीजी म. सा.	,, ,,
,, लावण्यरेखाश्रीजी म. सा.	,, ,,
,, नयनरेखाश्रीजी म. सा.	,, मदनरेखाश्रीजी म. सा.
,, नीर्मलशीलाश्रीजी म. सा.	,, नयनरेखाश्रीजी म. सा.
,, तत्त्वरमाश्रीजी म. सा.	,, तत्त्वदर्शिताश्रीजी म. सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमानतश्चतुर्दशसहस्रश्लोकप्रमाणाप्रेमगुणाख्यावृत्त्या विभूषितसर्वोपशमना-प्रकरणः श्रीपूरणमङ्घज्ञानद्रव्यसाहाय्येन प्रकाश्यते। इति कृतसुकृतश्रीपूरणसङ्घोऽन्ये च भव्यात्मनः पठनपाठनस्वाध्यायादिना क्रमेण कर्मनिर्जरां कृत्वा निःश्रेयसमश्नुवतामिति शिवम्।

इति समाप्ता प्रशस्तिः।

तत्समाप्तौ च समाप्ता

श्रीमत्तपोगच्छगगनाङ्गणदिनमणि-कर्मसाहित्यनिष्णात-सिद्धान्तमहोदधिसच्चारित्रचूडामणि-प्रातःस्मरणीयाचार्यशिरोमणि-श्रीमद्विजय-प्रेमसूरीश्वरान्तेवासिवर्धमानतपोनिधि-स्याद्वादनयप्रमाणविशारद-सुविशालगच्छाधिपतिः-आचार्यदेवश्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वर— शिष्यप्रशिष्य— सिद्धान्तदिवाकराचार्यदेव-श्रीमद्विजयजयघोषसूरीश्वर-धर्मजित्सूरीश्वर-हेमचन्द्रसूरीश्वर-गुणरत्नसूरीश्वरसंगृहीतपदार्थकया मेवाडदेशोद्धारकाचार्यदेव-श्रीमद्विजयजितेन्द्रसूरीश्वरान्तिषदाचार्यश्रीविजयगुणरत्नसूरीश्वरविरचिता श्रीकर्मप्रकृत्युपशमनाकरणे सर्वोपशमनायाः प्रेमगुणाख्यावृत्तिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्टानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमं परिशिष्टम्

—: उपशमनाकरण भाग १ मूलगाथाः :—

करणकयाऽकरणा वि य दुविहा उवसामणत्थ बिइयाए।
अकरण अणुइन्नाए अणुओगधरे पणिवयामि ॥१॥
सव्वस्स य देसस्स य करणुवसमणा दुसन्नि एक्किक्का।
सव्वस्स गुणपसत्था देसस्स वि तासि विवरीया ॥२॥
सव्वुवसमणा मोहस्सेव उ तस्सुवसमक्किया जोग्गो।
पंचेंदिओ उ सन्नी पज्जत्तो लद्धितिगजुत्तो ॥३॥
पुव्वं पि विसुज्झंतो गंठियसत्ताणइक्कमिय सोहिं।
अन्नयरे सागारे जोगे य विसुद्धलेसासु ॥४॥
ठिइ सत्तकम्म अन्तोकोडीकोडी करेत्तु सत्तण्हं।
दुट्ठाणचउट्ठाणे असुभसुभाण च अणुभागं ॥५॥
बंधंतो धुवपगडी भवपाउग्गा सुभा अणाऊ य।
जोगवसा य पएसं उक्कोसं मज्झिम जहण्णं ॥६॥
ठिइबंधद्धापूरे नवबंधं पल्लसंखभागूणं।
असुभसुभाणणुभागं अणंतगुणहाणिवुड्ढीहिं ॥७॥
करणं अहापवत्तं अपुव्वकरणमनियट्टिकरणं च।
अंतोमुहुत्तियाइं उवसंतद्धं च लहइ कमा ॥८॥
आइमकरणद्धाए पइसमयमणंतगुणवुड्ढीए।
परिणामट्ठाणाणं दोसु वि लोगा असंखेज्जा ॥९॥
मंदविसोही पढमस्स संखभागाहि पढमसमयम्मि।
उक्कोसं उप्पिमहो एक्केक्कं दोण्ह जीवाणं ॥१०॥
आ चरमाओ सेसुक्कोसं पुव्वप्पवत्तमिइ नाम।
बिइयस्स बिइयसमए जहण्णमवि अणंतगुणमुक्कस्सा ॥११॥
निव्वग्गणमवि तत्तो से ठिइरसघायठिइबन्धगद्धा उ।
गुणसेढी वि य समगं पढमे समये पवत्तंति ॥१२॥
उयहिपुहुत्तुक्कोसं इयरं पल्लस्स संखतमभागो।
ठिइकण्डगमणुभागाणणंतभागा मुहुत्तंतो ॥१३॥
अणुभागकण्डगाणं बहूहिं सहस्सेहिं पूरए एक्कं।
ठिइकण्डसहस्सेहिं तेसिं बीयं समाणेहिं ॥१४॥
गुणसेढी निक्खेवो समये समये असंखगुणणाए।
अद्धादुगाइरित्तो सेसे सेसे य निक्खेवो ॥१५॥
अनियट्टिम्मि वि एवं तुल्ले काले समा तओ नामं।
संखिज्जइमे सेसे भिन्नमुहुत्तं अहो मुच्चा ॥१६॥
किंचूणमुहुत्तसमं ठिइबन्धद्धाएँ अन्तरं किच्चा।
आवलिदुगेक्कसेसे आगाल उदीरणा समिया ॥१७॥
मिच्छत्तुदए खीणे लहए सम्मत्तमोवसमियं सो लंभेण।
जस्स लब्भइ आयहियमलद्धपुव्वं जं ॥१८॥
तं कालं बीयठिइ तिहाणुभागेण देसघाइ त्थ।
सम्मत्तं सम्मिस्सं मिच्छत्तं सव्वघाईओ ॥१९॥
पढमे समए थोवो सम्मत्ते मीसए असंखगुणो।
अणुसमयमवि य कमसो भिन्नमुहुत्ता हि विज्झाओ ॥२०॥
ठिइरसघाओ गुणसेढी विय तावं पि आउवज्जाणं।
पढमट्ठिइए एगदुगावलिसेसम्मि मिच्छत्ते ॥२१॥
उवसंतद्धा अंते विहिणा ओकड्ढियस्स दलियस्स।
अज्झवसाणणुरूवस्सुदओ तिसु एक्कयरयस्स ॥२२॥
सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमा तहा विगिट्ठो य।
छालिगसेसा परं आसाणं कोइ गच्छेज्जा ॥२३॥
सम्मद्दिट्ठी नियमा उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुनियोगा ॥२४॥
मिच्छाद्दिट्ठी नियमा उवइट्ठं पवयणं न सद्दहइ।
सद्दहइ असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥२५॥
सम्मामिच्छद्दिट्ठी सागारे वा तहा अणागारे।
अह वंजणोग्गहम्मि य सागारे होइ नायव्वो ॥२६॥
वेयगसम्मद्दिट्ठी चरित्तमोहुवसमाइ चिट्ठंतो।
अजऊ देसजई वा विरतो व विसोहिअद्धाए ॥२७॥
अन्नाणणुभुंजमणज्झणाहजओ अवज्जविरईए।
एगंतवाइ चरिमो अणुमइमित्तो त्ति देसजई ॥२८॥
अणुमइ विरओ अ जई दोण्ह वि करणाणि दोण्णि न उ तइयं।
पच्छा गुणसेढी सिं तावइया आलिगा उप्पिं ॥२९॥
परिणामपच्चयाओ णाभोगगया गया अकरणा उ।
गुणसेढी सिं निच्चं परिणामा हाणिवुड्ढिजुया ॥३०॥
चउगइया पज्जत्ता तिन्नि वि संयोयणा विजोयंति।
करणेहिं तीहिं सहिया नंतरकरणं उवसमो वा ॥३१॥
दंसणमोहे वि तहा कयकरणद्धा य पच्छिमे होइ।
जिणकालगो मणुस्सो पट्ठवगो अट्ठवासुप्पि ॥३२॥
अहवा दंसणमोहं पुव्वं उवसामइत्तु सामन्ने।
पढमठिइमावलियं करेइ दोण्हं अणुदियाणं ॥३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अद्धापरिवत्ताऊ पमत्त इयरे सहस्ससो किच्चा।
करणाणि तिन्नि कुणए तइयविसेसे इमे सुणसु ॥३४॥
अन्तोकोडाकोडी संतं अनियट्टिणो य उदहीणं।
बन्धो अन्तोकोडी पुव्वकमा हाणि अप्पबहू ॥३५॥
ठिइकण्डगमुक्कस्स पि तस्स पल्लस्स संखतमभागो।
ठिइबन्धबहुसह से सेक्केक्क ज भणिस्सामो ॥३६॥
पल्लदिवड्ढबिपल्ला ण जाव पल्लस्स सखगुणहाणी
मोहस्स जाव पल्लं संखेज्जइभागहाऽमोहा ॥३७॥
तो नवरमसंखगुणा एक्कपहारेण तीसगाणमहो।
मोहे वीसग हेट्ठा य तीसगाण प्पि तइय च ॥३८॥
तो तीसग णमुप्पि य वीसगाइं असंखगुणणाए।
तईयं च वीसगाहि य विसेसमहियं कमेणंति ॥३९॥
अद्धुदीरणा असंखेज्जसमयबद्धाण देसघाइ त्थ।
दाणंतरायमणपज्जवं च तो ओ हिदुगलाभो ॥४०॥
सुयभोगाचक्खूओ चक्खु य ततो मई सपरिभोगा।
विरियं च असेढिगया बधंति ऊ सव्वघाईणि ॥४१॥
संजमघाईणंतरमेत्थ उ पढमठिई य अन्नयरे।
संजलणावेयाणवेइज्जंतीण कालसमा ॥४२॥
दुसमयकयंतरे आलिगाण छण्ह उदीरणाभिनवे।
मोहे एक्कट्ठाणे बंधुदया संखवासाणि ॥४३॥
संखगुणहाणिबंधो एत्तो सेसाण सखगुणहाणी।
पउवसमए नपुंस असंखगुणणाइ ज बंतो ॥४४॥
एवित्थी संखतमे गयम्मि घाईण संखवासाणि।
संखगुणहाणि एत्तो देसावरणाणुदगराई ॥४५॥
तो सत्तण्हं संखतमे संखवासितो दोण्हं।
बिइयो पुण ठिइबंधो सव्वेसिं सखवासाणि ॥४६॥
छस्सुवसमिज्जमाणे सेवका उदयट्ठिई पुरिससेसा।
समऊणावलिगदुगे बद्धा वि य तावदद्धाए ॥४७॥
तिविहमवेओ कोहं कमेण सेसे वि तिविहतिविह वि।
पुरिससमा संजलणा पढमठिई आलिगा अहिगा ॥४८॥
लोभस्स बेतिभागा बिइयतिभागोऽत्थ किट्टिकरणद्धा।
एगफड्डगवग्ग अणंतभागो उ ता हेट्ठा ॥४९॥
अणुसमयं सेढीए असंखगुणहाणि जा अपुव्वाओ।
तव्विवरीयं दलियं जहन्नगाई विसेसूणं ॥५०॥
अणुभागोणंतगुणो चाउम्मासाइ संखभागूणो।
मोहे दिवसपुहुत्तं किट्टीकरणाइसमयम्मि ॥५१॥
भिन्नमुहुत्तो संखेज्जेसु य घाईण दिणपुहुत्तं तु।
वाससहस्सपुहुत्तं अन्तो दिवसस्स अंते सि ॥५२॥
वाससहस्सपुहुत्ता बिवरिसअन्तो अघाइकम्माणं।
लोभस्स अणुवसंतं किट्टीओ जं च पुव्वुत्तं ॥५३॥
सेसद्ध तणुरागो तावइया किट्टी ऊ य पढमठिइं।
वज्जिय असंखभागं हेट्ठुवरिमुदीरए सेसा ॥५४॥
गेण्हंतो य मुयंतो असंखभागो य चरिमसमयम्मि।
उवसामेई बीयट्ठिइं पि पुव्व व सव्वद्धं ॥५५॥
उवसतद्धा भिन्नमुहुत्तो त से य संखतमल्ला।
गुणसेढी सव्वद्धं तुल्ला य पएसकालेहिं ॥५६॥
उवसंता य अकरणा संकमणोवट्टणा य दिट्ठितिगे।
पच्छाणुपुव्विगाए परिवडइ पमत्तविरतो त्ति ॥५७॥
उक्कड्डित्ता बीइय ठिईहि उदय इसुं खिवइ दव्वं।
सेढीइ विसेसूणं आवालिउप्पि असंखगुणं ॥५८॥
वेइज्जंतीणेवं इयरासिं आलिगाइ बाहिरओ।
ण हि संकमाणुपुव्वी छावलिगोदीरणाणुप्पि ॥५९॥
वेइज्जमाणसंजलणद्धा अहिगा उ मोहगुणसेढी।
तुल्ला य जयारूढो अता य सेसेहि तुल्ल त्ति ॥६०॥
खवगुवसामगपडिवयमाणदुगुणो तहिं तहिं बन्धो।
अणुभागोणंतगुणो असुभाण सुभाण विवरीओ ॥६१॥
किच्चा पमत्ततदियरठाणे परिवत्ति बहुसहस्साणि।
हिट्ठिल्लाणंतरदुगं आसाणं वा वि गच्छेज्जा ॥६२॥
उवसमसम्मत्तद्धा अन्तो आउक्खया धुवं देवो।
तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढिं न आरुहई ॥६३॥
उग्घाडियाणि करणाणि उदयठिमाइगं इयरतुल्लं।
एगभवे दुक्खुत्तो चरित्तमोहं उवसमेज्जा ॥६४॥
उदयं वज्जिय इत्थी इत्थीं समयइ अवेयगा सत्त।
तह वरिसवरो वरिसवरित्थि समगं कमारद्धे ॥६५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयं परिशिष्टम्

१ अन्यत्रापि 卐 ४३, १४७, २३६
२ अभिधानचिन्तामणि: ६६
३ उक्तञ्च–३, ४, ७, ४४, ६६, ६८, ७०, ७४, ८०,
४ कर्मप्रकृतिचूर्णि: ४३, ● ५२—५३, ५६-६०, ८६, १०६-१०७, ११०, ११४, १२१, १२६, १३६, १४१-१४२, १५३, १६२, १६५, १६७
५ कर्मप्रकृति: १०६, १०७
६ कर्मप्रकृतिमलयगिरिटीका–६०-६१, ७४, ११०-१११, १३६-१३७, १५३
७ कर्मप्रकृत्युपाध्याय प्रवरटीका—६०, १०८, १३५, १३७, १४७, १६०
८ कर्मप्रकृतिचूर्णिटीप्पणक–६०, १३७
९ कर्मस्तव:– ५६
१० कषायप्राभृत:–४७, २०८-२०९
११ कषायप्राभृतचूर्णि–: २१, २४,२६,४१,४७-४८, ५३,५५,५६, ६१,७०, ८३,८५.८८,९१, ९७-९८, १०१, १०७, ११४-११७, १२४, १२५-१२९, १३५-१३६, १३८, १४०, १४३, १४५-१५०, १५१, १५३,–१५४, १५८-१६१, १६५–१६६, १७०, १७७,१८0, १८३-१८६, १८९,१९३, १९६ १९९-२००, २०३,२०८-२०९,२१४,२१६-२१८, २२१-२२८, २३०, २३२-२३४, २३६
१२ गुणस्थानकक्रमारोह: ६७, ७०,
१३ जीवसमास:– १४६
१४ जीवसमासवृति:–१४६
१५ जयधवला– २१, २६, ४९ ५४,७३, १०९, ११४, १२१,१२३–१२५,.१३०, १३५, १४०–१४२, १७४, १७८, १८५, १९४, २०३,२२४
१६ तद्यथा–७९
१७ धवला–५०,५६, १०४,१११,१२९,१५३,१६१, १८०, १८१, १८४, १८९
१८ नव्यशतककर्मग्रन्थ:–४२,४८
१९ नव्यशतकवृत्ति: ७६, ८४
२० पञ्चसंग्रह: (मूल:)—३९-४०, ४२,४५, ५१ ५४-५६,५९,६२–६३,६५,६८, ८६, १०८, ११०, ११९, १२१, १३५,१४२,१४६,१५४,१५८,१६१, १७१, १७३, १८६
२१ पञ्चसंग्रहस्वोपज्ञटीका– १०८,११४,११९,१२०, १३५,१४२,१५४,१६१–१६३,१६९,१७१,१८६,२४३
२२ पञ्चसंग्रहोपाध्यायवृत्ति:–१३५
२३ पञ्चसंग्रहमलयगिरिवृत्त:–२२,६०,७६.१०८, ११८–११९-१२१-१२२,१३५,१६२१८७
२४ पञ्चनिग्रन्थिप्रकरणम्–१०४
२५ महाबन्ध:–२३६,
२६ लब्धिसार:–७,१७,२७,३८,५६,६४,८३, १२०, १२७, १४३-१४४, १४८, १५३–१५४, १५६, १५९-१६१, १६३–१६५
२७ विशेषावश्यकभाष्य:–१४१,
२८ व्याख्याप्रज्ञप्ति:–१०१,१०५
२९ शतककर्मग्रन्थटीका–२२–२३,
३० शतकचूर्णि:-५९
३१ शतकबृहच्चूर्णि:-६७
३२ सप्ततिकावृत्ति:-६०
३३ समराइच्चकहा–५७
३४ सम्यक्त्वप्रकरणम्-५७-५८

प्रकारादिक्रमेणोपशमनाप्रकरणे टीकान्त: प्रमाणतया समुद्धृतानां ग्रन्थानां नाम्नां सूचि।
卐 दक्षिणपार्श्वे पृष्ठाङ्को दर्शित। यत्र '◐' एतच्चिह्न दर्श्यते, तत्र वामपार्श्वस्थपृष्ठाङ्कत: प्रभृति दक्षिण पार्श्वस्थपृष्ठाङ्क यावत् पृष्ठाङ्का बोध्या: ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयं परिशिष्टम्

अकारादिक्रमेणोपशमनाकरणटीकाऽन्तर्गतानां ग्रन्थकृन्नाम्नां सूचिः

१. कर्मप्रकृतिचूर्णिकाराः ४३,५५,११४,१५३,१६४
२. कषायप्राभृतचूर्णिकाराः २१,२४,४१,६१,७०, ८५,१३८,१४६,१६१,१८४,१६४,२००
३. पञ्चसंग्रहकाराः ५९
४. भाष्यसुधाम्भोनिधिः(जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणाः) १४१
५. शिवशर्मसूरिपादाः २
६. श्रीमद्देवेन्द्रसूरीश्वराः २२, ४८, ८७
७. श्रीमद्मलयगिरिसूरीश्वराः २२,४२,४८, ६०, ७४,७६,१११,११८,१२२,१३१,१३५,१३६,१५५
८. श्रीमन्मुनिचन्द्रसूरीश्वराः ६०
९. श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायाः ४८,६९,१११,१३१, १३५,१४७,१५४,१६०
१० सप्ततिकाचूर्णिकाराः ४८

चतुर्थं परिशिष्टम्

उपशमनाकरणटीकान्तर्गता न्यायाः

१. श्रेयांसि बहुविघ्नानि ४
२. नमस्यं तत्सखिप्रेम-घण्टारसितसोदरम् । क्रमक्रमशिमनिस्सारमारम्भगुरुडम्बरम् ५
३. गिरिनदीपाषाणवृत्तता २५
४. कारणे कार्योपचारः ४७
५. माषा सत्य भामा ६२
६. गङ्गायां घोषः ७४
७. यष्टीः प्रवेशय ७४
८. व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः ७८
९. तुणाक्षरः ७९

पञ्चमं परिशिष्टम्

उपशमनाकरणटीकान्तर्गतानि व्याकरणसूत्राणि

१. आत् (२-४-१८) ४, ४५, १०५
२. कारकं कृता (३-१-६८)
३. गत्यर्थाऽकर्मक-पिब-भुजेः (५-१-११) ७८
४. ज्ञानेच्छाऽर्चार्थ-ञीच्छीलादिभ्यः क्तः(५-२-९२) ११६
५. णकतृचौ (५-१-४८) ११४
६. णि-वेत्त्यास-श्रन्थ-घट्ट-वन्देरनः(५-३-१११) ४,४४,१०५
७. नन्द्यादिभ्योऽनः (५-१-५२) १५३
८. पति-राजान्त-गुणाङ्ग-राजादिभ्यः कर्मणि च (७-१-६०) १५३
९. भावाऽकर्त्रोः (५-३-१८) ४४, ६९
१० भूतपूर्वे प्चरट् (७-२-७८) १०२
११ मयुरव्यंसकेत्यादयः (३-१-११६) ७
१२ यावादिभ्यः कः (७-३-१५) ७
१३ युवर्ण-वृ-द-वश-रण-गमृद्-ग्रहः (५-३-२८ ८४
१४ योग्यता-वीप्सार्थानिवृत्ति-सादृश्ये(३-१-४०) २८, २०१
१५ समस्तत-हिते वा (३-२-१३९) १०६
१६ स्त्रियां क्ति (५-३-९१) ३०, १०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
६	८	प्राह	प्राहुः
८	७	विसुद्ध	विशुद्ध
९	१२	सातवे-	सातवेद-
१८	१६	द्वितीय-	द्वितीय-
१८	२६	५५×	५५+
२१	१२	०अपज्जत्त	०अपज्जत्त
२५	३	कश्चिद्	कश्चित्
२५	७	अणुसमये	अणुसमयं
३०	१	०-११	१०-११
३१	२	०वत	वत्
३३		०तमन्या	०तमान्या
३४	४	०वत्यव्यवसाय	वर्त्यव्यवसाय
३४	८	२२६	२६४
३५	४	ड०	उ०
३८	७	इत्कृष्ट	उत्कृष्ट
३८	२०	०चिदमसं	०चिदसं
३९	८	०गुणश्र्णि	गुणश्रेणि
४०	१०	स्मिश्र	स्मिश्र
४०	१३	तदु	तदा
४२	६	स्थितिघातद्धा	स्थितिघाताद्धाः
४३	११	धितूण	धित्तूण
४४	४	वधयति	वर्धयति
४४	२८	×	एव
४४	३०	अंतमुहर्ते	अन्तर्मुहूर्ते
४४	२०	स्थितिय	स्थितयः
४५	२७	बंधालिया	बंधावलिया
४६	९	०भागयज	०भागधोर्ज
४६	१९	....	०तमसमया
४६	२४	पश्यन्त	पश्यन्तु
४७	१४	०डिज्जदिण	डिज्जदि
५०	७	नोतः	नोक्तः
५०	१८	स्थाने	....
५१	२५	श्रान्ते	शान्ते
५१	२३	॥१५॥	॥१६॥
५४	२६	प्रत्यागलन	प्रत्यागलनं
५४	२७	उदीरण	उदीरणा
५६	२१	मीच्छदस्स	मिच्छादस्स
६१	५	०सङ्कमण	०सङ्क्रमण
६१	६	मिश्र	मिश्रे
६१	८	,,	,,
६१	१७	०प्रकृति	०प्रकृति
६१	२२	कषाक	कषाय
६१	२३	व्यतिकालायाम्	व्यतिक्रान्तायाम्
६३	५	गुणा	गुणो
६३	५	अतर	अंतर
६३	१३	०मुहूता	०मुहूर्ता
६३	२८	संकमक्रम	०संङ्क्रम
६४	२२	०वलीकां	०वलिकां
६७	१२	देस	देश
६७	२४	दैश	देश
६९	४	....	सितश्रद्धा
६९	७	/३९	/१८
६९	७	"भावाऽकत्रोः"	"भावाऽकर्त्रोः"
७१	३	उक्कीरद्धा	उक्कीरणाद्धा
७१	३०	कालता	कालता
७२	२०	विशेषा	विशेष
७२	२३	परस्परं	परस्परे
७३	३	०त्व	त्व
७३	२४	०श्च इ	०श्चे
७५	७	०चरम समय	०चरमसमय
७६	१३	न्यून	न्यूनं
७६	१७	मित	मि
७७	१७	०त्तरम	चरम
७७	१९	०कम	०क्रम
७७	२१	सङ्क्रम	गुणसङ्क्रम
७७	२७	निवतन	निवर्तन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
७६	१	---	०धिकार:
७६	२८	---	०बहु
८०	३	त्येयं	त्येवं
८०	११	०च्छणोति	०च्छृणोति
८०	२२	०प्रकतीनां	प्रकृतीनां
८०	२३	....	स्पर्धकाता०
८०	३४	नेकषाय	नोकषाय
८३	२	आरभ्यन्ते	आरभ्यते
८४	१	शेषषु	शेषेषु
८६	७	गृहोत्मा	गृहीत्वा
८७	२०	०वाद्धा	त्वाद्धा
८९	११	संम्मा	सम्मा
८९	२५	एव	एवं
८६	३१	ठ्ठाण	ट्ठाण
९१	३	....	संख्येय
९२	१८	....	युग
९५	१०	प्रवेश	
९७	२२		द्वि
९८	८	बधो	बंधो
९८	१३	(२)स्थानप्ररूपणा	(३)स्थानप्ररूपणा
९८	२३	०रिकानि	रिक्तानि
१००	८	---	०रम्यतर
१००	२८	....	स्थितस्य
१०१	१२	....	विशुद्धि
१०१	१३	गणं	गुणं
१०१	२१	सजय	संजय
१०२	१६	—	०कस्य
१०४	१०	---	लब्धस्थानं
१०४	२४	समय	संयम
१०४	२८	तस्सव	तस्सेव
१०४	३०	—	गंतूणुप्पत्तीदो
१०५	३	...	विसेसाहिया
१०५	१८	विजोयात	विजोयंति
१०५	२५	०अनता	०अनंता
१०६	१०	---	सम्यक्त्व

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१०६	२०	सजोयण	संजोयणा
१०६	२२	असख०	असंख०
१०६	२३	गणसेढीते	गुणसेढीते
१०६	२४	गणं	गुणं
१०७	३	सखेज	संखेज्जं
१०७	१३	गुणहानं	गुणहीनं
१०८	२२	सयादेव	समयादेव
१०९	१	तघात:	स्थितिघात:
११०	१७	अन्तमुहू०	अन्तर्मुहू०
१११	२२	निशषस्य	नि:शेषस्य
१११	१६	—	भवतीत्यर्थः
११०	२२	निशेषस्य	नि:शेषस्य
११२	११	०सहस्र	सहस्रं:
११४	१७	×	दर्शन
११७	२	अपूर्व	पूर्व
११८	२४	०द्रुक्त	०द्रुक्तत्वं
११९	१५	सतं	संतं
११६	२८	दासीत्	दावासीत्
१२०	१८	सम न	समानं
१२१	७	पञ्चसङग्रहे	पञ्चसङ्ग्रहे
१२१	२२	०स्यिति	०स्थिति
१२१	२८	खंडग गेसु	खंडगेसु
१२३		उ.सं.प.ज.प अ सं.	उ.सं.प: ज.प असं.
१२४	५	घान्यन्त	घात्यन्त
१२४	९	स्म	इत्याति स्म
१२४	१०	इ्दानीं	इदानीं
१२४	१८	सत	संत
११४	२१	मुबीरणा	मुदीरणा
१२४	२७	०भ ग	भाग
१२५	१२	उक्कोसपदेससतं	उक्कोसपदेसंतं
१२७	२	ति	त्ति
१२८	१२	भवतीत्कर्थः	भवतीत्यर्थः
१२८	२१	विशेषयाधिक्यं	विशेषाधिक्यं
१२८	२६	---	सर्वसत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२९	३	०रितने	०रितन
१३०	१५	माणतरा!	माणंतराए
१३०	२९	घेतघ्वो	घेतव्वो
१३१	११	चूर्णोवपि	चूर्णावपि
१३१	११	यावद्दुण	यावद्गुण
१३५	१९	एव	एवं
१३५	२६	सतकम्मादो	संतकम्मादो
१३५	२८	०णाणभागस्स	०णाणुभागस्स
१३८	१७	०यागतः	०यामतः
१३८	२	सखात	संख्यात
१३८	२८	....	वक्तव्यः
१४०	५	एव	एवं
१४०	१७	०द्वाया	०द्धाया
१४३	१	....	निष्ठ.एकलेश्या]
१४३	१३	०वोत्पतः	०वोत्पत्तेः
१४४	११	—	०भागहारेण
१४४	३०		भागमुदया
१४५	१६	षेकाविपक्र०	निषेकादपक्र०
१४५	३१	पूर्वक	पूर्वकं
१४६	६	अन्तर द्वा	अन्तराद्धा
१४८	११	दसण	दंसण
१५१	८	....	तवस्यति
१५४	२२	उक्त	उक्तं
१५४	३०	०पयत	०पर्यन्त
१५५	१५	वेदिते	वेदित
१५५	१७	मुहूत	मुहूर्तं
१५६	३०		सम्यक्त्व
१५८	१२	करती	करोती
१५८	२१	परिणाम	परिणामं
१५८	२५	प्रभृत	प्राभृत
१५८	२६	पूव्व पदविद	पूव्वं पदविदं
१५९	११	....	०सत्क
१६०	४	....	सर्वासां
१६१	१२	...	स्थित्य
१६१	१५	०बहुग	०बहुगं
१६२	२४	म त्रमेव	मात्रमेव
१६३	२६	०यथः	०यर्थः
१६४	१०	...	०भाग
१६४	२४	विशाति	विंशति
१६५	२	—	०सार्धं
१६५	४	....	०सत्क
१६६	२५	०बन्धष्य	बन्धेष्व
१६८	२१	..	परस्परं
१६८	२५	—	स्थिति
१६९	११	वेत्य	वेत्य
१७२	२१		०कषायाणां
१७२	२१	"प्रतरं"	"अंतरं"
१७३	८	----	समाना
१७५	२७	क्षीणेष	क्षीणेषु
१७६	८	०तीन मुदय	०तीनामुदय
१७७	८	—	०सत्क
१७८	२१	—	वार्षिको
१७९	२२	०प्रमरणत्वा०	०प्रमाणत्वा०
१७९	२०	—	०निष्ठिता
१७९	२६		०दलिको
१८१	७	समत्तो	समत्ती
१८१	१०	चूर्णायादि	चुण्णीवि
१८१	१३	उवसमेदि	उवसामेदि
१८४	२७	ग्रन्थेषू	ग्रन्थेषु
१८५	१०	पूर्वाक्त०	पूर्वोक्त
१८६	१३	कम्माणं	—
१८६	२४	द्वत्रिशद्	द्वात्रिंशद्
१८६	२५	बत्तीसमा	बत्तीससमा
१८७	६	हास्षटकस्य	हास्यषट्कस्य
१८८	२७	....	तृतीय
१८९	८	०वेव स कामि	०वेदस्स संकामि
१८९	२०	०प्रमाण वनि	०प्रमाणत्वनि
१९१	६	...	सर्वथो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठम्	अशुद्धिः	पङ्क्तिः	शुद्धिः
१६२	१२	०द्वियेन	०द्वयेन
१९३	१३	—	०स्थिति
१६४	२२	०य त	०यति
१६५	२८	०निषके	०निषेके
१९८	७	०कले	काले
१९८	६	शिष्टा लिका	शिष्टावलिका
१६९	११	क द्वये	काद्वये !
१६६	१६		स्पर्धकेभ्यः
१९६	२७	प्रस्संकन	प्रस्सकन्न०
२०५	१३	—	व्यवच्छिद्यते
२०५	१४	०संज्लन	०संज्वलन
२०७	१८-१६	जातो य चरिम मोत्तूण	
२०८	१	[गाथा ५४	[गाथा ५५
२०८	५	०ज्जणा	०ज्जति भागं गेण्ह्'त
२०६	१	गाथा	
२१४	२६	०योगति	०योगगति
२१७	१६		०सङ्क्रमस्य
२१६	२०	वेदियतव्यम्	वेदयितव्यम्
२२३	२६		वेदककाल
२२५	८	णिविखवदव्वा	णिक्खिविदव्वा

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२२५	२९	मकुष्यो	माकुष्यो
२२७	१४	भगियादो	भागियादो
२२८	११	०इयणम	०द्वयाणाम्
२२८	२०	–	श्रेणिरग्राऽपि
२२६	६		अनाक्रान्त
२३६	२०	जुगष	जुगवं
२३६	२१	णाणत्त	णाणत्तं
२३८	१०		पूर्ववद्
२३८	३०	श्रणि	श्रेणि
२३६	२६	–	व्यतिक्रान्तायां
२५२	१८		०भावि
२५३	५	तद्वोधमेव	तद्विधमेव
२५५	२३		समान
२५८	१६	पयन्तं	पर्यन्तं
२५८	२७	स्युपद्यते	स्युःपद्यते
२५६	४	सवत्वतः	स वतः
२५६	१५	त	तं
२५६	२७	द्विहि	द्विदि
२५७	२२	ताम्रा	ताम्रो
२५८	२५	०सामग स	०सामगस्स
२६१	२१	०धंम	धम
२६२	२		श्रोपूरण

—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरण पृष्ठ २ के चित्र का परिचय

इस चित्र में अेक पहाड बताया है । उसके ऊपर ११ सोपान (Steps) बताये हैं ।

संसार रूपी पहाड के पहले सोपान मिथ्यात्व गुणस्थानक से कोई आत्मा कूदकर चौथे सोपान अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त करती है । कोई - आत्मा पांचवे सोपान देशविरत गुणस्थानक को प्राप्त करती है । कोई आत्मा छट्ठें सोपान प्रमत्त विरत गुणस्थानक को प्राप्त करती है । कोई आत्मा सातवे सोपान अप्रमत्त गुणस्थानक को प्राप्त करती है। इसमें गृहस्थ चौथे सोपान पर चढता हुआ बताया है । क्योंकि चौथे गुणस्थानक पर गृहस्थ होता है । कोई आत्मा जब उपशम श्रेणि प्रारंभ करती है । तब आठवें सोपान अपूर्वकरण गुणस्थानक से नौवें गुणस्थानक अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक पर चढते मुनिराज बताये हैं। उसके बाद क्रमशः १० वें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक व ११ वें उपशांतमोह गुणस्थानक पर चढते हैं। अन्तर्मुहूर्त के बाद ११ वे उपशांतमोह गुणस्थानक से नीचे उतरते हुए १० वे सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक पर आते है । उसके बाद ९,८,७ वे गुणस्थानक पर उतरते हुए आते हैं । यदि कोई आत्मा आयुष्य पूर्ण होने पर मर जाती है, तो वह अवश्य वैमानिक देव बनती है । इसलिये सोपान के ऊपर देवविमान बताया गया हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

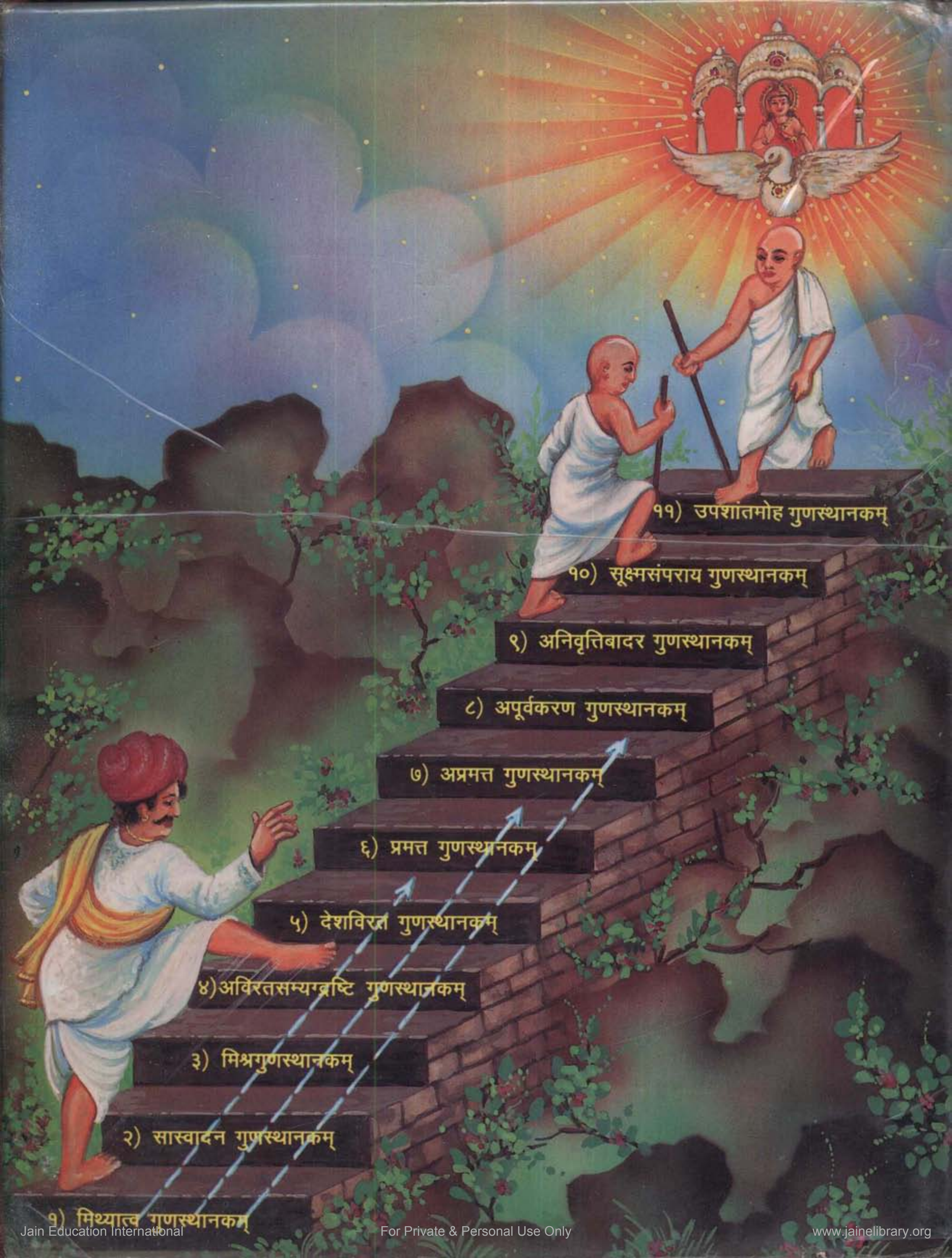

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org